गृह्यसूत्र-संग्रह

(आश्वलायन, शांखायन, गोभिल, पारस्कर
आदि प्रसिद्ध गृह्य सूत्रों से संकलित भाषा टीका सहित)

— ※ —

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता

— ※ —

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
डा० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

मुद्रक :
शाऊदयाल गुप्त,
सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा

*

प्रथम संस्करण
१९७२

*

मू० दस रुपये

भूमिका

मानव-सभ्यता का जो स्वरूप हम आज देख रहे हैं, वह सौ-पचास अथवा हजार-दो हजार वर्षों के भीतर विकसित नहीं हुआ है। धर्म, नैतिकता, परमार्थ, चरित्र सम्बन्धी जो उच्च सिद्धान्त और नियम हमको इस समय दिखाई पड़ रहे हैं, वे एक दिन में उत्पन्न नहीं हो गये हैं। इतिहासज्ञों के मतानुसार तो किसी समय अधिकांश मनुष्य ऐसी ही दशा में थे जिसे जंगली पशुओं से कुछ ही उन्नत कहा जा सकता है। अब भी संसार के अनेक भागों में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जिनको 'नरभक्षी' कहा जाता है। पर धीरे धीरे महान उपदेशकों और ऋषि-मुनियों की धर्म-प्रेरणा से लोगों की मनोभूमि का संस्कार, सुधार होता गया और वह उन्नति करते-करते 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' (समस्त प्राणी हमारे आत्मीय ही हैं) के सर्वोच्च मन्तव्य तक जा पहुँचा। यह आश्चर्यजनक परिवर्तन सहज में नहीं हो गया। इसके लिये धर्म के मार्गदर्शकों और उनके अनुयायियों को बहुत अधिक आत्मत्याग, श्रम और सहनशीलता का परिचय देना पड़ा, तब कहीं जाकर मनुष्य निम्न स्तर के विचारों तथा कार्यों से विरत होकर धर्मानुकूल और कल्याणकारी नियमों पर चलने में समर्थ हो सका। इस परिवर्तन में 'गृह्य-सूत्रों' ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

यद्यपि आज हमको इन 'गृह्य सूत्रों' की उपयोगिता का अनुभव बहुत कम हो पाता है, पर इनके भीतर हमारी वर्तमान सामाजिक प्रथा और रीति-रिवाजों का बीज निहित है। जो समाज जीवित होगा, उसमें देश-काल के परिवर्तन के साथ-साथ

थोड़ा-बहुत बदलाव होते चलना तो अनिवार्य है। यह परिवर्तन दो-चार हजार वर्ष में इतना अधिक हो जाता है कि यह पता लगा सकना भी कठिन लगता है कि वर्तमान रूढ़ि का सम्बन्ध प्राचीन काल की किस प्रथा से है। इसके लिये 'गृह्य सूत्रों' और धर्म सूत्रों का गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है। जब हम विभिन्न प्राचीन ग्रंथों से तत्कालीन प्रथाओं का पता लगाते हैं तब यह समझ में आता है कि किस प्रकार क्रमशः परिवर्तन होकर वर्तमान प्रथायें प्रचलन में आई हैं।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी नियमों में इस प्रकार परिवर्तन होते रहना न तो आश्चर्यजनक है और न अस्वाभाविक। देश काल में फेर बदल होता ही रहता है और सामान्य मनुष्यों को उसी के अनुसार अपने व्यवहारों में भी घटा बढ़ी करनी पड़ती है। अपने गर्म देश में हम प्रातःकाल ही ठण्डे जल से स्नान करके नदी के किनारे नंगे बदन भजन करने बैठ जाते हैं। पर यदि हम किसी परिस्थितिवश इंग्लैण्ड या रूस जैसे ठण्डे स्थान में पहुंच जांय तो वहाँ हमारा उस नियम पर चलना असम्भव हो जायगा। भजन हम तब भी कर सकते हैं, पर हमको गर्म पानी से स्नान करना होगा और ऊनी वस्त्र पहिन कर बन्द स्थान में बैठना पड़ेगा। इसी प्रकार जिस समय रेल का प्रचार नहीं हुआ था और अधिकांश व्यक्ति पैदल या बैलगाड़ी में यात्रा करते थे, तब खान-पान तथा छुआछूत के नियमों का जितना पालन कर लिया जाता था, उतना अब रेल, मोटर-बसों और समुद्री तथा हवाई जहाजों में यात्रा करते हुये कदापि पालन नहीं किया जा सकता है। इसी तथ्य को दृष्टि गोचर रखते हुये एक सनातन धर्मी विद्वान् ने कहा था

'इस समय भारत में सब ओर से सनातन वैदिक धर्म पर आक्रमण हो रहे हैं, जिससे हम लोगों का धर्म से श्रद्धा प्रेम

छूटता जाता है। इसका मुख्य कारण धर्म की शिक्षा का अभाव और अपने धर्म को ठीक ठीक न जानना है। अतएव हम लोगों को चाहिये कि वैदिक धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करें और इसके लिये भारत के प्राचीन श्रौत, गृह्य, धर्म सूत्रादि ग्रन्थों में उपदिष्ट कर्तव्यों को समझें-बूझें। वेदों के ६ अङ्गों में एक 'कल्प' भी है। इसी के 'श्रौत' और 'गृह्य' आदि भेद हैं। 'गृह्य सूत्रों' में स्मार्त्त धर्मों का विशेष विधान होने से इस समय कर्म में प्रवृत्ति कराने के लिये इन सूत्र ग्रंथों का अध्ययन परम आवश्यक है।'

गृह्य सूत्रों की रचना मुख्य रूप से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये की गई है कि वैदिक और स्मृतियों में दिये गये आदेशों और नियमों का पालन किस विधि-विधान से किया जाय। ये विधान मूल रूप से तो एक ही हैं पर सम्प्रदाय और शाखा भेद से उनके क्रिया-कलाप में थोड़ा-बहुत अन्तर हर जगह पाया जाता है। आज तो सभी प्रान्तों की सामाजिक प्रथायें और रूढ़ियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। आप एक शहर में ही विभिन्न जातियों में ऐसी-ऐसी प्रथाएँ देख सकते हैं जो बिल्कुल विपरीत जान पड़ें। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश के ही एक नगर में वैश्य जातीय एक व्यक्ति के यहाँ कन्या-विवाह के अवसर पर देखा गया कि उसको काले वस्त्र और काली चूड़ी आदि पहिना कर विधवा का वेश बना दिया गया, उसी तरह का कुछ रोने-पीटने का अभिनय किया गया, उसके पश्चात् धूमधाम से विवाह सम्पन्न किया गया। शायद इसका उद्देश्य यह हो कि जिस कन्या से इस प्रकार 'विधवा' का स्वांग करा दिया जायगा, फिर आगे चल कर उसे वैधव्य का अभिशाप सहन न करना पड़े। कुछ भी हो हमारे कथन का आशय इतना ही है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और विभिन्न जातियां

तथा मानव-समुदाय एक दूसरे के सम्पर्क में आते जाते हैं, वैसे-वैसे ही सामाजिक प्रथाओं का बाह्य स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। पर उसका मूल उद्देश्य-उसकी आत्मा तब भी शेष बनी रहती है। इस दृष्टि से इन 'गृह्य सूत्र ग्रंथों' का एक बड़ा महत्त्व यह है कि इनके द्वारा हम प्रचलित रीति-रिवाजों की वास्तविकता को समझ सकते हैं, और उनमें वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप नवीन परिवर्तनों का निर्माण भी कर सकते हैं।

श्रेष्ठ संस्कारों का कल्याणकारी प्रभाव—

गृह्य सूत्रों में वर्णित जातकर्म, चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारों के विधि विधानों के अनुसार आचरण का एक सुपरिणाम यह भी होता है कि उनके प्रभाव से मनुष्य में सद्-गुणों के बढ़ने और दोषों के दूर होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार खान से निकला हीरा आरम्भ में सामान्य पत्थर की तरह ही जान पड़ता है, पर जब उसे खराद पर चढ़ा संस्कारित किया जाता है तो उसकी चमक-दमक कुछ और ही हो जाती है और मूल्य भी कई गुना अधिक हो जाता है। जिस प्रकार शुक पक्षी और मैना आदि सिखाने से मिष्ट वार्ता करके श्रोताओं को प्रसन्न करते हैं, हाथी, घोड़ा, बैल आदि शिक्षा प्राप्त करके साधारण से बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं, सुवर्ण, रजत, ताम्र, अभ्रक, लोहा आदि धातुएँ संस्कारित होकर बहुमूल्य भस्म बन जाती हैं, इसी प्रकार मनुष्य भी यथोचित संस्कारों के होने से बहुत सुयोग्य और कार्यक्षम बन सकता है।

ये संस्कार दो प्रकार के होते हैं दृश्य और अदृश्य अथवा शास्त्रीय और व्यावहारिक। व्यावहारिक संस्कारों, जैसे स्कूल

की परीक्षायें पास करना अथवा कोई कला, कारीगरी, का परिणाम तो शीघ्र ही दिखलाई पड़ जाता है, पर शास्त्रीय संस्कारों का फल शीघ्र ही प्रत्यक्ष दिखाई पड़ना संभव नहीं। फिर भी शास्त्रीय संस्कारों से जो आध्यात्मिक और पारलौकिक प्रगति होती है, उसका महत्त्व लौकिक सफलता से किसी प्रकार भी कम नहीं आँका जा सकता।

गृह-जीवन की महत्ता—

गृह्य संस्कारों का प्रभाव व्यक्तिगत जीवन और चरित्र को ऊँचा उठाने में तो सहायक होता ही है, उससे सामाजिक गरिमा की भी बहुत अधिक वृद्धि होती है। कारण यह है कि समाज घरों या परिवारों के समूह का ही नाम है। यदि गृह्य संस्कारों के प्रभाव से हमारा पारिवारिक जीवन सुधरता है, और बहु-संख्यक परिवार इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो समाज का उत्थान होना स्वाभाविक ही है। इसका परिचय देते हुये 'गोभिल गृह्य सूत्र' के लेखक का कथन है—

'गृह के लिये उपयोगी होने से इसको 'गृह अग्नि' कहते हैं। इस ग्रंथ में उस अग्नि से सम्बन्धित अग्निहोत्र आदि नित्य कर्तव्य-कर्म और उसके अंगस्वरूप अग्नि के आधान आदि कर्मों का उपदेश करेंगे। इसमें बतलाये सभी कर्मों को यज्ञोपवीत-धारी पुरुष आचमन पूर्वक करे। प्रश्न होता है कि 'गृह्य-अग्नि' कौन सी है? ब्रह्मचारी गुरुकुल में वेदाध्ययन को समाप्त कर ब्रह्मचर्य की समापिका समिधा को लेने के लिये अग्नि का समाधान करे और उसमें उस अंतिम समिधा को देवे। फिर जाया (पत्नी) के पाणिग्रहण के पूर्व विवाह के अवसर पर अग्नि का समाधान करना चाहिये।'

आशय यह है 'गृह्य अग्नि' ज्ञानार्जन, दाम्पतिक, परिवारिक और जातीय कर्तव्यों की शृंखला को यथावत् रखने के लिये एक ऐसा बाह्य प्रतीक है, जिससे व्यक्ति सदैव सावधान और कर्तव्यरत बने रहने की भावना और प्रेरणा प्राप्त करता है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भी अग्नि ही मानव-जीवन का सबसे बड़ा आधार है। अग्नि ही जीवन की उत्पादिका और सञ्चालन कर्त्री है। 'ऋग्वेद' की प्रथम ऋचा का सर्व प्रथम शब्द यही है—'अग्निमीले पुरोहितम्' अर्थात् 'अग्नि समस्त विश्व में अग्रगण्य है।' बिना अग्नि की सहायता के व्यक्ति और समष्टि का कोई काम सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिये प्राचीन काल में वेद-ज्ञाता ऋषि-महर्षियों ने जीवन सम्बन्धी प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कृत्य के अवसर पर अग्नि का आधान करने का आदेश दिया था। इसके लिये प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को अपनी अग्नि स्वतंत्र रखकर उसे सदैव स्थायी रखनी होती थी। उस अग्नि का आरंभ पाँच-छः वर्ष की आयु में, जब मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का आभास होने लगता है, होता था और वह मरणकाल तक सहायिका बनी रहती थी।

प्राचीन काल में प्रत्यक्ष अग्नि का उत्पादन भी ऐसा सरल न था कि झट से जेब से माचिस (दियासलाई) की डिबिया निकाल कर अग्नि प्रकट कर ली। उस समय बहुत समय और परिश्रम लगाकर अरणि-मन्थन द्वारा अग्नि प्राप्त की जाती थी। वह कार्य भी सबके लिये सदैव सुलभ न था। इसलिये उस समय के आचार्यों-लोकनायकों ने अपनी अग्नि को स्थायी बनाये रखने को एक धर्म-कर्तव्य बना दिया था। इससे जीवन-निर्वाह की सामान्य क्रियाएँ तो पूरी होती ही थीं, साथ ही मनुष्य को अपने सभी कर्तव्य-कर्मों में सावधान, मुस्तैद और

एकनिष्ठ रहने की शिक्षा प्राप्त होती थी, उसका अभ्यास बना रहता था। अनेक प्रदेशों और जातियों में तो 'गृह्य अग्नि' को इतना पवित्र माना जाता था कि उसकी रक्षा के लिये किसी भी परिश्रम, त्याग और बलिदान को अधिक नहीं समझा जाता था। वैदिक आर्यों की ही एक विशेष शाखा माने जाने वाले पारसी आज तक 'अग्नि पूजक' कहलाते हैं और वे अपनी अग्यारी (मंदिर) में अग्नि में सदैव समिधा के रूप में चन्दन की लकड़ी डालकर प्रज्ज्वलित करते रहते हैं और उसी को ईश्वर का प्रतीक मानकर पूजते है। इसी प्रकार प्राचीन काल में हमारे पूर्वज भी 'अग्निहोत्र' के रूप में अपनी अग्नि को सदैव सुरक्षित और स्थायी रखते थे और उसे जीवन का एक महान कर्तव्य मानते थे।

सूत्रग्रन्थों के प्रतिपादन में अन्तर——

वैसे तो अग्नि की पूजा के लिये बड़े-बड़ वैदिक (श्रौत) यज्ञ बहुत अधिक खर्च और समारोह से किये जाते थे, पर उनका करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये संभव न था। उनको बड़े राजा-महाराजा या अन्य विशेष साधन-सम्पन्न व्यक्ति ही किया करते थे। अतएव सामान्य व्यक्तियों के लिये धर्माचार्यों ने 'पाक-यज्ञों' का विधान किया था, जिन्हें वे जीवन निर्वाह के अन्य कार्यों के साथ नित्य प्रति करते रहें। हम लोग बाल्यावस्था में भोजन आरम्भ करने से पूर्व भोज्य-सामग्री का जरा-सा अंश निकाल कर चूल्हे की अग्नि में डाल देते थे या अलग भूमि पर रख देते थे। यह उसी 'गृह्य अग्नि' की आराधना का अवशेष एक छोटा-सा कृत्य था, जिसे हम अनजाने ही किया करते थे। यह विधान शास्त्रीय रूप में किस प्रकार किया जाय इसी का वर्णन 'गृह्य-सूत्र' का मुख्य विषय है। 'आपस्तम्बीय धर्म-सूत्र' के

प्रथम सूत्र 'अथात: सामयाचारिकान्धर्मान् व्याख्यास्याम:' का भाष्य करते हुये पडित हरदत्त कहते हैं—

'इस प्रथम सूत्र में 'अथ' यह शब्द आनन्तर्य प्रकट करता है और 'अत:' शब्द हेतु का द्योतक है। अत: धर्म शास्त्र में जो 'श्रौत' और 'गाह्य' कर्म बतलाये गये है, वे सभी आगे कहे गये धर्मो की अपेक्षा रखते हैं। जैसे 'आचान्तेन कर्तव्यम्'— 'पवित्र पाणिना कर्तव्यम्' इत्यादि वाक्यों का उल्लेख होने से आचमन आदि के नियमों को जानने की आवश्यकता प्रतीत होती है। सभी आचार विशेष समयों पर किये जाने वाले होते हैं, इसलिये उनको 'सामयाचारिक' कहा गया है। पौरुषेयी व्यवस्था को समय कहा गया है, और वह तीन प्रकार का होना है—(१) विधि (२) नियम (३) प्रतिषेध। जो कार्य किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है वह 'विधि' है। नियम और प्रतिषेध का प्रयोजन निवृत्ति अथवा दोषों से बचने का होता है। जैसे 'प्राङ्मुखोऽन्नानिभुञ्जीत'अर्थात् 'पूर्वाभिमुख होकर भोजन करे' यह नियम है। क्षुधा को मिटाने के लिये भोजन किया जाता है, इस प्रवृत्ति में यह नियम रखा गया कि पूर्व की ओर मुख करके ही भोजन करे। कर्म के आधार पर प्राप्त होने वाला जो अभ्युदय और निःश्रेयस है उसी को अपूर्व नाम वाला आत्मा का गुण (धर्म) कहते हैं। इस धर्म का समझाने वाला जो कर्म का कथन है वही इसका व्याख्यान है। धर्म के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता जो महर्षि महामनीषी मनु आदिक हैं उनका 'समय' ही धर्म और अधर्म का प्रमाण होता है। किसी भी बात को शास्त्र-ग्रंथ के रूप में लिख देना ही धर्म नहीं होता। यदि ऐसा होने लगे तो अनेकों निरर्थक, अनर्गल बातें धर्म मान ली जायेंगी। अनेक लोग ऐसी शंका किया भी करते हैं कि मनु आदि को ही धर्म-ज्ञाता क्यों माना

जाता है, बुद्ध आदि को क्यों नहीं माना जाय ? क्योंकि अतीन्द्रिय ज्ञान, आध्यात्मिक शक्ति में तो दोनों ही अग्रगण्य हैं। फिर मनु आदि में ही क्या विशेषता है ? इसके उत्तर में सूत्रकार कहते है—"वेदाश्च" जो नियम, विधि–विधान वेद के अनुकूल हों वे ही धर्म हैं। 'गृह्यसूत्रों' की रचना वैदिक उपदेशों के आधार पर की गई है, अतएव वे ही सत्य मानव-धर्म माने जाने के अधिकारी हैं।

पर साथ ही अनेक विद्वानों का यह भी कथन है कि इन सूत्र ग्रन्थों में भी वैदिक आज्ञाएं अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं होतीं। यद्यपि प्राचीन मनीषियों ने इन ग्रन्थों को भूलों और मिलावट से बचाने के कुछ उपाय कर दिये थे, तो भी कई कारणों से उनमें अशुद्धियाँ उत्पन्न हो गईं, जिनको बाद के भाष्यकारों ने ठीक मानकर तर्क और युक्ति से नाम लेकर सही सिद्ध कर दिया। ग्रन्थों की नकल करने वालों ने भी असावधानी या अयोग्यता के कारण अनेक स्थानों में कुछ का कुछ लिख दिया, जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया। इसका प्रमाण यह है कि जब हम एक ही धर्म-ग्रंथ का विभिन्न स्थानों से प्राप्त प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों का मुकाबला करते हैं तो हमको उनमें जगह-जगह पाठ भेद मिलते हैं। इसका एक और कारण यह भी है कि प्राचीन काल में वैदिक साहित्य पूर्ण रूप से मौखिक था। शिष्य गुरुओं से नित्य प्रति उसका कुछ अंश सीखकर रट लेते थे। पर मनुष्य की स्मरण शक्ति में बड़ी उम्र में जाकर निर्बलता आ जाती है। ऐसी परिस्थिति में बाद में जब उनको लिखा गया तो उनमें अनिवार्य रूप से अन्तर हो गया।

हमारे मतानुसार धर्मशास्त्रों में भूल अथवा आक्षेप योग्य कथनों के पाये जाने का एक कारण और भी हो सकता है। आपस्तम्ब ने अपने प्रथम सूत्र में धर्म को जो "सामयाचारिका" कहा है उसका एक आशय यह भी है कि अनेक धार्मिक नियम

किसी विशेष काल के लिये ही विहित और उपयुक्त होते है। समय और स्थान के बदल जाने पर उनमें दोष जान पड़ने लगता है। इस तथ्य को सनातन धर्मानुयायी पंडितों तक ने स्वीकार किया है। गृह्यसूत्रों के परम भक्त और बहुत बड़े प्रचारक ठाकुर उदयनारायणसिंह ने लिखा है—

"जिस देश काल में और जिस रीति से जो कर्म जिसके लिए कर्तव्य कहा है, उस उसी देश काल में, उसी रीति से किया हुआ, उसी मनुष्य के लिए उचित धर्म है, उसी का अन्य प्रकार से करने पर वही अधर्म हो जाता है। जैसे रोना बुरा समझा जाता है,परन्तु वेद प्रमाणानुसार पिता के घर से पति-गृह जाती हुई कन्या का रोना अच्छा माना जाता है। गाली देना हर तरह से बुरा है, पर अनेक लोग विवाह के अवसर उनका गाया जाना ठीक बतलाते थे। इसी प्रकार यदि कुछ धर्म शास्त्रों में यज्ञादि के अवसर पर पशु – आलम्भन का विधान लिखा है, जो उस काल में किसी कारण बुरा नहीं माना जाता होगा, तो उसके आधार पर हम अपना मांस बढ़ाने के लिए की जाने वाली पशु–हिंसा का समर्थन नहीं कर सकते। वह सदा निकृष्ट और हेय ही मानी जायगी। जब प्राचीन ऋषियों ने लोगों में ऐसी गर्हित प्रवृत्ति को बढ़ाते देखा तो उसको उद्देश्य करके लिख दिया "लोकविक्रुष्टमेवच।" अर्थात् जो धार्मिक प्रथा जिस समय लोक में बुरी समझी जाय, उस समय वह कर्तव्य नहीं है।"

इसलिए हमको उचित है कि धर्म के मूल तत्व का निर्णय करने के लिए प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, मनन तो करें, पर वर्तमान देश काल की परिस्थितियों पर विचार करते हुए अपनी शुद्ध बुद्धि से धर्म–मार्ग का निश्चय करें। यह बात सब विदित है कि मध्यकाल में मुसलमान शासकों ने, जब हिन्दुओं को अपने धर्म से साम–दाम–दण्ड–भेद किसी भी उपाय से हटते न

देखा तो उन्होंने छल का आश्रय लिया और कितने ही पेट के गुलाम पंडितों का धन पद का लालच देकर हिन्दू-शास्त्रों में अनेक ऐसी बाते सम्मिलित करा दीं जो समाज—कल्याण की दृष्टि से बहुत घातक थीं। उदाहरण के लिए यह प्रसिद्ध है कि अकबर या किसी अन्य बादशाह ने पंडित काशीनाथ को रिश्वत देकर उनकी पुस्तक में यह लिखा दिया कि अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी" । दश वर्ष की लड़की कन्या मानी जाकर ग्यारहवें वर्ष में वह रजस्वला गिनी जायगी। उस समय अगर उसका विवाह किये बिना पिता और भाई आदि उसका मुँह देखते है तो व घोर नरक में जाकर उसका रज पीते हैं।

गृह्यसूत्र और सामाजिक विकास—

इस प्रकार देश, काल और परिस्थियों में परिवर्तन हो जाने से यद्यपि गृह्य-सूत्रों के विधान ज्यों को त्यों तो व्यवहारिक नहीं रहे हैं, पर इससे उनका महत्त्व मिट नहीं सकता । एक तो वे हमारी वर्तमान सामाजिक प्रथाओं तथा जातीय संगठन के मूल स्रोत होने के कारण सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने के योग्य माने ही जायेंगे । दूसरे उनके द्वारा प्राचीन सामाजिक संगठन, तत्कालीन पारिवारिक परिस्थितियों, उस समय के लोग-जीवन की विविधताओं और विशेषताओं पर जो प्रकाश पड़ता है, वह भी इतिहास और मानव—सभ्यता के विकास का अध्ययन करने वालों के लिए अमूल्य है इस संबध में डा० सीताराम सहगल ने "शांखायन गृह्यसूत्र को अंगरेजी भूमिका में लिखा है—

"गृह्यसूत्र यद्यपि आकार की दृष्टि से छोटे हैं । पर वे मानव-जीवन के उस विवरण को सुरक्षित रखे हुए हैं। जो एतिहासिक ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। कोई

व्यक्ति या समुदाय किसी विशेष स्थान और विशेष समय पर क्या-क्या कृत्य करता है। इतिहास इसका विवरण कभी नहीं रखता। ये परम्परागत लेख ही इस रिक्त स्थान की पूर्ति करते हैं। जेकोस्लोवाकिया के एक विद्वान् डा० विन्टरनीज ने, जो भारतीय साहित्य और संस्कृति के एक प्रसिद्ध ज्ञाता हैं, लिखा है कि ये गृह्यसूत्र नृवंश विज्ञान के अध्येताओं के लिए एक बहुमूल्य खजाने के समान है। जब योरोप के पुरातत्व के अध्ययन करने वालों ने प्राचीन यूनान और रोम के निवासियों के दैनिक रहन-सहन और रीति रिवाजों की खोज की थी तो उनको हजारों ग्रन्थों से उन बातों को एक एक करके इकट्ठा करना पड़ा था पर भारतवर्ष में यहाँ के प्राचीन निवासियों के दैनिक जीवन के विषय में उस समय के विद्वानों और प्रत्यक्ष दर्शियों के पूर्ण रूप से विश्वस्त विवरण मिलते हैं। यद्यपि ये सूत्र ग्रन्थ देखने में नगण्य जान पड़ते हैं पर उनमें प्राचीन काल के सब नियम तथा विधियाँ ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। वास्तव में वे तत्कालीन भारतवर्ष के लोक जीवन के जीते जागते इतिहास हैं। यह ठीक है कि उनमें प्राचीन भारतीय कुटुम्बों के पिताओं और पूर्वजों का चरित्र धार्मिक दृष्टिकोण से वर्णन किया है, पर चूँकि प्राचीन भारतवासियों के समस्त जीवन में धर्म इतना अधिक ओत प्रोत था कि बिना धार्मिक उत्सव के जीवन का कोई कार्य अग्रसर हो ही नहीं सकता था, इसलिये नृवंश विज्ञान वालों के लिये उस समय के लोगों में सार्वजनिक रूप से प्रचलित प्रथाओं और परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ये बड़े ही बहुमूल्य साधन हैं। इन ग्रन्थों द्वारा ऐसी अनेक प्रथाओं का पता चलता है, जो योरोप में बसने वाले आर्यों में प्राचीन काल में प्रचलित थी। अभी तक खोज करने वाले उनको ठीक-ठीक समझ नहीं पाते थे, पर गृह्य सूत्रों में वर्णित विधि विधानों से उनका रहस्य सहज में विदित हो जाता है। विशेष रूप से

प्राचीन काल में योरोप में जो यूनानी, रोमन ट्यूटैनिक और स्लैवोनिक जातियाँ निवास करती थीं, उनकी विवाह-पद्धति पर विचार करने से विदित होता है कि उन लोगों की केवल भाषा ही भारतीय आर्यों से मिलती-जुलती नहीं थीं, वरन् अपने रीति रिवाजों में भी वे आपस में बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। उनकी यह एकता इतिहास-पूर्वकाल से चली आई थी।" और इस प्रकार की लोक प्रथाओं की दृष्टि से अथर्ववेद का स्थान भी बहुत महत्व पूर्ण है। इसमें सामान्य जनता में प्रचलित रिवाजों और अन्ध विश्वासों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। अथर्व की विधियों का एक उद्देश्य लोगों के कष्टों का मिटाना, वरदान और शाप देना भी बतलाया गया है। अथर्व वेद की ऐसी ही खासियतों के कारण अनेक लोग उसे वास्तविक वेद नहीं मानते और "त्रयी वेद" की ही घोषणा किया करते हैं। गृह्यसूत्रों का विस्तार–

गृह्य सूत्रों का विस्तार—

प्राचीन गृह्य सूत्रों में दी गई संख्याओं के अनुसार किसी समय गृह्यसूत्रों का भी बड़ा विस्तार था। कहा जाता है कि उस समय ऋग्, यजुः, साम और अथर्व वेदों की ११३१ शाखायें थीं, जिनमें से ऋग्वेद की २१, कृष्ण यजुर्वेद की ८६, शुक्ल यजुर्वेद की १५, सामवेद की १००० और अथर्व वेद की ९ शाखाएं थीं। इन सभी शाखाओं के अपने-अपने गृह्य सूत्र थे, जो थोड़े से भेद के साथ आपस में मिलते-जुलते ही थे। अब हजारों वर्ष बाद इन सब नामों का तो किसी को पता नहीं, पर ऋग्वेद की तीन प्रसिद्ध गृह्यसूत्र शांखायन, कौषीतिक और आश्वलायन है। शेष गृह्यसूत्रों में से आपस्तम्ब, पारस्कर, मानव, जैमिनि, हिरण्यकेशि, भारद्वाज, काठक, वैखानस, लौगाक्षि, गोभिल, कौशिक, बौधायन, और खादिर गृह्यसूत्र प्रसिद्ध हैं और वर्तमान समय में प्राप्त होते हैं।

हमने अपने इस 'गृह्यसूत्र संग्रह' में जिन सूत्र-ग्रन्थों के अंश संग्रहीत किये हैं। वे धार्मिक जगत में बहुत प्रसिद्ध हैं। हम इनके अतिरिक्त कुछ और गृह्यसूत्रों का भी प्रकाशन कर सकते थे, पर जैसा हम लिख चुके है, वर्तमान समय में इन सूत्रों में वर्णित नियमों तथा विधि—विधानों मे बहुत उलट फेर हो गया है। और इनका आंशिक पालन करने वाले व्यक्ति भी लाखों में एकाध मिलेंगे। अन्यथा हिन्दू समाज के अन्तर्गत जो ७-८ हजार जातियाँ पाई जाती है वे सब अपनी नई-नई प्रथायें बनाकर उन्ही का अनुसरण कर रहीं है। ऐसी दशा में यह ग्रंथ विशेष रूप से विद्वानों और धर्म तत्व की खोज करने वालों के काम की ही चीज हो सकती है। पर इस दृष्टि से भी इनका महत्व कम नही है। इसमें तो संदेह नहीं गृह्य सूत्रों में जीवन सम्बन्धी संस्कारों का जो स्वरूप बतलाया है वह बहुत प्रेरणाप्रद और सद्भावनाओं का उभारने वाला है। यद्यपि उसमें क्रिया-कर्मों को बहुत जटिल और बन्धन युक्त बना दिया है। पर उनको हम समयानुकूल और सरल भी बना सकते हैं। इस लिये यह हिन्दू-धर्म के नेता और हितैषी वर्तमान काल में प्रचलित दिखावटी और प्रदर्शन की विशेषतायुक्त प्रथाओं से जाति का पीछा छुड़ा कर चाहें तो वे गृह्यसूत्रों में बहुत-सा ऐसा मसाला भी प्राप्त कर सकते हैं जो नव निर्माण के कार्य में भी सहायक सिद्ध हो सके।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ

आश्वलायनगृह्यसूत्रम् ।

प्रथमोऽध्यायः

उक्तानि वैतानिकानि गृह्याणि वक्ष्यामः ।१। त्रयः पाकयज्ञाः ।२। हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजने ब्रह्मणिहुताः ।३। अथाप्यृच उदाहरन्ति यः समिधा य आहुती यो वेदेनेति ।४। समिधमेवापि श्रद्दधान आदधन्नान्येन यज इदमिति नमस्तस्मै य आहुत्या यो वेदेनेति विद्ययैवाप्यस्ति प्रीतिस्तदेतत्पश्यन्नृषिरुवाच । अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचतेति । वच एव म इदं घृताच्च मधुनश्च स्वादीयोऽस्ति प्रीतिः स्वादीयोऽस्त्वित्येव तदाह । आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि । ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उतेति । एत एव म उक्षाणश्च ऋषभाश्च वशाश्च भवन्ति । य इमं स्वाध्यायमधीयत इति यो नमसा स्वध्वर इति नमस्कारेण वै खल्वपि न वै देवा नमस्कारमति यज्ञो वै नम इति हि ब्राह्मणं भवति ।५। ख० १ ।

वैतानिक कर्म कह दिये गये हैं, अब हम आगे गृह्यों को बतायेंगे। वितान अग्नियों के विस्तार को कहते हैं अर्थात् बह्वग्नि साध्य कर्म हैं वैतानिक होते हैं। गृह निमित्त जो अग्नि है वह गृह्य कहा जाता है।

गृह शब्द भार्या में और शाला में आता है । जिनके भार्या के संयोग से उत्पन्नाग्नि मे ये कर्म्म प्रवृत्त होते है उनका यह गृह शब्द भार्या वचन होता है और जिनके दाय विभाग काल में अग्नि उत्पन्न होता है उनका शाला वचन होता है ।१। पाकयज्ञ तीन प्रकार के होते है हुत—प्रहुत और ब्रह्मणिहुत ये तीन भेद है । पाक यज्ञ अल्प यज्ञ अथवा प्रशस्त यज्ञ होते है क्योकि दोनो ही जगहो पर पाक शब्द देखा गया है ।२। अब यह बतलाया जाता है कि इसके तीन भेद कैसे होते, —जो अग्नि में हूयमान है वे हुत होते है । जो अनग्नि मे क्रियमाण है जैसे बलि हरण आदि वे प्रहुत कहे जाते है । जहां पर ब्राह्मणो का भोजन होता है वे ब्राह्मणिहुत होते हैं ।३। इसके अनन्तर ऋचाओं का उदाहरण देते है । 'यः समिधा'—'य आहुती यो वेदें नेति' इन दो ऋचाओं का अभिप्राय लेकर ही बहुवचन उत्पन्न होता है । ये कर्म भी नित्य और श्रौतों के द्वारा तुल्य है । ये आहिताग्नि वाले के भी होते है ।४। "समिधमेवापि श्रद्धान आदधन्मन्येत" इहा से आरम्भ करके यज्ञो वै नमः" इसके अन्त तक ब्राह्मण होता है । वहाँ पर समिध, इसका तात्पर्य कथन ब्राह्मण सहित ही है । ।इति। "नमस्तस्मै ' यहा पर "नमः" इस शब्द से अन्न कहा जाता है । निघण्टुओं में नमः यह शब्द अन्न के नामों मे पढ़ा गया है । सामिद् भी उस दैवत के लिये नम होती है । अर्थात् प्रीति का हेतु होता है यही तात्पर्य है । श्रद्दधान—इस शब्द से श्रद्धा से जो युक्त हो ।। है उसी का पाक यज्ञ मे अधिकार होता है—यह गामित किया जाता है । य आहुती-इसका विवरण ब्राह्मण य आहुति से है । 'यो वेदेन' इस पाद का तात्पर्य कथन यह है जो विद्या से ही है— इत्यादि होता है । द्रव्य के त्याग के अभाव में भी वेद के अध्यात्म मात्र से भी प्रीति है—यही अभिप्राय है । विद्या से प्रीति होती है—इसको दृढ कथन के लिये उस अर्थ मे अन्य मन्त्र को साक्षी के रूप से श्रुति दिखाती है—'तदेवादितिम्' उस अर्थ रूप को देखते हुए ही मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने कहा है—"अश्वोदधायोति" । इस मन्त्र में स्तोताओं को प्रत्यक्षीकृत किया गया है । इस प्रकार के इन्द्र के लिये हे सखायः, वचन बोलो । "घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत।"

इस मन्त्र से बोलना चाहिए। हे इन्द्र! यह मेरा वचन ही घृत से और मधु से स्वादीय है। "स्वादीयोऽस्तिति" इसको इस ऋषि ने साक्षित्व रूप में कहा है। अतएव प्रीति है। "आते अग्नऋचा हविर्ह्रदा तष्टं भरामसि। तेते भवन्तूक्षाण ऋषभा सो वशा उत" इति—इस मन्त्र से तेरे उक्षाण और ऋषभ भी वश होते हैं। "य इमं स्वाध्यायमधीयते" इति— इस मन्त्र से कहे। इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि उक्षादि मांस से तेरी जितनी प्रीति है उतनी तेरी विद्या से भी होती है। 'ब्रह्माणयो नमसा स्वध्वर" इत्यादि मन्त्र का तात्पर्य यह है कि नमस्कार से भी जो अग्नि का अभ्यर्चन करता है वह भी शोभन यज्ञ होता है। अर्थात् नमस्कार भी यज्ञ है।५। (१)

अथ साय प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् ।१। होमगन्त्रानाह —अग्निहोत्रदेवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरय इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे ।२। स्वाहेत्यथ बलिहरणम् ।३। एताभ्यश्चैव देवताभ्यः । अद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्य. ।४। इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो यगाय यमपुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति प्रतिदिशम् ।५।

यहां पर इस सूत्र में "अथ"—यह शब्द विशेष प्रक्रिया के लिये ही है। यहां पर साय प्रातः ये शब्द लक्षणा शक्ति से अहोरात्र को बतलाते हैं। सिद्ध हविष्य का हवन करना चाहिए। जहां पर किसी द्रव्य का आदेश नहीं दिया जाता है यहां पर घृत से ही होम करना चाहिए।१। अब होम के मन्त्रों को बतलाते हैं—"अग्निहोत्र देवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नि सोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्या द्यावा पृथिवीभ्यां धन्वन्तरये इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणो" ।२। इस मन्त्र में द्रव्य देवताओं का ग्रहण न करके कर्म देवता ही ग्रहण किये जाते हैं। अग्नि-सूर्य और प्रजापति—ये दोनों जगहों पर होते हैं "सोमाय वनस्पतये"—यह एक आहुति होती है

देव यज्ञ कह दिया गया है। अप्रेपित याग मे ही स्वाहाकार सिद्ध होने पर फिर जो स्वाहाकार का वचन है वह यह ज्ञापन करता है कि अन्यत्र बलिहरण मे स्वाहाकार नही होता है। अन्यथा कर्मान्तर होने से कालान्तर मे भी बलिहरण होता है। अथवा ब्रह्म यज्ञ पूर्व होता है और मनुष्य यज्ञ तो उत्तर ही होता है।३। इन पूर्व मे बताये हुए देवताओं के लिये और चकार से आगे बताये जाने वाले देवताओं के लिए बलि का हरण करना चाहिए। 'ब्रह्मणे स्वाहा'—इससे हवन करके अन्तराल का त्याग करके "अद्भ्यः" इत्यादि से हवन करना चाहिए। "गृह देवताभ्य" यह मन्त्र विधायक नही है तथा "वास्तु देवताभ्य" यह भी नही है। यदि यह विधायक मन्त्र होता है तो उभय वचन व्यर्थ हो जायगा।४। जहां पर ही प्रधान देवता है वहा पर ही पुरुषो को होना चाहिए। यह करके प्रधानो का उत्तर की ओर से पुरुषों के लिये बलि का हरण करना चाहिए। यहां पर दिक् के ग्रहण करने से चारों दिशाओ का ग्रहण किया जाता है। अर्थ यह है—इन्द्र के लिये इन्द्र पुरुषों के लिये, यम के लिये यम पुरुषों के लिये, वरुण के लिए वरुण के पुरुषों के लिए, सोम के लिए सोम पुरुषों के लिए—इस प्रकार से प्रत्येक दिशा मे बलि हरण करे।५।

ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये।६। विश्वेभ्यो देवेभ्यः।७। सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवा।८। नक्तंचारिभ्य इति नक्तम्।९। रक्षोभ्य इत्युत्तरतः।१०। स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणा निनयेत्।११।ख०२।

दिशाओं के देवताओं के मध्य में ब्रह्मा के लिए ब्रह्म पुरुषों के लिए—ऐसी रीति से बलिहरण करना चाहिए।६। मध्य मे ही विश्वेभ्य देवेभ्यः अर्थात् विश्वेदेवों के लिए देवें।७। दिवाचारी समस्त भूतों के लिए भी मध्य में ही बलिहरण करे। दिवा शब्द ज्ञापन के लिए ही किया जाता है। इस कारण से वैश्वदेव का प्रातःकाल में आरम्भण होता है। अन्यथा अग्निहोत्र के समान सायं का उपक्रम हो जायगा और वह अनिष्ट

होता है। इसीलिए "दिवा" शब्द का ग्रहण होता है। अगम "अग्नये स्वाहा"—इससे सायङ्काल में हवन करना चाहिए। यहां पर साय का उपक्रम होता है।८। पहिले जैसे "दिवा चारिष्यं"—यह शब्द है उसके स्थान में 'नक्तं चारिष्य' यह होता है और वह नक्त होता है।९। अन्य सबके लिए उत्तर की ओर होता है।१०। प्राचीना वीतित्व अथवा निनीतित्वं यह आचार्य के द्वारा विहित नहीं किया गया है वहां पर केवल यज्ञोपवीतित्व ही प्राप्त होता है। अतएव प्राचीन वीतित्व का विधान किया जाता है। 'निनयेत्'—यह वचन अन्यक्रिया के ज्ञापन के लिए ही है। उससे बलि का हरण नहीं होता है। क्या इस प्रकार से सिद्ध होता कि स्वाहाकार नहीं होता है। यह कथन उचित नहीं है कि स्वाहाकार और स्वधाकार ये दोनों ही समान जातीय होने से एक ही कार्य के करने वाले हैं क्योंकि जो समानार्थ वालों का समुच्चय दिखलाई देता है। यहां पर शेष ग्रहण आनन्तर्य के लिए होता है। अन्यक्रिया होने से उसमें न होने पर अथवा कालान्तर में होता है। इस प्रकार से कहा गया है कि जिस किसी अग्नि में वैश्वदेव कर लेना चाहिए। गृह्य अग्नि में इसे किया जावे, ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि विवाहाग्नि का प्रकार विधान होता है।११।(२)

अथ खलु यत्र क्व च होष्यन्त्स्यादिषुमात्रावरं सर्वतः स्थण्डिलमुपलिप्योल्लिख्य पङ्लेखा उदगायतां पश्चात्प्रागायते नानाऽन्तयोस्तिस्रो मध्ये तदभ्युक्ष्याग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधायं परिसमुह्य परिस्तीर्य पुरस्ताद्दक्षिणतः पश्चादुत्तरत इत्युदक्संस्थं तूष्णीं पर्युक्षणम्।१। पवित्राभ्यामाज्यस्योत्पवनम्।२। अप्रच्छिन्नाग्रावनन्तर्गर्भौ प्रादेशमात्रौ कुशौ नानाऽन्तयोर्गृहीत्वाऽङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामुत्तानाभ्यां पाणिभ्यां सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिरिति प्रागुत्पुनाति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्।३। कृताकृतमाज्यहोमेषु परिस्तरणम्।४। तथाऽऽज्यभागौ पाकयज्ञेषु।५।

अथ शब्द यहां पर अधिकार का अर्थ देने वाला है। यहां से आगे जो भी कहे जायंगे उनकी ही यह होम विधि होती है। वैश्वदेव में नाम ग्रहण करने से प्राप्यमाण होष्यद्धर्म्म नहीं होता है। यहां पर "यज्ञ" शब्द अपार्थक है। तन्त्र प्रतिषेध के विषय में भी औपासनाग्नि के परिचरण में इस सूत्र के द्वारा विहित परिसमूहन–परिस्तरण–और पर्युक्षण की प्राप्ति के लिए वचन का ग्रहण होता है। इषुमात्री मात्रायस्य (स्थण्डिलस्य) तहि पुमात्रम् अर्थ बाण के समान जिसका परिमाण है। अवर तद वरम्। यहां अवर का निकृष्ट अर्थ होता है। चारों दिशाओं में इषुमात्र प्रमाण है अथवा उससे भी अधिक है ऐसे चौकोर स्थण्डिल को गोबर लीपकर छै लेखाओं का उल्लेखन करना चाहिए। किसी याज्ञिक के द्वारा शकल के स्थण्डिल के मध्य में उदग्दीर्घा प्रादेश परिमाण वाली अथवा न्यूना लेखा को अग्नि प्रतिष्ठापन देश के पीछे लिखे–ऐसा मत प्रकट किया गया है। नाना- यह शब्द असंसर्ग के लिए है। उसके अन्तों में नाना असंसृष्ट प्रागायते लेखाओं को लिखे। मध्य में तीन असंसृष्ट प्रागायता लेखा लिखे। शकल को वहीं पर रखकर स्थण्डिल का अभ्युक्षण करे। फिर शकल का निरसन करके जल का उपस्पर्शन कर अभ्यात्म अग्नि को प्रतिष्ठापित करके अन्वाधान करता है। अन्वाधान का अर्थ है अमुक कर्म के अङ्ग होने से दोनों का अथवा तीनों का समिधाभ्याधान है। इसके पश्चात् परिसमूहन करके अर्थात् अग्नि के सब ओर परिमार्जन करे और वह अग्निहोत्र के ही समान होता है। इसके अनन्तर परिस्तरण करे। पुरस्तात्–दक्षिण की ओर–पश्चात् और उत्तर की ओर करे। इसके उपरान्त मौन होकर पर्युक्षण करता है ।१। पवित्राओं से आज्य का उत्पवन करे ।२। इसके उपरान्त पवित्रा किस लक्षण वाले होने चाहिए और उनका उत्पवन कैसे करना चाहिए—इन दोनों का निर्णय करने के लिए कहा है:—यहां पर 'प्र' शब्द सूक्ष्म छिन्न अग्रभागों की अनिवृत्ति के लिए है। जिनके मध्य में गर्भ नहीं है ऐसे प्रादेश परिमाण वाले कुश ही पवित्र संज्ञा वाले कहे जाया करते हैं। नाना शब्द यहां पर असंसर्ग के ही लिए है अर्थात् वे पवित्रा अन्तों में असंसृष्ट होवें।

उनको अङ्गुष्ठ कनिष्ठिकाओं से उत्तान करों के द्वारा ग्रहण करके पवित्रे उत्पवन करता है एक बार मन्त्र के द्वारा और दो बार मौनभाव करना चाहिए। मन्त्र यह है—"सवि तुष्ट्वा प्रसव उत्पनाम्य छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः" इति।३। कृत और अकृत परिस्तरण आज्य दोनो में होता है। जहाँ पर केवल घृत ही हवि होता है उसे आज्य होम कहते हैं। नही तो आज्य शब्द का ग्रहण करना ही व्यर्थ हो जायगा। सर्वत्र आघारादि होते ही है। आज्य होमों में परिस्तरण करना चाहिए अथवा नही करना चाहिए—यही अर्थ होता है और यह परिस्तरण का विकल्प भी जहा पर 'आज्य' शब्द का ग्रहण किया जाता है वहीं पर हुआ करता है यथा—"आज्याहुतीर्जुहुयात्" यहा पर है।४। उसी प्रकार से पाक यज्ञों में सब मे आज्यभागों को करना चाहिए अथवा नही करना चाहिए—यही अर्थ है। पाक यज्ञ का ग्रहण आज्य के होमाधिकार की निवृत्ति के ही लिए होता है।५।

ब्रह्मा च धन्वन्तरियज्ञशूलगववर्जम्।६। अमुष्मै स्वाहेति जुहुयात्।७। अग्निरिन्द्रः प्रजापतिर्विश्वेदेवा ब्रह्मेत्य-नादेशे।८। एकबर्हिराज्यस्विष्टकृतः स्युस्तुल्यकालाः।६। तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते। पाकयज्ञान्समासाद्य एका-ज्यानेकबर्हिषः। एकस्विष्टकृतः कुर्यान्नानाऽपि सति दैवते।१०। ख०३।

ब्रह्मा समस्त पाक यज्ञों मे कृताकृत होता है। धन्वन्तरि यज्ञ और शूलगव को वर्जित कर दिया जाता है। इसके अनन्तर उन दोनों मे नित्य होता है क्योंकि उन दोनों का उपदेश है।६। कही पर नामधेय के द्वारा बतलाया गया है—"सावित्र्यै ब्रह्मणे" इत्यादि के द्वारा ही होता है। कहीं पर केवल मन्त्र के द्वारा होम कहा गया है। जहां पर दोनों में से कोई भी नहीं है वहां पर नामधेय के द्वारा होम कैसे होता है—इसीलिए सूत्र है।७। जहां पर होम स्थान का आदेश है और कर्म का भी आदेश होता है वहां पर ये देवता हवन करने के योग्य होते हैं—जहां पर

परशास्त्र में होम की प्रेरणा दी जाती है और अपने शास्त्र में कर्म मात्र ही प्रेरित किया जाता है वहीं पर ये देवता होते हे। देवताओं के नाम—अग्नि–इन्द्र–प्रजापति–विश्वेदेवा–और ब्रह्मा हैं। ये अनादेश मे हवन करने के योग्य होते हैं।८। एक बर्हि आदि जो पाक यज्ञ है व उसी भांति कहे गये है। वे तुल्य काल और एक काल होते है। एक ही काल में यदि अनेक पाक यज्ञ कार्यत्व से प्राप्त है तब वे समान तन्त्र वाले होते है और ऐसे ही करने भी चाहिएँ। यदि पर्व में राशि काम उत्पन्न होता है उस समय में काम्य और पार्वण इन दोनों का एक कालत्व होता है।९। बर्हिरादि ग्रहण की तन्त्रोपलक्षणार्थता को स्पष्ट करने के लिए यज्ञ गाथा का उदाहरण देता है—उस अर्थ में यह यज्ञ की गाथा अभिगीत की जाया करती है। एक काल मे बहुत-से पाक यज्ञों को प्राप्त करके नाना दैवत होने पर भी एकाज्यानेकबर्हिष और एक स्विष्टकृत करना चाहिए। प्रत्येक देवता के तन्त्र का आवर्त्तन नहीं करना चाहिए। यही अभिप्राय है।१०। (३)

उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः ।१। सार्वकालमेके विवाहम् ।२। तेषां पुरस्ताच्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् ।३। अग्न आयूंषि पवस इति तिसृभिः प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च व्याहृतिभिर्वा ।४। समुच्चयमेके ।५। नैके कांचन ।६। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनामिति विवाहे चतुर्थीम् ।७। ख० ४।

इस सूत्र के द्वारा चौल कर्म आदि के काल का विधान किया जाता है। जिस समय में आदित्य उदग् की ओर गमन किया करते हैं उसी को उद्गयन काल कहा जाता है। चन्द्रोदय का जो पक्ष होता है अर्थात् शुक्ल पक्ष होता है वह आपूर्यमाण कहा गया है। वह मास का और पक्ष का कर्त्ता होता है। ज्योतिः शास्त्र के अविरुद्ध कल्याण नक्षत्र होता है। उसमें चौलकर्म-उपनयन-गोदान और विवाह होते हैं। यही उनका काल

होता है। लाघव के लिए यहां पर गोदान का ग्रहण होना है वस्तुतः समावर्त्तन का ही ग्रहण करना चाहिए।१। कुछ आचार्यों का मत है कि सभी समय में विवाह हो सकते हैं। उद्गमन में ही विवाह होने चाहियें— ऐसा कोई नियम ही नहीं है। उनका क्या अभिप्राय है?—इसका उत्तर यही है नियम में निबद्ध होने पर दोषों का श्रवण होता है अतः विवाह में कोई भी काल का नियम नहीं है क्योंकि लिखा है—"ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति" अर्थात् जब कन्या ऋतुमती होकर पिता के ही घर में स्थित रहती है तो इसका दोष पिता को प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यही है कि ऋतुकाल आने के पूर्व ही पिता को कन्या का दान (विवाह) कर देना चाहिए। यह तो शास्त्रीय दोष है। इसके अतिरिक्त अन्य लौकिक दोष भी समुत्पन्न हो जाया करते हैं।२। उन दोषों के पूर्व ही चार आज्य की आहुतियों से हवन करना चाहिए।३। सूत्र में चारों की ही व्याहृति संज्ञा की गयी है। "अग्न आपूंषि पवस" इति—इससे तीन से प्रजापति की है 'नतु ये अन्य है' इति—इससे व्याहृतियों से और स्वाहा इत्यादि से हवन करना चाहिए।४। कतिपय आचार्य गण ऋचाओं की आहुतियों और व्याहृतियों की आहुतियों का समुच्चय चाहते है। इससे आठ आहुतियाँ होती हैं।५। एक आचार्य किसी भी आहुति को नहीं चाहते हैं। 'नके'—इतना ही कहने पर जो इस सूत्र में 'कांचन' इसका ग्रहण किया है वह इसीलिए है कि यह प्रतिषेध ऋगाहुतियों का और व्याहृत्याहुतियों का है अर्थात् अन्य आहुतियों से हवन करना चाहिए—इसीलिए ग्रहण किया गया है। किं शब्द सर्वनाम है और सर्वनाम सर्वदा प्रकृत का परामर्शी होता है। इससे अनादेशाहुतियाँ सिद्ध होती हैं।६। "त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनाम्" इति—इससे विवाह में चतुर्थी होती है। यहां पर यह संशय होता है कि पूर्वा के बाध होने पर ही उत्कर्ष होता है। यहां पर यह बतलाते है कि उत्कर्ष ही होता है क्योंकि यह असमान जाति है। जो समान जाति होता है वहीं पर बाध होता है। इससे संशय का अवसर ही नही है और उत्कर्ष सिद्ध होता है।७।(४)

कुलमग्रे परीक्षेत ये मातृतः पितृतश्चेति यथोक्तं पुरस्तात् ।१। बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत् ।२। बुद्धिरूपशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत ।३। दुर्विज्ञेयानि लक्षणानीति ।४। अष्टौ पिण्डान्कृत्वा 'ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद्दृश्यतामिति' पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारीं ब्रूयादेषामेकं गृहाणेति ।५। क्षेत्राच्चेदुभयतःसस्याद्गृह्णीयादन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्याद्गोष्ठात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो ह्रदात्सर्वसंपन्ना देवनात्कितवी चतुष्पथाद्द्विप्रव्राजिनी इरिणादधन्या श्मशानात्पतिघ्नी ।६। ख० ५ ।

सबसे प्रथम पहिले विवाह करने के अवसर पर कुल की परीक्षा कर लेनी चाहिए । 'कुल'— इस शब्द से दोनों वंशों को देखना चाहिए कि ये दोनों वंश महापातक दोष आदि से रहित हैं और अत्यन्त शुद्ध हैं तथा अपस्मार आदि दोषों से भी रहित है । दोनों वंशों से मातृ वंश और पितृ वंश ग्रहण करने चाहिए जैसा कि पहिले कहा गया है । मातृकुल और पितृकुल में दश पुरुष तक विद्वानों से और पुण्य कर्मों से समनुष्ठित है । दोनों ही ओर ब्राह्मण्य का विनाश नहीं हुआ हो । कुछ विद्वान् पितृवंश को ही मानते हैं ।१। इसके अनन्तर वर के गुण कहते हैं । बुद्धिमान् वर को ही कन्या देनी चाहिए । जो अर्थ के देखने वाली है वही बुद्धि होती है । अर्थ क्या है इसका समाधान है अर्थ वही है जो शास्त्र के अविरुद्ध हो । ऐसे अर्थ वाले वर को ही कन्या का दान करना चाहिए ।२। इसके अनन्तर कन्या के गुण बतलाते हैं—जो कन्या बुद्धि—रूप लावण्य—शील स्वभाव और सुन्दर लक्षणों से संयुत हो और रोगों से रहित हो ऐसी ही कन्या को स्वीकार करना चाहिए । रूप वही है जहाँ पर अपने मन का रमण होता है । यों तो एक से एक रूपवती हैं और रूप लावण्य की कोई सीमा नहीं होती है ।३। लक्षण तो बहुत ही कठिनता से जानने के योग्य

होने हे ऐसा होने पर ही निम्नरीति से परीक्षा करनी चाहिए ।४। आठ पिण्डों की रचना करे "ऋतमग्रे प्रथमंजज्ञे ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियङ्कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यता यत्सत्यं तद् दृश्यताम्"—इति—इस मन्त्र से पिण्डों को अभिमन्त्रित करे और फिर उस कुमारी से कहे—इनमे से किसी भी एक पिण्ड को ग्रहण कर लेवे । क्षेत्र आदि से आठ जगहों से मृत्तिका लाकर आठ पिण्डों को बनावे और उन्ही में से एक को ग्रहण करने की बात कहनी चाहिए ।५। यदि उभयतः सस्य क्षेत्र से आहृत मृत्पिण्ड को ग्रहण करे तो यह समझ लेना चाहिए कि इस कन्या की सन्तति अन्नवती होगी । इसी प्रकार से आगे भी जान लेना चाहिए । गोष्ठ से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड के ग्रहण से यह समझ लेवे कि इसकी प्रजा पशुमती होगी । अप्रवृत्त कर्म में जो वेदि है उस के पुरीष से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड के ग्रहण से समझ लेवे कि इसकी सन्तति ब्रह्म वर्चस्विनी होगी । अशोष्य ह्रद की मिट्टी के पिण्ड से सर्व सम्पन्न प्रजा होगी—यह समझ लेवे । द्यूतस्थान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड ग्रहण से कितनी प्रजा होगी—यह जान लेवे । चौराहे की ग्रहण की हुई मिट्टी के पिण्ड को यदि उठावे तो यह समझ लेना चाहिये कि यह द्विप्रवाजिनी अर्थात् स्वैरिणी होगी । जहाँ पर बोया हुआ बीज अङ्कुरित नहीं होता है वह इरिण होता है । ऐसे स्थान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड को यदि वह ग्रहण करे तो वह अधन्या दुर्भागिनी होती है—यह जान लेवे । श्मशान से लाई हुई मिट्टी के पिण्ड को ग्रहण करे तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने पति का हनन करने वाली होती है । यहां पर पति की स्तुति और निन्दा के द्वारा वही स्तुता और निन्दिता होती है—ऐसा मानना चाहिए । उत्तर तीन वाक्यों से वही निन्दित हुआ करती है ।६।(५)

अलङ्कृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष ब्राह्मो विवाहः । तस्यां जातो द्वादशावरान्द्वादश परान्पुनात्युभयतः । ऋत्विजे वितते कर्मणि दद्यादलंकृत्य स दैवो दशावरान्दश परान्पुनात्युभयतः । सह धर्मं चरत इति प्राजापत्योऽष्ट वरानष्ट परान्पुनात्युभयतः । गोमिथुनं दत्त्वोपय-

च्छेत स आर्षः सप्तावरान्सप्त परान्पुनात्युभयतः । मिथः समयं कृत्वोपयच्छेत गान्धर्वः । धनेनोपतोष्योपयच्छेत स आसुरः । सुप्तानां प्रमत्तानां वाऽपहरेत्स पैशाचः । हत्वा भित्त्वा च शीर्षाणि रुदतीं रुदद्भ्यो हरेत्स राक्षसः ।१। ख० ६ ।

कन्या को आभूषणों के द्वारा समलङ्कृत करके उदक पूर्वक दान करना चाहिए । यह ही ब्राह्म नामक विवाह कहा जाता है, उस स्त्री के गर्भ से जो भी बालक समुत्पन्न होता है वह बारह पूर्व के और बारह आगे होने वाले पुरुषों को दोनों ओर पवित्र कर देता है । दोनों ओर का तात्पर्य माता और पिता दोनों कुलों के पुरुषों का होना है । जो वैतानिक कर्म में ऋत्विक के लिये कन्या को समलंकृत करके देवे उस विवाह को नामदैव विवाह होता है । यह दूसरी श्रेणी का विवाह माना जाता है । इस बाला के उदर से उत्पन्न होने वाला पुत्र भी दोनों कुलों के दश-दश पूर्वापर पुरुषों को पवित्र कर दिया करता है अर्थात् उनको सद्गति कर देने वाला होता है । साथ में रह कर धर्म्म का समाचरण करो—ऐसा कथन कर जो विवाह किया जाता है वह प्राजापत्य नामक विवाह कहा जाता है । इस प्रकार विवाहित स्त्री से जो कुमार अभिजात होता है वह भी दोनों कुलों की आठ आठ पूर्वापर पुरुषों की सद्गति कर देता है । जिस कन्या की प्राप्ति एक गौ का जोड़ा देकर की जाती है उस विवाह को आर्ष विवाह कहते है । इस प्रकार से विवाहित बाला के गर्भ से समुत्पन्न बालक भी सात-सात पूर्वापर पुरुषों को दोनों कुलों में पवित्र करके तार दिया करता है । जो परस्पर में समझौता करके कि तुम मेरी भार्या हो जाओ और मैं तेरा भर्ता हो जाऊं, ऐसा विवाह किया जाता है उस विवाह का नाम गन्धर्व विवाह होता है । कन्या के पिता को कुछ धन देकर जो विवाह किया जाता है उस विवाह को आसुर विवाह कहा जाता है । जो कन्यापक्ष के लोग सोये हुए हों—प्रमत्त हों और असावधान हों उनसे बलात् कन्या का अपहरण कर बरवश विवाह कर लिया जाता है उसको पैशाचिक विवाह कहते है । युद्ध करके कन्या का

अपहरण करके जो विवाह कर लिया जाता है उसका नाम राक्षस विवाह होता है—इस तरह से ये आठ तरह के विवाह होते हैं। उनमें प्रथम चारों में पूर्व-पूर्व का विवाह एक दूसरे से प्रशस्त होते हैं। और जो पीछे वाले चार विवाह बताये गये हैं उनमें उत्तरोत्तर का विवाह वरीयान् होता है। इनमें सबसे पूर्व दो प्रकार के विवाह ब्राह्मण के होने से इतर, दो विवाहों में प्रतिग्रह का अभाव होता है और आर्त्विज्य का भी अभाव होता है। गान्धर्व विवाह क्षत्रिय का होता है क्योंकि पुराण में दृष्ट होता है। युद्ध के संयोग होने से राक्षस विवाह राक्षस का ही होता है। आसुर विवाह वैश्य का होता है क्योंकि उसमें धन का संयोग होता है। इतर तीन अनिगत हैं ।१।(६)

अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात् ।१। यत्तु समानं तद्वक्ष्यामः ।२। पश्चादग्नेर्दृषदमश्मानं प्रतिष्ठाप्योत्तरपुरस्तादुदकुम्भं समन्वारब्धायां हुत्वा तिष्ठन्प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुख्या आसीनाया गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्यङ्गुष्ठमेव गृह्णीयाद्यदि कामयीत पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्निति ।३।

विवाह में जो विषय जानना चाहिए उसे बतलाया जाता है। विवाह में बहुत से ऊँचे-नीचे देश धर्म और ग्राम धर्म हुआ करते हैं इनके अतिरिक्त कुछ कुल धर्म भी होते हैं। इन सभी को करना चाहिए। यह विवाह का अधिकार है फिर भी जो सूत्र में विवाह शब्द दिया गया है इससे सम्पूर्ण विवाह में जिस तरह होना—यही अर्थ है। अन्यथा उपयमन काल से उत्तर काल निहित होने से उपयमन में नहीं होते हैं। उपयमन का अर्थ कन्या का स्वीकार करना ही होता है।१। जिस प्रकार से अग्न्याधेय आदि सर्वत्र समान ही हुआ करते हैं क्योंकि वे उपदेश से ही होते हैं। जनपदादि धर्म और आगे कहे जाने वाले धर्मों का परस्पर में विरोध होने पर भी वक्ष्यमाण धर्म को ही करना चाहिए, जनपदादि को नहीं करे। जैसे कुछ देशों में [illegible] ही व्यवाय देखा गया है और कुछ

कर्मों में तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्यव्रत बताया गया है। यहां पर जनपद धर्म और गृह्य धर्म में परस्पर विरोध होता है तो गृह्य धर्म का ही समाचरण करना चाहिये, देश धर्म्म का त्याग कर देना चाहिये ।२। वेदी में अग्नि की प्रतिष्ठा करने के उत्तर काल में ही अग्नि के पीछे दृषदाश्मान को प्रतिष्ठापित करे और उत्तर पूर्व देश में जल का कुम्भ प्रतिष्ठापित करना चाहिए। इसके अनन्तर आज्य का अधिश्रयणादि कर्म करके फिर समन्वारब्धा या वध्वामिधमाध्या नाना घारान्ता कर्म करके फिर इसके पश्चात् पूर्व में बनाई हुई आहुतियों से हवन करके प्राङ्मुखा आसीना कन्या का अंगुष्ठ ही ग्रहण करना चाहिये और 'गृभ्णामि'—यह कर यदि पुत्रकी कामना वाला होवे अर्थात् मेरे पुत्र ही जन्म लेवें—ऐसी कामना वाला होवे। यही मन्त्र उत्तर हस्त ग्रहणों में भी होता है। इयत् तो प्रसिद्ध ही है। तत्पुरुष है। यहां पर दोनों का ही प्रतिष्ठापन सिद्ध है ।३।

अङ्गुलीरेव स्त्रीकामः ।४। रोमान्ते हस्तं साङ्गुष्ठमुभय-कामः ।५। प्रदक्षिणमग्निमुदकुम्भं च त्रिः परिणयञ्जपति। अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमृक्त्वं ताविह विवहावहै। प्रजां प्रजनयावहै संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ जीवेव शरदः शतमिति ।६। परिणीय परिणीयाश्मानमारोहयतीममश्मानमारोहाश्मेव त्वं स्थिरा भव। सहस्व पृतनायतोऽभितिष्ठ पृतन्यत इति ।७। वध्वञ्जलावुपस्तीर्य भ्रातृस्थानो वा द्विर्लाजानावपति ।८। त्रिर्जामदग्न्यानाम् ।९। प्रत्यभिघार्यं हविः ।१०। अवत्त च ।११।

यदि ऐसी ही कामना हो कि मेरे पुत्री जन्म लेवें तो अंगुलियों का ग्रहण करे ।४। यदि पुत्रों और पुत्रियों की दोनों की कामना हो तो अंगुष्ठ और अंगुलियों के सहित इसको ग्रहण करना चाहिये ।५। अग्नि और जल-कलश का तीन प्रदक्षिणा करके वधू परिणय का जाप करता है। मन्त्र यह है—'अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्य मोहं द्यौरहं पृथिवी

त्व सामाहमृनस्तं नावेह वित्रह्मायहै । प्रजां प्रजनयावहै सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्य मानौ जीवेन शरदः शतम्" इति ।६। इस सूत्र में 'परिणीय' शब्द की वीप्सा इसीलिये है कि सभी परिणयों में अश्मारोहण करना ही चाहिए। इसके अनन्तर इसके कर्म्म कर्त्ता आचार्य ही होते हैं क्योंकि ऐसा वचन है कि "शिरसी उदकुम्भेनावसिच्य" अर्थात् जल के कुम्भ से शिर पर अवसेचन करे । स्वयं ही कर्त्ता होने पर अवसेचन नहीं किया जा सकता है। ऐसा कथन का तात्पर्य निकालना असत् है, वहाँ पर वही कर्त्ता होता है और विमृष्ट होकर विवाह किया करता है ।७। इसके पश्चात् वधू अपनी अञ्जलियों का उपस्तरण करती है और भाई आदि लाजाओं (खीलो) का वपन किया करता है । भाई न हो तो जो भी कोई भाई के समान स्थानापन्न हो वह करता है। भाई के स्थानापन्न चाचा-ताऊ का पुत्र हो या मामा का पुत्र होता है ।८। जामदग्न्यों की तीन होती हैं । इसका अर्थ है पञ्चावृत्तियां का होना है ।९। शेष का प्रत्यव-धारण करता है ।१०। अवत्त शब्द का अर्थ अवदान होता है क्योंकि यहा पर पूर्व कालतामात्र ही विवक्षित है ।११।

एषोऽवदानधर्मः ।१२। अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवोऽर्यमा प्रेतो मुञ्चातुनामुतः स्वाहा । वरुणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवो वरुणः प्रेतो मुञ्चातुनामुतः । स्वाहा । पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातुनामुतः स्वाहेत्यविच्छिन्दत्यञ्जलिं स्रुचेव जुहुयात् ।१३। अपरिणीय शूर्पपुटेनाभ्यात्म तूष्णीं चतुर्थम् ।१४। अप्येऽप्येके लाजान्परिणयन्ति तथोत्तमे आहुती न संनिपततः ।१५।

यह अवदान धर्म है क्योंकि जहाँ-जहाँ पर अवदान होता है वहीं-वहीं पर धर्म होता है ।१२। इस स्थल पर कन्या हवन करती है—ऐसा अर्थ करना अनुचित है क्योंकि स्त्रियों को तो मन्त्रों में अधिकार ही नहीं

होता है इसलिये ये हवन के मन्त्र वर ही के लिये है ऐसा सिद्ध होता है। मन्त्र ये है—"स इमां देवोऽर्यमा प्रेतो मुञ्चातुनामुतः स्वाहा—"स इमां देवो वरुणः प्रेतो मुञ्चातुनामुतः स्वाहा", "स इमां देवः पूषणः प्रेतो मुञ्चातुनामुतः स्वाहा"। अञ्जलि का अविच्छिन्दन करती हुई स्रुच से ही हवन करना चाहिए।१३। इस सूत्र में अप्राप्त निषेध किसलिये है? कुछ विद्वानों का मत है कि चतुर्थ होम करके अनन्तर परिणयन होना है—इस लिये ही ऐसा होता है। अन्यों का कथन है कि तीन परिणय आगये स कहे गये है। वहाँ पर तीन होम होते है, वहाँ पर किस प्रकार से पूर्व-पूर्व परिणयन करके पश्चात् होम होना है—यह ज्ञापन करने के लिये ही है। शूर्पपुट कोण को कहते है। यहाँ पर तूष्णीभवन प्रजापतिज्ञान के लिए है। यहाँ पर चतुर्थ ग्रहण इसीलिये है कि इस द्रव्य का विप्रकृत नहीं होता है और वही कर्त्ता होता है।१४। इस सूत्र में अभिमतार्थ ज्ञापन के ही लिये 'ह' शब्द है। कतिपय विद्वानों का कथन है कि खीलों का वपन कर करके पीछे परिणयन करते है। ऐसा होने पर उसके लिये आहुतियाँ नहीं सनिपात करती है।१५।

अथास्य शिखे विमुञ्चति यदि कृते भवतः।१६। ऊर्णास्तुके केशपक्षयोर्बद्धे भवतः प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशादिति।१७। उत्तरामुत्तरया।१८। अथैनामपराजितायां दिशि सप्तपदान्यभ्युत्क्रामयतीष एकपद्यूर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी मायोभव्याय चतुष्पदी प्रजाभ्यः पञ्चपद्यृतुभ्यः षट्पदी सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव। पुत्रान्विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय इति।१९। उभयोः सनिधाय शिरसी उदकुम्भेनावसिच्य।२०। ब्राह्मण्याश्च वृद्धाया जीवपत्न्या जीवप्रजाया अगारे एतां रात्रीं वसेत्।२१। ध्रुवमरुन्धतीं सप्तऋषीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत जीवपत्नीं प्रजां विन्देयेति।२२।ख०७।

अथ शब्द अब स्विष्टकृत् की निवृत्ति के लिये है। अस्या—यह वर की निवृत्ति के लिये है। यदि—यह अनियम में है। देश धर्मादि के द्वारा

यदि कृत में होते हैं ।१६। केश पक्षों में ऊर्णास्तुक बद्ध होते हैं । प्रत्वा मुञ्चामि''—इस के द्वारा दक्षिणा शिखा का विमोचन करता है । ''प्रेतो मुञ्चामि'' इससे उत्तरा शिखा का विमोचन करता है । वर की शिखाओं का विमोचन तूष्णी भाव से करता है ।१७-१८। इस सूत्र में का अथ शब्द पूर्व के ही तुल्य होना है । अपराजिता प्रागुदीची दिशा को कहते है । उस अपराजिता दिशा मे निम्न सात मन्त्रों के द्वारा इस वधू को सात पदों का उत्क्रमण कराता है—भव आदि शब्द सर्वत्र समान होना है—''इष'' इससे एक पदी, 'ऊर्जे इससे द्विपदी, 'रायस्पोषाय' इससे त्रिपदी, 'मायोभव्याय'—इससे चतुष्पदी, 'प्रजाभ्य' इससे पंचपदी, 'ऋतुभ्य' इससे षट्पदी, 'सखा' इससे सप्तपदी । वह होवे और मेरे अनुव्रता होवे । मैं बहुत से पुत्रों को प्राप्त करूं और वे पुत्र तेरे जरदष्टि (वृद्धावस्था की यष्टि) के समान ही होवें ।१९। सप्तम पद के अभ्युत्क्रमित होने पर वहीं पर स्थित दोनों के शिरों पर वहाँ पर स्थित उदककुम्भ से अवसेचन करता है ।२०। दूसरे ग्राम में गमन करने में यदि बीच में कहीं पर निवास करना पड़े तो किसी इस प्रकार के गुणगण से युक्त ब्राह्मणी के घर में ही बीच वाली रात्रि में निवास करना चाहिए। अपने ग्राम मे ही यदि विवाह होवे तो फिर यह विधि नहीं होती है ।२१। होम के समाप्त हो जाने पर रात्रि में ध्रुव तारा आदि का दर्शन कर ''जीवपत्नीं प्रजां विन्देय'' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वाणी का विसर्जन करना चाहिए । आदि पद से अरुन्धती और सप्तर्षियों का भी दर्शन करे ।२२।(७)

प्रयाण उपपद्यमाने 'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्येति' यानमारोहयेत् ।१। अश्मन्वतीरीयते संरभध्वमित्यर्धर्चेन नावमारोहयेत् ।२। उत्तरेणोत्क्रमयेत् ।३। जीवं रुदन्तीति रुदत्याम् ।४। विवाहाग्निमग्रतोऽजस्रं नयन्ति ।५। कल्याणेषु देशवृक्षचतुष्पथेषु माविदन्परिपन्थिन इति जपेत् ।६। वासेवासे सुमङ्गलीरियं वधूरितीक्षकानीक्षेत ।७। इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामिति गृहं प्रवेशयेत् ।८।

विवाह के होम के पश्चात् अपने घर को गमन करना चाहिये। यदि कभी दूसरे ग्राम में अपना घर हो और भ्रमण करने में किसी यान (सवारी) की उपपत्ति होवे तो यान के उपपद्यमान होने पर "पूषात्वे तो भवतु हस्तगृह्या" इस मन्त्र के द्वारा वधू को यान पर समारूढ़ करना चाहिए। यान के अतिरिक्त शिविका आदि के द्वारा प्रयाण करने में मन्त्र का प्रयोग नहीं होता है।१। यदि बीच में कोई ऐसी नदी पड़े जो नाव के द्वारा पार करनी पड़े तो "अश्मन्वती रीयते संरभध्वम्" इस आधी ऋचा के द्वारा वधू को नाव पर समारूढ़ करानी चाहिए।२। उत्तरार्ध जो ऋचा का है उसके द्वारा जल में स्थित नौका से वधू को उतारना चाहिए।३। लेजाती हुई वधू अपने बन्धुओं के वियोग होने के कारण यदि रुदन करती है तो "जीव रुदन्ती" इत्यादि मन्त्र का जाप करना चाहिए। यह विधि अपने ग्राम में ही विवाह हो तब भी होनी है क्योंकि कोई विशेषता नहीं होती है।४। इस सूत्र में विवाहाग्नि का ग्रहण अग्नि विशेष के नियम के अभाव की शङ्का की निवृत्ति के लिये है और यहाँ पर अजस्र का ग्रहण ध्रियमाण के नियम के लिये है। इससे अन्यत्र प्रमाण करने में समारोपण करके नयन गम्यमान होता है। और यह विधान विशेषता न होने के कारण से अपने ग्राम में भी होता है।५। विवाह आदि शोभन कार्यों में और देश वृक्ष चतुष्पथों में "मा विदन्परि पन्थिन" इस मन्त्र का जाप करना चाहिए।६। वास-वास में रक्षक होते हैं यदि होवें तो "सुमङ्गलीरियं वधूः" इस मन्त्र से ईक्षकों को देखना चाहिए।७। इह प्रियं प्रजयाते समृध्यताम्" इस मन्त्र से वधू को गृह में प्रवेश कराना चाहिए। अपने ग्राम में भी विवाह होते हैं।।८।।

विवाहाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुहं चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम तस्मिन्नुपविष्टायां समन्वारब्धायाम्। आ नः प्रजा जनयतु प्रजापतिरिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा समञ्जन्तु विश्वे देवा इति दध्नः प्राश्य प्रतिप्रयच्छे-दाज्यशेषेण वाऽनक्ति हृदये।।९।। अक्षारालवणाशिनौ

ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनौ स्यातात्‌ ।१०। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम्‌ ।११। संवत्सरं वैक ऋषि-र्जायत इति ।१२। चरितव्रतः सूर्याविदे वधूवस्त्रं दद्यात्‌ ।१३। अन्नं ब्राह्मणेभ्यः ।१४। अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत ।१५। ख० ८।

अग्नि प्रतिष्ठापनान्त को करके अग्नि का उपसमाधान करता है अर्थात्‌ समिधान से तात्पर्य यह है कि समिधाओं को डाल कर प्रज्वलित करता है। पीछे इसके अवङ्गान के चर्म का आस्तरण करता है। प्राग्‌ ग्रीवा और ऊर्ध्वलोम होकर उस चर्म पर उपविष्ट समन्वारब्ध वधू मे इध्माधानादि आज्यभागान्त करके "अग्ने प्रजां अवयतु प्रजापति" इन चार ऋचाओं से प्रति ऋचा हवन करके "समञ्जन्तु विश्वे देवा" इति—इस मन्त्र से दही खिलावे अर्थात्‌ उसका एक भाग स्वयं खावे और शेष को प्राशन वधू को देना चाहिए। वह वधू भी मौन होकर प्राशन करती है। आज्य शेष से दोनों के हृदय में उसी मन्त्र से अक्त करता है ।९। जिस समय में विवाह होवे तभी से आरम्भ करके दोनों पति-पत्नी के लिये ये नियम होने है दोनों ही अक्षार लवण के अशन करने वाले होवें। निम्न पदार्थों की क्षार संज्ञा मानी गयी है—"हैजम्बिका राज मापा मापा मुद्गा मसूरिकाः। लङ्कुचाढक्याश्च निष्पावास्तिलाद्याः क्षार संज्ञिताः"। माष—मुद्गे-मसूरिका आदि समस्त पदार्थ क्षार संज्ञा वाले होते हैं। गृह प्रवेशनीय होम से पहिले भी नियम इष्ट होते हैं अतएव योगविभाग किया गया है। दोनों को ब्रह्मचर्य धारी होना चाहिए अलंकृत होने वाले और भूमि पर शयन करने वाले रहना चाहिए ।१०। इससे ऊर्ध्व तीन रात्रि अथवा बारह रात्रि पर्यन्त नियति मे रहें ।११। अथवा एक सम्वत्सर तक नियति में रहें यह समझ करके ऋषि के तुल्य ही पुत्र समुत्पन्न होवे। फिर पिता के गोत्र को छोड़ कर पति के गोत्र को ही माने ।१२। इनके अनन्तर सूर्याविन्‌ के लिये वधू के द्वारा उपयमन काल में उपाहृत वस्त्र देना चाहिए। सूर्या के द्वारा जो इष्ट होता है वह सूर्या है

यथा "वृषाकपि:" इति और वह "सत्येमोत्तमित्ता" यह सूक्त है ।१३। ब्राह्मणों के लिये अन्न का दान करे ।१४। इसके अनन्तर 'ॐ स्वस्तिभवन्तो ब्रुवन्तु' इति यह कहे और वे "ॐ स्वति" इति यह उत्तर देवे ।१५।(८)

पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्तेवासी वा ।१। नित्यानुगृहीत स्यात् ।२। यदि तूपशाम्येत्पत्न्युपवसेदित्येके ।३। तस्याग्निहोत्रेण।४।प्रादुष्करणहोमकालौ व्याययातौ ।५। हौम्यं च मांसवर्जम्।६। कामं तु व्रीहियवतिलैः ।७। अग्नये स्वाहेति सायं जुहुयात्सूर्याय स्वाहेतिप्रतिस्तूष्णीं द्वितीये उभयत्र ।८।ख०९।

पाणिग्रहण आदि गृह्य अग्नि का स्वयं अथवा पत्नी आदि परिचरण करें। कुछ विद्वानों का मत है कि कुमारी और पत्नी होम कर्म न करें क्योंकि स्त्रियों को मन्त्रों का अधिकार नहीं होता है। अन्य विद्वान् कहते है पत्नी संहननवद् वचन होने से सहोमक होवें। अन्तेवासी का अर्थ शिष्य होता है ।१। नित्य परिगृहीत होवे। यदि विवाह की अग्नि नष्ट हो जावे तो नष्टाहरण प्रायश्चित्त करके परिचरण करना चाहिए ।२। यदि प्रादुष्करण काल में उद्वासित करे तो इसके अनन्तर अन्य होम के काल से पत्नी उपवास करे—ऐसा एक कहते हैं। एके—इसके ग्रहण से यजमान उपवास करे—ऐसा कुछ का मत है। "अयश्चाग्ने" इस एक आहुति का हवन करना चाहिए—ऐसा एक कहते है क्योंकि शास्त्रान्तर में देखा जाता है। यदि वैवाह्य गृहीत न होवे तो दाय विभाग काल में ग्रहण की जाया करती है। गृहीत भी नष्ट हो जावे और द्वादश रात्रि तक अतिक्रमण करे तो उक्त क्रिया के द्वारा पीछे गृहीत होती है ।३। यहां पर 'तस्य' इसका ग्रहण योग विभाग के लिए किया गया है। उसको अग्निहोत्र से ही विधि होती है अन्य के द्वारा नहीं होती है। उससे पाक यज्ञ तन्त्र नहीं होता है ।४। प्रादुष्करण और होम काल व्याख्यात कर दिया गया है। प्रादुष्करण नाम "अपराह्णे गार्हपत्यं प्रज्वाल्य" एवं प्रातर्दुह्यायाम्" "प्रदोषान्तो दोय कालः सङ्गवास: प्रातः" ये ही दो होते हैं।

अन्य नहीं होता है ।५। हौम्य पदार्थ मांस से रहित होना चाहिए । "पयसा नित्य होम" इत्यादि पाँच द्रव्य आम्नात किये गये हैं । "पयो दधि यवागूश्च सर्पिरोदन तण्डुलाः । सोमो मांस तथा तैलमापस्तानि दशैवतु" इस प्रकार से शास्त्रान्तर में दृष्ट भी हौम्य होता है । जो द्रव द्रव्य है उसको स्रुव से हवन करता है । कठिन द्रव्य का हाथ से करता है । जिस द्रव्य से सायङ्काल को हवन करता है उसी से प्रातःकाल में करना चाहिए । यहां प्रतिनिधि वर्जित है ।६। यहां पर कामं का ग्रहण पूर्व में कथित के अभाव में इनका ग्रहण कैसे होवे—इसीलिए है । व्रीहि-यव और तिल ये प्रत्येक साधन होते है और यह न्याय से ही समझ लेना चाहिए ।७। तूष्णी भाव से द्वितीय आहुतियों का हवन करता है । यहां पर 'तूष्णी' इसका ग्रहण प्रजापति के ध्यान के लिए है । उभयत्र का अर्थ है सायं-प्रातः दोनों में । अग्नि का परि समूहन, परि सारण, पर्युक्षण और होम द्रव्य का अग्निहोत्र की भाँति संस्कार करके "अग्नये स्वाहा" इससे हवन करता है । इसके अनन्तर 'प्रजापतये' इस चतुर्थी के अन्त वाले शब्द रूप का ध्यान करके 'स्वाहा' यह उपांशु कह कर द्वितीय आहुति का हवन करता है । प्रातः होम में पूर्वोक्त मन्त्र के स्थान में 'सूर्याय स्वाहा' कह कर हवन करे ।८।(९)

अथ पार्वणः स्थालीपाकः ।१। तस्य दर्शपूर्णमासाभ्यामुपवासः ।२। इध्माबर्हिषोश्च संनहनम् ।३। देवताश्चो पांशुयाजेन्द्रमहेन्द्रवर्जम् ।४। काम्या इतराः ।५। तस्यै तस्यै देवतायै चतुरश्चतुरो मुष्टीन्निर्वपति पवित्रे अन्तर्धायामुष्मै त्वा जुष्टं निर्वपामीति ।६।

इसके अनन्तर पर्व में होने वाला स्थालीपाक होता है । स्थाली पाक कर्म्म का नाम है । विवाह के अनन्तर जो भी पौर्णमासी आती है उसमें इस कर्म का प्रथम प्रारम्भ होता है । प्रतिपद्योपासन का हवन करके इसके उपरान्त परि समूहन आदि का प्रारम्भ करना चाहिए ।१। यहां पर 'तस्य' इसका ग्रहण नियम के लिए होता है । अतिदिष्टों का न होकर उसी का उपवास होवे । दर्श पूर्णमास ये दोनों नाम हैं । उपवास

का अर्थ एक भोजन होता है । क्षार लवण रहित मणि मिश्र एव दधि मिश्र का अशन करना चाहिए ।२। इध्म और बर्हि का बन्धन होता है । पाञ्चदश दारुक को इध्म कहते हैं ।३। और देवताओं का सनयन करे किन्तु उपांशु याजेन्द्र महेन्द्र को वर्जित कर देवे ।४। कहे हुए देवताओं से अन्य जो उपांशु या आद्य देवता है वे सब काम्य हैं । अर्थात् कामना होने पर ही करने चाहिए ।५। प्रणीता प्रणयन के उत्तर काल में व्रीहियों को यवों का और असम्भव होने पर अन्यों को शूर्प में अन्तर्धान करके होम्य पदार्थों का एक-एक देवता के लिए चार-चार मुष्टियों का निर्वपन करता है । मन्त्र यह है —"अमुष्मै त्वा जुष्ट निर्वपामि" इस मन्त्र से करे । अमुष्मै—इसके स्थान मे चतुर्थी विभक्ति से देवता का निर्देश करना चाहिए । वीप्सा के द्वारा यह सूचित किया जाता है कि प्रत्येक देवता के लिए चार-चार मुष्टियाँ देवे ।६।

अथैनान्प्रोक्षति यथानिरुप्तममुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति ।७। अवहतांस्त्रिःफलीकृतान्नाना श्रपयेत् ।८। समोप्य वा ।९। यदि नाना श्रपयोद्विभज्य तण्डुलानभिमृशेदिद-ममुष्मा इदममुष्मा इति ।१०। यद्यु वै समोप्य व्युद्धार जुहुयात् ।११। शृतानि हवींष्यभिघार्योदगुद्वास्य बर्हिष्या-साद्येध्ममभिघार्यायं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेना-न्नाद्येन समेधय स्वाहेति ।१२।

सब देवताओं के निरुप्त होने पर प्रोक्षण होना चाहिए—इसी को सूचित करने के लिए सूत्र में अथश के द्वारा प्रयोग किया गया है । 'एतान्'—यह बहु वचन इसी बात को संसूचित करने के लिए दिया गया है कि सब संश्लिष्ट देवताओं का ही प्रोक्षण करे विभाग करके नहीं करना चाहिए । "यथा निरुप्तम्" इस मन्त्र से उस-उस देवता के लिए चार-चार प्रोक्षण समन्त्रक निर्वापों में समन्त्रकों को और अमन्त्रकों में अमन्त्रकों को पवित्रों को अन्तर्धान करके ही करना चाहिए—यह तात्पर्य

होता है। मन्त्र यह है—"अमुष्यै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि"। निर्वाण और प्राक्षण एक ही पात्र मे होते है क्योंकि उत्तरत्र मे विधान का अभाव है।७। कृष्णाजिन मे उनूखल को करके पत्नी अवहनन करे। त्रिफलीकृतों का नाना श्रवण करना चाहिए। पितृ पिण्ड पक्ष मे एक बार प्रक्षालन करके करे। यहाँ पर तीन बार करे।८। अथवा एक ही में श्रवण करना चाहिए।९। यदि पृथक् २ श्रवण करे तो ऐसा होने पर 'इदममुष्यै—इदममुष्यै'—यह कहकर तण्डुलों का अभिमृष्ट करना चाहिए। अमुष्मै—इसके स्थान में पूर्व की भाँति अभीष्ट देवता के आगे चतुर्थी विभक्ति लगा देवे।१०। यदि समनयन करके श्रवण करे तो वैसा होने पर चरु को विशेष रूप से उद्धृत करके हवन करना चाहिए। व्युद्धरण का अर्थ है किसी अन्य पात्र में पृथक् कर लेना। यदि—इसका कथन होम काल में ही व्युद्धरण करे—इसी के लिए है।११। उत्तर की ओर अग्नि के आज्य का उत्पवन करके पीछे बर्हियों का आस्तरण कर के आज्य का समासादन करे। इनके अनन्तर हवियों को बर्हि में आसादन करके इध्म का अभिधारण करे और 'अयंते"—इस मन्त्र से अग्नि में आधान करना चाहिए। इससे जातवेदा इध्यमान हो—बढ़े और इद्ध एवं वर्धित होकर हमको प्रजा से—पशुओं से—ब्रह्मवर्चस से और अन्नादि से समेधित करे—स्वाहा—इति। कुछ महानुभाव ऐसा ही पढ़ते है कि बर्हि में आसादन करके पुनः अभिधारण करना चाहिए।१२।

तूष्णीमाघारावाघार्याऽऽज्यभागौ जुहुयादग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेति ।१३। उत्तरमाग्नेयं दक्षिणं सौम्यम् ।१४। विज्ञायते चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ ।१५। तस्मात्पुरुषस्य हि प्रत्यङ्मुखस्याऽऽसीनस्य दक्षिणमक्ष्युत्तरं भवत्युत्तरं दक्षिणम् ।१६। मध्ये हवींषि प्रत्यक्तरं वा प्राक्संस्थान्युदक्संस्थानि वोत्तरपुरस्तात्सौविष्टकृतम्।१७। मध्यात्पूर्वार्धाच्च हविषोऽवद्यति ।१८। मध्यात्पूर्वार्धात्पश्चार्धादितिपञ्चावत्तिनाम् ।१९।

इस सूत्र में 'तूष्णीम्' यह शब्द बतलाता है कि मन्त्र से करे क्योंकि अन्य शास्त्र में दृष्ट अन्य धर्म कैसे प्रवृत्त होंगे ? उत्तर पश्चिम दिशा से आरम्भ करके दक्षिण पूर्वा दिशा की ओर अविच्छिन्न आज्य की धारा का हरण करे। तथा दक्षिण पश्चिमा दिशा से आरम्भ करके उत्तर पूर्वा के प्रति आधारण करना चाहिए। दोनों का स्रुव से ही हवन करना चाहिए क्योंकि जहां पर आज्य होम में अन्य साधन का उपदेश नहीं होता है वहां पर स्रुव के द्वारा होम होता है—ऐसा साधित है। व्याख्याताओं के द्वारा जितना अपने शास्त्र में अनुक्त और अपेक्षित है उतना ही ग्रहण करने के योग्य है अपने शास्त्र में उक्त को भी नहीं ग्रहण करे। अज्य भागों को "अग्नये स्वाहा—सोमाय स्वाहा" इनसे हवन करना चाहिए।१३। अग्नि के उत्तर पार्श्व में आग्नेय आज्य भाग का हवन करे—दक्षिण पार्श्व में सौम्य भाग का हवन करना चाहिए। पूर्व की ही भाँति स्रुव से हवन करे।१४। ये आज्य भाग यज्ञ के चक्षु है—ऐसा ही श्रूयमाण होते है।१५। प्रत्यङ्मुख यज्ञ पुरुष जो आसीन है उसका दक्षिण नेत्र उत्तर होता है और उत्तर दक्षिण होता है। इस कारण से दक्षिण संस्था ही की जा सकती है उदक् संस्था नहीं—यही अर्थ होता है। अन्यत्र कहीं पर श्रुत्वाकर्य जिस प्रकार से उदक् संस्थायी होती है। इससे बलि हरण में प्रधानों का उत्तर से पुरुषों के लिए बलि का हरण सिद्ध होता है।१६। अग्नि के मध्य प्रदेश में हवियों का हवन करता है। अथवा प्रत्यक्तर देश में हवन करता है। उस देश में भी अथवा प्राक् संस्थों का अथवा उदक् संस्थों का हवन करता है। अग्नि के उत्तर पूर्व देश में स्विष्टकृत हवि को हवन करता है।१७। हवि के मध्य से और पूर्वार्ध से अंगुष्ठ पर्व मात्र अवद्य होता है अर्थात् अवदान होता है यह देश नियमित किया जाता है।१८। पञ्चावत्तियों का तो मध्य से पूर्वार्द्ध से और पश्चार्ध से—यह ही अवदान होता है। पश्चार्धात् इतने ही से सिद्ध होने पर 'मध्यात्पूर्वार्धात्' यह पुनर्वचन इसीलिए है कि प्रत्यक्संस्थता होवे और प्राक्संस्था न होवे।१९।

उत्तरार्धात्सौविष्टकृतम् ।२०। नात्र हवींषि प्रत्यभिघारयति स्विष्टकृतं द्विरभिघारयति ।२१। यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुतेसर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा इति ।२२। बर्हिषि पूर्णपात्रं निनयेत् ।२३। एषोऽवभृथः ।२४। पाकयज्ञानामेतत्तन्त्रम् ।२५। हविरुच्छिष्टं दक्षिणा ।२६। ख० १०।

समस्त हवियों के उत्तरार्ध से स्विष्ट कृदर्थ अवदान है । स्विष्टकृत् में हविशेष का अवधारण नहीं करता है । यहां पर अत्र-इसका ग्रहण यहां पर ही अवधारण नहीं करता है प्रधान हवियों में—इसीलिए है । हवि शब्द शेष में होता है ।२१। निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा स्विष्टकृत का हवन करना चाहिए । मन्त्र यह है—"यदस्य कर्म्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्ट त्स्विष्ट कृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुत हुते सर्वं प्रायश्चित्ता हुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा" इति ।२२। जो पूर्व में निहित पूर्ण पात्र है उसको अवर्बाह में निनयन करे अर्थात् निषिञ्चन करना चाहिए ।२३। जो यह पूर्ण पात्र का निनयन है यह इस कर्म का अवभृथ होता है । यहां पर अवभृथ वचन अवभृथ की प्राप्ति के लिये है ।२४। यह तन्त्र सब पाक यज्ञों का होता है यहां पर पाकयज्ञ का ग्रहण स्थाली पाक सदृश हुतों का ही तन्त्र जैसे होवे और प्रहुत ब्रह्म में हुतों का न होवे—इसीलिये है । अङ्ग संहति को तन्त्र कहते है ।२५। उच्छिष्ट हवि दक्षिणा को देता है यदि ब्रह्मा है और उसके अभाव में ब्राह्मणों के लिए देनी चाहिए । दक्षिणाओं को धर्माङ्गत्व होने से ऐसा करना चाहिए ।२६।(१०)

अथ पशुकल्पः ।१। उत्तरतोऽग्नेः शामित्रस्याऽऽयतनं कृत्वा पाययित्वा पशुमाप्लाव्य पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्याग्निं दूतमिति द्वाभ्यां हुत्वा सपलाशयाऽऽर्द्रशाखया पश्चादुपस्पृशेदमुष्मै त्वा जुष्टमुपाकरोमीति ।२।

व्रीहियवमतीभिरद्भिः पुरस्तात्प्रोक्षति, अमुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति ।३। तासां पाययित्वा दक्षिणमनु बाहु शेषं निनयेत् ।४। आवृतैव पर्यग्नि कृत्वोदञ्चं नयन्ति ।५। तस्य पुरस्तादुल्मुकं हरन्ति ।६। शामित्र एष भवति ।७। वपाश्रपणीभ्यां कर्ता पशुमन्वारभते ।८। कर्तारं यजमानः ।९।

इसके अनन्तर पशुकल्प बतलाया जाता है । यहां पर पशु से मतलब कहा जाता है । पशु का विधान नहीं किया जाता है क्योंकि इनका ग्रहण होता है । इस प्रकार से उपाकरण का विधान अनर्थक है ।१। आज्यभागान्त को करके अग्नि के उत्तर की ओर शामित्र का आयतन करे । इसके पश्चात् पशु को मिलाकर फिर जल से पशु को स्नापित करके अग्नि के आगे प्रत्यङ् मुख अवस्थापित करे । इसके उपरान्त "अग्निं दूतम्" इन दो मन्त्रों से सपर्ण अमुक शाखा आर्द्र शाखा गायत्री से हवन करे । फिर 'अमुष्मैत्वा' इत्यादि मन्त्र से उपस्पर्शन करना चाहिए ।२। फिर "अमुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" इस मन्त्र से व्रीहि यव मिश्रित जल से पशु के आगे प्रोक्षण करता है ।३। व्रीहियवों वाले जलों के एक देश को पशु को पान कराकर दक्षिण बाहु को अनुशेष से निःसिञ्चन करे । यहां पर 'तास्तम्'—इस पद का ग्रहण प्रोक्षण के प्रतिषेध होने पर भी अष्टका में पायन हो जावे—इसी लिये किया गया है ।४। तूष्णी भाव से ही पर्यग्नि करके पशु को उदचनयन करते हैं । प्रतिषेध मन्त्र वर्जित होता है । अन्य धर्म त्रेता में दृष्ट होते हैं ।५। उस पशु के आगे प्रदीप्त काष्ठ का हरण किया करते हैं ।६। यह अग्नि शामित्र होता है । इससे पूर्व में उक्त शामित्रायतन में उसका प्रतिष्ठापन होता है ।७। वपाश्रपणी काश्मर्यमयी होती हैं । उन में एक विशाखा है और दूसरी सशाखा है जो इस कर्म का करने वाला है वह अध्वर्यु स्थानीय होता है वह पशु का अन्वारभण करता है ।८। अध्वर्यु को यजमान अन्वारभण करता है ।९।

पश्चाच्छामित्रस्य प्राक्शिरसं प्रत्यक्शिरसं वोदक्पादं सज्ञप्य पुरा नाभेस्तृणमन्तर्धाय वपामुत्खिद्य वपामवदाय वपाश्रपणीभ्यां परिगृह्याद्भिरभिषिच्य शामित्रे प्रताप्याग्रे णैनमग्निं हृत्वा दक्षिणत आसीनः श्रपयित्वा परीत्य जुहुयात् ।१०। एतस्मिन्नेवाग्नौ स्थालीपाकं श्रपयन्ति ।११। एकादश पशोरवदानानि सर्वाङ्गेभ्योऽवदाय शामित्रे श्रपयित्वा हृदयं शूले प्रताप्य, स्थालीपाकस्याग्रतो जुहुयात् ।१२। अवदानैर्वा सह ।१३। एकैकस्यावदानस्य द्विर्द्विरवद्यति ।१४। आवृतैव हृदयशूलेन चरन्ति ।१५। ख० ११ ।

"तं यत्र निहनिष्यन्तो भवन्ति तदध्वर्युर्बर्हिरधस्तादुपास्यति"—इस श्रुति वचन से शामित्र के पश्चिम देश में कर्ता बर्हि का उपस्तरण करता है। इसके उपरान्त उस बर्हि में शमिता प्राक्शिरस्क अर्थात् पूर्व की ओर सिर वाले प्रत्यक् शिरस्क बोदक बोदक्पाद पशु को संज्ञपित करता है। उदक्पाद्—इतने ही कथन से ही सिद्ध होने पर प्राक्शिरस्कं और प्रत्यक् शिरस्क यह वचन ऊर्ध्वशिर वाले का संज्ञपन न होवे—इसीलिये है। इसके पश्चात् कर्ता नाभि के वपा स्थान का ज्ञान प्राप्त करके वहाँ पर तृण को अन्तर्धान करके अर्थात् तिर्यक् छेद न करके वपा का उद्धार करे वपा का स्थान पार्श्व का विविक्त प्रदेश होता है। यदि पशु प्राक्शिरा संज्ञप्त होवे तो वैसा होने पर दक्षिण पार्श्व को ऊंचा करके तृणान्तर्धान करना चाहिए। इसके उपरान्त वपा का अवदान पुनः करे। सम्पूर्ण वपा के अवदान के ही लिये पुनर्ग्रहण होता है। इसके पश्चात् वपा श्रपणियों से परिग्रहण कर जल से प्रक्षालन करे और शामित्र में प्रतप्त करे। प्रतापन धर्म मात्र ही है क्योंकि श्रपण के उत्तर में ही उसका विधान होता है। फिर शामित्र के उत्तर मे जाकर अग्रभाग मे इस औपासन अग्नि और वपा का हरण करके इसके दक्षिण में आसीन होता हुआ श्रपण करके श्रपिता उस वपा प्लक्ष शाखाओं पर रख कर दोनों अग्नियों को यथागत परीत कर 'अग्नुष्मै स्वाहा' इससे हवन करे।१०। इसी औपासन

अग्नि में पशु का अङ्ग होने से पशु देवता के लिये स्थाली पाक का हवन करना चाहिए। शामित्र में न होवे—इसीलिये "एतस्मिन्" यह वचन दिया गया है ।११। पशु का ग्रहण जो सेना से पशु के एकादश अवदान है और वे प्रसिद्ध भी हैं वे जिस तरह होवें—इसीलिये है। उन हृदय-जिह्वा-वक्ष आदि पशु के एकादश अवदानों को सब अङ्गों से लेकर शामित्र में श्रपण करके शूल पर हृदय को प्रतप्त करे और स्थाली पाक के आगे हवन करना चाहिए ।१२। अथवा अवदानों के साथ ही स्थाली पाक का हवन करता है। जब पृथक् हवन करना है तो उस समय में स्विष्टकृत् को भी पृथक् करना चाहिए ।१३। एक-एक अवदान का दो-दो बार जिस किसी देश में अवदान करता है ।१४। स्विष्टकृत् सर्व प्रायश्चिताग्न को करके तूष्णी भाव से हृदय शूल से चरण करते हैं। यहां पर आवृद् का ग्रहण मन्त्र से रहित है। अन्य धर्म सेना में इष्ट जैसे होवें—इसीलिये है ।१५।(११)

चैत्ययज्ञे प्राक् स्विष्टकृतश्चैत्याय बलिं हरेत् ।१। यद्यु वै विदेशस्थं पलाशदूतेन यत्र वेत्थ वनस्पत इत्यैतयर्चा द्वौ पिण्डौ कृत्वा वीवधेऽभ्याधाय दूताय प्रयच्छेदिमं तस्मै बलिं हरेति चैनं ब्रूयादयं तुभ्यमिति यो दूताय ।२। प्रतिभयं चेदन्तरा शस्त्रमपि किंचित् ।३। नाव्या चेन्नद्यन्तरा प्लवरूपमपि किंचिदनेन तरितव्यमिति ।४। धन्वन्तरियज्ञे ब्रह्माणमग्निं चान्तरा पुरोहितायाग्रे बलिं हरेत् ।५। ख०१२।

जो चित्त में होता है वह चत्य कहा जाता है। यदि आत्मा को अभिप्रेत वस्तु लब्ध होवे तो "त्वामहमाज्येन स्थाली पाकेन पशुनावा यक्ष्यामि" यह मन्त्र है। इसके पश्चात् वस्तु के लब्ध होने पर उसका उसके द्वारा याग करना चाहिए वह चैत्य यज्ञ है। वहाँ पर स्विष्टकृत् से पहिले चैत्य के लिये बलि का हरण करना चाहिए। नमस्कारान्त नाम-धेय से पुनः चैत्य का ग्रहण प्रत्यक्ष हरण के लिये है। इससे चैत्यायतन में

ही उपलेपन आदि करना चाहिए ।१। यदि विदेशस्थ चैत्य का यजन करे तब पलाश दूत के द्वारा बलि का हरण करे। जहाँ पर "चैत्य वनस्पत" इस ऋचा से दो पिण्डों को करके वीवध में अभ्याधान करके दूत के लिये देना चाहिए। उन दोनों में से एक पिण्ड को निर्दिष्ट करके दूत को "इमं तस्मै बलिहर"—यह कहता है। "अयं तुभ्यम्" इससे आर्यों के दूत के लिये देता है। "एतयाऋचा"—यह वचन अन्यत्र पाद-ग्रहण मे भी कहीं पर सूक्त होता है —इसी लिये है। इससे 'आत्वा हार्षमन्तरेधि'—यह और "ऋषभं मा समानानाम्" यह सूक्त सिद्ध होता है। अन्य लोग पुनः अभ्यास के लिये मानते है।२। और कर्त्ता को चैत्य के मध्य में यदि भय हो तो दूत के लिये कुछ शस्त्रयी प्रदान कर देना चाहिए।३। दोनो के मध्य में यदि नौका के द्वारा तरण करने योग्य कोई नदी होवे तो उस समय में कुछ प्लव रूप भी इस मन्त्र से देना चाहिए। ।४। यदि धन्वन्तरि चैत्य होवे तो उस समय में ब्रह्मा को और अग्नि को तथा बीच में पुरोहित के लिये आगे बलि का हरण करना चाहिए। मन्त्र ये हैं— "पुरोहिताय नमः" "धन्वन्तरये नमः"। धन्वन्तरि के विदेश में स्थित होने पर यह विशेषता है कि धन्वन्तरि और पुरोहित को एक ही पिण्ड देना चाहिए और दूसरा पिण्ड दूत के लिये देवे ।५।(१२)

उपनिषदि गर्भलम्भनं पुंसवनमनवलोभनं च ।१। यदि नाधायात्तृताये गर्भमासे तिष्येणोपोपितायाः सरूपवत्साया गोदधनि द्वौ तु माषौ यवं च दधि प्रसृतेन प्राशयेत् ।२। किं पिबसि किं पिबसीति पृष्ट्वा पुंसवनं पुंसवनमिति त्रिः प्रतिजानीयात् ।३। एवं त्रीन्प्रसृतान् ।४। अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजातामोषधीं नस्तः करोति ।५। प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके। आ ते गर्भो योनिमैतु पुमान्बाण इवेषुधिम्। आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः। अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा

वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदादिति ।६। प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा हृदयदेशमस्या आलभेत । यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ । मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माऽहं पौत्रमघं नियामिति ।७। ख० १३।

इस सूत्र में 'आम्नातम्'—यह शेप है । गर्भ प्राप्त किया जाता है और जिस कर्म के द्वारा निषिक्त वीर्य अमोघ होता है उसको गर्भलम्भन कहते हैं । जिस कर्म से लब्ध पुमान् जन्म ग्रहण किया करता है वह पुंसवन होता है । पुमान् होता हुआ जिस कर्म से अविलुप्त नहीं होता है वह अनवलोपन कहा जाता है । ये किसी उपनिषद् में आम्नात होते हैं ।१। कुछ विद्वानों का मत है कि आचार्य के द्वारा गर्भाधान उक्त नहीं है, इस को मान कर उसे नहीं करना चाहिये । अन्यों का मत यह है कि पुनः शौनकादि उक्त मार्ग से करना चाहिए । यह पुंसवन है । गर्भ के सहित मास ही गर्भ मास होता है । निरूपण—यह प्राशन कर्म्म से सम्बन्धित होता है क्योंकि उसकी प्रधानता है । गुण अर्थात् गौण होने से उपवास के द्वारा सम्बन्धित नहीं होता है । उस पुनर्वसुत्रे द्वारा उपोषित पत्नी का तिष्य के द्वारा यह कर्म्म करता है । सरूप वत्स वाली गौ का ग्रहण करे । ऐसी गौ के अभाव में असरूप वत्सा ही का ग्रहण करना चाहिए । गौ के दधि में दो-दो माष और यव का प्रक्षेप होना चाहिए । प्रसृत् दधि में प्रक्षिप्त करे । दो माष अण्ड स्वरूप से और शिश्न रूप से देवे ।२। क्या पियोगी ? यह प्रश्न तीन बार करके आचार्य तीन बार 'पुंसवनम्' 'पुंसवनम्' शब्द का उच्चारण कर के उसका उत्तर दे ।३। इस प्रकार से तीन प्रसृतों का प्राशन करना चाहिए । एक प्रसृत के प्राप्त होने पर तीन प्रसृत तुल्य धर्मों वाले किये जाते हैं ।४। अन्य कर्म होने से अन्य काल की प्राप्ति होने पर 'अथ' यह शब्द अनन्तरता के अर्थ बतलाने वाला है । इसका मण्डलागार करके उसकी छाया मे बिठा कर इसकी दक्षिण नासिका में न्यस्त दूर्वा को करता है । यहाँ पर दक्षिण का ग्रहण करना इन्द्रियों के अनजुत्व के ज्ञापन के

लिये है। नस्तीकरण अर्थ नासिका में रस का सेवन होता है।५। प्रजावाद् के द्वारा इस मन्त्र का प्रजावान् होता है" आतेगर्भो""इवेपुधिम्"—इति सूक्त प्रजावाद् है। जीव पुत्र के द्वारा इष्ट मन्त्र जीव पुत्र होता है। 'अग्नि रैतु'''इत्यादि सूक्त जीव पुत्र है। कतिपय विद्वान् इन दोनों सूक्तों से नस्तः करण की इच्छा किया करते है। अन्य विद्वान् तूष्णी भाव से किया करते है। यहाँ पर 'ह'—यह शब्द अभिमतत्व के ज्ञापन के लिये होता है।६।प्राजापत्य स्थाली पाक का एक देश हवन करके इसके हृदय के समीप भाग का स्पर्श करना चाहिए। "यत्ते सुसीमे" इत्यादि मन्त्र के द्वारा फिर स्विष्टकृद् आदि का समापन करे। यह कर्म प्रत्येक गर्भ में आवर्त्तित करे, क्योंकि यह गर्भ का संस्कार होता है। प्रथम गर्भ में तीसरे मास में यदि गर्भ विज्ञात न होवे तो उस दशा में चौथे मास में करना चाहिए। गर्भ के विज्ञात होने पर नित्य मे पुंसवन संस्कार करे। ऐसा वचन है—"ततृतीये मास्युन्यत्र गृष्टेः"। गृष्टि प्रथम गर्भ को कहा जाता है। पाँचवें मास में अङ्गों की निष्पत्ति होती है। 'माहं पौत्रम्'—इस लिङ्ग के होने से इस कर्म का स्वयं ही कर्त्ता होता है। यदि उसका अभाव हो तो देवर इस कर्म को सम्पादित करे।७। (१३)

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ।१। आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ।२। अथाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुहं चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम तस्मिन्नुपविष्टायां समन्वारब्धायां धाता ददातु दाशुष इति द्वाभ्यां राकामहमिति द्वाभ्यां नेजमेष प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च ।३। अथास्यै युग्मेन शलाटुग्लप्सेन त्रेण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः ।४। चतुर्वा ।५। वीणागाथिनौ संशास्ति सोम राजनं संगायेतामिति ।६। सोमो नो राजाऽवतु मानुषीः प्रजा विविष्टचक्राऽसाविति यां नदीमुपवसिता भवन्ति ।७। ब्राह्मण्यश्च वृद्धा जीवपत्यो

जीवप्रजा यद्यदुपदिशेयुस्तत्तत्कुर्युः ।८। ऋषभो दक्षिणा ।९।ख०१४।

गर्भ से चौथे मास मे सीमन्तोन्नयन करे। जिस कर्म में सीमान्त उन्नीत किया जाता है वह सीमान्तोन्नयन होता है। इसे चौथे मास में करना चाहिए। यह कर्म प्रत्येक गर्भ में आवर्त्तित नहीं किया जाता है। क्यों कि यह तो गर्भिनी स्त्री का संस्कार होता है और यह गर्भ का संस्कार ही होना है। "एव त गर्भमाधेहि" यह मन्त्र का हेतु है। ऐसा कुछ विद्वानो का कथन होता है तो भी इसका आवर्त्तन नही होता है क्योंकि आधार से संस्कार को प्रधानता होती है। यदि ऐसा कहा जावे कि कैसे प्रधानता है तो सीमान्तोन्नयनम्—यह समाख्या ही इसका बल है। और आधार संस्कृत होता है। एक बार सम्कार की हुई स्त्री जिस-जिस गर्भ का प्रसव किया करती है वह सब संस्कृत हो जाया करता है। इससे इस कर्म की आवृत्ति नहीं हुआ करती है—यह सिद्ध होता है।१। शुक्ल पक्ष में जब भी पुमान् नक्षत्र से चन्द्रमा युक्त हो तभी इस कर्म को करना चाहिए। नक्षत्रो में पुरुष नक्षत्र और स्त्री नक्षत्र का परिगणन ज्योतिष में किया गया है। पुन्नामधेय नक्षत्र से चन्द्रमा युक्त होना चाहिए यही तात्पर्य है। तिष्य, हस्त और श्रवण इत्यादि नक्षत्र होते हैं। चन्द्रमा युक्त होता है—यह वचन प्रकर्ष से युक्त चन्द्रमा में जो होवे—यही कथन है। साठ घड़ियों के मध्य में बीच की तीस घड़ियों में करे। प्रत्येक नक्षत्र साठ घड़ी तक रहा करता है अतः उसके मध्य की घड़ियाँ ही ग्रहण करनी चाहिए—यही अभिप्राय है।२। इस सूत्र में 'अथ'—यह शब्द यह ज्ञापन करने के ही लिये है कि यह कर्म अन्य काल मे भी होता है। यहाँ पर "जुहुयात्" यह शेष है। और अन्य शास्त्र में यह काल विहित है। अग्नि का उपसमाधान करके पीछे इसके बैल का चर्म बिछाकर प्रागग्रीव उत्तर लोम उस पर उप-विष्टा और समन्वारब्धामे "धातादवातु दाशुषे" इससे दो "एकामहम्" इससे दो और अन्यों के मत से 'नेजमेष प्रजायते नरवदेतामि' इससे आज्य

की आहुतियों का हवन करना चाहिए।३। इसके अनन्तर इसके सम शलाटुग्लप्स अर्थात् तरुण फलों के संघात से (शलाटु अपक्व फलों की समाख्या है और ग्लप्स शब्द से स्तवक कहा जाता है क्योंकि अन्य शास्त्र में "औदुम्बर स्तवकेन" ऐसा देखा गया है) त्रेणी शलंली से और तीन कुशाओं के पिञ्जूलों से—इन सबको एकीकृत करके ललाट केशों की सन्धि का आरम्भ करके ऊर्ध्व में मन्त्र से व्यूहन करता है। "भूर्भुवः स्वरोम्" इस मन्त्र को तीन बार पढ़े।४। अथवा मन्त्र से चार बार व्यूहन करता है।५। वीणा और गाथा वाले "सोमं राजनं सगायेताम्"—इस मन्त्र से संशासन करता है।६। वे दोनों इस गाथा को गाते है इसीलिये कहा है—राजा सोम हमारी मानुषी प्रजा की रक्षा करें। "विनियचक्र" इस मन्त्र से यहाँ असौ—इसके स्थान में जिस नदी के समीप में बसते है उसका नाम आमन्त्रण की भक्ति से बोलना चाहिए। ब्राह्मणियाँ और वृद्धगण जो-जो भी उपदेश देवें वही-वही करना चाहिए। प्रैष देकर स्विष्टकृद् आदि को समाप्त करा देवे।७-८। आसेचन में समर्थ गौ को दक्षिणा में देना चाहिए।९।(१४)

कुमार जातं पुराऽन्यैरालभा (म्भा)त्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्। प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान्गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्निति।१। कर्णयोरुपनिधाय मेधाजननं जपति। मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजाविति।२। असावभिमृशति। अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतमिति। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेह्यस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निति च।३। नाम चास्मै दद्युः।४। घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्टानान्तं द्व्यक्षरम्।५। चतुरक्षरं वा।६।

यह जातकर्म्म है। यहाँ पर कुमार का ग्रहण कुमारी की निवृत्ति के लिये है—यह कथन उचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार से ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए इसका अभिप्राय यही है कि ब्राह्मणी का भी हनन नहीं किया जाना चाहिए। जातग्रहण अधिकार के लिये ही है। पूर्व पुरा का अर्थ है। अन्य शब्द का ग्रहण अनधिकृत आलम्भन मे पहिले कर्म्म करना चाहिए—इसीलिये है। मधु और घृत हिरण्य से संगृष्ट निम्न मन्त्र के द्वारा प्राशन करना चाहिए—मन्त्र यह है—"प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्'। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतजीव शरदोलोके अस्मिन्" इति।१। इस नवजात कुमार के दोनों कानों मे हिरण्य का विधान करके मेधा के जनन करने वाले अधोलिखित मन्त्र का जाप करता है। यहां पर 'उप' इसका ग्रहण मुख के समीप में ही मुख रख कर जाप करने के लिये ही दिया गया है। मन्त्र—"मेधां ते देवः सविता मेधा देवी सरस्वती। मेधांते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्कर स्रजौ" इति:। अर्थात् देव सविता तुझे मेधा देवें, देवी सरस्वती और दोनों अश्विनी कुमार तुझे मेधा देवें जो पुष्करों की माला धारण किये हुए हैं।२। इसके पश्चात अंसों को अभिमृष्ट करता है। स्तनों और बाहुओं के मध्य प्रदेश का ही नाम अंस होता है। यहां पर दोनों मन्त्रों के विषय में बहुत सी विप्रतिपत्तियां होती हैं। यहा पर कुछ लोग यथार्थ से अभिमर्शन चाहते हैं और सकृन्मन्त्र ही कहते है। अन्य लोग मन्त्र विभाग चाहते हैं "अस्मा भव परशुर्भव हिरण्य मस्तृतं भव। वेदो वै पुत्र नामासि सजीव शरदांशतम्" इससे दक्षिण अंस का अभिमर्शन करे और "इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेह्यस्मै प्रयन्धि मघ न ऋजीषिन्निति" इन होम मन्त्रों तक का करे। कुछ का कथन है कि एक ही बार उक्त तीनों मन्त्रों को बोलना चाहिए। न तो मन्त्रों का विभाग है और न पृथक् अभिमर्श ही होता है। सिद्धान्ततः यही सिद्ध होता कि तीनों मन्त्रों का उच्चारण एक बार करके एक ही साथ दोनों अंसों का स्पर्श करना चाहिए।३। इसके पश्चात् आचार्य के द्वारा जातकर्म के अनन्तर ही नामकरण भी करा देना चाहिए क्योंकि अन्य काल इसके लिये नहीं बताया गया है।

अन्य लोग यह भी कहते है कि अन्य शास्त्र में कथित काल का ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में मनु महर्षि ने कहा भी है—"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापिकारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते" अर्थात् नामकरण दशम रात्रि के बाद या बारह रात्रि के बाद करना चाहिए। अथवा किसी भी पुण्य तिथि-मुहूर्त्त अथवा गुण युक्त नक्षत्र में करे।४। अब यह बतलाया जाता है कि नाम किस प्रकार के लक्षणों वाला होना चाहिए। प्रथम और द्वितीय वर्गों के और ऊष्मा सज्ञक हकार को छोड़ कर अघोष वाले तथा घोष प्रयत्न वाले, जिसके आदि में होवें और मध्य में अन्तस्थ वर्ण जिसमे हो और अभिनिष्ठान विसर्जनीय जिसके अन्त में हो ऐसा नाम होना चाहिए। यकार आदि चार अन्तस्थ वर्ण होते हैं। अकारादि बारह स्वर हैं शेष व्यञ्जन हैं। नाम दो अक्षरों वाला ही होना चाहिए।५। अथवा चार अक्षरों वाला नाम रखना चाहिए। भद्र-देव-भव-भवनाथ-नागदेव-रुद्रदत्त-देवदत्त-ऐसे ही लक्षण वाले नाम होते हैं।६।

द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः।७। युग्मानि त्वेव पुंसाम्।८। अयुजानि स्त्रीणाम्।९। अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात्।१०। प्रवासादेत्यपुत्रस्य शिरः परिगृह्य जपति। अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतमिति मूर्धनि त्रिरवघ्राय।११। आवृतैव कुमार्यै।१२। ख० १५।

प्रतिष्ठा की कामना वाले का नाम दो अक्षरों वाला होता है और ब्रह्मवर्चस की कामना वाले का नाम चार अक्षरों का होता है क्योंकि यह भी एक सस्कार होता है।७। एवकार यहाँ पर अवधारण के लिये है। पुत्रों के नाम युग्माक्षरों वाले होते हैं। यथा-जनार्दन-शिवदत्त-विष्णु शर्मा इत्यादि है।८। अयुग्म अक्षरों वाले नाम स्त्रियों के होने चाहिए। यथा-सुभद्रा-सावित्री-वसुधा इत्यादि हैं।९। नाम का ग्रहण

करके ही अभिवादन करे। अतएव सांव्यावहारिक नाम रखकर अभिवादनीय नाम करना चाहिए और उसको माता-पिता उपनयन से जाना करते हैं।१०। प्रवास से आकर "गृही नीक्षेताप्य नाहिताग्निः" इत्यादि सूत्र में वर्णित विधि को करके पुत्र के शिर को तीन बार अवघ्राण करके फिर अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधि जायसे। आत्मावै पुत्रनामासि स जीव शरदांशतम्" इस मन्त्र के द्वारा अवघ्राण करना चाहिए।११। कुमारी हो तो उसका बिना ही मन्त्र के अवघ्राण करे। यह अनन्तर का शेष है—ऐसा कुछ कहते है उस कर्म के अनन्तर करे—ऐसा दूसरे लोग कहते हैं।१२।(१५)

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।१। आजमन्नाद्यकामः।२। तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः।३। घृतौदनं तेजस्कामः।४। दधिमधुघृतमिश्रमन्नं प्राशयेत्। अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पद इति।५। आवृतैव कुमार्यै।६। ख०१६।

जन्म से लेकर, गर्भाधान से लेकर नहीं। छटवें मास में जाताधिकार होने से वहाँ पर अन्न प्राशन कर्म करना चाहिए।१। अन्नादि की न कामना वाला आज का ग्रहण करे। अज का जो मांस है वह आज कहा जाता है। तैत्तिर साहचर्य से यहां पर माँस का ही ग्रहण है,दधि घृतादिक का ग्रहण नहीं है।२। यहाँ पर ओदन के ग्रहण से घृत-संस्कृत ओदन है। यदि घृत मिश्रित अभिप्रेत होता तो "घृतं तेजस्कामः" इतना ही सूत्र कहा गया होता। और इससे पूर्ववत् व्यञ्जनत्व होने से अन्य भी सिद्ध होता ही है। जहां पर घृतौदन चाहता है वहाँ पर नेदीयस घृत से करने पर घृत संस्कृत होता है। विक्लवे की उपपत्ति न होने से घृत में क्षपण नहीं होता है।३-४। "अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य नमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिषऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पद" इस मन्त्र के द्वारा दधि—मधु और घृत मिश्रित अन्न का प्राशन कराना चाहिए।५। कुमार के ही लिये ही विधि है। जो कुमारी हो तो उसका अन्न प्राशन संस्कार मन्त्र रहित ही कर लेना चाहिए।६।(१६)

तृतीये वर्षे चौलं यथाकुलधर्मं वा ।१। उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहि-यवमाषतिलानां पृथक्पूर्णशरावाणि निदधाति ।२। पश्चात्कारयिष्यमाणो मातुरुपस्थ आनडुह गोमयं नवे शरावे शमीपर्णानि चोपनिहितानि भवन्ति ।३। मातुः पिता दक्षिणत एकविंशतिकुशपिञ्जूलान्यादाय ।४। ब्रह्मा वैतानि धारयेत् ।५। पश्चात्कारयिष्यमाणस्याव-स्थाय शीतोष्णा अपः समानीयोष्णेन वा य उदकेनेहीति ।६। तासां गृहीत्वा नवनीतं दधिद्रप्सान्वा प्रदक्षिणं शिरस्त्रिरुन्दति । अदितिः केशान्वपत्वाप उन्दन्तु वर्चस इति ।७।

जन्म से लेकर तृतीय वर्ष में अथवा कुलधर्म के द्वारा उपदिष्ट काल में चौल करना चाहिए। 'कार्यम्'—यह व्यवस्थित विकल्प होता है। कुछ के मत से उपनयन के साथ ही साथ किया जाता है ।१। प्रणीता प्रणयन के उत्तर काल में अग्नि के उत्तर में व्रीहि-माष और तिलों से परिपूर्ण (भरे हुए) शरावों (सकोरों) को स्थापित करता है। यहाँ पर पृथक् का ग्रहण करना द्रव्यों के भेद के लिये ही है। अन्यथा समास के उपदेश होने से मिश्रितों का ही पूरण मान लिया जाता है ।२। अग्नि के पीछे कराये जाने वाला कुमार है और तत्प्रयुक्त चौल है। वह कुमार माता के उत्सङ्ग में है। नवीन शराव में गोमय उपनिहित होता है। शमी के पत्ते अन्य नव शराव में उपनिहित होते हैं ।३। माता के दक्षिण में पिता इक्कीस कुशा के पिञ्जुलकों को लेकर रहता है। माता के ही दक्षिण में रहे और अग्नि के दक्षिण में न होवे ।४। इन कुश पिञ्जुलकों को ब्रह्मा धारण करे यदि ब्रह्मा वहाँ पर विद्यमान होवे ।५। अधारान्त करके अर्थात् पूर्वोक्त आहुतियों का हवन करके कुमार के पश्चिम देश में स्थित होकर शीत उष्ण उदक को दोनों हाथों से ग्रहण करके अन्य पात्र में एक साथ निनयन करता है। "उष्णेन" इस मन्त्र से करे ।६। उन जलों के एक देश को ग्रहण करके और नव-

नीत को ग्रहण करके, इसके अभाव में दधिद्रप्सों को ग्रहण करके मन्त्र के द्वारा तीन बार प्रदक्षिण शिर को क्लेदित करता है। 'अदितिः के शान्व-धस्वाय उन्दन्तुवर्चस इति"—यह मन्त्र है। अर्थ यह है कि अदिति केशों को वपन करे और जल वर्चस के लिये क्लेदित करें।७।

दक्षिणे केशपक्षे त्रीणि त्रीणिकुशपिञ्जूलान्यभ्यात्मा ग्राणि निदधाति—ओषधे त्रायस्वैनम् ।८। स्वधिते मैन हिंसीरिति निष्पीड्य लोहेन क्षुरेण ।९। प्रच्छिनत्ति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्यविद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्याऽऽयुष्माञ्जरदष्टिर्यथासदिति ।१०। प्रच्छिद्य प्रच्छिद्य प्रागग्राञ्छमीपर्णैः सह मात्रे प्रयच्छति तानानडुहे गोमये निदधाति ।११। येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चाऽऽयुषेऽवपत् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तय इति द्वितीयम् । येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम् । तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तय इति तृतीयम् ।१२।

यहाँ पर दक्षिण शब्द का ग्रहण करना विशेष स्पष्टता के लिये ही है। उस केशपाश में तीन-तीन कुश पिञ्जुलकों को कुमार के मन्त्र के द्वारा अभ्यात्माग्रों को स्थापित करता है। "ओषधे त्रायस्वैनम्" यह मन्त्र है ।८। 'स्वधिते मैन हिंसीः" इस मन्त्र से उन कुशा पिञ्जलकों को लोहे के उस्तरा से निष्पीड़ित करता है। अर्थात् उन पर क्षुर को स्थापित करता है। लोक में क्षुर लोहे का है—यह प्रसिद्ध है अतएव यहाँ पर उसके अवाच्य होने से लौह शब्द ताम्र में वर्त्तमान होता है। और अन्य शास्त्र में विहित भी है।, लोक में लौह शब्द रजत आदि में भी आता है किन्तु यहाँ पर उस प्रकार से दृष्ट होने के कारण से ताम्र में ही आता है ।९। "प्रच्छिनत्ति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् तेन ब्रह्माणो वपते दमस्याऽयुष्माञ्जरदष्टिर्यथा सदिति" यह मन्त्र है। इसी से उस क्षुर से छेदन करता है ।१०। यह दो बार की उक्ति यहाँ पर

जो भी धर्म है उसमें उपादिष्ट किया जाता है जिससे सभी छेदों में होवे। प्रणयों को शमी के पत्तों के साथ इकट्ठे करके शिशु की माता को स्वयं दे देता है। उनको यह गौ के गोबर में स्थापित करती है।११। ये दो मन्त्र हैं—"येन धाता बृहस्पते रग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्। तेन त आयुषेवपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये" इति द्वितीय मन्त्र है—"येन भूयश्चरात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम्। तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये" इति। यह तृतीय मन्त्र है। यहाँ पर संख्या वचन अन्य मन्त्र के प्रदर्शन के लिये ही दिया गया है।१२।

सर्वैर्मन्त्रैश्चतुर्थम् ।१३। एवमुत्तरतः ।१४। क्षुरतेजो निमृजेत्। यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपासि केशान्। शुन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीरिति ।१५। नापित शिष्याच्छीतोष्णाभिरद्भिरवर्थ कुर्वाणोऽक्षण्वन्कुशलीकुर्विति ।१६। यथाकुलधर्मं केशवेशान्कारयेत् ।१७। आवृतैव कुमार्यै ।१८। ख० १७।

उपर्युक्त तीनों मन्त्रों के द्वारा चौथी बार भी छेदन करता है।१३। जिस प्रकार से दक्षिण की ओर केशों के पक्ष में किया गया है उसी भाँति उत्तर केश पक्ष में करना चाहिए और तीन बार करे। १४। इसके उपरान्त क्षुर की (उस्तरा की) धारा को मन्त्र के द्वारा शोधन करना चाहिए। निमार्जन-अवमार्जन दोनो होते है। "यत्क्षुरेणमर्च्चयता सुपेशसा वप्ता वपरिकेशान्। शुन्धि शिरोमाऽस्याऽऽयुः प्रमोषीरिति" यह मन्त्र है।१५। "नापितं शिष्याच्छीतोष्णाभिरद्भि रवर्थं कुर्वाणोऽक्षण्वन्कुशली कुर्विति"-यह मन्त्र बोलना चाहिए।१६। अपने कुल के धर्म के अनुसार ही केशों के वेशों को करना चाहिए। बौधायन कहते हैं—एक शिखा वाला—तीनशिखा वाला—अथवा पाँचशिखा वाला होवें। इनमें जिस कुल में जो भी धर्म हो उसी के अनुकूल करना चाहिए। कुमारी के लिए अमन्त्रक ही कर्म करे। यहाँ पर एक बार अवधारण के ही लिये दिया गया है। बिना मन्त्रों वाला होम कहीं भी इष्ट नहीं होता है—ऐसी

शङ्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि वहां पर भी 'प्रजापतये स्वाहा'—यह मन्त्र होता ही है ।१८।

एतेन गोदानम् ।१। षोडशे वर्षे ।२। केशशब्दे तु श्मश्रु-शब्दान्कारयेत्।३। श्मश्रू णीहोन्दति ।४। शुन्धिशिरो मुखं माऽस्याऽऽयुः प्रमोषीरिति ।५। केशश्मश्रु लोमनखान्युद-कसंस्थानि कुर्विति सप्रेष्यति ।६। आप्लुत्य वाग्यतः स्थि-त्वाऽहःशेषमाचार्यसकाशे वाचं विसृजेत । वरं ददामीति ।७। गोमिथुनं दक्षिणा ।८। सवत्सरमादिशेत् ।९। ख० १८।

इससे गोदान की व्याख्या की गई है । यहाँ पर 'व्याख्यानम्'—यह शेष है । 'एतेन'—इससे सम्पूर्ण का उपदेश होता है ।१। तृतीय का अप-वार है क्योंकि इसमे माता के उपस्थोपवेश नहीं होता है वह इसको मुक्त नहीं होता है । अतः षोडश वर्ष में करना चाहिए ।२। केश शब्द में श्मश्रु शब्दों को करावे । इससे दक्षिण पक्ष में श्मश्रु पक्ष—यह साधित होता है ।३। यहाँ पर श्मश्रुओं को क्लेदित करता है । यह शिर उन्दनका अपवाद है ।४। मन्त्र यह है—"शुन्धि शिरो मुखं माऽस्याऽऽयुः प्रमोषी-रिति" ।५। "केशश्मश्रु लोम नखान्युदक संस्थानि कुरु"—यह भाणित का अनुशासन होता है ।६। वहा पर स्नान करके वाग्यत अर्थात् मौन होकर स्थित रहे । यहां पर उपवेशन का प्रतिषेध होता है । इस प्रकार से अह अर्थात् दिन के शेष भाग में स्थित रहे और जब अस्तमित काल हो उसमें आचार्य के समीप में 'वर ददामि' इसका विसर्जन करना चाहिए ।७। दो गौ की दक्षिणा है । यदि यह भिक्षु हो तो दो गौ की दक्षिणा कैसे सम्भव हो सकती है—ऐसी शङ्का का समाधान है जैसा प्राचरणादि का सम्भव हो वैसा ही इसका भी करे ।८। इस रीति से गोदान करके आगे बतायी हुई विधि से एक सम्वत्सर तक व्रत का समाचरण करना चाहिए। व्रतादेश की अनुपपत्ति होने पर दूसरे दिन यह कर्म करना चाहिए ।९।

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ।१। गर्भाष्टमे वा ।२। एका-दशे क्षत्रियम् ।३। द्वादशेवैश्यम् ।४। आ षोडशाद्ब्राह्मण

स्यानतीतः कालः ।५। आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्या चतु
विंशाद्वैश्यस्यात ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ।६।
नेनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नं भिव्यंवहरेयुः ।७।

जन्म से लेकर अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन करना चाहिए और यह कुमारी की निवृत्ति के लिए ही यहाँ पर कुमार है ।१। अथवा गर्भाधान से लेकर अष्टम वर्ष में करना चाहिए ।२। जन्म से अथवा गर्भ से लेकर ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय को उपनीत करना चाहिए ।३। जन्म या गर्भ से आरम्भ करके द्वादशवें वर्ष में वैश्य का उपनयन करना चाहिए ।४। सोलह वर्ष तक ब्राह्मण के उपनयन का काल अवतीत हो जाता है अर्थात् उपनयन संस्कार का समय अतीत नही होता है ।५। क्षत्रिय और वैश्य इन दोनों का काल बाईस और चौबीस वर्ष तक क्रम से अतीत नही होता है । इस उपर्युक्त समय से ऊपर जो भी इन तीनों वर्णों का समय है ब्रह्म मे ये तीनो ही वर्ण पतित सावित्री वाले हो जाया करते है अर्थात् ये पतित होकर सावित्री के अधिकारी नहीं रहा करते हैं ।६। इस काल के ऊपर ये प्रायश्चित्त के करने के भी अधिकारी नहीं रहा करते है । उपनयन के प्रतिषेध होने ही से सर्वत्र प्रतिषेध सिद्ध हो जाता है । इस काल के ऊपर भी लालच से अथवा अज्ञान से कोई उपनयन करता है तो अनुचित है । उनको जो सावित्री के प्राप्त करने के अधिकार से पतित हो गये है उनका उपनयन–अध्यापन–यजनन और व्यवहार कुछ भी नहीं करना चाहिए ।७।

अलङ्कृत कुमारंकुशलीकृतशिरसमहतेन वाससा सवीत-
मैणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन
वैश्यम् ।८। यदि वासांसि वसीरन्रक्तानि वसीरन्कषाय
ब्राह्मणो माञ्जिष्ठं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः ।९। तेषां मे-
खलाः ।१०। मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्य आवी
वैश्यस्य ।११। तेषां दण्डाः ।१२। पालाशो ब्राह्म-
णस्य औदुम्बरः क्षत्रियस्य बैल्वो वैश्यस्य केशसंमितो

ब्राह्मणस्य ललाटसमितः क्षत्रियस्य प्राणसमिता वैश्यस्य ।१३। ख० १६ ।

शिर के वपन किये हुए–अलङ्कृत और नूतन वस्त्र से सवीत कुमार को करे । जो ब्राह्मण हो उसको ऐणेय अजिन से–रौरव अजिन से क्षत्रिय को और बकरी के अजिन से वैश्य को प्रावृत करना चाहिए ।८। यदि एक रंगे हुए वस्त्रों का परिधान करे तो ब्राह्मण काषाय वस्त्र का परिधान करे–क्षत्रिय मजीठ के रंग वाले को पहिले और वैश्य हारिद्र रंग वाले वस्त्र को धारण करे ।९। अब उन तीनों वर्णों वालों की मेखलाओं के विषय मे बतलाया जाता है ।१०। ब्राह्मण की मेखला मूंज की होती है अन्य वर्ण की नहीं होती है । अथवा अन्य होती है—इसमें कोई भी नियम नहीं है । क्षत्रिय की मेखला धनुष की डोरी की हुआ करती है और वैश्य वर्ण वाले उपनीत ब्रह्मचारी की आवी मेखला होती है ।११। अब उन तीनों वर्णों की उपनीत ब्रह्मचारियों के दण्ड कैसे और किस वृक्ष के होने चाहिए—यह बतलाया जाता है ।१२। पलाश (ढाक) का दण्ड ब्राह्मण का हुआ करता है । उदुम्बर (गूलर) का दण्ड क्षत्रिय का होता है । बिल्व वृक्ष से बनाया हुआ दण्ड वैश्य का होता है । अब उन दण्डों का पृथक्-पृथक् प्रमाण भी बताया जाता है—मस्तक के केशों तक पहुँचने वाला दण्ड ब्राह्मण का होता है—ललाट तक परिमाण में जाने वाला दण्ड क्षत्रिय का हुआ करता है और प्राण वायु जहां रहता है वहां तक पहुंचने वाला लम्बा दण्ड वैश्य का होता है । मेखलाओं के तुल्य ही दण्ड का नियम होता है ।१३।

सर्वे वा सर्वेषाम् ।१। समन्वारब्धे हुत्वोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुख आचार्योऽवतिष्ठते ।२। पुरस्तात्प्रत्यङ्मुख इतरः ।३। अपामञ्जली पूरयित्वातत्सवितुर्वृणीमह इति पूर्णेनास्य पूर्णमवक्षारयत्यासिच्य देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यांपूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृहणाम्यसाविति तस्य पाणिना पाणिं साङ्गुष्ठं गृहणीयात् ।४। सविता ते

हस्तमग्रभीदसाविति द्वितीयम् । अग्निराचार्यस्तवासा-
विति तृतीयम् ।५।

अथवा सभी के लिए उक्त वृक्षों के सब दण्ड हो सकते हैं जो कि पलाश आदि के बतलाये गये है ।१। आज्य का वह्नि में आसदानान्त तक करके समन्वारब्ध में ब्रह्मचारिणी ध्याघारान्त करके पूर्व में वर्णित आज्य की आहुतियों का हवन करे । अग्नि के उत्तर भाग में पूर्व की ओर मुख वाला आचार्य अवस्थित होता है । ब्रह्मचारी तीर्थ के द्वारा प्रवेश करके दक्षिण की ओर उपवेशन करे । तीर्थ प्रणीताओं का पश्चिम देश होता है । सब जगह तीर्थ से ही प्रवेश करके कर्म करना चाहिए ।२। आचार्य के आगे प्रत्यङ्मुख होकर ब्रह्मचारी को अवस्थित होना चाहिए ।३। जल से दोनों अञ्जलियों को पूरित करके अपनी पूर्ण अञ्जलियों से इसकी पूर्ण अञ्जलि को अवक्षारित करता हैं । इसका मन्त्र "तत्सवितुर्वृणीमहे" यह है । इसके उपरान्त "देवस्य त्वा"—इस मन्त्र से उसके अङ्गुष्ठ सहित हाथ को ग्रहण करना चाहिए । आचार्य की अञ्जलि को अन्य पूरित करता है । आसिच्य—यह वचन आचार्य अवक्षारण करे और कुमार न करे—इसीलिये है । इसका पूरा मन्त्र यह है—"देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनों बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्त गृह्णामि" । इससे यह सिद्ध हो गया है कि आचार्य अवक्षारण करता है ।४। "सविता ते हस्त मग्रभीदसौ" इति-इससे द्वितीय है "अग्नि राचार्यस्तवासौ" इति—इससे तृतीय होती है । यहाँ पर सख्या का वचन प्रथम हस्त ग्रहण इत्याञ्जलि पूरणादि धर्म प्राप्ति के लिये ही है ।५।

आदित्यमीक्षयेत् । देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गो-
पाय स मामृतेत्याचार्यः ।६। कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य
ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामीति
। । युवा सुवासाः परिवीत आगादित्यर्धर्चेनैनं प्रदक्षि-
णामावर्तयेत् ।८। तस्याध्यंसौ पाणी कृत्वा हृदयदेशमा-
लभेतोत्तरेण ।९। अग्नि परिसमुह्य ब्रह्मचारी तूष्णीं

समिधमादध्यात्तूष्णीं वै प्राजापत्यं प्राजापत्यो ब्रह्मचारी भवतीति विज्ञायते ।१०। ख० २० ।

इसके अनन्तर मन्त्र के द्वारा आचार्य ब्रह्मचारी को आदित्य का दर्शन करावे । मन्त्र यह है—"देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त गोमाय समामृता" इति ।६। यह मन्त्र आचार्य का है । प्रजापति के लिए ब्रह्मचारी प्रदान किया जाता है । यहां पर 'जयेत्' यह शेष है । मन्त्र का स्वरूप यह है—"कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयने-काय त्वा परिददामि" इति ।७। "युवा सुवास्तः परिवीत आगाद्"—इस आधी ऋचा से इस ब्रह्मचारी को प्रदक्षिण आवर्त्तित करना चाहिए ।८। ब्रह्मचारी के दोनों अंसों के ऊपर अपने हाथों को करके उसके हृदय देश के समीप का स्पर्श कर और उत्तर अर्ध ऋचा से करना चाहिए ।९। सायङ्काल और प्रातःकाल में समिधाओं के आधान में परिसमूहन-पर्युक्षण जिस प्रकार से होवें इसीलिए परिसमूहन वचन है । अग्नि का परिसमूहन करके ब्रह्मचारी चुपचाप समिधाओं का आधान करे । ब्रह्मचारी वचन आचार्य की निवृत्ति के लिये ब्रह्मचारी यह वचन है । "जो प्रजापत्य है वह तूष्णीं और ब्रह्मचारी प्रजापत्य है"—यह श्रूयमाण होता है ।१०।

मन्त्रेण हैकेऽग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । तया त्वमग्नेवर्धस्व समिधा ब्रह्मणा वय स्वाहेति ।१। स समिधमाधायाग्निमुपस्पृश्य मुखं निमार्ष्टि विस्तेजसा मा समनज्मीति ।२। तेजसा ह्येवाऽऽत्मानं समनक्तीति विज्ञायते ।३। मयि मेधां प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् । इत्युपस्थाय जान्वाच्योपसंगृह्य ब्रूयादधीहि भोः सावित्रीं भो३ अनुब्रू३ हीति ।४। तस्य वाससा

पणिभ्यां च पाणी संगृह्य सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्धर्चशः सर्वाम् ।५। यथाशक्ति वाचयीत ।६। हृदयदेशेऽस्योर्ध्वाङ्गुलिं पाणिमुपदधाति । मम व्रते हृदयं त दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकव्रतोजुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति ।७। ख० २१ ।

कतिपय विद्वान् मन्त्र के द्वारा समिधा धान की चाहते हैं। यहां सूत्र मे 'हु' शब्द अभिमत तत्थ के ज्ञापन करने के लिये ही है। मन्त्र यह है—"अग्नये समिधमाहार्ष वृहते जात वेदसे। तया त्वमाने वर्धस्व समिधा ब्राह्मण वयं स्वाहा" अर्थात् बृहत् जात वेदा अग्नि के लिये समिधा का आहरण मैंने किया है। हे अग्ने ! उस समिधा से तुम वर्धमान होओ। पूर्व श्रुति के उत्कृष्टत्व होने पर भी दोनों की तुल्यता सिद्ध होती है।१। ब्रह्मचारी समिधा का आधान करके अग्नि का उपस्पर्शन करे और मन्त्र के द्वारा तीन बार मुख का निमार्जन करता है। मन्त्र—"तेजसा मा समनज्मि" इति। यह है।२। तेज से ही आत्मा को भली भाँति अक्त करता है"—इसके द्वारा क्षिज्ञायमान होता है। अग्नि का उप स्पर्शन भी तीन वार होता है।३। अग्नि देव मुझमें मेधा को–मुझ में प्रजा को और मेरे अन्दर तेज धारण करे। इन्द्रदेव मेरे अन्दर मेधा–प्रजा और इन्द्रिय को धारण करे। सूर्यदेव मेरे अन्दर मेधा–प्रजा और भ्राज को धारण कर देवें। हे अग्ने ! जो आपका तेज है उससे मैं तेजस्वी हो जाऊँ। हे अग्निदेव ! जो आपका वर्च है उससे से वर्चस्वी हो जाऊँ। हे अग्ने ! जो आपका हर है उससे मैं हरस्वी हो जाऊँ। इस प्रकार से इन छैं मन्त्रों से उपस्थान करके दक्षिण जानु को। विधि व्रत उप से ग्रह कर करके आचार्य देव से बोलना चाहिए कि भो ! सावित्री को बताइये, भो ! अनुकथन कनिष्ठ ! इति ।४। उम ब्रह्मचारी के परिहित वस्त्र से और हाथों से दोनों हाथों को संग्रहण करके सावित्री का अनुकथन करता है। आधी ऋचा का पच्छ है। इस रीति से सबको कहे ।५। स्वयं पाद-पाद को कहकर उससे कहलवाता है। यदि ब्रह्मचारी पाद–पाद को बोल नहीं सकता है तो उससे यथा शक्ति बतलाना चाहिए। इस प्रकार से

आग्नी ऋचा को कहे और सब को कहे ।६। ब्रह्मचारी के हृदय केश के समीप में ऊर्ध्व अङ्गुलि वाले अपने हाथ को उपधान करता है अर्थात् स्थापित करता है—मेरे व्रत में तेरे हृदय को धारण करता हूँ—मेरा चित्त आपका अनुचित्त होवे-मेरे वचन को एक व्रत सेवन करो—बृहस्पति मेरे लिये तुझको नियुक्त करें ।७।

मेखलामावध्य दण्डं प्रदायब्रह्मचर्यमादिशेत् ।१। ब्रह्मचार्यस्यपोऽशान कर्म कुश दिवा मा स्वाप्सीराचार्याधीनो वेदमधीष्वेति ।२। द्वादश वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम् ।३। ग्रहणान्तं वा ।४। सायंप्रातर्भिक्षेत ।५।

मेखला को आवद्ध करके दण्ड देकर ब्रह्मचर्य का आदेश करना चाहिए ।१। ब्रह्मचारी हो अतएव अपोऽशान कर्म्म करो । दिन के समय में कभी शयन मत करो और आचार्य देव के अधीन होते हुए वेद का अध्ययन करो । अपाऽशान का तात्पर्य यह है कि मूत्र पुरीष आदि में शास्त्र में विहित आचमन करो । कर्म से शास्त्र विहित सन्ध्योपासनादि करो ।२। मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का वेद नाम होता है । वेद के लिये जो ब्रह्मचर्य होता है उसी को वेद ब्रह्मचर्य कहते है । यह बारह वर्ष के काल का नियम वेदमात्र के ही लिये है । इससे महान् अग्न्यादि व्रतों के ऊपर द्वादश वर्षों से तीन सम्वत्सर होते है । और इस प्रकार से करके उपनयन से लेकर सोलहवें वर्ष मे गो दान सिद्ध होता है । एक-एक वेद के द्वादश वर्ष का ब्रह्मचर्य होता है । इस तरह से दो वेदों के चौबीस वर्ष होते हैं, तीन के छत्तीस और चारों के लिये अड़तालीस वर्ष होते हैं ।३। अथवा वेदों के ग्रहण के अन्त तक ब्रह्मचर्य होता है बारह वर्ष से पहिले या पीछे तक होवे । इस प्रकार से बोलने वाले के द्वारा तीन प्रकार के स्नान प्रदर्शित किये जाते है । विद्या स्नान-व्रतस्नान और विद्याव्रत स्नान वे तीन भेद हैं । बारह वर्ष से पूर्व वेद का अध्ययन करके जो स्नान करता है वह विद्या स्नातक होता है, जो बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य करके अनधीत वेद वाला स्नान करता है वह व्रत

स्नातक होता है। जो पुनः बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण कर वेदों का अध्ययन करने वाला होता है वह विद्याव्रत स्नातक होता है। इसके पश्चात् स्विष्टकृत् आदि कृत्य का समापन करना चाहिए।४। दिन में और रात्रि में आचार्य के लिये और अशन करने के लिये अन्न की याचना करनी चाहिए। उस भिक्षा चरण में जो अन्य शास्त्र में विधि देखी गयी है कि भवत् शब्द का प्रयोग कहाँ पर करे—इसको देख लेना चाहिए।५।

> सायं प्रातः समिधमादध्यात् ।६। अप्रत्याख्यायिनमग्रे भिक्षेताप्रत्याख्यायिनी वा ।७।भवान्भिक्षां ददात्विति, अनुप्रवचनीयामिति वा ।८। तदाचार्याय वेदयीत् तिष्ठेदहः शेषम् ।९। अस्त मिते ब्रह्मौदनमनुप्रवचनीयं श्रपयित्वाऽऽचार्याय वेदयीत ।१०।

ब्रह्मचारी के हृदय के भाग के समीप में ऊर्ध्व अंगुलि वाले अपने हाथ को स्थापित करता है। उसका मन्त्र यह है—'मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्त मनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेक व्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्"। अर्थात् मेरे व्रत में तेरे हृदय को धारण करता हूँ मेरा चित्त तेरे अनुचित्त होवे। मेरी वाणी को एक व्रत होकर सेवन करे। बृहस्पति मेरे लिये ही तुझको नियुक्त करें। यदि ब्रह्मचारी पाद-पाद को नहीं बोल सकता है तो उससे यथा शक्ति वाचन कराना चाहिए। इस प्रकार से आधी ऋक् अथवा सबको वचवावें।६-७। सायङ्काल और प्रातः काल में समिधाओं का आधान करना चाहिए। अग्निका परिसमूहन करके उपस्थान के अन्त तक धर्म होते हैं। इससे भैक्षपूर्व में होना है—इस क्रम का नियम नहीं है; आगे अप्रत्याख्यान करने वाले से भिक्षा की याचना करे अथवा प्रत्याख्यान न करने वाली से याचना करनी चाहिए। स्त्री से भिक्षा ग्रहण यदि करे तो दोनों जगह में मन्त्र में "भवती ददातु"—यह बोलना चाहिए।८। उस लब्ध हुए भैक्ष को लाकर आचार्य को निवेदित कर देवे और उस दिन में जितना भी

शिष्ट काल हो उसमें स्थित रहे अर्थात् खड़ा ही रहे उपवेशन नहीं करे।९। इस सूत्र में ब्रह्म शब्द ब्राह्मण का वाचक है। जो ओदव ब्राह्मणों के लिये है वह ब्रह्मौदन कहा गया है। जो अनु प्रवचन निमित्त जो होता है वह अनुप्रवचनीय होता है। ब्राह्मणों का भोजन विद्यास्यमान होता है इसीलिये चसका होता है सूर्य के अस्तमित होने पर अनुप्रवचनीय ब्रह्मदेव का श्रवण करके आचार्य को वेदन कर देवे।१०।

आचार्यः समन्वारब्धे जुहुयात्। सहसस्पतिपद्भुतमिति।११। सावित्र्या द्वितीयम्।२१। यद्यात्किंचात ऊर्ध्वमनूक्तं स्यात्।१३। ऋषिभ्यस्तृतीयम्।१४। सौविष्टकृतं चतुर्थम्। १५। ब्राह्मणान्भोजयित्वा वेदसमाप्तिं वाचयीत।१६। अत ऊर्ध्वमक्षारालवणाशी ब्रह्मचार्यधःशायी त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा।१७। चरितव्रताय मेधाजननं करोति।१८।

इसके उपरान्त आचार्य्य समन्वारब्ध में ब्रह्म चारिणीधमाधानधाधार पर्य्यन्त करके "सहसस्पतिमद्भुतम्" इस ऋक् से हवन करना चाहिए।११। यहाँ पर द्वितीय का ग्रहण उत्तरार्थ है। सावित्री "तत्सवितुर्वरेण्यम्" यह प्रसिद्ध है। इससे दूसरी आहुति देवे।१२। इसके ऊर्ध्व में भी नाग्न्यादिजनों में जो जो अनूक्त हैं उस-उससे द्वितीय होम को करता है। यहाँ पर यही कहना है कि महानाग्न्यादि व्रतो में श्रवणान्त में अनुप्रवचनीय होम करना चाहिए। वहाँ पर सावित्री के स्थान में 'महानाग्नीभ्यः स्वाहा—महाव्रताय स्वाहा—उपनिषदे स्वाहा" इस प्रकार से द्वितीय होम करना चाहिए।१३। यहाँ पर तृतीय वचन ऋषिभ्य इसके विधायकत्व को निर्वर्तित करके मन्त्रत्व यापन के लिये है। इसरी "ऋषिभ्यः स्वाहा" इससे हवन करता है।१४। सौविष्ट कृत चौथा हवन करे।१५। ब्राह्मणों को भोजन कराकर आप्ट वेद की समाप्ति बोलें—यह बोलना चाहिए।१६। इससे आगे अक्षार लवण का अशन करने वाला ब्रह्मचारी अधःशायी होवे। तीन रात्रि-द्वादश रात्रि अथवा वर्ष

कहा है ।१७। यहाँ इस सूत्र में 'चरित्र व्रताय'—यह वचन मेधा जनन के द्वारा व्रत के सम्बन्ध के लिये ही है। इससे जहाँ पर उपनयन के द्वारा मेधा का जनन है वहीं पर व्रतचर्य्या होती है। जहाँ पर व्रतचर्या है वहीं पर अनुप्रवचनीय है ।१८।

अनिन्दितायां दिश्येकमूलं पलाशं कुशस्तम्बं वा पलाशापचारे प्रदक्षिणमुदकुम्भेन त्रिः परिषिञ्चन्तं वाचयति। सुश्रवः सुश्रवा असि यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। यथा त्वं यज्ञस्य निधिपोऽस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासमिति ।१९। एतेन वापनादि परिदानान्तं व्रतादेशन व्याख्यातम् ।२०। इत्यनुपेतपूर्वस्य ।२१। अथोपेतपूर्वस्य ।२२। कृताकृतं केशवपनं मेधाजननं च ।२३। अनिरुक्तं परिदानम् ।२४। कालश्च ।२५। तत्सवितुर्वृणीमह इति सावित्रीम् ।२६। ख० २२।

यह मेधा जनन है। तीन दिशाएँ निन्दित होती हैं—दक्षिणा-प्राग्-दक्षिणा और प्रत्यग्दक्षिणा। अन्य सभी दिशाएँ अनिन्दित होती हैं। उस अनिन्दित दिशा में एक मूल पलाश अथवा पलाश के अभाव में कुशस्तम्ब को प्रदक्षिण जल के कुम्भ से तीन बार परिषेचन करते हुए ब्रह्मचारी को 'सुश्रव' इस मन्त्र को बँचवाता है। एक मूल का अर्थ शाखा रहित होता है। पूर्ण मन्त्र यह है—"सुश्रवः सुश्रवा असि यथा-त्वं सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौ श्रवसं कुरु। यथा त्वं देवानां यज्ञस्य निधियोऽस्येव महं मनुष्याणां वेदस्य निधियो भूयासंम्" इति ।१९। इसके द्वारा वापनादि परिदानान्त व्रतादेशन की व्याख्या कर दी गयी है। यहाँ पर वापनादि का ग्रहण अलङ्कारों की निवृत्ति के ही लिये है। परिदानान्त वचन उपरिनन्त्र की निवृत्ति के लिये है ।२०। 'इति'—यह उपनयन है। उत्तर की विवक्षा से यह आरम्भ किया जाता है ।२१। इसके अनन्तर उपेत पूर्व की विशेषता की व्याख्या करेंगे ।२२। कृताकृत

केशों का वपन और मेधा जनन है ।२३। परिदान अनिरुक्त है—यह नहीं होता है ।२४। और उदगयन आदि अनिरुक्त है ।२५। पूर्व में कथित सावित्री के स्थान में 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस सावित्री प्रयोग करना चाहिए । प्रायश्चित्तत्व होने से प्रनरुपनयन की प्राप्ति होने पर इस प्रकार से करना चाहिए ।२५-२६।

ऋत्विजो वृणीतेऽन्यूनानतिरिक्ताङ्गान्ये मातृतः पितृतश्चेति यथोक्तं पुरस्तात् ।१। यून ऋत्विजो वृणीत इत्येके ।२। ब्रह्माणमेव प्रथमं वृणीतेऽथ होतारमथाध्वर्युमथोद्गातारम् ।३। सर्वान्वा येऽहीनैकाहैर्याजयन्ति ।४। सदस्यं सप्तदशं कौषीतकिनः समामनन्ति स कर्मणामुपद्रष्टा भवतीति तदुक्तमृग्भ्यां यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्त इति ।५।

प्रमाण से और परिमाण से अन्यून अङ्गों वाले और अतिरिक्त अङ्गों वाले ऋत्विजों का संभजन भजन करता है । "मातृतः पितृतश्च"—इसमें कथित लक्षणों से युक्त उनको होना चाहिए । यहाँ पर प्रमाण से न तो अत्यन्त दीर्घ होवे और न अतिह्रस्व ही होवे । परिमाण से चार अँगुलियों वाले अथवा छः अँगुलियों वाले नहीं होते है ।१। अन्य विद्वान् कर्म समर्थता वाले ऋत्विजों को वरण करता है जोकि युवक हों पुनः ऋत्विक् का ग्रहण करना वरण की सामर्थ्य से जो ऋत्विक् नहीं है चमसाध्वर्यु प्रभृति गण उनको इस गुण की प्राप्ति होने पर उसकी निवृत्ति के ही लिये है ।२। यहाँ पर एवकार नियम के ही लिये है । सबसे प्रथम ब्रह्मा का ही वरण होता है । इसके अनन्तर होता–अध्वर्यु और उद्गाता का वरण होता है । इनके वरण में अनियत क्रम होता है—यह साधित हुआ है ।३। इस में 'अहीनैकाहैर्याजयन्ति'—यह वचन शमितृ की निवृत्ति के ही लिये है । सामान्य वरण करने के प्रश्न से ही यह प्राप्त होता है । अथवा सबको 'अहीनैकाहै' इससे यजन कराते हैं ।४। सद्स् का अर्थ सभा है उसमें रहने वाला सदस्य होता है । यहाँ पर सप्त-

दश का ग्रहण ऋत्विक् सधर्मा होता है—इसके ज्ञापन के ही लिये है। अथवा नियम के लिये है। सदस्य एक ही होता है। अन्य शास्त्र में अनेक सदस्य देखे गये हैं उनकी निवृत्ति के लिए है। और वह कर्मों का उपद्रष्टा होता है इस प्रकार से कौषीतकिन आचार्य मानते हैं। ऋचाओं के द्वारा यह अर्थ कहा गया है जिसको ऋत्विज बहुधा कल्पना किया करते हैं।५।

होतारमेव प्रथमं वृणीते ।६। अग्निर्मे होता स मे होता होतारं त्वाऽमुं वृण इति होतारम् ।७। चन्द्रमा मे ब्रह्मा स मे ब्रह्मा ब्रह्माणं त्वाऽमुं वृण इति ब्रह्माणम् ।८। आदित्यो मेऽध्वर्युरित्यध्वर्युम् । पर्जन्यो म उद्गातेत्युद्गातारम् । आपो मे होत्राशंसिन इति होत्रकान् । रश्मयो मे चमसाध्वर्यव इति चमसाध्वर्यून् । आकाशो मे सदस्य इति सदस्यम् । स वृतो जपेत् । महन्मेऽवोचो भर्गो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो यशो मेऽवोचः स्तोमं मेऽवोचः क्लृप्तिं मेऽवोचस्तृप्तिं मेऽवोचो भुक्तिं मेऽवोचः सर्वं मेऽवोच इति ।९। जपित्वाऽग्निष्टे होता स ते होता होताऽहं ते मानुष इति होता प्रतिजानीते ।१०। चन्द्रमास्ते ब्रह्मा स ते ब्रह्मा ।११।

यहाँ पर एवकार अवधारण के लिये है। प्रथम होता ही का वरण करता है ब्रह्मा का नहीं करते हैं। ऐसा होने पर पूर्वोक्ति से विरोध नहीं होता है क्योंकि जब चारों का वरण हो तो पहिले ब्रह्मा का वरण होता है और जब सबका वरण हो तो होता का प्रथम वरण होता है।६। इस मन्त्र से होता का वरण करे—"अग्निर्मे होता सभे हो ता हो तारंत्वाऽमुं (अमुक नामानम्) वृणे इस से होता का वरण करना चाहिए। अमुम्—इसके स्थान में होता का नाम लेना चाहिए। पुनः होता का ग्रहण होता के वरण में आम्नप्त मन्त्र उत्तर में अनुवर्तित होता है—यह ज्ञापन के लिये है।७। "चन्द्रमा मे ब्रह्मा समे ब्रह्मा ब्रह्माण त्वाऽमु वृणे"-

इस मन्त्र से ब्रह्मा का वरण करे ।८। आदित्यो मेऽध्वर्युः । इत्यादि मन्त्र से अध्वर्यु का और " पर्जन्यो मे उद्गाता इत्यादि मन्त्र के द्वारा उद्गाता का वरण करे। "आपोमे होत्राशंसिनः" इत्यादि मन्त्र से होतकों का वरण करे। "रश्मयो मे चमसाध्वर्यवः" इससे चमसाध्वर्युओं का वरण करना चाहिए। "आकाशो मे सदस्यः। इससे सदस्य का वरण करे वृत हुए उसे जप करना चाहिए—जाप का मन्त्र यह है—"मह-न्मेऽवोचौभर्गो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो यशोमेऽवोचः स्तोमं मेऽवोचः क्लृप्ति मेऽवोच स्तृप्तिं मेऽवोचोयुक्ति मेऽवोचः सर्वमेऽवोच" इति ।९। "जपित्वा" यह वचन इसीलिये है कि "तन्मामवतु तन्माविशतु" इस का भी जाप करना चाहिए। फिर 'अग्निष्टे होता सते होता होताऽहं ते मानुष" इति इसका होता प्रतिज्ञा करता है। अनित्य होने से ही "तन्मावतु" इत्यादि को यहाँ पर नहीं पढ़ा गया है ।१०। पुनः "चन्द्रमास्ते ब्रह्मा सते ब्रह्मा" इस मन्त्र का पाठ होता है। यह प्रति वचन का अनुवृत्ति मार्ग प्रदर्शित के ही लिये किया गया है ।११।

ब्रह्मा वमितरे यथादेशं तन्मामवतु तन्मा विशतु तन्मा जिन्वतु तेन भुक्षिषीयेति च याजयिष्यन् ।१२। न्यस्तमार्त्विज्यमकार्यम् ।१३। अहीनस्य नीचदक्षिणस्य ।१४। व्याधितस्याऽऽतुरस्य ।१५। यक्ष्मगृहीतस्य ।१६। अनुदेश्यभिशस्तस्य।१७।

जिस समय में अग्न्याधेय में चारों का वरण होता है तब वे याजयिता नहीं होते हैं। जहां पर सोमाङ्ग वरण होता है वहां पर याजयिता होते हैं। अतएव सोमाङ्ग वरण में ही महाजाप होता है और अग्न्याधेय में नहीं होता है। इसी से यह अनित्य है। याजन का मन्त्र यह है— "ब्रह्मा वमितरे यथादेशं तन्मान तु तन्मा विशतु तन्मा जिन्वतु तेनभुक्षिषीय" इति ।१२। भाज्य का लक्षण कहते है—ऋत्विकों के द्वारा विवाह से त्यक्त है और आर्त्विज्य अकार्य्य है ।१३। अल्प दक्षिणा वाले अहीनका आर्त्विज्य अकार्य है। अतएव जाना जाता है कि एकाह अल्पदक्षिणा वाले का भी करना चाहिए। और यह विशेष रूप से जाना जाता है

कि—'तस्माद्बहुदक्षिणेनैव यज्ञे दक्षिणा भवत्यत्य विकापि" अर्थात् इसी से कहते हैं कि यज्ञ में चाहे अल्प ही हो दक्षिणा देनी चाहिए ।१४। जो व्याधि ज्वरादि से गृहीत हो और शय्यागत आतुर हो तथा क्षय आदि भयानक रोग से ग्रस्त हो उसको नहीं करें। कुछ लोगों का मत है कि सदेणी के द्वारा अभिशस्त को न करे। अन्यों के मन में उसको न करे जो श्राद्ध में प्रतिपिद्ध हो ।१५-१७।

क्षिप्रयोनेरिति चैतेषाम् ।१८। सोमप्रवाकं परिपृच्छेत्को यज्ञः क ऋत्विजः का दक्षिणेति ।१९। कल्याणैः सह संप्रयोगः ।२०। न मांसमश्नीयुर्न स्त्रियमुपेयुरा क्रतोरप-वर्गात् ।२१। एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्वेति दक्षिणा-ग्नावाज्याहुतिं हुत्वा यथार्थं प्रव्रजेत् ।२२। एवमना-हिताग्निर्गृह्य इमामग्ने शरणि मीमृषो न इत्येतयर्चा ।२३। ख० २३ ।

और इनका मत है कि क्षिप्रयोनिका नहीं करे। क्षिप्रयोनि उसको कहते हैं जिसकी माता अपने भर्त्ता में अवस्थित नहीं होती है। नहीं करना चाहिये—इसका सर्वत्र सम्बन्ध करना चाहिए।१८। जो प्रथम यह निवेदन करता है कि तुझ को यह इसमें करना चाहिए वह सोम प्रवाक होता है उसको ही इस प्रकार से पूछता है।१९। कल्याण पक्ष वाले ऋत्विकों के साथ ही करना चाहिए। दक्षिणा भी कल्याणी होती हैं यदि होती हैं। वैसा ही होने पर करना चाहिए। अन्यथा न करे।२०। ऋत्वादि प्रभृति से द्वारा अपवर्ग से ये नियम होते हैं वरण प्रभृति-यह कल्प्यमान होने पर यदि मध्ययोपसद् में वरण होता है तब प्राक् अनि-यम की प्रसक्ति होगी मांसका अशन नहीं करें—स्त्री का उपासन नहीं करना चाहिए जब तक क्रतु का अप वर्ग होने।२१। क्रतु के अन्त में अपनी दक्षिणाग्नि में "एते नाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व" इस मन्त्र से आज्य की आहुतियों का हवन करना है। फिर यथार्थ का आचरण करना चाहिए। अनियम होता है—यही अर्थ है। ऋतु के समाप्त होने पर भी होम पर्यन्त नियम होते हैं। आज्याहुति-यह वचन तन्त्र की निवृत्ति के

लिये ही अभीष्ट होता है ।२२। इस सूत्र मे 'एतया'—इस वचन से जुहु-यात्' इसी अर्थ के लिये है। इस प्रकार से अनाहिताग्नि पुरुष गृह्याग्नि में "इमामाने शरणि मीमृषो न" इस ऋचा से लौकिक अग्नि में हवन करना चाहिए। मधुपर्क के प्रसङ्ग से यहां पर ऋत्विक् का वरण भी आम्नात कर दिया है ।२३।

ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् ।१। स्नातकायोप-स्थिताय ।२। राज्ञे च ।३। आचार्यश्वशुरपितृव्यमा तुलानां च ।४। दधनि मध्वानीय ।५। सर्पिर्वा मध्वलाभे ।६। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्को-गौरित्येतेषा त्रिस्त्रिरेकैकं वेदयन्ते ७।

ऋत्विजों का वरण करके मधु पर्क का आहरण करना चाहिए ।१। उपस्थित अर्थात् कृत समावर्तन स्नातक के लिये आहरण करना चाहिए ।२। और उपस्थित राजा के लिये भी मधुपर्क का आहरण करे ।३। आचार्यादिक का पूर्वों का असमास से जो निर्देश है वह अतुल्यत्व ज्ञापन के ही लिये है। और विवाहार्थी के लिये देवे। राजा के लिये तो प्रति-दिन समागत होने वाले के लिए देवे। एक वत्सर में उषित एवं समागत आचार्यदिक के प्रति अन्य शास्त्र में देखने से विशेष प्राप्त हुआ है ।४। दधि मे मधु का ओसेचन करके देवे ।५। यदि मधु का लाभ न हो तो उसका प्रतिनिधि सर्पिर घृताना को करे। इस वचन से तैलादि अन्य प्रति निधि नहीं होते है ।६। विष्टर आसन होता है। पाद्य के-अर्घ्य के और आचमन के लिये जल कहा गया है। एतेषाम्—इस वचन से यही ज्ञापित दिया जाता है कि इनका ही तीनवार निवेदन होवे और भोजन का न होवे। और भोजन भी देना चाहिए यह आगे बतलायेंगे। ऋत्विजों को मधुपर्क के दान मे दोही गतियाँ सम्भव होती है। पदार्थानुसमय और काण्डानुसमय। पदार्थानुसमय यथा—सबके लिये वर क्रम से विष्टर देकर इसके पश्चात् पाद्य और फिर अर्घ्य देवे। काण्डानुसमय यथा—विष्टर से आदि से लेकर गौ के निवेदन पर्यन्त समाप्त करके इसके पश्चात् अन्य का सब करे ।७।

अहं वर्ष्म सजातानां विद्युतामिव सूर्यः। इदं तमधितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासतीत्युदगग्रे विष्टर उपविशेदाक्रम्यवा ।८। पादौ प्रक्षालयीत दक्षिणमग्रे ब्राह्मणाय प्रयच्छेत् ।९। सव्यं शूद्राय ।१०। प्रक्षालितपादोऽर्घ्यमञ्जलिना प्रतिगृह्य ।११। अथाऽऽचमनीयेनाऽऽचामति—अमृतोपस्तरणमसीति ।१२। मधुपर्कमाह्रियमाणमीक्षेत मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति ।१३। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामीति तदञ्जलिना प्रतिगृह्य सव्ये पाणौ कृत्वा मधुवाता ऋतायत इति तृचेनावेक्ष्यानामिकया चाङ्गुष्ठेन च त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पुरस्तान्निमार्ष्टि ।१४।

इसके अनन्तर ग्रहीता के कर्म को कहते हैं—"अहं वर्ष्म सजातानां विद्युतामिव सूर्यः। इदं तमधितिष्ठामियोन्त कश्चाभिदासतीति"—इससे उत्तर हो विष्टर पर बैठ जाये अथवा पदों से आक्रमण करके बैठे। इन दोनों का यहां पर विकल्प है ।८। फिर पादों का प्रक्षालन करना चाहिए ब्राह्मण के लिये आगे दक्षिण को देना चाहिए ।९। शूद्र के लिये पहिले सव्य देवे पीछे दक्षिण को देवे। जब क्षत्रिय वैश्य दोनों प्रक्षालन करने वाले हों तो चाहे पहिले सव्य को देवे या दक्षिण को देवे-कोई दोष नहीं है। इस दशा में कोई नियम विशेष नहीं है ।१०। पाद प्रक्षालन जिसने करा लिया वह इस के अनन्तर अर्घ्य को ही ग्रहण करे अर्थात् अर्घ्य ग्रहण करना चाहिए। उसे अञ्जलि से लेवे। गन्ध माल्य आदि द्रव्यों से समन्वित जल को अर्घ्य लोक में कहा जाता है ।११। "अमृतो परतरण मसि" इस मन्त्र से आचमनीय ग्रहण करे अर्थात् उदक को पीता है। यहाँ पर शौच के लिये आचमन नहीं होता है—ऐसा कहते है किन्तु यह कथन युक्त नहीं है क्यों कि साम में अनुच्छिष्ट के विधान से जहां पर आचमन प्रतिषेध नहीं करता है वहाँ पर शौच के लिये आचमन होता है—यह गम्य मान होता है ।१२।

"मित्रस्य त्वाचक्षुषा प्रतीक्षे" इति इस मंत्रका उच्चारण करते हुए मधुपर्क को जो ला रहा है उसे देखना चाहिए।१३। फिर "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या प्रतिगृह्णामि" इस मन्त्र से उसकी अञ्जलि से प्रतिग्रहण करके सव्य हाथ में करके "मधुवाता ऋतायते" इस ऋचा से देखकर अनामिक से और अङ्गुष्ठ से तीन बार प्रदक्षिण में आलोड़न करके "वस वो त्वा गायत्रेण छन्द सा भक्षयन्तु" इस मन्त्र से आगे निमार्जन करता है। अर्थात् अङ्गुलि मत लेप का अपनयन करता है।१४।

रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति दक्षिणत आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पश्चाद् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्वित्युतरतो भूतेभ्यस्त्वेति मध्यात्रिरुद्गृह्य।१५। विराजो दोहोऽसीति प्रथमं प्राश्नीयाद् विराजो दोमहृशीयेति द्वितीय मयि दोहः पद्यायै विराज इति तृतीयम्।१६। न सर्वम्।१७। न तृप्तिं गगच्छेत्।१८। ब्राह्मणायोदङ्ङुच्छिष्टं प्रयच्छेदलाभेऽप्सु।१९।

"रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु" इति इस मन्त्र से दक्षिण भाग से "आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु" इससे पश्चिम में "विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्तु" इससे उत्तर में "भूतेभ्यस्त्वा" इति-इससे मध्य से उर्ध्व को तीन बार उत्क्षिप्त करता है।१५। इसके पश्चात् भूमि में पात्र को रखकर "विराजो दो होऽसि" इससे प्रथम प्राशन करना चाहिए। "विराजो दो महृशीय" इस से दूसरा प्राशन करे। "मयि दोह् पद्यायै विराज" इससे तीसरा करे।१६। सब का प्राशन नहीं करना चाहिए।१७। भोजन इतना न करे जिससे तृप्ति हो जाये।१८। ब्राह्मण के लिये उद्धृत से उच्छिष्ट और अवशिष्ट हो उसको उदङ् मुख होकर मधुपर्क देना चाहिए। ब्राह्मण के लाभ न होने पर जल में निषिञ्चित कर देवे।१९।

सर्वं वा ।२०। सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतामिति द्वितीयम् ।२२। हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत इति जपित्वोंकुरुतेयि कारयिष्यन् ।२४। माता रुद्राणां दुहिता वसूनामिति जपित्वोमुत्सृजतेत्युन्स्रक्ष्यन् ।२५। नामांसो मधुपर्को भवति भवति ।२६। ख० २४ ।

अथवा सबका प्राशन कर लेवे ।२०। इसके अनन्तर आचमनीय से 'अमृतापिधानमसि" इस मन्त्र से आचमन करता है ।२१। "सत्य यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्" इस मन्त्र से दूसरा आचमन करना चाहिए ।२२। शौच के लिये आचमन करके कर्म के अङ्ग स्वरूप आचमन को करना चाहिए इससे आचमन में 'दूसरा जल होना चाहिए ।२३। "हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हतः" इस मन्त्र का जप करके "ॐ कुरुत"—यह बोलना चाहिए ।२४। 'माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम्" इस का जाप करके उत्सृजन करना चाहिए यदि उत्सृजन करने वाला हो रहा हो ।२५। मधुपर्क का अङ्ग भोजन मांस रहित होवे इस अभ्युपाय से यहाँ भोजन का भी विधान किया है ।२६।

इति श्री आश्वलायनगृह्यसूत्रेप्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

द्वितीयोऽध्यायः

ॐ श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म ।१। अक्षतसक्तूनां नव कलश पूरयित्वा दर्वीं च बलिहरणीं नवे शिक्ये निदधाति ।२। अक्षतधानाः कृत्वा सर्पिषाऽर्धा अनक्ति ।३।अस्तमिते स्थालीपाक श्रपयित्वैककपाल च पुरोडाशमग्ने नय सुपथा राये अस्मानिति चतसृभिः प्रत्यृच हुत्वा पाणिनैककपालमच्युताय भौमाय स्वाहेति ।४। अविप्लुतः स्यादाविःपृष्ठो वा ।५। मा नो अग्नेऽवसृजो अघायेत्येनमाशयेनाभिजुहोति ।६। शं नो भवन्तु वाजिनो हवेष्वित्यक्ता धाना अञ्जलिना ।७।

श्रावणी पौर्णमासी में श्रवण कर्म करना चाहिए। जो श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है वही श्रावणी है। यदि पौर्णमासी श्रवण से युक्त न हो तो भी कर्म करना ही चाहिए। इस कर्म का नाम ही 'श्रवणा कर्म' है ।१। यवों से बनाये हुए सतुआ से नूतन कलश को पूरित करके मृग के आकृति वाली वैकङ्कनी बलि के हरण की जाने वाली बलिहारिणी दर्वी—इ दोनों को नवीन शिक्य में रखता है ।२। इसके अनन्तर श्रवणा कर्म बताते हैं यवों से धान करके उसे असंस्कृत घृत से अक्त करे और आधे धानों को दूसरे पात्र में करके अन्य आधे धानों को अक्त नहीं करना है। इतना ही कर्त्तव्य है ।३। अस्तमित वेला में स्थालीपाक का श्रपणा करके और एक कपाल पुरोडश को अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्" इन चार कपालको 'अच्युताय भौयाय स्वाहा' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए ।४। अविप्लुत अथवा आविः पृष्ठ होना चाहिए ।५। "मा नो अग्ने ह्वसजो अघाय" इस मन्त्र से इस पुरोडाश को आशय से हवन

करता है। जिस गव्य से पुरोडाश शामित होता है वह आशय होता है ? ।६। "शंनो भवन्तु वाजिनो हवेषु" इससे अक्त किये हुए धानों को अञ्जलि से हवन करता है। दोनों हाथों के संघात को अञ्जलि कहते हैं।७।

अमात्येभ्य इतरा दद्यात् ।८। कलशात्सक्तूनां दर्वीं पूरयित्वा प्रागुपनिष्क्रम्य शुचौ देशेऽपोऽवनिनीय सर्पदेवजनेभ्यः स्वाहेति हुत्वा नमस्करोति। ये सर्पाः पार्थिवा य आन्तरिक्ष्या ये दिव्या ये दिश्यास्तेभ्य इमं बलिमाहार्षं तेभ्य इम बलिमुपाकरोमीति ।६। प्रदक्षिण परीत्य पश्चाद्बलेरुपविश्य सर्पोऽसि सर्पतां सर्पाणामधिपतिरस्यन्नेन मनुष्यांस्त्रायसेऽपूपेन सर्पान्यज्ञेन देवांस्त्वयि मा सन्त त्वयि सन्तः सर्पा मा हिंसिषुर्ध्रुवां ते परिददामीति ।१०। ध्रुवामु ते ध्रुवामु त इत्यमात्याननुपूर्वम् ।११।

इतर जो धान अक्त किये हुए नहीं हैं उन्हें पुत्रादिक को दे देना चाहिए। इसके उपरान्त धानों से चरुका ग्रहण करके स्विष्टकृत हवन करके होम शेष की समाप्त कर देना चाहिए।८। जो कलश और दर्वी नवशिक्य में स्थापित किये हुए है। वहा कलश से ग्रहण करके सत्तुओं से दर्वी को पूरित करके उसे लेकर घर से निकलकर समीप देश में प्राची में शुचि देश में जल का अभिसिंचन करके मन्त्र से सत्तु का हवन करना है—"सर्पदेव जलेभ्यः स्वाहाः" यह मन्त्र है। इस हुवन करके नमस्कार करता है—"ये सर्पा पार्थिवाय आन्तरिक्षया ये दिव्या ये दिश्यास्तेभ्य इमं बलिमहार्षं तेभ्य इमं बलिमुपाकरोमि" यह मन्त्र है।६।बलि के प्रदक्षिण जाकर इसके पीछे उपविष्ट होकर मन्त्र को बोलता है।मन्त्र–सर्पोऽसि सर्पता सर्पाणामधिपति रस्यन्नेन मनुष्यांस्त्रासेऽपूयेन सर्पान्यज्ञेन देवांस्त्वयि मा सन्तं त्वमि सन्तः सर्पा मा हिंसिषु ध्रुवां ते परिददामीति"इति। यह है। यहां पर बलि का ग्रहण करना पश्चात् शक्ति का काल वाचित्व की शङ्का की निवृत्ति के लिये ही है। यह मन्त्र सशा वाला मन्त्र है। जैसा कहा गया है—इदं कार्य-

मनेनेति न क्वचिद्दृश्यते विधिः । लिङ्गादेवे दमर्थंत्र येषां ते मन्त्र संज्ञकाः'' इति । इसी से उपांशु होता है । कहा गया है कि—गृह्यकर्म में सभी जगह जय-अनुमन्त्रण-अभिमन्त्रण-उपस्थान मन्त्रकरण मन्त्र उपांशु ही प्रयुक्त करने चाहिए । ०। उत्तर में हुए परिददामि-यह शब्द यहां पर भी सम्बन्ध करता है । यहा वीप्साकाङ्क्षवचन प्रति अमात्य के परिदान का अभ्यास करना चाहिए सब के नामों का निर्देशन करके एक बार ही कहना चाहिए—इसीलिये है । पहिले पुत्रों मे निवेदन करता है 'ध्रुवं देवदत्त' ते परिददामि । इसके बाद में अप्रमत्ता दुहिताओं को निवेदन करता है—''ध्रुवं सावित्री ते परिददामि' फिर भार्या को निवेदन करता है—ध्रुव सत्यवतीं ते परिददामि'' इति ।११।

ध्रुव मां ते परिददामीत्यात्मानमन्ततः ।१२। नैनमन्तरा व्यवेयुरा परिदानात् ।१३। सर्पदेवजनेभ्यः स्वाहेति सायं प्रातर्बलिं हरेदा प्रत्यवरोहणात् ।१४। प्रसंख्याय हैके तावतो बलीस्तदहरेवपोहरन्ति ।१५। ख० १।

अन्त में ''ध्रुव मां ते परिददामि'' इससे आत्मा को निवेदन करता है । उपदेश से ही 'अन्ततः'—यह सिद्ध होने पर भी फिर यह वचन पूर्व से सम्बन्ध के ही लिये आया है । इससे 'परिददामि'—यह शब्द सिद्ध है ।१२। इस प्रकार से परिदान पर्यन्त कोई भी आत्मा को बीच में व्यवधान नहीं करे ।१३। प्रत्यवरोहण तक ''सर्प देव जनेभ्यः स्वाहा'' इस मन्त्र से सायङ्काल और प्रातः काल में बलि का आहरण करना चाहिए । जिस दिन में भी प्रत्यवरोहण करता है तब तक आहरण करे ।१४। कतिपय विद्वान् ऐसा मानते हैं कि श्रावणी प्रतिपदा से आरम्भ करके जिस दिन मे प्रत्यवरोहण करता है—मार्गशीर्ष की चतुर्दशी में अथवा पौर्णमासी में उससे पीछे के दिनों में क्षण और वृद्धि से जितने भी परिगणना से सायं और प्रातः हों उतने ही बलि उस दिन ही देवे ''ह''—यह शब्द अभिमत तत्व की ज्ञाप्ति के ही लिये है ।१५।

आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म ।१। निवेशनमलंकृत्य स्नाताः शुचिवाससः पशुपतये स्थालीपाकं निरुप्य जुहुयुः पशु-

पतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहेति ।२। पृषातकमञ्जलिना जुहुयादूनं मे पूर्यतां पूर्ण मे गोपसदत्पृषातकाय स्वाहेति।३। सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरिन्द्राग्निभ्यांस्वाहा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहेत्याहिताग्नेराग्रयणस्थालीप कः ।४। अनाहिताग्नेरपि शालाग्नौ ।५। ख० २ ।

आश्वयुजी से आश्वयुजी कर्म होता है अश्वयुगों से युक्त आश्वयुजी होती है । पौर्णमासी यहां पर ग्रहण करे ।१। अपने रहने के स्थान अर्थात् घर को अलङ्कृत करना चाहिए । अर्थात् प्रत्य वरोहण की जो विधि है उससे भूषित करे । फिर सब गृह्य स्नान करते हैं । यहाँ पर स्नान का वचन विशेष रूप से स्नान के ही लिये है । क्योंकि शौचार्थ स्नान तो स्मृतियों से ही प्राप्त होता है । शुचि वस्त्र धारी होवें । शुक्ल वस्त्र से तात्पर्य होता है । फिर "पशुपतये शिवाय शङ्कराय पृषातकाय स्वाहा" इस मन्त्र से स्थालीपाक का निरूपण का हवन करे । यहां पर "जुहुयुः"— यह बहु वचन है यह यह बतलाता है कि पुत्रादि सब गृह्य हैं वे सब उसका अन्वारम्भ करें ।२। "ऊनं मे पूर्यतां पूर्णं मे गोपसहत्पृषातकाय स्वाहा" इस मन्त्र से अञ्जलि से पृषा तक का हवन करना चाहिए । पय के आज्य में निापक्त होने पर यह त्रय पृषा तक होता है । धाना की तरह उसका संस्कार होता है । सर्वत्र द्रव द्रव्य का स्रुव से अवदान होता है ।३। इसके अनन्तर आग्रहायण कर्म कहा जाता है कोई विशेषता न होने के कारण से श्रवण कर्म की ही भाँति अहिताग्नि का भी यह सिद्ध होता है । निम्नाङ्कित ये तीन मन्त्र है—"सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरिन्द्राग्निभ्यां स्वाहा"—"सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा"—"सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्द्यावा पृथिभ्यां स्वाहा" । यहां पर अहिताग्नि का ग्रहण किसलिये हुआ है—इस विषय में बोलते हैं । कि आहिताग्नि का आग्रहायनान्तर का विवित होने से यह आग्रहायण

प्राप्त नहीं होता है इसी कारण से उसका यहां पर ग्रहण होता है। और इसका यह त्रेता मे होता है। यहां पर तो इसका विधान पाक यज्ञ के धर्म की प्राप्ति के लिए है।४। जो अनाहिताग्नि होता है उसका भी आग्रहायण करना चाहिए और वह शालाग्नि मे होता है। यहां पर शालाग्नि का ग्रहण नियम के लिये ही किया गया है कि अनाहिताग्नि का ही औपासन है। इससे अहिताग्नि का त्रेता में सिद्ध होता है। स्विष्टकृत का हवन करके चरु के एक देश का ग्रहण करे और सव्यमाणि में करके दाहिने हाथ से अभिमर्शण करना चाहिए। "प्रजापतये त्वा"—ततः "मद्रान्नः श्रेय"। इन मन्त्रों से प्राशन करके फिर आचमन करे और वही पर समासीन होता हुआ नाभि का आलभन करना चाहिए। पत्नी तो मध्यम हविशेष को चुपचाप प्राशन किया करती है। फिर होम शेष का समापन कर देना चाहिए यह प्राशन आग्रहायण द्वय मे भी होता है सौकर्म के के ही लिये यहां पर लिख दिया गया है।५।

मार्गशीर्ष्यां प्रत्यवरोहणं चतुर्दश्याम् ।१। पौर्णमास्यां वा ।२। निवेशन पुनर्नवीकृत्य लेपनस्तरणोपस्तरणं रस्तमिते पायसस्य जुहुयुरपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारुणीरिमाः सर्वाश्च राजबान्धवीः स्वाहा। न वै श्वेतश्चाभ्यागारेऽहिर्जघान किंचन।श्वेताय वैदार्वाय नमः स्वाहेति।३। नात्र सौविष्टकृत्।४। अभयं नः प्राजापत्येभ्यो भूयादित्याग्निमीक्षमाणो जपति शिवो नः सुमना भवेति। हेमन्तं मनसा ध्यायात्।५। पश्चादग्नेः स्वस्तरः स्वास्तीर्णस्तस्मिन्नुपविश्य स्योना पृथिवी भवेति जपित्वा संविशेत्सामात्यः प्राक्शिरा उदङ्मुखः।६।

मृगशीर्ष से युक्त मार्गशीर्षी होती है। यहां पर समीप में सप्तमी विभक्ति होती है। इससे इसका यह अर्थ होता है कि पौर्णमासी के समीप मे जो चतुर्दशी है उसमें प्रत्यवरोहण नाम वाला कर्म करना चाहिए।१। अथवा मार्गशीर्षी पौर्णमासी में करे। यहां पर ऐसा विकल्प है कि उस

मास मे अमावस्या में–चतुर्दशी में अथवा पौर्णमासी में करे। एक बार ही करना चाहिए। पौर्णमासी के साहचर्य से शुक्ल पक्ष में हां करना चाहिए ।२। निवेशन को पुनः कुड्यादि के लेपन द्वारा नवीकरण करे। स्तरण का अर्थ है उनका आच्छादन करे और उपस्तरण का अर्थ होता है भूमिका समीकरण। अस्तमित वेला में पायस के एक देश का हवन करे। ये दो मन्त्र हवन करने के हैं—"सप्तचवारुणीरिमाः सर्वाश्च राज बान्धवीः स्वाहा"—"न वैश्वेत श्वाप्यागारेऽहिर्जघान किंचन। श्वेताय वैदार्वाय नमः स्वाहा'। अय श्वेतपदा पूर्व और अपर के द्वारा त्याग देवे।३। इस कर्म में जो स्विष्टकृत् है वह नहीं करना चाहिए। यहां पर असति—इसके ग्रहण में प्रधानान्तर के उच्यमान होने से प्रधान्तर स्विष्टकृत है वह नहीं करना चाहिए। और अन्त में तो होता ही है। तात्पर्य यही है कि अन्यत्र कर्म के अन्त में होता है।४। अर्थ के ध्यान की मुख्यता होने पर भी शब्द का ही ध्यान करना चाहिये—इसीलिए मन का ग्रहण होता है। "अभयं नः प्रजापत्येभ्यो भूयात्" इस मन्त्र से अग्नि का समीक्षण करता हुआ जाप करता है। मन्त्र यह है—"शिवोनः सुपनाभव" इति। हेमन्त का मन से ध्यान करना चाहिए।५।

यथावकाशमितरे ।७। ज्यायाञ्ज्यायान्वाऽनन्तरः ।८। मन्त्रविदो मन्त्राञ्जपेयुः ।९। संहाय अतो देवा अवन्तु न इति त्रिः ।१०। एतां दक्षिणामुखाः प्रत्यङ्मुखा उदङ्मुखाश्चतुर्थम् ।११। संहाय सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपित्वाऽन्नं संस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत ।१२। ख० ३।

जिस स्तर पर स्वयं शयन करता है वह स्वस्तर कहा जाया करता है। वह स्वास्तीर्ण होता है। उसका आस्तरण स्वयं ही करना चाहिए। उस पर उपविष्ट होकर "स्योना पृथिवी भव"—इस मन्त्र का जाप करके उस पर पुत्रादिक के सहित पूर्व की ओर शिर करके उदङ् मुख होकर संवेशन करना चाहिए।६। इतर लोग अमात्यगम्य पुत्रादिक अवकाश के

अनुसार ही पूर्व को शिर करके उत्तर की ओर मुख वाले होते हुए संवेशन करें। अर्थात् शयन करना चाहिए ।७। जो-जो भी जिस-जिस मे अधिक बड़ा हो वही-वह गृही के अनन्तर शयन करे अथवा जैसा भी अवकाश हो उसके अनुसार करे ।८। जो गृह्य मन्त्रों के ज्ञाता होवें वे 'स्योना पृथिवी'' यहाँ से आरम्भ कर के स्वस्त्ययन पर्यन्त मन्त्रों का जप करें ।९। उठकर तीन बार "अतोदेवा अवन्तुन" इस मन्त्र को बोलना चाहिए ।१०। 'एताम्'–इसका वचन ग्रहण योग विभाग के लिये ही होता है। अन्यथा तीनों दिशाओं में मुख करके बोलना चाहिए अर्थात् प्राङ् मुख प्रत्यङ् मुख और उदङ् मुख होकर बोलें। चौथी बार तीनों दिशाओं में मुख वाले होकर एक ही बार बोलें ।११। सङ्कुत होकर आदित्य देव के उदित होने पर सौर्य्य स्वस्त्ययनों का जाप करें। 'उदुत्यं जात वेदसम्'—येनो, 'चित्रं देवानाम्'—'नमोमित्रस्य''—इन सबकी सौर्य संज्ञा की गयी है। जो स्वस्ति शब्द वाली है वे स्वस्त्ययन है। 'आनो भद्राः'—'स्वस्तिनो मिमीताम्'—'परावतो ये दिधिपन्त आप्यम्'—ये सब स्वस्त्ययन होते है। फिर अन्न का संस्कार करके ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वस्त्ययन का वाचन करना चाहिए ।१२।

हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः ।१। एकस्यां वा ।२। पूर्वेद्यु: पितृभ्यो दद्यात् ।३। ओदनं कृसरं पायसम् ।४। चतुः शरावस्य वाऽपाम् ।५।

हेमन्त और शिशिर ये दोनों ऋतु हैं। यहां पर 'अष्टका' यह कर्म का नाम है। अपर पक्ष का अर्थ कृष्ण पक्ष है। मार्गशीर्षादि चार मासों में जो चार कृष्ण पक्ष होते हैं उनमें जो चार अष्टमियां होती है वे चार अष्टका करनी चाहिए। इन दोनों ऋतुओं के मध्य में यदि मलमास (अधिक मास) आ जाता है तो उस मास में नहीं करना चाहिए—इसी लिये चारों का ग्रहण किया है। अन्य शास्त्र में तीन ही अष्टकाओं का विधान देखने से यह लिखा गया है कि चारों ही अष्टका करनी चाहिए ।१। यहां पर यह भी विकल्प है कि एक ही अष्टमी में चारों अष्टका करे अथवा चारों अष्टमियों में करे। दोनो ही पक्ष यहां पर विकल्प से वर्णित

किये गये है ।२। इस सूत्र में पितृ शब्द से पिता-पितामह और प्रपितामह कहे गये है। "पितृभ्यों दद्यात्"—इस प्रेरणा में पिण्ड दान देखा गया है। अतएव प्रेरणा की सामर्थ्य से यहां भी परिग्रहण किया जाता है। ब्राह्मणों का भोजन नहीं करना चाहिए–यह बतायेंगे। इससे पहिले दिन पितृ गण के लिए पिण्डों को और भोजन को देना चाहिए। पिण्ड दान में इति कर्त्तव्यता की अपेक्षा है। प्रकरणान्तर में विहित भी पिण्डपितृ यज्ञ कल्प परिग्रहीत किया जाता है। यहां पर भोजन पात्रंण के ही समान होता है क्योंकि भोजन में भी तन्त्र की अपेक्षित माना गया है।३। अब उसकी विशेषता बतलायी जाती है—उस पितृ पिण्ड यज्ञ कल्प में नित्य अग्नि में चरु का श्रपण होता है। उसके स्थान में ये तीन हैं जिनको नित्य अग्नि में श्रपण करना चाहिए। औदन तो प्रसिद्ध है। जो दूध से भृत होता है वह पायस होता है, औदन जो तिलों से मिश्रित होता है उसे कृसर कहा गया है। ये ही तीन पदार्थ हैं।४। चार सकोरों में जितना आवे उसके परिणाम वाले धान्य को पीसकर अपूप बनाकर श्रमण करना चाहिए। बहुत से साधनों के द्वारा साध्य होने से और अपूयों को स्त्रियों के द्वारा बनाने से नित्य अग्नि में श्रपण सम्भव नहीं होता है अतएव घर में सिद्धों का ही उपादान चाहते हैं।५।

उदीरतामवर उत्परास इत्यष्टाभिर्हुत्वा यावतीभिर्वा कामयीत ।६। अथ श्वोभूतेऽष्टकाः पशुना स्थालीपाकेन च ।७। अप्यनडुहो यवसमाहरेत् ।८। अग्निना वा कक्षमुपोषेत् ।९। एषा मेऽष्टकेति ।१०। न त्वेवानष्टकः स्यात् ।११। तां हैके वैश्वदेवीं ब्रुवत आग्नेयीमेके सौर्यमेके प्राजापत्यामेके रात्रिदेवतामेके नक्षत्रदेवतामेक ऋतुदेवतामेके पितृदेवतामेके पशुदेवतामेके ।१२।

जितनी अथवा अधिक पितृ लिङ्ग काण्डो से कामना करे उतनी ही से हवन करना चाहिए। हवन का मन्त्र यह है—"उदीरतामवर उत्प-

रास" इन आठों से अथवा चौदहों से हुवन करके कर्म पूर्ण करे। ब्राह्मणों को अन्नदानादि शेष निवेदनान्त को पार्वण की भाँति करके मुक्तवान् होने पर पिण्ड पितृ यज्ञ व्रत निनयनादि पात्रोत्सर्ग के अन्त तक करके अनन्तर श्राद्ध शेष को समाप्त करना चाहिए।६। श्वोभूतं अष्टमी में जो अष्टका करना चाहिए उनको पशु से और स्थाली पाक से करना चाहिए। अन्य शास्त्र में स्पष्ट बन्धन है "पशु के अभाव मे स्थाली पाक प्रवृत्त होता है।७। अपिशब्द विकल्प के ही लिये है—पशु के अभाव में स्थाली पाक और इसके भी अभाव मे अनडुहा को यवस देना चाहिए। शकट के वाहन करने में जो समर्थ बैल होता है उसे अनड्वान् कहते हे।८। उपर्युक्त तीनों के अभाव होने पर अथवा अग्नि के द्वारा कक्ष का दाह करना चाहिए।९। यवस के दान में और कक्ष के दहन में यह मेरी अष्टका है—ऐसा मन से ध्यान करना चाहिए।१०। इसका यही प्रयोजन है कि चार पक्ष बताये गये है उनमें पूर्व के लाभ न होने पर उत्तरोत्तर प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार से अष्टका करनी चाहिए। अनष्टक नही होना चाहिए।११। ये आठ देयताओं के विकल्प है। वहा पर जब अग्नेयी अष्टका की जाती है तब वपा पशु स्थाली पाक के तीन अवदानों को "अग्नेय स्वाहा" इस मन्त्र से हुवन करना चाहिए। केवल स्थाली पाक को भी इसी से हुवन करे। इसी प्रकार से अन्यों में भी जान लेना चाहिए। वहा पर अनाद्य पक्षों के अयुक्त होने से शापन के ही लिये आद्य मे 'ह' शब्द पढ़ा है। यहां पर सर्वदा मन्त्रों के द्वारा ही शेम करना चाहिए और नामधेय से कभी नहीं करे—यह सिद्ध हो गया कुछ लोग उसको वैश्वदेवी बोलते है—कुछ आग्नेयी, अतिपय सौर्य्या—अन्य प्राजापत्या—कुछ रात्रि देवता, अन्य नक्षत्र देवता—कुछ पितृ देवता और कुछ पशु देवता बोलें। यह तात्पर्य है कि जो-जो मन्त्रो में लिङ्गिनी हो वही-वही देवता होता है। अग्नि आदि एक-एक ही देवता नहीं होता है।१२।

पशुकल्पेन पशुं सञ्ज्ञप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्जं वपामुत्खिद्य जुहुयात्। वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहिताः पराके मेदसः कुल्या उपैनान्त्स्रवन्तु सत्या एता

आशिषः सन्तु सर्वाः स्वाहेति ।१३। अथावदानानां स्थालीपाकस्य च–अग्ने नय सुपथा राये अस्मानिति द्वे ग्रीष्मो हेमन्त ऋतवः शिवा नो वर्षाः शिवा अभया शरन्नः । संवत्सरोऽधिपतिः प्राणदो नोऽह्नोरात्रे कृणुतां दीर्घमायुः स्वाहा । शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभयं नो अस्तु । शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिपान्तु सर्वतः स्वाहा । आपो मरीचीः प्रवहन्तु नो धियो धाता समुद्रो वहन्तु पापम् । भूतं भविष्यदभयं विश्वमस्तु मे ब्रह्माऽधिगुप्तः स्वाराक्षराणि स्वाहा । विश्व आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतः सदन्तु । ऊर्जं प्रजाममृतं पिन्वमानः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु स्वाहा । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः ।१४। सौविष्टकृत्यष्टमी ।१५। ब्राह्मणान्भोजयेदित्युक्तम् ।१६। ख० ४ ।

इस सूत्र में 'पशु कल्पेन'—यह वचन प्रोक्षण का प्रतिषेध है। पशुकल्पस्थ प्रोक्षण का ही प्रतिषेध होता है पश्वङ्गभूत स्थाली पाक प्रोक्षण का नहीं है। "संज्ञप्य" यह अयमनु वाद है। प्रोक्षणो या करण को छोड़ कर वपा को उत्खिन्न करके वपा का हवन करे। मन्त्र—"वह वपां जात वेद पितृभ्य यत्रैशन्वेत्थ निहिता परा के भेवसः कुल्या उपैनाग्स्स्रवन्तु सत्या एता आशिषः सन्तु सर्वाः स्वाहा" यह है ।१३। इसके अनन्तर अवदानों का और स्थालीपाक से ये सात मन्त्र होते हैं—"अग्ने नय सुपथाराये अस्मानिति द्वे । ग्रीष्मो हेमन्त ऋतवः शिवानो वर्षाः शिवा अभया शरन्नः । सम्वत्सरोऽधिपतिः प्राण दोनोऽह्नोरात्रे कृणुतां दीघमायुः स्वाहा"। "शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं द्यौर्नो देव्यभयं नो अस्तु। शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिपान्तु सर्वतः स्वाहा"—"आपो मरीचीः प्रवहन्तु नो धियो धाता समुद्रो वहन्तु पापम् । भूतं भविष्यदभयं विश्वमस्तु ने ब्रह्माऽधि गुप्तः स्वाराक्षराणि स्वाहा"—"विश्व आदित्या वसवश्चदेवा रुद्रा गोप्तारो मरुतः सदन्तुः ऊर्जं प्रजाममृतं पिन्वमानः प्रजा-

पतिर्मयि परमेष्ठी दधातु स्वाहा''—''प्रजापते न त्वेदतान्यन्यः'' ।१४। सौविष्टकृती पञ्चदशी होती है उसके सह पक्ष में अष्टमी होती है । सर्वत्र पृथक् होम होने पर स्विष्टकृत भी पृथक् ही करना चाहिए ।१५। ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वस्त्ययन वचवाना चाहिए—यह जो कहा है उसे यहां पर करे और श्राद्ध शेष समाप्त करावे । इति शब्द यहाँ पर भोजन का परामर्शी है । यह अष्टमी में भोजन श्राद्ध है—यह उपदेश अन्य शास्त्र में दिखलाई देता है । इससे यह श्राद्ध है—यह सिद्ध है ।१६।

अपरेद्यु रन्वष्टक्यम् ।१। तस्यैव मांसस्य प्रकल्प्य दक्षिणाप्रवणेऽग्निमुपसमाधाय परिश्रित्योत्तरतः परिश्रितस्य द्वारं कृत्वा समूलं बर्हिस्त्रिरपसलैर (लव्य) विधून्वन्परिस्तीर्य हवींष्यासादयेदोदनं कृसरं पायसं दधि मन्थान्मधुमन्थांश्च ।२। पिण्डपितृयज्ञकल्पेन ।३। हुत्वा मधुमन्थवर्जं पितृभ्यो दद्यात् ।४। स्त्रीभ्यश्च सुरा चाऽऽचाममित्यधिकम् ।५। कर्षूंव्वेके द्वयोः षट्सु वा ।६। पूर्वासु पितृभ्यो दद्यात् ।७। अपरासु स्त्रीभ्यः ।८।

दूसरे दिन मे अर्थात् नवमी में अन्वष्टका नाम वाला कर्म करना चाहिए ।१। जो अष्टमी में पशु कृत हुआ उसी का मांस ब्राह्मणों के भोजन के लिये प्रकल्पित करके अर्थात् संस्कार करे । दक्षिण प्रवण में अग्नि का उप समाधान करके अग्नि तिरस्करण्यादि से परिश्रित करके उत्तर की ओर द्वार करता है । मूल के सहित बर्हि ग्रहण करके तीन बार अपसव्य में अकम्पित होते हुए परिस्तरण करे और हवियों का आसादन करना चाहिए—ये पाँच हैं—ओदन, कृसर, पायस, दधि और मन्थान्मधुमन्था । जो सक्तु दधिमिश्रित होते हैं वे दधिमन्थ कहे गए हैं और मधुमिश्रित मधुमन्थ कहे जाते हैं ।२। यह कर्म भी पिण्ड पितृयज्ञ के ही विधान से करना चाहिए ।३। मधुमन्थ रहित को पितृगण के लिए हवन करके देना चाहिए ।४। यहाँ पर जो माता-पितामही और प्रपितामही ये हैं उनके लिए पिण्ड देवे । यहाँ पर ओदन आदि से सुरा आचाम अधिक

होता है लिखा है—"ओदनाग्र यवं प्राहुराचामं निमहीपिणः । गौडी माध्वीच पैष्टी च सुरातु त्रिविधा स्मृता" । अर्थात् ओदन से आगे होने वाले को मनीषीगण आचाम कहते है और सुरागौड़ी-माध्वी और पैष्टी तीन प्रकार की होती है ।५। कर्पुओं में एक की इच्छा करते है । जनपद् है तब परि मगुल है 'द्वयोः'—इस वचन से कर्म्मों यह एक शेषली-क्य है । पूर्वों कर्पुओं में पितृगण के लिए देना चाहिए ।७। और अपराओं में स्त्रियों को देवे । पितृगणों में और स्त्रियों में पृथक् २ नवावट अयुन ब्राह्मण होते है ।८।

एतेन माध्यावर्षं प्रोष्टपद्या अपरपक्षे । । मासि मासि चैवं पितृभ्योऽयुक्षु प्रतिष्ठापयेत् ।१०। नवावरान्भोजयेत् ।११। अयुजो वा ।१२। युग्मान्वृद्धिपूर्तेषु ।१३। अयुग्मानितरेषु ।१४। प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थः ।१५। ग्व० ५ ।

इससे अर्थात् पूर्वेद्युः प्रभृति कृत्स्न कर्म का अति देश होता है । प्रोष्ठपदी के समीप में जो अपर पक्ष होता है वहाँ पर अष्टमी में माध्या वर्ष नाम वाला कर्म करना चाहिए । यहाँ पर भी तीन दिनों में ही करना चाहिए ।६। 'एवम्'—इति वचनं अकृत्स्न उपदेश के लिए ही है । पितृभ्यः इस वचन से मातृ की निवृत्ति होती है । प्रतिष्ठापयेत् का अर्थ करना चाहिए होता है । इस प्रकार से प्रति मास में- अपर पक्ष में अयुग्मा तिथियों में अन्वष्टक्य की ही भाँति पितृगणो के ही लिए श्राद्ध करना चाहिए । गन्धमाल्यादि एक बार ही देना चाहिए अथवा तीन बार या पाँच बार देवे ।१०। नौसे नीचे ही संख्या वाले ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।११। यदि विशेष शक्ति का अभाव हो तो उस दशा में अयुग्म ही को भोजन कराके अर्थात् सात-पाँच तीन अथवा एक को भोजन कराना चाहिए । सात के पक्ष में एक के लिये एक को और अन्य दो के लिये तीन-तीन को भोजन करावे ।१२।पुंसवन-सीमन्तोन्नयन चौलकर्म-उपनयन और विवाह— ये श्रौत कर्म्म है । इनमें यज्ञ-

अग्नि आधेय होती है कुछ का मत है कि यह वृद्धि श्राद्ध का विषय है । अन्य षोड़श संस्कार होते है और श्रवणाकर्म आदि श्रौत कर्म है—ऐसा कहते हैं । स्मृति मे लिखा है—'अभिष्ट्वातु पितृ श्राद्धे वैदिक कर्म्म नारभेत्'' अर्थात् श्राद्ध में पितृगण को यजन न करके वेदोक्त कर्म्म का आरम्भ नहीं करना चाहिए । बावड़ी-कूआ-तालाब, आगार आराम और उद्यायन आदि पूर्त्त श्राद्ध का विषय होते है । दोनो ही मे युग्मों को भोजन करावे ।१३। पूर्वेषु अष्टमी में-काम्य में और एकोदिष्ट चारों मे यह विधि है । इस प्रकार के श्राद्धों में ब्राह्मणों का परिमाण कह दिया है । इतरों में अयुग्म ब्राह्मणो को ही भोजन करावे ।१४। यहाँ पर वृद्धि पूर्वेषु—यह शेष है । यहां पर प्रदक्षिण वचन से अन्यों मे प्रसंग उपचार गम्य होता है । तिलकार्य मे यवों को करे ।१५।

रथमारोक्ष्यन्नाना पाणिभ्या चक्रे अभिमृमेत् । अहं ते पूर्वं पादावालभेद्बृहद्रथतरे ते चक्रे ।१। वामदव्यमक्ष इत्यक्षाधिष्ठाने ।२। दक्षिणपूर्वाभ्यामारोहेत् । वायोष्ट्वा वीर्येणाऽऽरोहामीन्द्रस्याजसाऽऽधिपत्येनेति ।३। रश्मान्स-मृशेदश्मिकान्वा दण्डेन । ब्रह्मणो वस्तेजसा सगृह्णामि सत्येन वः संगृह्णामीति ।४। अभिप्रवर्तमानेषु जपेत् । सहस्रसनि वाजमभिवर्तस्व रथदेव प्रवह वनस्पते वीड़-वङ्गो हि भूया इति ।५।

यहा पर इतिकार का अध्याहार किया जाता है । तीनो वर्णों का यह समान ही होता है । रथ बहु युग मण्डल की आकृति वाला होता है । जिस समय में गमन के लिये रथ पर आरोहण करता है तो पूर्व पक्ष में पहियों को हाथों से मन्त्र के द्वारा अभिमर्शण करना चाहिए । यहां पर 'नाना' पद के ग्रहण से एक ही साथ करे अर्थात् दक्षिण से दाहिने को और सव्य से सव्य को अभिमृष्ट करना चाहिए । मन्त्र—'अहंते पूर्वं पादा-वालभेद् बृहद्रथतरे तेचक्रे'' यह है । दूर देश, गमन में आद्यमें ही आरोहण में यह विधि है और अर्थ प्राप्त आरोहणों में नहीं होती है ।१। दोनों हाथों

से एक साथ चक्र की नाभियों का मन्त्र के द्वारा अभिमर्शण करना चाहिए और दक्षिण तथा पूर्व से आरोहण करना चाहिए मन्त्र यह है—"वायोष्ट्वा वीर्य्येणारो दामीन्द्रस्यौज साऽऽधिपत्येम" इति ।३। फिर रश्मियों का स्पर्श करे। यदि बिना ही रश्मियों वाले अश्व हों तो उनको दण्डे से स्पर्श करे। मन्त्र दोनों ही विधियों में समान है। मन्त्र—"ब्रह्मणे वस्तेजसा सगृह्णामि सत्येनव. सगृह्णाम" यह होता है। यहाँ पर यह वचन के प्रयोग से बहुत युगों वाला रथ यहाँ पर अभिप्रेत है ऐसा समझा जा रहा है ।४। जिस समय मे सारथि के द्वारा प्रेरित अश्व यदेष्टा दिशा का अभिगमन करते हैं उस समय में "सहस्तसनि वाजमभि वर्त्तस्व रथदेव प्रवह वनस्पते वीड्वङ्गो हिभूयाः" इति इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। इतना ही रथारोहण होता है ।५।

एतयाऽन्यान्यपि वानस्पत्यानि ।६। स्थिरौ गावौ भवतां वालु रक्ष इति रथाङ्गमभिमृशेत् ।७। सुत्रामाण पृथिवी द्यामनेहसमिति नावम् ।८। नवरथेन यशस्विनं वृक्ष ह्रदं वाऽविदासिन प्रदक्षिणं कृत्वा फलवतीः शाखा आहरेत् ।९। अन्यद्वा काटुम्बम् ।१०। संसदमुपयायात् ।११। अस्माकमुत्तमं कृधात्यादित्यमीक्षमाणो जपित्वाऽवरोहेत् ।१२। ऋपभं मा समानानामित्यभिक्रामन् ।१३। वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा इत्यस्तं यात्यादित्ये ।१४। तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरिति व्युष्टायाम् ।१५। ख० ६।

इस ऋचा से शकट प्रभृति अन्यों वानस्पत्यों को आरोहण करते हुए उनका भी अभिमर्शण करना चाहिए ।६। इस ऋचा में जो-जो भी अङ्ग देखा गया है उस-उसका ही अभिमर्शण करना चाहिए जैसे दोनों गो-अक्ष-ईषा और युग हैं। यह शकटादि में ही अभिमर्शन होता है रथ में नहीं होता क्योंकि "गावौ"—यह वहां पर लिङ्ग विद्यमान है। रथ गो युक्त नहीं होता है वहां पर बहु युग और अश्व युक्तत्व होता है ।७। आरुहेम—इस मन्त्र के लिङ्ग होने से यहां पर 'आसहेयेत्'—यह शेष होता है।

जब-जब उदक के तरण करने के लिये नौका पर समारोहण करता है तब-तब इस ऋचा को पढ़ कर ही आरोहण करना चाहिए—ऋचा यह है—"सुत्रामाण पृथिवी द्यामने हसम्" ।८। नवीन रथ से जब गमन करता है तो वहां पर विशेषता है कि वानस्पत्यादि करके अर्थात् वानस्पत्य जप के अन्त तक करने के पश्चात् यह भी करना चाहिए । नव का तात्पर्य यह है कि जो उपयुक्त न हुआ हो । यश से युक्त यशस्वी होता है । अविदासी का अर्थ अशोष्य है । वृक्ष हो या ह्रद हो उसको प्रदक्षिण करके फलों वाली शाखा का आहरण कर लेवे ।९। अथवा अन्य कोई कुटुम्ब का उपयोगी द्रव्य का समाहरण करना चाहिए ।१०। गृह के समीप में आगमन करना चाहिए ।११। "अस्माक मुत्तमकृधि"—इस मन्त्र के द्वारा आदित्य देव को समीक्षित करता हुआ ही जाप करके रथ से अवरोहण करना चाहिए ।१२। "ऋषभं मा समानानाम्" इस सूक्त को गृह में प्रति पद्यमान होता हुआ जाप करे ।१३। "वयमद्येन्द्रस्य श्रेष्ठा" इसको उसी दिन में आदित्य के अस्तंगत होते हुए जाप करे ।१४। यहां पर ये तीन प्रतीक मन्त्र सज्ञा वाले हैं—'तद्वो दिवो दुहितरो विभाति'' इति । इनका जाप उपांशु ही होना चाहिए ।१५।

अथातो वास्तुपरीक्षा ।१। अनूखरमविवदिष्णु भूम ।२। ओषधिवनस्पतिवत् ।३। यस्मिन्कुशवीरिण प्रभूतम् ।४। कण्टकिक्षीरिणस्तु समूलान्परिखायोद्वासयेदपामार्गः शाकस्तिल्वकः परिव्याध इति चैतानि ।५। यत्र सर्वत आपो मध्यं समेत्य प्रदक्षिणं शयनीय परीत्य प्राच्यः स्यन्देरन्नप्रवदत्यस्तत्सर्वं समृद्धम् ।६।

इसमें "अतः" यह हे तुके अर्थ वाला होता है । गृह के निमित्त में समृद्धि बुद्धि होती है इसी से यहां पर वास्तु परीक्षा को कहा जाता है ।१। इस प्रकार से लक्ष से युक्त देश में वास्तु करना चाहिए—भूमि विवाद में रहित और ऊषर नहीं होवे वहाँ पर ही वास्तु करे ।२। जो भूमि ओषधि और वनस्पति से युक्त हो ऐसी ही भूमि से वास्तु करे ।३। जहां पर प्रभूत

कुशवीरिण होवें वहीं पर वास्तु करना चाहिए ।४। जो कांटे दार और क्षीर वाले वृक्ष होंवे उनको समूल परिखण्डित करके अपामार्गशारस्तिम्वक और परिव्याध इस प्रकार के वास्तु विद्या में निषिद्ध होते है अतएव ये सब उद्वास्य ही होते हैं ।५। जिस देश में जल सब दिशाओं से आकर मध्य में पहुंच कर रहे वहां पर प्रदक्षिण शयनीय को परीत करके प्राङ् मुख्य गमन करना चाहिए । इस लक्षण से युक्त वास्तु विद्या-वृत्त-धन-धान्यादि सबसे समृद्ध होता है । सब ओर से उच्छ्रित मध्य में थोड़ी निम्न और प्राक्प्रवण भूमि को करके गृह बनाना चाहिए । वहा पर प्राची दिशा मे गृही को शयनीय गृह बनाना चाहिए । शयनीय गृह के उत्तर मे जल के शनैः निर्गमन के लिये स्पन्दनिका करे ।६।

समवस्रवे भक्तशरणं कारयेत् ।७। बह्वन्नं ह भवति ।८। युवानस्तस्यां कितवाः कलहिनः प्रमायुका भवन्ति ।१०। यत्र सर्वत आपः प्रस्यन्दरन्सा स्वस्त्वयन्यच्यूता च ।११। ख० ७ ।

जिस मार्ग से जल निकलता है वह देश सभव स्रव होता है अर्थात् प्राची दिशा में सभवस्रव में शयनीय के उत्तर में महानस बनवाना चाहिये । अन्य शास्त्र में प्रगदक्षिण दिशा में भक्त शरण देखा गया है तो प्राची दिशा में कैसे कहा गया है इस प्रकार की शङ्का से प्रकृत का स्तवन किया जाता है कि ऐसा ही करना ऋद्धिमान् होता है । इसलिये यहां पर ही करना चाहिए क्योंकि वह बहुत अन्न वाला होता है ।८। जहां पर गृही स्वजनों और आगन्तुकों के साथ स्वतन्त्रता से रहता है वह सभा कही जाती है उस सभा को दक्षिण प्रयाण उदीची दिशा में करना चाहिये । वहां पर की हुई सभा द्यूत से रहित होती है ।९। बिना विधि के करने पर बहुत से दोष होते है । अविहित स्थान में करने पर उस में युवा लोग कितव-कल ही और प्रमायुक हो जाया करते है । अर्थात् युवावस्था ही में अल्पायु होकर मर जाया करते हैं । इस कारण से वहां पर नहीं करनी चाहिए ।१०। फिर वह सभा कहां पर बनानी चाहिए यह बतलाते हुए

कहते है जहाँ पर सभी दिशाओं से जल का आगमन होता है वहां गृह के मध्य मे सभा बनानी चाहिए जहाँ पर वह अनूना और शुभकारी हुआ करती है ।११।

अथैतंवास्तु परीक्षेत ।१। जानुमात्र गर्त खात्वा तेनैव पांसुभिः प्रतिपूरयेत् ।२। अधिके प्रशस्त समे वार्त न्यून गर्हितम् ।३। अस्तमितेऽपा सुपूर्ण परिवासयेत्।४। सोदके प्रशस्तमार्द्रे वार्त शुष्के गर्हितम् ।५। श्वेत मधुरास्वाद सिकतोत्तरं ब्राह्मणस्य ।६। लोहितक्षत्रियस्य ।७। पीतं वैश्यस्य ।८।

पूर्वोक्त लक्षणों के सम्भव न होने पर उत्तर लक्षणोंको बलवत्ता कैसे होती है—यही यहां पर 'अथ" इस शब्द का अर्थ होता है। वास्तु की परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा कैसे करें—यह बतलाया जाता है।१। घुटनों तक एक गड्ढा खोदकर उसे उसी मिट्टी से भर देवे। उस गर्त के पूरित होकर शेष धूलिके बच जाने पर वास्तु परम प्रशस्त होता है और यदि उसके भर जाने के बराबर हो तो वहाँ पर वास्तु वृत्ति वाला हुआ करता है। तथा गर्त की पूर्ति हीन हो सके तो वहाँ पर वास्तु कर्म गर्हित हुआ करता है। उसमे वहां कभी भी नहीं करना चाहिए ।२-३। अस्तमित वेला मे जल से उस गर्त को पूरित करके उस राशि को परिवासित करना चाहिए फिर प्रातः मे निरीक्षण करें ।४। जल के सहित होने पर वह स्थल वास्तु कर्म के लिये प्रशस्त होता है—आर्द्र रहने पर आर्त्त और शुष्क हो जाने पर गर्हित होता है ।५। जो सिकता की अधिकता वाला और मधुर आस्वाद वाला हो और श्वेत वर्ण का हो वह ब्राह्मण के लिये शुभकारी होता है। मधुरास्वाद युक्त सिकता वाला लोहित वर्ण का हो वह क्षत्रिय को शुभ है और जो पीत वर्ण वाला मधुर स्वाद युक्त सिकता समन्वित हो वह वैश्य को शुभकारी होता है ।६-७-८।

तत्सहस्रसीतं कृत्वा यथादिक्समचतुरस्रं मापयेत् ।९। आयतचतुरस्रं वा ।१०। तच्छमीशाखयोदुम्बरशाखया

वा शन्तातीयेन त्रिः प्रदक्षिणं परिव्रजन्प्रोक्षति ।११। अविच्छिन्नया चोदकधारया । आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन ।१२। वंशान्तरेषु शरणानि कारयेत् ।१३। गर्तेष्ववकां शीपालमित्यवधापयेन्नास्याग्निर्दाहुको भवतीति विज्ञायते ।१४। मध्यमस्थूणाया गर्तेऽवधाय प्रागग्रोदगग्रान्कुशानास्तीर्य व्रीहियवमतीरप आसेचयेत् । अच्युताय भौमाय स्वाहेति ।१५। अथैनामुच्छ्रियमाणामनुमन्त्रयेतेहैव तिष्ठ निमिता तिल्वलास्तामिरावतीं मध्ये पोषस्य तिष्ठन्तीम् । आ त्वा प्रापन्नघायव आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जायतां सह । आ त्वा परिश्रितः कुम्भ आ दध्नः कलशेरयन्निति ।१६। ख० ८ ।

इस प्रकार से परीक्षा किये हुए वस्तु को सहस्रशील करके देखना चाहिए । बहुतवार सीता के द्वारा फिर उसका कर्पण (जुताई) करे । फिर सभी दिशाओं में सम चौकोर वहाँ पर स्थण्डिल की रचना करनी चाहिए । सहस्र शब्द यहां पर बहुत के अर्थ को ही बताने वाला है ।९। अथवा दीर्घ और चौकोर बनवावें । वहाँ पर इसी प्रकार का क्रम है कि प्रथम बाहिरी परीक्षा करके फिर भीतरी परीक्षा के द्वारा वास्तु का कार्य करना चाहिए । आयत और चौकोर गर्त करके देखें कि जहाँ पर सब जगह जल मध्य में समागत होकर रहे—यह समझलेवे । ऐसे ही स्थल पर आगे बताये जाने वाला प्राक्षाण आदि करे ।१०। वहाँ पर शमी शाखा से अथवा उदुम्बर की शाखा से "शंन इन्द्राग्नी" इस सूक्त को जो शन्तातीय नाम से प्रसिद्ध है तीन बार परिव्रजन करता हुआ पढ़े । प्रदक्षिण प्रोक्षण करे । सर्वत्र मन्त्र के अन्त में कर्म का आरम्भ करना चाहिए । परशुना छिनत्ति इससे परशुवत् करे । मन्त्र के अन्त में प्राची से आरम्भ करके व्रजन का आरम्भ करना चाहिए ।११। तीन बार प्रदक्षिण परिव्रजन करता हुआ अविच्छिन्न जल की धारा से "आपोहिष्ठा मयोभव ?" इस ऋचा से प्रोक्षण करना चाहिए । यहाँ पर भी धारा की और तृचा की आवृत्ति होती है ।१२। वहाँ पर जितने भी बाँस होवें वहां दो-दो बाँसों के अन्तरों में कुछ-

चादि से पृथक् करके अवान्तर गृह बना देने चाहिए ।१३। समस्त स्थूणों के गर्त्तों में अवका अर्थात् शीपाल का अवधान करना चाहिए । इस प्रकार से इसकी अग्नि दाहक नहीं होती है—ऐसा सुना जाता है ।१४। यह फिर यह गर्त्त विशेष है । मध्य स्थूणा के गर्त्त का शीपाल का अवधान करके कुशाओं का समास्तरण करे और इसके पश्चात् मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रन करना चाहिए । मन्त्र—"अश्रुताय सीमाय स्वाहा" यह है । यहा पर "अवधाय"—यह वचन अवका और शीपाल दोनों के अवधान की प्राप्ति के ही लिये है ।१५। मध्य स्थूणा गर्त्त को आधीयमाना को मन्त्रों से अनुमन्त्रण करना चाहिए—मन्त्र—इहैवतिष्ठ निमिता तिल्जला इरामिरावतीं मध्येपोषस्य तिष्ठन्तीम् । आ त्वा प्रायास्वायन आत्वा कुमारस्तरुणा आवत्सो जायत्तांस्ह । आत्वा परिश्रितः कुम्भ आदध्नः कलशैरयामिति" ये है ।१६।

वशमाधीयमानम् ।१। ऋतेनं स्थूणामधिरोह् वंश ग्राघोय आयुः प्रतर दधातार्हतिः ।२। सदूर्वासु चतसृषु शिलासु मणिकं प्रतिष्ठापयेत्पृथिव्या अधि सभवेति ।३। अरङ्करो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया । इरामु ह प्रशंससत्यनिरामपबाधतामिति वा ।४। अथास्मिन्नप आसेचयेत् । गेतु राजा वरुणो रेवतीभिरस्मिन्स्थाने तिष्ठतु मोदमानः इरा वहन्तो घृतमुक्षमाणा मित्रेण साकं सह संविशन्त्विति ।५। अथैनच्छमयति ।६। व्रीहियवमतीभिरद्भिर्हिरण्यमवधाय शन्तातीयेन त्रिः प्रदक्षिणं परिव्रजन्प्रोक्षति ।७। अविच्छिन्नया चोदकधारया–आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन ।८। मध्येऽगारस्य स्थालीपाकं श्रपयित्वा वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वाऽन्नं संस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा शिवं वास्तु शिवं वास्त्विति वाचयीत ।९। ख० ९ ।

आधीय मान वांस का अनुमन्त्रण करना चाहिए ।१। इसके द्वारा मध्यम स्थूणा के ऊपर आधीय मान वांस का अनुमन्त्रण करना चाहिए

अन्य विद्वान् तो प्रत्येक वंश के लिये आवृत्ति की इच्छा रखते है। मन्त्र है—"ऋतेन स्थूणामधिरोह वंश द्राघीय आयु प्रतरं दधाना" इति।२। चार शिलाएँ स्थापित करा कर उन पर दूभ रखकर इसके पश्चात् मणिक (जलधारण के लिये भाण्ड विशेष को कहते है) को प्रतिष्ठापित करावे और मन्त्र के ही द्वारा प्रतिष्ठापित करना चाहिए। अथवा "अरङ्गरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामुह प्रशं सत्यनि रामपबाधताम्" इति इस ऋचा से प्रतिष्ठापित करावे।३-४। इसके उपरान्त इस मणिक में जल का निषिञ्चन करे और यह पूरणार्थ मन्त्र के ही द्वारा करे—मन्त्र—'एतु राजा वरुणो रेवतीभिरस्मिन्स्थाने तिष्ठतु मोदमानः। इरां वहन्तो घृन-मुक्षमाणा मित्रेण साकं सहसंविशन्तु" इति—यह है।५। इसके अनन्तर दस वास्तु शान्ति को करता है।६। व्रीहि और मन वाली जलों से हिरण्य का अवधान करके सशान्तीय के द्वारा तीन चार प्रदक्षिण परिव्रजन करता हुआ प्रोक्षण करता है।७। अविच्छिन्न जल की धारा से "आपोहिष्ठाभयो भुवः"—इस तृचा से करना चाहिए।८। इस सूत्र में अथयित्वा"—इस वचन से यह अवगत होता है कि इस स्थाली पाक से पहिले इस गृह में अन्ययाक का भ्रमण नहीं करना चाहिए। भुक्तवान् ब्राह्मणों से 'शिवं वास्तु' शिवं वस्तु यह आप लोग बोलें—यह वाचन कराना चाहिए। और वे ब्राह्मण भी 'शिवं वास्तु-शिवं वास्तु'-यह प्रति वचन बोले। अगार के मध्य में स्थाली पाक को 'वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान्' इन चार ऋचाओं से प्रतिऋचा हवन करके अन्न का संस्कार करे और फिर ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए।९।

उक्तं गृहप्रपदनम् ।१। बीजवतो गृहान्प्रपद्येत ।२। क्षेत्र प्रकर्षयेदुत्तरैः प्रोष्ठापदैः फल्गुनीमी रोहिण्या वा ।३। क्षेत्रस्यानु वा तं क्षेत्रस्य पतिना वयमिति प्रत्यृचं जुहुया-ज्जपेद्वा ।४। गाः प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयेत मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा इति द्वाभ्याम् ।५। आयतीः। यासामूधश्चतुर्बिलं मधोः पूर्णं घृतस्य च। ता नः सन्तु पयस्वती-

र्बह्वीर्गोष्ठ घृताच्यः । उप मैतु मयोभुव ऊर्जं चौजश्च बिभ्रतीः । दुहाना अक्षितं पयो मयि गोष्टे निविशध्व यथा भवाम्युत्तमो या देवेषु तन्वमैरयन्तेति च सूक्त-शेषम् ।६। आगावीयमेके ।७। गणानामामुपतिष्ठेतागुरु-गवीनां भूताः स्थ प्रशस्ता स्थ शोभनाः प्रियाः प्रियो वो भूयासं शं मयि जानीध्वं श मयि जानीध्वम् ।८। ख० १० ।

जो "प्रपद्ये त गृहानहं सुमनरा" इत्यादि गृह प्रपदन कहा गया है उसे यहां पर भी करना चाहिए । अन्य लोगों ने कहा है कि जो मणिक प्रतिष्ठायनादि कहा गया है यही गृह प्रपदन संज्ञा वाला होता है । इससे क्या सिद्ध होता है माणिक स्थापन से पहिले ही बीजों का अपण करके स्ठणीभाव से प्रवेश करे । और भी यह है कि अन्य शास्त्र से संस्कृत अथवा विशीर्ण पुराने गृह का संस्कार करके प्रवेश करते हुए की मणिक प्रतिष्ठापन आदि सिद्धि होता है ।१। यहां पर 'गृहान्'—यह वचन इसी लिये है कि जिस गृह में प्रवेश करता है वहां पर भी इसी प्रकार से प्रवेश करना चाहिए चाहे वह विशीर्ण का संस्कार करके ही प्रवेश किया जावे । अर्थात् मणिकादि बीज व अपदमान्त वहां भी करना ही चाहिए । इससे पहिले की हुई व्याख्या भी साध्वी होती है ।२। उत्तरा प्रोष्ठ पदों से फाल्गुनीयों से अथवा रोहिणी के द्वारा क्षेत्र का प्रकर्षण करना चाहिए । ये तीन ही नक्षत्र हैं । नित्यकर्मों को द्रव्य साध्य होने से द्रव्य के लिये क्षेत्र का प्रकर्षण करना चाहिए । तात्पर्य यही है कि उक्त तीन नक्षत्रों में कृषि का प्रारम्भ करना चाहिए ।३। प्रारम्भ दिवस में यह करना चाहिए—यह बतलाते है—"क्षेत्रस्यान् वा त क्षेत्रस्य पतिनावयम् ।। इससे प्रति ऋचा हवन करना चाहिए ? माला जाप करना चाहिये ? वहा पर उप-लेपनादि करके ही हवन करे ।४। भक्षण करने के लिये अरण्य की ओर गमन करती हुई गौओं का अनुमन्त्रण करे और दिनप्रतिदिन करे । गौएँ चाहे अपनी हों या अन्य हों—इसका कोई नियम नहीं है । दो ऋचायें हैं

मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा "इति ।५। जब गौएँ ग्राम की ओर आरही हों तो भी गौओं का अनुमन्त्रण प्रतिदिन करना चाहिए—'अहरहयासाम् । इन ऋचाओं से करे और शुक्तशेप के द्वारा करे। "यारामूध अतुर्बिलं मधोःपूर्णं घृतस्य । तानः सन्तु पयस्वतीर्बह्लीर्गोष्ठे घृताच्यः उप मैतुमयोभुवरूर्जं चौजश्च बिभ्रतीः । दुहाना अक्षितं पयो मयिगोष्ठे निविशध्वं यथाभवाम्युत्तमो या देवेपु सन्वमैरयन्ता" यह सूक्त शेष है ।६। कुछ विद्वान् आती हुई गौओं के अनुमन्त्रण में "आगावो अग्मन्"—इसी सूक्त को चाहते हैं।७। इन अगुरुगवी गौओं के संघों का उपस्थान करे—'अहरह भूं तास्य शोभना प्रशस्तास्य प्रिया। प्रियो को भूमासं शंममि जानीध्वं शेसमि जानीध्य।

इति आश्व लामन गृह्य सूत्रे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।



तृतीयोऽध्यायः

ॐअथातः पञ्चयज्ञाः ।१। देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञ इति ।१। तद्यदग्नौ जुहोति स देवयज्ञो यद्बलिं करोति स भूतयज्ञो यत्पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञो यत्स्वाध्यायमधीयते स ब्रह्मयज्ञो यन्मनुष्येभ्यो ददाति स मनुष्ययज्ञ इति ।३। तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीत ।४। ख०,१ ।

इस सूत्र में "अतः यह शब्द हेतु के अर्थ वाला है । क्योंकि इन के करने से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है पञ्च यज्ञ नाम वाले यज्ञ बतलाये जायेंगे ।१। वे पांच यज्ञ ये हैं—देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्य यज्ञ ।२। जो अग्नि में दश आहुतियों का हवन करता है वह देवयज्ञ होता है । जहां बलि का हरण होता है वह भूतयज्ञ होता है जो पितृगण के लिये "स्वधा पितृभ्यः" इससे देता है वह पितृयज्ञ होता है । जो स्वाध्याय का अध्ययन करता है वह ब्रह्मयज्ञ होता है । जो मनुष्यों के लिये देता है वह मनुष्य यज्ञ होता है ।३। उक्त इन पांचों यज्ञों को प्रतिदिन करना चाहिए ।४।

अथ स्वाध्यायविधिः ।१। प्राग्वोदग्वा ग्रामान्निष्क्रम्याप आप्लुत्य शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याक्लिन्नवासा दर्भाणां महदुपस्तीर्य प्राक्कूलानां तेषु प्राङ्मुख उपविश्योपस्थं कृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी संधाय पवित्रवन्तौ विज्ञायतेऽपां वा एष ओषधीनां रसो यद्दर्भाः सरसमेव तद्ब्रह्म करोति । द्यावापृथिव्योः सन्धिमीक्षमाणः संमील्य वा यथा वा युक्तमात्मानं मन्येत तथा युक्तो-

ऽधीयीत स्वाध्यायम् ।२। ॐ पूर्वा व्याहृतीः ।३।
सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामिति तृतीयम् ।४।
ख० २ ।

अब स्वाध्याय की विधि बतलायी जाती है। इससे वैश्वदेव के पहिले या पीछे अध्ययन करना चाहिए—इसमें कोई भी क्रम का नियम नहीं है यह सिद्ध है ॥१॥ पूर्व में या उत्तर में ग्राम से निकल कर जल में आप्लुत होवे और फिर किसी शुद्ध देश में यज्ञोपवीती आचमन करे। अक्लिन्न वस्त्रों वाला दर्भो महान् उपस्तरण करके उनके युक्त फूलों में प्राङ् मुख होकर उपविष्ट होकर उपस्थ करके दक्षिण उत्तर दोनों हाथों को संधान करके पवित्री वाले करे। यह श्रवण किया जाता है अर्थात् यह समस्त गृह्य शास्त्र श्रुति मूलक ही होता है। यह जल का रस है अथवा औषधियों का रस है जो दर्भ सरस ही उस ब्रह्म को करता है। फिर द्यावा पृथिवी की सन्धि को देखता हुआ अथवा नेत्रों को समीलित करके जैसे भी आत्मा को युक्त माने वैसे ही युक्त होकर स्वाध्याय का अध्ययन करता है ॥२॥ आदि में प्रणव को कहकर फिर तीनों व्याहृतियों को समस्तो को बोलना चाहिए। "भूर्भुवः स्वः" ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं ॥३॥ फिर सम्पूर्ण सावित्री को बोले! पच्छ अर्ध ऋचा के क्रम से तृतीय को बोलना चाहिए ॥४॥

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ।१। यदृचोऽधीते पयआहुतिभिरेव तद्देवतास्तर्पयति यद्यजूंषि घृताहुतिभिर्यत्सामानि मध्वाहुतिभिर्यदथर्वाङ्गिरसः सोमाहुतिभिर्यद्ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृता हुतिभिः ।२। यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन्स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वाङ्गिरसः सोमस्य कुल्या यद्ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशंसी-

रितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः ।३। स यावन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिदधाति । नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमीति ।४। ख० ३ ।

इसके अनन्तर स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिए । इससे यह सिद्ध होता है कि प्रणव जिनके आदि में है ऐसी तीनों व्याहृतियां स्वाध्याय का ही अङ्ग है । फिर यजुर्वेद की ऋचाएं - सामवेद–ऋग्वेद और अथर्वाङ्गिरस-ब्राह्मण, कल्प, गाथा, नराशंसि, इतिहास और पुराणों का अध्ययन करना चाहिए ॥१॥ जो बहुत ऋचाओं का अध्ययन करता है, पय की आहुतियों के ही द्वारा करना चाहिए । इससे देवताओं का तर्पण करता है । यजुर्वेद को घृत की आहुतियों के द्वारा, सामवेद को मधु की आहुतियों के द्वारा, आङ्गिरसों को सोम की आहुतियों के द्वारा अध्ययन करता है । इसके अनन्तर ब्राह्मण-कल्प, गाथा,नराशंसि-इतिहास पुराणों का अध्ययन अमृत की आहुतियों के द्वारा करना चाहिए ॥२॥ जैसा कि बताया गया है कि ब्रह्मयज्ञ के द्वारा देवगण तृप्त होते है वैसे ही अब बताया जाता है कि पितृगण भी तृप्त होते है । जो ऋचाओं का अध्ययन करता है वह पय की नदियाँ पितृगण के समीप में उपस्थित होती हैं और स्वधा का उपक्षरण किया करती है । यजुर्वेद के मन्त्र घृत की नदियां—सामवेद मधु की नदियाँ तथा आङ्गिरसाथर्व वेद के मन्त्र सोमरस की नदिया और ब्राह्मण, कल्प, गाथा, नाराशंसि, सब इतिहास-पुराण अमृत की नदियाँ पितृगण को उपस्थित होती है ॥३॥ उसको चाहिए कि जितने समय तक अपने मनको एकाग्र समझे उतने ही काल तक अध्ययन करना चाहिए । यह कोई नियम नहीं है कि दशों का ही ही अध्ययन करे । सब प्रकार से समाहित मन से ही अध्ययन करें । यहां इतना ही करें–ऐसा कोई भी नियम नहीं है । फिर इस ऋचा से परिधान करता है–"नमो ब्रह्मणे, नमोऽस्त्वग्नये, नमः पृथिव्यै नमओषधिभ्यः, नमो वाचे, नमो वाचस्पतये, नमोविष्णवे महते" करोमि" ॥इति ॥४॥

देवतास्तर्पयति प्रजापतिर्ब्रह्मा वेदादेवा ऋषयः सर्वाणि च्छन्दांस्योंकारो वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री यज्ञा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षमहोरात्राणि सांख्याः सिद्धाः समुद्रा नद्या गिरयः क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरसो नागा वयांसि गावः साध्या विप्रा यक्षा रक्षांसि भूतान्येवमन्तानि ।१। अथ ऋषयः शतर्चिनो माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाजो वसिष्ठः प्रगाथाः पावमान्यः क्षुद्रसूक्ता महासूक्ता इति ।२। प्राचीनावीती ।३। सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या जानन्तिबाहविगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमाण्डव्यमाण्डूकेया गर्गीवाचक्नवी वडवाप्रातीथेयी सुलभामैत्रेयी कहोलं कौषीतकं महाकौषीतकं पैङ्ग्यं महापैङ्ग्यं सुयज्ञं सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयं शाकलं बाष्कलं सुजातवक्त्रमौदवाहिं महौदवाहिं सौजामिं शौनकमाश्वलायनं ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्त्विति ।४। प्रतिपुरुषं पितॄंस्तर्पयित्वा गृहानेत्य यद्ददाति सा दक्षिणा ।५।

परिधान के अनन्तर इन देवों का उदय के द्वारा तर्पण करता है। यह तर्पण में प्रसिद्ध है—'प्रजापति—ब्रह्मा—वेद-देव ऋषि—सब छन्द-ओङ्कार-वषट्कार व्याहृतियां-सावित्री-यज्ञ-द्यावा पृथिवी-अन्तरिक्ष-अहोरात्र-सांख्य-सिद्ध-समुद्र नदियाँ- पर्वत- क्षेत्र- ओषधियां- वनस्पति-गन्धर्व-अप्सरा-नाग-पक्षी-गौएँ-साध्य-विप्र-यक्ष-राक्षस और भूत सब तृप्त होवें ऐसी रीति से ही सबका नामोच्चारण करके ही तर्पण करना चाहिए ।।१।। इसके अनन्तर शतर्चि प्रभृति बारह ऋषियों का तर्पण करता है। वे बारह ये हैं—शतर्चि-माध्यम-गृत्समद-विश्वामित्र-वामदेव-अत्रि-भरद्वाज-वसिष्ठ-प्रगाथ-पावमान्य-क्षुद्र सूक्त और महासूक्त ये हैं ।।२।। प्राचीनावीती होकर ही जो आगे बताये जाने वाले हैं उनका तर्पण किया जाता

है ।।३।। सुमन्तु जैमिनि-वैशम्पायन- पैल सूत्र भाष्य भारत महाभारत धर्माचार्य्य जानन्ति वाहनि-गार्ग्य गौतम शाकल्य बाभ्रव्य-माण्डव्य-माण्डूकेय-गार्गी वाचक्नवी वड़वा प्रातिथेयी सुलभामैत्रेयी-कहोल कौषीतक महाकौषीतक पैङ्ग्य महापैङ्ग्य सुयज्ञ सांख्यायन ऐतरेय महैतरेय-शाकल बाष्कल सुजातवक्त्र औदवाहि महौदवाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ये सब नैर्देश वाचय हैं और जो अन्य आचार्य्य हैं वे सब तृप्त होवें ।।इति ।।४।। प्रति पुरुष पितृगण को तृप्त करके गृह में आकर जो देता है वह दक्षिणा होती है ।।५।।

अथापि विज्ञायते स यदि तिष्ठन्व्रजन्नासीनः शयानो वा यं क्रतुमधीते तेन तेन हास्य क्रतुनेष्टं भवतीति ।६। विज्ञायते तस्य द्वावनध्यायौ यदाऽऽत्माऽशुचिर्यद्देशः ।७। ख० ४ ।

पूर्व में कथित उपवेशन के सम्भव न होने पर इस प्रकार से ब्रह्मयज्ञ करना चाहिए—इस विषय में श्रुति ने कहा है—"शयानोऽधीयीत-नाश्नीयाम्"—इत्यादि जो निषेध है वह नित्य स्वाध्याय का ही होता है और ब्रह्मयज्ञ का नहीं होता है। और भी बताया जाता है कि वह यदि खड़ा होता हुआ, गमन करता हुआ, बैठा हुआ अथवा शयन करता हुआ जिस क्रतु का अध्ययन करता है उस-उस क्रतु से उसका अभीष्ट होता है ।६। उस ब्रह्मयज्ञ की दो ही अनध्याय बतलाई जाती है। प्रथम तो जब आत्मा अशुचि हो चाहे सूतक से—मृतक से अथवा मलादि के द्वारा किसी भी प्रकार से हो तब उसका अनध्याय होता है और दूसरा जब कि अमेध्य आदि पदार्थों से वह देश ही अशुचि हो—इन ही कारणों के होने पर अनध्याय होता है। काल के विषय में तो श्रुति है कि—"मध्यन्दिने प्रबलमधीयीत य एवं विद्वान् महाराज उषसि उदिते च" अर्थात् दिन के मध्य प्रबलता से अध्ययन करे जो इस प्रकार का विद्वान है वह महाराज ऊषाकाल में और सूर्यदेव के उदित होने पर अध्ययन करे ।७।

अथातोऽध्यायोपाकरणम् ।१। ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य ।२। पञ्चम्यां हस्तेन वा ।३। आज्यभागौ हुत्वाऽऽज्याहुतीर्जुहुयात् । सावित्र्यै ब्रह्मणे श्रद्धायै मेधायै प्रज्ञायै धारणायै सदसस्पतयेऽनुमतये छन्दोभ्य ऋषिभ्यश्चेति ।४। अथ दधिसक्तूञ्जुहोति ।५। अग्निमीळे पुरोहितमित्येका ।६। कुम्भकस्तदब्रवीदावदस्त्वं शकुने भद्रमावद गृणाना जमदग्निना धाम ते विश्वं भुवनमधिश्रित गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि यो नः स्वो अरणः प्रतिचक्ष्व विचक्ष्वाऽऽग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजञ्छृत हविरिति दृव्यृचाः ।७।

यहाँ पर "अतः"—यह शब्द हेतु के अर्थ वाला है। इसके अनन्तर अध्याय का प्रारम्भ जिस कर्म से होता है उसे ही अध्यायोपाकरण कहते हैं जो कि ब्रह्मयज्ञ नित्य है इसी हेतु से अध्ययन का प्रारम्भ बतलाते है।१। उसका काल बताते है—जब ओषधियों का प्रादुर्भाव हो तब श्रावण मास के श्रवण नक्षत्र से प्रारम्भ करना चाहिए जब श्रावण में किसी कारण से औषधियों का प्रादुर्भाव न हो तो भाद्रपद में श्रवण करे—यही तात्पर्य है। वृष्टि के अपकर्ष में कर्म का अपकर्ष कभी नहीं होता है। यदि भाद्रपद में भी वृष्टि का अपकर्ष हो जावे तो क्या करे—इसका समाधान यही है कि यह कर्म वर्षा में ही किया जाता है। श्रावण और भाद्रपद वर्षा की ऋतु के ही मास हैं।२। अथवा श्रावण मास की पञ्चमी जब हस्त नक्षत्र से युक्त हो तब करे। इस प्रकार से तीन काल इस कर्म के लिये बता दिये गये है।३। आज्य भागों का हवन करके आज्य की आहुतियों से हवन करना चाहिए। यहाँ पर आज्य भाग का वचन नित्यार्थ होता है। ये नौ आहुतियां हैं इनको घृत से ही हवन करना चाहिए सावित्र्यै स्वाहा—ब्रह्मणे, श्रद्धायै, मेधायै, प्रज्ञायै, धारणायै, सरस्वतये, अनुमतये, छन्दोभ्यः, ऋषिभ्यः स्वाहा। स्वाहा शब्द सब के ही अन्त में प्रयुक्त करे।४। इसके अनन्तर दधि से

मिश्रित सक्तुओं का हवन करना चाहिए ।५। एक आहुति "अग्निमीले पुरोहितम्" इससे देवे ।६।कुपुम्भकस्नद अवीदावदन्स्त्व शकुने भद्रमावद गृणाना जमदग्निना धामं ते विश्वं भुवन मधि श्रितं गन्तानो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि यो नः स्वो अरणः प्रतिच विनश्वाग्ने याहि मन्त्मगा यतो राजञ्छ्रुत हविरिति हव्यूचाः । ये नो हव्यूचाः है ।७।

समानीव आकुतिरित्येका ।८। तच्छंयोरावृणीमह इत्येका ।९। अध्येष्यमाणोऽध्याप्यैरन्वारब्ध एताभ्यो देवताभ्यो हुत्वा सौविष्टकृत हुत्वा दधिसक्तून्प्राश्य ततो मार्जनम् ।१०। अपरेणाग्नि प्राक्कूलेषु दर्भेपूर्वविश्योदपात्रे दर्भान्कृत्वा ब्रह्माञ्जलिकृतो जपेत् ।११। ॐपूर्वा व्याहृतीः सावित्रीं च त्रिरभ्यस्य वेदादिमारभेत् ।१२। तथोत्सर्गे ।१३। षण्मासानधीयीत ।१४। समावृत्तो ब्रह्मचारिकल्पेन

"समानीव आकृतिः" इति—यह भी एका है । "तच्छंयोरावृणी वह" इति—यह भी एका है ।८-९। 'अध्याप्यैरन्वारब्धे' इतने ही से सिद्ध होने पर 'अध्येष्यमाना'—यह वचन इसी लिये है कि अध्ययन के अभाव में भी अध्येष्यमाण स्वय ही करे । इन देवताओं के लिये हवन करके और सौविष्टकृत को हवन करके दधि सक्तुओं का प्राशन करे और फिर मार्जन करना चाहिए ।१०। पीछे अग्नि के प्राजग्र दर्भों पर उपवेशन करते हैं । इसके पश्चात् शयन आदि में जल का आसेचन करे और फिर ब्रह्माञ्जतिकृत हो कर जप करना चाहिए । स्वयं करे और यदि वहां पर शिष्य हो तो उनके साथ ही मे करना चाहिए ।११। ॐकार पूर्वक समस्त महा आहुतियों का फिर सावित्री का तीन बार अभ्यास करके वेदादि 'अग्निमीले' इससे आरम्भ करके सूक्त अथवा अनुवाक्य का आरम्भ करना चाहिए ।१२। यहाँ पर कृत्स्न कर्म का अतिदेश नहीं है किन्तु वेद के केवल आरम्भण का ही अतिदेश किया जाता है । इन देवताओं

के लिये अन्न से हवन करे यही प्रधान होम है। इससे उत्सर्जन में प्राशन और मार्जन नहीं होते है ऐसा सिद्ध हो गया।१३। छै मास तक अध्ययन करना चाहिए और बीच मे उपराग नहीं करे।१४। ब्रह्मचारी के जैसे धर्म होते है उसी के समान समावृत्त रहे। स्वाध्याय के समय में जो धर्मों का विधान है जैसे—मधु, मांस, स्त्री गमन, दिवाशयन आदि है, इन सबका वर्णन करके ही युक्त हो अध्ययन करना चाहिए। जो समावृत्त होना है उसके मेदवन्नादि नहीं होती है।१५।

यथान्यायमितरे ।१६। जायोतेयेत्येके ।१७। प्राजापत्यं तत् ।१८। वार्षिकमित्येतदाचक्षते ।१९। मध्यमाष्टकाया-मेताभ्यो देवताभ्योऽन्नेन हुत्वाऽपोऽभ्यवयन्ति।२०। एता एव तद्देवतास्तर्पयन्ति ।२१। आचार्यान्पृषीन्पितृंश्च ।२२। एतदुत्सर्जनम् ।२३। ख० ५।

इस अध्ययन में ब्रह्मचारियों की भी प्रवृत्ति होती है अन्यथा समावृत्तों की ही प्रवृत्ति होवे—यह शङ्का होती है। इतर का तात्पर्य ब्रह्मचारी आदि से ही है।१६। कुछ का मत है जो समावृत्त है वह जाया गमन करे।१७। यह जाया का गमन प्रजायतित्व की सिद्धि के ही लिये करना चाहिए। उनका अभिप्राय यही है कि ऋतुगमन सर्वथा करना ही चाहिए। क्योंकि गमन न करने पर दोष होता है। पराशर ने कहा है—"ऋतुस्नातां तु या भार्यां सन्निधौ नोप गच्छति। घोरायां भ्रूण हत्या यां युज्यते नात्र संशयः।" अर्थात् जो मनुष्य ऋतु काल में भार्या का गमन नहीं करता है वह घोर भ्रूण हत्या का भागी होता है—इसमें कोई संशय नहीं है।१८। यह उपाकरण वार्षिक है। आचक्षते —यह कहते हुए यह दिखाया जाता है कि यह वैदिकी संज्ञा है पारिभाषिकी नहीं है। यह अन्वर्थ संज्ञा है ऐसा पहिले दिखाया जा चुका है।१९। मध्यमास का इन देवताओं के लिये अन्न से हवन करके होम शेष के समाप्त होने पर जल में अवगाहन करते हैं।२०। ये ही उसके देवता तर्पण करते हैं। द्वितीयान्त देवता को करके 'तर्पयामि'। इससे उन्नीस वाक्यों को कहकर

तर्पण करना चाहिए ।२१। आचार्यों को, ऋषियों को और पितृगणों को तृप्त करे। ब्रह्म यज्ञ का अङ्ग तर्पण कहा गया है इससे इस समय भी करना चाहिए ।२२। इसकी यह संज्ञा है। इसके पीछे छै मास तक वेदाङ्गों का अध्ययन करना चाहिए ।२३।

अथ काम्यानां स्थाने काम्याः ।१। चरवः ।२। तानेव कामानाप्नोति ।३। अथ व्याधितस्याऽऽतुरस्य यक्ष्मगृहीतस्य वा षलाहुतिश्चरुः ।४। मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनायकमित्येतेन ।५।

त्रेता में जो इष्टियाँ थीं उनके स्थान मे काम्या अर्थात् पाक यज्ञ करनी चाहिए ।१। त्रेता मे पुरोडाश होते थे अब उनके स्थान मे चरु लेना चाहिए। पशु के स्थान मे पशु ही समझना चाहिए क्योंकि औषधि साम्य से समान जातीय का ही बाध होता है ।२। अन्य पाक यज्ञ आहिताग्नि के और अनाहिताग्नि के साधारण है—ऐसा कह दिया गया है। जो काम्य होते हैं वे अनाहिताग्नि वाले के ही होते है—इसीलिये यह वचन होता है ।३। अब नैमित्तिकों के विषय में बतलाया जाता है—जो ज्वरादि रोग से गृहीत हो—जो आतुर अर्थात् वल्यगत हो और जो क्षय व्याधि से पीड़ित हो इन तीनों निमित्तों में षडाहुति नाम वाला ही चरु ग्रहण करना चाहिए—यह कर्म नाम है। यहाँ पर चकार का वचन आज्य की निवृत्ति के ही लिये है ।४। प्रत्येक ऋचा मे पाँच आहुतियों से हवन करके स्विष्ट कृत करे। "मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनायकम्" इससे करना चाहिए। शौनकादि ने भिन्न वचन कहे हैं उनही सब की निवृत्ति के लिये ही यहाँ पर यह वचन दिया गया है ।५।

स्वप्नममनोज्ञं दृष्ट्वाऽद्या नो देव सवितरिति द्वाभ्यां यच्च गोषु दुष्वप्न्यमिति पञ्चभिरादित्यमुपतिष्ठेत ।६। यो मे राजन्युज्यो वा सखा वेति वा ।७। क्षुत्वा जृम्भित्वाऽमनोज्ञं दृष्ट्वा पापकं गन्धमाघ्रायाक्षिस्पन्दने कर्णध्वनने च सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां मयि दक्षक्रतू इति जपेत् ।८। अगमनीयां गत्वा-

ऽयाज्यं याजयित्वाऽभोज्यं भुक्त्वाऽप्रतिग्राह्यं प्रतिगृह्य चैत्यं यूपं वोपहत्य पुनर्मा मैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः। पुनर्द्रविणमैतु मां पुनर्ब्राह्मणमैतु मां स्वाहा । इमे ये धिष्ण्यासो अग्नयो यथास्थानमिह कल्पताम्। वैश्वानरो वावृधानोऽन्तर्यच्छतु मे मनो हृद्यन्तरममृतस्य केतुः स्वाहेत्याज्याहुती जुहुयात् ।९। समिधो वा ।१०। जपेद्वा ।११। ख० ६ ।

अथवा "योने राजन् युज्य" इससे अथवा "सखा वा"— इनसे पूर्व सात आहुतियों से करे—यह विकल्प है ।७। इन छै निमित्तों में जो नीचे बताये जायगे "सुचक्षा अहमक्षी भ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत कर्णाभ्यां मयि दक्षक्रतू" इसका जाप करना चाहिए। क्षुत् जृम्भण—अमनोज्ञ दर्शन—पावक गन्ध का आघ्राण—अक्षिस्पन्दन और कर्ण ध्वनन ये छै निमित्त होते हैं ।८। गमन न करने के योग्य स्त्री का गमन करके—अयाज्य का याजन कर कर—अभोज्य का भोजन करके—अप्रतिग्राह्य का प्रतिग्रहण करके अथवा चैत्य यूप का उपहनन करके "पुनर्मा मैं। त्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः। पुनर्द्रविण मैतु मां पुनर्ब्राह्मण मैतु मां स्वाहा"—"इमे धिष्ण्यासो अग्नयो यथा स्थान मिहकल्पताम्। वैश्वानरो वावृधानोऽन्तर्यच्छतु मे मनो हृद्यन्तर ममृतस्य केतुः स्वाहा" इससे आज्य की आहुतियों का हवन करना चाहिये ।९। अथवा समिधाओं का आधान करना चाहिए ।१०। अथवा जाप करे। जप के पक्ष में स्वाहाकार का त्याग कर देना चाहिए क्योकि वहाँ पर तो केवल जाप ही है और प्रदान का आभाव होता है ।११।

अथ्याधितं चेत्स्वपन्तमादित्योऽभ्यस्तमियाद्वाग्यतोऽनुपविशन्रात्रिशेषं भूत्वा येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तम इति पञ्चभिरादित्यमुपतिष्ठेत ।१। अभ्युदियाच्चेदकर्मश्रान्तमनभिरूपेणा कर्मणा वाग्यत इति समानमुत्तराभिश्चतसृभिरुपस्थानम् ।२। यज्ञोपवीती नित्योदकः संध्यामुपासीत

वाग्यतः ।३। सायमुत्तरापराभिमुखोऽन्वष्टमदेशं सावित्री जपेदर्धास्तमिते मण्डल आनक्षत्रदर्शनात् ।४। एवं प्रातः ।५।

यदि अभ्युदित के सोते हुए होने पर सूर्य अस्तता को प्राप्त हो जावे तो वाग्यत होकर अनुपविष्ट होता हुआ "येन सूर्य ज्योतिषा बाधसेतम इससे पाँचो मे आदित्य का उपस्थान करना चाहिए अर्थात् उदित होने पर ही करे ।१। अभ्याधित स्वपन करते हुए को यदि विहित कर्म से अश्रान्त और अकर्म श्रान्त को अभ्युदय होवे तो ही यह प्रायश्चित होता है और विहित कर्म से श्रान्त को यह प्रायश्चित्त नहीं होता है। अविहित कर्म से श्रान्त होवे तभी करना चाहिए। उस समय मे "यस्य ते विश्वाः" इन चारों से उपस्थान करे और दूसरे दिन उदित होने पर ही करना चाहिए ।२। जो यज्ञोपवीती हो उसे नित्योदक होकर वाग्यत होते हुए सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। यहाँ पर दोनों सन्ध्या समान हे ।३। अब प्रति सन्ध्या मे कैसे उपासना करनी चाहिए—यही बतलाया जाता हे—सायङ्काल मे उत्तर की ओर अभिमुख होकर करे और अन्वष्टदेश में अभिमुख होवे प्रतीची दिशा में जो उत्तर भाग है उसके अभिमुख होना चाहिए—यही तात्पर्य है। सावित्री का जाप करे। अब मण्डल में अर्धास्तमित हो तब से लेकर जब तक नक्षत्रों का दर्शन होवे तब तक जाप करते रहना चाहिए ।४। इसी विधि से प्रातः काल मे भी करना चाहिए ।५।

प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात् ।६। कपोतश्चेदगारमुप-
हन्यादनुपतेद्वा देवाः कपोत इति प्रत्यृचं जुहुयाज्जपेद्वा।७।
वयमु त्वा पथस्पत इत्यर्धचर्चा परिष्यन् ।८। संपूषन्विदु·
षेति नष्टमधिजिगमिषन्मूलहो वा ।९। सपूषन्नध्वन इति
महान्तमध्वानमेष्यन्प्रतिभयं वा ।१०। ख० ७ ।

प्राङ्मुख होकर स्थित रहता हुआ पूर्व की ही भाँति जब नक्षत्र अर्ध अस्तमित हों तब से प्रारम्भ करके सूर्य उदित हो तब तक करना

चाहिए ।८। शुक्ल वर्ण वाला अरण्य वासी रक्तपाद कपोत यदि उपहनन करे अथवा अनुयत न करे तो " देवाः कपोत" इससे प्रति ऋचा के हवन करे अथवा जाप करना चाहिए ।७। 'वयमुत्वा पथस्पता' इससे अर्धचर्या का चरण करता हुआ प्रति ऋचा में हवन करे अथवा इसका जाप करना चाहिए ।८। नष्ट हुई वस्तु को प्रतिलब्ध करने के लिये अथवा प्रज्ञा से हीन पुरुष हवन करे अथवा इसका जाप करे। मन्त्र यह है—"स पूपनविदुपा" इति ।९। "संपूपमध्वन" इति इसको महान् अध्वा को गमन करते हुए भयानक अध्वा को जाते हुए इस उक्त मन्त्र से हवन करना चाहिए अथवा जाप करना चाहिये ।१०।

अथैतान्युपकल्पयीत समावर्तमानो माण कुण्डले वस्त्रयुगं छत्रमुपानद्यु गं दण्ड स्रजमुन्मर्दनमनुलेपनमाञ्जनमुष्णीपमित्यात्मने चाऽऽचार्याय च ।१। यद्यु भयोर्न विन्देताऽऽचार्यायैव ।२। समिध त्वाहरेदपराजितायां दिशि यज्ञियस्य वृक्षस्य ।३। आर्द्रामिन्नाद्यकामः पुष्टिकामस्तेजस्कामो वा ब्रह्मवर्चसकाम उपवाताम् ।४। उभयीमुभय कामः ।५।

समावर्तन नाम वाला एक संस्कार होता है। उस संस्कार से सस्क्रियमाण होते हुए अपने लिये और आचार्य के लिये इन वक्ष्यमाण एकादश द्रव्यों का उपकल्पन करे—द्रव्य ये हैं—मणि—कुण्डल-युगवस्त्र-छत्र-उपानत् का जोड़ा—दण्ड—स्रक्—उन्मर्दन—अनुलेपन अञ्जन—उष्णीष ।१। यदि इन उक्त एकादशद्रव्यों को दोनों के लिये उपकल्पित न कर सके तो आचार्य के ही लिये करना चाहिए ।२। यज्ञिय वृक्ष की जो अपराजिता दिशा है उसी से ग्रहण करके आहरण करना चाहिए। 'यज्ञिय' यह वचन होम के लिये यह समिधा है—इसी के ज्ञापन करने के लिये है। इससे जो पहिले 'तिष्ठन्सामिधमादध्यात्' यह कहा है वह सिद्ध हो जाता है ।३। जो अन्नादि की कामना वाला हो वह आर्द्र लावे—पुष्टि की कामना वाला—तेज की कामना वाला अथवा ब्रह्मवर्चस

की कामना रखने वाला हो उसको शुष्क समिधा का ही आहरण करना चाहिए ।४। एक मार्ग आर्द्र का है और दूसरा मार्ग शुष्क का होता है । जो दोनों की कामना वाला पुरुष हो उसको आर्द्र और शुष्क दोनों ही प्रकार की ग्रहण करनी चाहिए ।५।

उपरि समिध कृत्वा गामद्यं च ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय गौदानिकं कर्म कुर्वीत ।६। आत्मनि मन्त्रान्सन्नमयेत् ।७। एकक्षीतकेन ।८। शीतोष्णाभिरद्भिः स्नात्वा गृथ वस्त्राणि पीवसा वसाथे इत्यहते वाससी आच्छाद्याश्मन-स्तेजोऽसि चक्षुर्मे पाहीति चक्षुषी आञ्जीत ।९। अश्मन-स्तेजोऽसि श्रोत्रं मे पाहीति कुण्डले आबध्नीत ।१०।

आहुत समिधा को ऊपर रखे । इसके पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए । और कर्म का अङ्ग होने से भोजन भी देना चाहिए । इस के अनन्तर गोदानिक कर्म भी करना चाहिए । कर्म ग्रहण से कर्म के जो नियम है उन सब का भी परिपालन करना चाहिए । यथा—आप्लवन—वाग्यत आदि है । यह कर्म स्वयं में वही करे ।६। आत्म वाचक मन्त्रों को करना चाहिए यथा "ओषधे त्रायस्व माम्"—"स्वधिते मा मा हिंसी." "वपते हैं ममायुष्यात्"—"प्रयामनेनत आयुषा"—"शिरो मुख मा म आयु प्रमोषीः" इति ।७। करञ्ज बीज का जहाँ पर एक बीज है वह एक कीत है । उसका पेषण करके उससे उन्मर्दन कराना चाहिए ।८। शीतोष्ण जल से स्नान करके "गृथ वस्त्राणि पीवसा वसाथे" इस मन्त्र से अहत वस्त्रों को लेकर समाच्छादन करे "अश्मनस्तेजोऽसि चक्षुर्मे पाहि" इससे नेत्रों का अञ्जन करना चाहिए । प्रत्येक वस्त्र के धारण करने में मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिए । श्रुति का वचन है कि सर्व प्रथम सव्य नेत्र का अंजन करना चाहिए । इसी प्रकार से प्रत्येक चक्षु के अंजन लगाने पर भी मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिए । श्रुति—"सव्यं मनुष्या अञ्जते प्रथमम् यह है ।९। "अश्मयस्तेजोऽसि श्रोत्रं मे पाहि"—इस से कुण्डलों को बाँधना चाहिए । यहाँ पर भी पहिले दक्षिण कुण्डल को बाँधे और पीछे सव्य को बाँधे । मन्त्रावृत्ति यहाँ पर भी करनी चाहिए ।१०।

अनुलेपनेन पाणी प्रलिप्य मुखमग्रे ब्राह्मणोऽनुलिम्पेद्-बाहू राजन्य उदरं वैश्य उपस्थं स्त्र्यूरू सरणजीविनः ।११। अनार्तोऽस्यनार्तोऽहं भूयासमिति स्रजमपि बध्नीत न मालोक्ताम् ।१२। मालेति चेद्ब्रूयुः स्रगित्यभिधापयीत ।१३। देवानां प्रतिष्ठे स्थः सर्वतो मा पातमित्युपानहावास्थाय दिवश्छद्मासीति च्छत्रमादत्ते ।१४। वेणुरसि वानस्पत्योऽसि सर्वतो मा पाहीति वैणव दण्डम् ।१५। आयुष्यमिति सूक्तेन मणिं कण्ठे प्रतिमुच्योष्णीषं कृत्वा तिष्ठन्त्समिधमादध्यात् ।१६। ख० ८ ।

अनुलेपन का अर्थ कुङ्कुम आदि होता है । अनुलेपन से दोनों हाथों प्रलेपन करे । ब्राह्मण सर्व प्रथम मुख पर लगावे । क्षत्रिय बाहुओं पर और वैश्य सर्व प्रथम उदर पर अनुलेपन करे । ऊरुओं को सर्व प्रथम जो सरण जीवी (शूद्र) हैं वे लेपन करे । स्त्री के विधान होने से यह विधि सर्वत्र होने वाली है ।११। "अनार्तोऽस्यनार्तोऽहं भूयासम्" इस मन्त्र के द्वारा स्रज का भी बन्धन करना चाहिए । माला का बन्धन नहीं करे ।१२। यदि अज्ञान से 'माला'—यह बोले तो स्रक् का अभिधापन करके बाँधे ।१३। "देवानां प्रतिष्ठेस्थः सर्वतो मा पातम्" इस मन्त्र के द्वारा उपानहों का अवस्थापन करे और फिर "दिवश्छन्दासि" इस मन्त्र से छत्र का आदान करता है ।१४। "वेणुरसि वानस्पत्योऽसि सर्वतो मा पाहि" इस मन्त्र से वेणु के दण्ड का आदान करना चाहिये ।१५। "आयुष्यम्"—इस सूक्त के द्वारा मणि को कण्ठ में प्रतिमोचन करके अहत वस्त्र के द्वारा शिर का वेष्टन करना चाहिए । मणि सुवर्णमय होता है । यहाँ पर 'तिष्ठन्'—इसका ग्रहण है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अन्यत्र आसीन के ही कर्म होते हैं ॥१६॥

स्मृतं निन्दा च विद्या च श्रद्धा प्रज्ञा च पञ्चमी । इष्टं दत्तमधीतं च कृतं सत्यं श्रुतं व्रतम् । यदग्ने सेन्द्रस्य सप्रजापतिकस्य सऋषिकस्य सऋषि राजन्यस्यसपितृकस्य सपितृराजन्यस्य समनुष्यस्य समनुष्यराजन्यस्य साका-

शस्यः सातीकाशस्य सानूकाशस्य सप्रतीकाशस्य सदेवमनुष्यस्य सगन्धर्वाप्सरस्कस्य सहारण्यैश्च पशुभिर्ग्राम्यैश्च यन्म आत्मन आत्मनि व्रतं तन्मे सर्वव्रतमिदमहमग्ने सर्वव्रतो भवामि स्वाहेति ।१। ममाग्ने वर्च इति प्रत्यृचं समिधोऽभ्यादध्यात् ।२। यत्रैनं पूजयिष्यन्तो भवन्ति तत्रैतां रात्रीं वसेत् ।३। विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम् ।४। तस्यैतानि व्रतानि भवन्ति ।५।

स्मृत, निन्दा, विद्या, श्रद्धा, प्रज्ञा, इष्ट, दत्त, अधीन, कृत, सत्य, श्रुत, व्रत.—ये मेरे उभय व्रत है, इन शब्दों को कहकर सदाग्नेः सेन्द्रस्य सप्रजापतिकस्य सऋषिकस्य सऋषि राजन्यस्य सपितृकस्य सपितृ राजन्यस्य समनुष्यस्य समनुष्य राजन्यस्य साकाशस्य सातीकाशस्य सानूकाशस्य सप्रतीकाशस्य सदेवमनुष्यस्य सगन्धर्वाप्सरस्कस्य सहारण्यैश्च पशुभिः ग्राम्यैश्च यन्म आत्मन आत्मनि व्रत तन्मे सर्वव्रतमिदमहमग्ने सर्वं व्रतो भवामि स्वाहा। इति ऐसा उपदेश करते है ।१। "ममाग्ने वर्च" इससे प्रति ऋचामें समिधाओं का अभ्याधान करना चाहिए। प्रकृत में आधान होने पर भी पुनः 'अदध्यात्' इसका वचन पूर्व के अधिकार की निवृत्ति के ही लिये है। इससे यह निकलता है कि उपविष्ट होकर ही आधान करना चाहिए खड़े होते हुए न करे। फिर स्विष्टकृत आदि होमशेष को समाप्त करे ।२। जहां पर मधुपर्क से आदरणीय को पूजते हैं वहां पर उस रात्रि में वसति करनी चाहिए ।३। विद्या के अन्त में अर्थात् विद्या ग्रहण करने के अन्त मे गुरु को अर्थ के लिये निमन्त्रित करता है— गुरु से प्रार्थना करे मै आपके लिये क्या भेंट दू, गुरु जिस अर्थ को कहे उसे करके स्नान करता है। अथवा अनुज्ञात होकर स्नान करना चाहिए। स्नान का तात्पर्य समावर्तन होता है ।४। उसके ये व्रत होते है। उपदेश से ही ब्रह्मत्व के सिद्ध होने पर यह वचन रात्रि में स्नान नही करे इसी लिये है ।५।

न नक्तं स्नायान्न नग्नः स्नायान्न नग्नः शयीत । न नग्नां

स्त्रियमीक्षेतान्यत्र मैथुनात् । वर्षति न धावेत् ।६। न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेन्न संशय-मभ्यापद्येत ।७। महद्वै भूतं स्नातको भवतीति विज्ञायते ।८। ख० ६ ।

रात्रि में स्नान कभी नहीं करना चाहिए । नग्न होकर स्नान न करे और नग्न होकर शयन न करे । किसी भी स्त्री को नग्न नहीं देखे । अपनी स्त्री को भी मैथुन के समय में ही नग्न देखे अन्य किसी भी समय में न देखे । वर्षा होने के समय में धावन नहीं करे ।६। किसी वृक्ष पर नहीं चढ़ना चाहिए । किसी कुए में नीचे न उतरना चाहिए और बाहुओं से नदी को पार न करे । इसी प्रकार से अन्य भी ऐसे कार्य न करे जिनमे प्राणों का संशय होवे । ये सब प्रतिषेध प्राण संशय के अभ्यापादन प्रतिषेधत्व के ज्ञापन के ही लिये है । अर्थ संशयाभ्या पादन मे कोई दोष नहीं है ।७। स्नातक महद्भूत होता है—ऐसा सुना जाता है । स्नातक महत्त्व इसीलिये है कि जैसा स्मृति में कहा है— "देवैश्चापि मनुष्यैश्च तिर्यग्योनिभिरेवच । गृहस्थः सेव्यते यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी" । अर्थात् देव-मनुष्य-तिर्यग्योनि वाले सबके द्वारा गृहस्थ का ही सेवन किया जाता है अतएव गृहाश्रमी श्रेष्ठ होता है ।८।

गुरवे प्रसक्ष्यमाणो नाम प्रब्रुवीत ।१। इदं वत्स्यामो भो ३ इति ।२। उच्चै रूर्ध्व नाम्नः ।३। प्राणापानयोरुपांशु ।४। आ मन्द्रै रिन्द्र हरिभिरिति च ।५। अतो वृद्धो जपति प्राणापानयोरुरुव्यचास्तया प्रपद्ये देवाय सवित्रे परिददामीत्यृच च ।६। समाप्यों प्राक्स्वस्तीति ज पित्वा महिश्रीणामित्यनुमन्त्र्य ।७।

समावृत्त होकर शिष्य गुरु का देवदत्त—ऐसा नाम बोले ।१। इसके अनन्तर यह कहे कि—भो३ इस आश्रम में वास करेंगे ।२। नाम के आगे उच्च स्वर से बोलना चाहिए । गुरु का नाम तो उपांशु ही बोले । यही तात्पर्य होता है ।३। इसके अनन्तर "प्राणापानयो रुरुव्यचा" इति—इस मन्त्र को उपांशु बोलना चाहिए शिष्य यह अर्थ है ।४। "आमद्रै रिन्द्र

हरिभिः" इति और इसको उपांशु बोलना चाहिए शिष्य ।५। अतः आचार्य इन दो मन्त्रों को जपता है। अतो वृद्धो जयति—इस वचन से यह ज्ञात किया जाता है कि शिष्य भी पूर्व में इन दोनों मन्त्रों को जपता है। "आमन्द्रै" इस ऋचा को और "प्राणापानयोरुपव्यचा स्तया प्रपद्ये देवाय सविश्रे परिददामि" इसको जपता है ।६। समाप्य—यह वचन आचार्य ही 'ॐ प्राक्' इस मन्त्र को जपे—जप करके "महिस्रीणाम वो ऽस्त्विति" सूक्त मे शिष्य का अनुमन्त्रण करके 'वस्स्यथ' इसका अभिगृहन करना चाहिए ।७।

एवमतिमृष्टस्य न कुतश्चिद्भयं भवतीति विज्ञायते ।८। वयसाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वा कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इति सूक्ते जपेद्देवीं वाचमजनयन्त देवा इति च ।९। स्तुहि श्रुतं गर्तसद युवानमिति मृगस्य ।१०। यस्या दिशो बिभीयाद्यस्माद्वा तां दिशमुल्मुकमुभयतःप्रदीप्त प्रत्यस्येन्मन्थ वा प्रसव्यमालोड्याभय मित्रावरुणा मह्यमस्त्वर्चिषा शत्रून्दहन्त प्रतीत्य मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विन्दन्तु मिथो भिन्दाना उपयन्तु मृत्युमिति संसृष्टं धनमुभय समाकृतमिति मन्थं न्यञ्चं करोति ।११। ख० १०।

इस प्रकार से जो अतिगृष्ट होता है उसको कहीं से भी भय नहीं होता है—यह जाना जाता है। यह श्रुतिमूलार्थ प्रशंसा है ।८। पक्षियों की अप्रिय वाणी का श्रवण करके 'कनिक्रदज्जनुष प्रब्रुवाण" इस सूक्त का जप करे और 'देवीं वाचमजनयन्त देवा" इसका जाप करे ।९। मृग की अमनोज्ञ वाणी को सुनकर 'स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्" इस ऋचा का जाप करना चाहिए ।१०। जिस दिशा से अथवा जिस पुरुष व्याघ्र से अथवा अन्य से भय होवे उसी दिशा के प्रति दोनों ओर उल्मुक को प्रत्यस्य करे "अभमाम्" इत्यादि से प्रदीस करे। अथवा, मन्थ को प्रसव्य में आलोडन करके उस दिशा के अभिमुख 'संसृष्टम्' इससे न्यञ्च करना चाहिए ।११।

सर्वतोभयादनाज्ञातादष्टावाज्यात्पृथिवी वृता साऽग्निना वृता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। अन्तरिक्ष वृतं तद्वायुना वृतं तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। द्यौर्वृता साऽऽदित्येन वृता वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। दिशा वृतास्ताश्चन्द्रमसा वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। आपो वृतास्ता वरुणेन वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। प्रजा वृतास्ताःप्राणेन वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। वेदा वृतास्ते छन्दोभिर्वृतास्तैर्वृतैर्वर्त्रैर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा। सर्वं वृतं तद्ब्रह्मणा वृतं तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहेति ।१। अथापराजितायां दिश्यवस्थाय स्वस्त्यात्रेयं जपति यत इन्द्र भयामह इति च सूक्तशेषम् ।२। ख० ११ ।

यदि सभी दिशाओं से भय उत्पन्न होता है और यह नहीं जाना जाता है कि इस पुरुष से भय हो रहा है और सभी ओर से भय अज्ञात है तो लौकिक अग्नि में आठ आज्य की आहुतियों का हवन करना चाहिये। मन्त्र ये हैं – "पृथिवी वृत्ता साग्निना वृत्ता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद् बिभेमि तद्वारणे स्वाहा"—"अन्तरिक्षं कृतं तद्वायुना कृततेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भया द्विभेमि तद्वारणे स्वाहा"—द्यौर्वृता साऽदित्येन वृता तया वृतया वर्त्र्या यस्माद्भयाद् बिभेमि तद्वारये स्वाहा"—"दिशो वृतास्ताश्चन्द्रमसा वृता स्ताभि र्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा"—'आपो वृतास्ता वरुणेन वृतास्ताभि र्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भया द्बिभेमि तद्वारये स्वाहा" —प्रजा वृतास्ताः प्राणेन वृतास्ताभिर्वृताभिर्वर्त्रीभिर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा"—'वेदा वृतास्ते छन्दोभिर्वृतास्तैर्वृतैर्वर्त्रैर्यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा" —सर्वंवृतं तद् ब्रह्मणा वृतं तेन वृतेन वर्त्रेण यस्माद्भयाद्बिभेमि तद्वारये स्वाहा" इति ।१। इसके

अनन्तर अपराजित दिशा मे अब स्थित होकर "स्वाग्निनो मिमीताम्" इस सम्पूर्ण सूक्त का जप करता है । इसके अनन्तर सब प्रायश्चित्त आदि का समापन कर देना चाहिए । और "यत इन्द्र भयामहे" इस सूक्त शेष का जाप करता है । वहाँ पर यदि अप्रीति प्रदा वाणी का श्रवण करे और भय उत्पन्न होवे तब इसी प्रकार से करना चाहिए—यह सब अतिसृष्ट का विषय है । तथा अतिसृष्ट को कहीं और किसी से भी भय नहीं हुआ करता है ।२।

संग्रामे समुपोढले राजानं सन्नाहयेत् ।१। आ त्वाहार्षमन्तरेधीति पश्चाद्रथस्यावस्थाय ।२। जीमूतस्येव भवति प्रतीकमिति कवचं प्रयच्छेत् ।३। उत्तरया धनुः ।४। उत्तरां वाचयेत् ।५। स्वयं चतुर्थीं जपेत् ।६। पञ्चम्येषुधिं प्रयच्छेत् ।७।

संग्राम के समुपस्थित होने पर आगे बताई गयी विधि से पुरोहित राजा का संनाहन करे ।१। रथ के पीछे अवस्थित होकर "आत्वा हार्षमन्तरेधि" इस का जाप करे ।२। इस सूक्त की आगे कही "जीमूतस्येव भवति प्रतीकम्" इस से राजा के लिये कवच दे देना चाहिए ।३। इसके उत्तरा से धनुष को देवे ।४। उत्तरा ऋचा को राजा से पढ़वा देना चाहिए ।५। चतुर्थी का स्वयं पुरोहित को जप करना चाहिए ।६। पाँचवी से राजा को तूणीर देना चाहिए ।७।

अभिप्रवर्तमाने षष्ठीम् ।८। सप्तम्याऽश्वान् ।९। अष्टमोभिपूनवेक्षमाणं वाचयति ।१०। अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुमिति तलं नह्यमानम् ।११। अथैनं सारयमाणमुपारुह्याभीवर्तं वाचयति प्र यो वां मित्रावरुणेति च द्वे ।१२। अथैनमन्वीक्षेताप्रतिरथशाससौपर्णैः ।१३। प्र धारयन्तु मधुनो घृतस्येत्येतत्सौपर्णम् ।१४।

रथ के यथेष्ट दिशा में प्रवर्त्तमान होने पर षष्ठी का जाप करे ।८। सप्तमी से अश्वों का अनुमन्त्रण करना चाहिए ।९। अपने बाणों को

देखने वाले राजा से आठवी का वाचन कराना चाहिए ।१०। व्याघात के परित्राण को तन कहते हैं । तन को नह्यमान करने वाले राजा के द्वारा इसका वाचन कराना चाहिए ।११। इसके अनन्तर सारथि के द्वारा सारयमाण राजा को रथ में उपारूढ़ करके "आभिवर्त्तन" इस सूक्त को बचयाना चाहिए और प्रथोवाम्" इन दो ऋचाओं का वाचन करावे ।१२। इन निम्न वर्णित सूक्तों के द्वारा इस राजा का अन्वीक्षण करे—"आशुः शिशानः" यह सूक्त अप्रतिष्य है । "शास इत्थेति" यह शास है ।१३। सौपर्ण सूक्तों की बहुलता होने से "प्रधारमन्तु मधुनो घृतस्य" यह सौपर्ण होता है ।१४।

सर्वा दिशोऽनुपरियायात् ।१५। आदित्यमौशनसं वाऽवस्थाय प्रयोधयेत् ।१६। उपश्वासय पृथिवीमुत द्यामिति तृचेन दुंदुभिमभिमृशेत् ।१७। अवसृष्टा परापतेतीषून्विसर्जयेत् ।१८। यत्र बाणाः संपतन्तीति युध्यमानेषु जपेत् ।१९। संशिष्याद्वा संशिष्याद्वा ।२०। ख० १२।

इसके अनन्तर राजा सब दिशाओं में रथ के द्वारा अनुक्रम से गमन करे ।१५। यदि दिन हो तो जिस दिशा मे आदित्य देव हों उसी दिशा में आस्थित होकर और यदि रात्रि हो तो जिस दिशा में शुक्र होवे उसी दिशा का परिग्रहण कर राजा को युद्ध करना चाहिए । आदित्य के या शुक्र के प्रति युद्ध नहीं करना चाहिए ।१६। राजा को चाहिए कि "उपश्वासय पृथिवी मुतद्याम्" इस तृचा से दुन्दुभिका अभिमर्षन करे ।१७। "अव सृष्टा परापत" इससे वाणों का राजा विसर्जन करे ।१८। पुरोहित को चाहिए कि युद्धयमान होने पर "यत्र वाणाः संपतन्ति" इसका जाप करे ।१९। अथवा संशिष्याद् संशिष्याद् इसका जाप करे ।२०।

— — —

चतुर्थोऽध्यायः

ॐ आहिताग्निश्चेदुपतपेत्प्राच्यामुदीच्यामपराजितायां वा दिश्युदवस्येत् ।१। ग्रामकामा अग्नय इत्युदाहरन्ति ।२। आशंसन्त एनं ग्राममाजिगमिषन्तोऽगदं कुर्युरिति ह विज्ञायते ।३। अगदः सोमेन पशुनेष्ट्येष्ट्वाऽवस्येत् ।४। अनिष्ट्वा वा ।५।

यदि आहिताग्नि को व्याधि पीड़ित करे तो उस प्रकार का होने पर आहिताग्नि को अग्नि के साथ ही ग्राम से निकल कर प्राची—उदीची अथवा अपराजिता दिशा में गमन करना चाहिए और जाकर वहीं पर ही तब तक स्थित रहे जब तक रोग रहे ।।१।। ब्रह्मवादी लोग यह कहते है कि अग्नि ग्राम काम होती है इसलिये गमन करना चाहिए ।।२।। ग्राम में आने की इच्छा वाली अग्नियाँ इस आहिताग्नि को कहती हैं कि यह अगद अर्थात् निरोग हो जावे। और ऐसा कहती हुई वे अग्नियाँ इस प्रकार से रोग रहित कर देवें—यह श्रूयमाण होता है। सर्वत्र श्रुत्याकार गृह्यकर्म समुच्छिन्न श्रुतिमूल है—यह दर्शन के लिये है ।।३।। जब वह अगद हो जावे तो सोमादि के द्वारा यजन करके ग्राम में पुनः प्रवेश करे। अग्निष्टोम ही सोम कार्य होता है ।।४।। अथवा यजन न करके ही ग्राम में प्रवेश करना चाहिये ।।५।।

संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ।६। दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ।७। यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ।८। व्याममात्रं तिर्यक् ।९। वितस्त्यवाक् ।१०।

अभित आकाशं श्मशानम् ।११। बहुलौषधिकम् ।१२। कण्टकिक्षीरिणस्त्विति यथोक्तं पुरस्तात् ।१३।

इसके अनन्तर मृत हो जाने पर भूमि के एक देश का खनन करके करे और वह खनन आग्नेयी दिशा मे अथवा नैऋत्य दिशा में करना चाहिए ।।६।। गर्त्त ऐसा होवे कि जो दक्षिणा प्रवण होवे या आग्नेयी दिशा की ओर ही प्रवण होना चाहिए ।।७।। अपनी बाहुओं को ऊपर करके खड़ा होने पर जितना प्रमाण होवे उतने ही प्रमाण वाला दीर्घ खात (खड्ड) होवे ।।८।। पांच अरत्नी मात्र व्याम में और तिर्यक भी वह गर्त्त होना चाहिए ।।९।। बारह अङ्गुल के परिमाण वाली वितस्ति होती है उतना ही प्रमाण वाला नीचे करे ।।१०।। यहा पर श्मशान ग्रहण करने से दो श्मशानों ग्रहण किया जाता है। एक तो जो दहन करने का भूमिभाग होता है वह श्मशान होता है। जहा पर सञ्चित की हुई अस्थियां एकत्री जाया करती हैं वह भी श्मशान होता है। ये दोनों ऐसे ही होगें जहां सभी ओर आकाश हो ।।११।। यह दोनो ही बहुत अधिक ओषधियो वाले होने चाहिएँ ।।१२।। वहां पर जो कांटेदार हों और क्षीर वाले हों इस प्रकार से वस्तु परीक्षा में जो भी उनके विषय में क्रम बताया गया है वही यहाँ भी प्राप्त होता है और वैसा ही करे—यह भावार्थ है ।।१३।।

यत्र सर्वत आपः प्रस्यन्देरन्नेतदादहनस्य लक्षण श्मशानस्य ।१४। केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ।१५। विगुल्फ बर्हिराज्यं च ।१६। दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत्पित्र्यं पृषदाज्यम् ।१७। ख० १ ।

जिस देश मे सभी जगह जल जाया करता है वह दहन श्मशान का लक्षण होता है। यह अस्थि निधान वाले श्मशान का लक्षण नहीं होता है। सब ओर से निम्न और मध्य में ऊँचा जो देश हो और पूर्व मे बताये हुए लक्षणों वाला हो वही पर खनन कराना चाहिए ।।१४।। षष्ठ अध्याय में पहिले केश श्मश्रु-नख-लोम के विषय में जो कहा गया है

दीक्षित के मरने में यही यहाँ पर भी करना चाहिए ॥१५॥ बहुत अधिक वहि राज्य वाला स्थल ही उपकल्पित करना चाहिए ॥१६॥ यहाँ पर प्रेत कर्म मे दधि में सर्पिलाया करते है। यह पृषदाज्य होता है और उसकी भी उपकल्पना करनी चाहिए। यह दिव्य पृषदाज्य है ॥१७॥

अथैतां दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ।१। अन्वञ्च प्रेतमयुजोऽमिथुनाः प्रवयसः ।२। पीठचक्रेण गोयुक्तेने-त्येके ।३। अनुस्तरणीम् ।४। गाम् ।५। अजां वैकवर्णाम् ।६। कृष्णामेके ।७। सव्ये बाहौ बद्ध्वाऽनु सङ्कालयन्ति ।८। अन्वञ्चोऽमात्या अधोनिवीताः प्रवृत्तशिखा ज्येष्ठप्र-थमाः कनिष्ठजघन्याः ।९।

जिस दिशा में भूमि का भाग खोदा गया है उसी दिशा की ओर प्रत्यग्नि यज्ञ पात्रों को बान्धव लोग ले जाया करते हैं ॥१॥ पृष्ठ में आगत प्रेत को ले जाते है। वहाँ पर पुरुष और स्त्रियाँ प्रवयस और विषम होते है ॥२॥ यहा नियम यही है यज्ञपात्र और अग्नि कोई भी पहिले होगा। कुछ मनीषीगण यही मानते है कि गौ से युक्त शंकर आदि के द्वारा ही प्रेत का नयन करना चाहिए जो शंकर पीठ चक्र वाला होवे ॥३॥ प्रेत को अपने द्वारा जो अनुस्तरण किया जाता है (स्त्री पशु) वह अनुस्तरणी होती है। उसी अनुस्तरणी को कतिपय महानुभाव चाहते है ॥४॥ उस अनुस्तरणी को गौ को करना चाहिए ॥५॥ जो केवल एक ही वर्ण (रंग) वाली बकरी हो उसको अनुस्तरणी बनाना चाहिए ॥६॥ कुछ का मत है कि कृष्ण वर्ण वाली को अनुस्तरणी करे ॥७॥ मध्य मे सव्य बाहुओं में रस्सी को बाँधकर बान्धव प्रेत के पीछे ले जाते है ॥८॥ प्रेत के पृष्ठ भाग मे बान्धव गण अधोनिवीत और मुक्त केशों वाले अनुगमन करें। उन अनुगमन करने वालों मे सबसे बड़ा प्रथम होवे और इसी अनुपूर्वी से सब अनुगमन करें ॥९॥

प्राप्यैव भूमिभागं कर्तोदकेन शमीशाखया त्रिः प्रसव्यमा-यतनं परिव्रजन्प्रोक्षत्यपेत वीत वि च सर्पतात इति

।१०। दक्षिणपूर्व उद्ध ृ मन्त्र आहवनीय निदधाति ।११। उत्तरपश्चिमे गार्हपत्यम् ।१२। दक्षिणपश्चिमे दक्षिणम् ।१३। अथैनमन्तर्वेदीध्मचितिं चिनोति यो जानाति ।१४।

इस प्रकार से सब लोग उस भूमि भाग को प्राप्त करके फिर दहन का करने वाला उदक से शमी की शाखा से तीन बार अप्रदक्षिण आधमन के परिव्रजन करता हुआ प्रोक्षण करता है। प्रोक्षण का मन्त्र यह है—"अपेत वीत विच सर्पतात" इति। अन्य लोग 'गर्त्तोदकेन'—इसको पढ़ते हैं। यह अर्थ है कि खात के खोदने के समय में अग्नुरस्तात् आहवनीय का जानुमात्र गर्त खोदकर उसमें जल का निषेचन करे ॥१०॥ दक्षिण पूर्व देश में खात के अन्न से एक देश में आहवनीय को रखना चाहिए। कुछ का कथन है कि खात के बाहिर रक्खे। उत्तर में इसी प्रकार से जानना चाहिए ॥११॥ गार्हपत्य को उत्तर पश्चिम में रक्खे ॥१२॥ दक्षिण पश्चिम में दक्षिण का विधान करना चाहिए ॥१३॥ इस सूत्र में अथ शब्द अन्य कर्म के अस्तित्व के ज्ञापन करने के ही लिए है। उससे इस काल में प्रणीता चमस से प्रणयन करना चाहिए। अन्यत् तो तन्त्र नहीं है—ऐसा कहेंगे। इस काल में खात में सुवर्ण का टुकड़ा रखकर तिलों का अवकिरण करे इसके पश्चात् इध्म चिति का दृष्ट होने से चयन करना चाहिए। खात में जो कोई भी कुशल हो और जानता हो वह इनमें समर्थ इध्म चिति का (चिता का) चयन किया करता है। इससे चयन करने वाले का कोई भी विशेष नियम नहीं है ॥१४॥

तस्मिन्बर्हिरास्तीर्य कृष्णाजिनं चोत्तरलोम तस्मिन्प्रेतं संवेशयन्त्युत्तरेण गार्हपत्यं हृत्वाऽऽहवनीयमभिमुखशिरसम् ।१५। उत्तरतः पत्नीम् ।१६। धनुश्च क्षत्रियाय ।१७। तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति ।१८। कर्ता वृषले जपेत् ।१९। धनुर्हस्तादाददानो मृतस्येति धनुः ।२०। उक्तं

वृषले ।२१। अधिज्यं कृत्वा संचितिमचित्वा संशीर्यानु-
प्रहरेत् ।२२। ख० २ ।

इसके अनन्तर कर्त्ता उस चिता में बर्हियों का आस्तरण किया करता है। इसके अनन्तर कर्त्ता ही ऊर्ध्व लोम वाले कृष्णाजिन का आस्तरण करता है। उसके उपरान्त उस कृष्णाजिन पर उत्तर की ओर से गार्हपत्य प्रेत को ले जाकर फिर आहवनीय को बान्धवगण प्रेत के अभिमुख शिर वाले को संवेशित किया करते है ॥१५॥ उसके उत्तर भाग में प्रेत की पत्नी को संवेशित करते है अर्थात् सुला दिया करते है । यह कर्म तीनों वर्णों का समान ही हुआ करता है। १६॥ यदि प्रेत क्षत्रिय हो तो उसके उत्तर में धनुष को संवेशित किया करते है ॥१७॥ इसके अनन्तर उस प्रेत की पत्नी को पति स्थानीय देवर को उठाना चाहिए। इससे यह जाना जाता है कि पति द्वारा किये जाने वाला पुंसवन आदि कर्म को पति के अभाव में देवर को करना चाहिए क्योंकि वह पति स्थानीय ही माना गया है । अथवा अन्तेवासी करे या बहुत समय पर्यन्त दासता करते हुए जो वृद्ध होगया हो, वह दास करें । मन्त्र यह है—"उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकम" इति ॥१८॥ जरद्दास अर्थात् वृद्ध सेवक के उत्थापयिता होने पर कर्त्ता को मन्त्र बोलना चाहिए। अन्यकाल में जो उत्थापन करे वही मन्त्र को बोले ॥१९॥ "धनुः' इस ऋचा के द्वारा देवरादि धनुष को उठावे ॥२०॥ वृषल के होने पर कर्त्ता मन्त्र का जप करे ॥२१॥ उस समय में संचिति के पहिले अधिज्य करके और धनुष को अपज्य करके भङ्ग करके फेंक कर देना चाहिए। प्रेत के उत्तर में चिता के ऊपर क्षेप करना चाहिए। होम के अनन्तर प्रेत के उरःस्थल पर करे । धनुष का संवेशन—उसका अपनयन और अनुप्रहरण—ये तीन कार्य क्षत्रिय के विशेष होते है शेष सब समान ही है ॥२२॥

अथैतानि पात्राणि योजयेत् ।१। दक्षिणे हस्ते जुहूम् ।२।
सव्य उपभृतम् ।३। दक्षिणे पार्श्वे स्फ्यं सव्येऽग्निहोत्रह-

वर्णाम् ।४। उरसि ध्रुवां शिरसि कपालानि दत्सु प्राव्णः ।५। नासिकयोः स्रुवौ ।६। भित्त्वा चैकम् ।७।

'अथ' यहां पर अन्य कर्म के ज्ञापन के ही लिये है। सुवर्ण के खण्डों से प्रेत के सात छिद्रों का अविधान करता है। मुख—दो नासिका—दो कान और दो नेत्र—ये सात छिद्र हैं। घृत से सिक्त तिलों का अवकिरण करना चाहिए। इसके उपरान्त पात्रों का योजन होता है। एतानि—इससे विद्यमानों का निर्देश किया जाता है वे प्राकृत और वैकृत होते हैं। उसमें प्राकृत पात्रों का यावज्जीवन धारण होता है क्योंकि अग्निवत् सब कर्मों का शेष होता है। अग्न्याधान मे उत्पन्न प्राकृत होते हैं। विकृति में तो वरुण प्रघासादि में उत्पन्नों का कर्मान्त में उत्सर्ग होता है। विकृति के मध्य में यदि मृत होता है तो उनका भी योजन करना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि जितने भी पात्र विद्यमान हैं चाहे वे प्राकृत हों और वैकृत होवें उन सबका योजन करना चाहिए।१। वरुण प्रघासादि में यदि मृत होवे तो दक्षिण हस्त में जुहूद्वय का योजन करना चाहिए।२। सव्य मे उपभृत का योजन करे।३। दक्षिण पार्श्व में स्पय का और सव्य में अग्निहोत्र हवणी का योजन करना चाहिए।४। सोममध्य मे यदि मृत हुआ हो तो दांतों में ग्रावों का योजन करे—उर में ध्रुवा को और शिर मे कपालों का योजन करे।५। दोनों नासिका के छिद्रों में दो स्रुवों का योजन करे।६। यदि स्रुव एक ही होवे तो उसका भेदन करके दोनों नासिकाओं में योजित करे।७।

कर्णयोः प्राशित्रहरणे।८। भित्त्वा चैकम्।९। उदरे पात्रीम् ।१०। समवत्तधानं च चमसम् ।११। उपस्थे शम्याम् ।१२। अरणी ऊर्वोरुलूखलमुसले जङ्घयोः ।१३। पादयो शूर्प ।१४। छित्त्वा चकम् ।१५।

दोनों कानों में प्राशित्र हरणों का योजन करना चाहिए।८। एक ही हो तो इसका भी भेदन करके ही योजन करे।९। जिसमें हवियों का आसादन किया जाता है उसको पात्री कहते हैं। उदर में पात्री को योजित करना चाहिए।१०। जिसमें उपह्लाव के लिये अवत्त इडा धारण

की जाती है वह चमस का समवत्तधान है और उसको उदर में योजित करना चाहिए ।११। ऊरुओं के ऊपर का भाग उपस्थ होता है उसमें शम्या को योजित करे ।१२। ऊरुओं में अरणी और दोनों जाँघों में उलूखल और मुसल इन दोनों को योजित करना चाहिए ।१३। दोनों पैरों में शूर्पों को योजित करे ।१४। शूर्प एक ही हो तो भेदन करके करना चाहिए ।१५।

आसेचनवन्ति पृषदाज्यस्य पूरयन्ति ।१६। अमा पुत्रो दृषदुपले ।१७। लोहायसं च कौलालम् ।१८। अनुस्तरण्या वपामुत्खिद्य शिरो मुखं प्रच्छादयेदग्नेर्वर्मपरि गोभिर्व्ययस्वेति ।१९। वृक्का उद्धृत्य पाण्योरादध्यादतिद्रवसारमेयौ श्वानाविति दक्षिणं दक्षिणे सव्ये सव्यम् ।२०।

जो भी पात्र हों वे आसेचन वाले होवें अर्थात् छिद्र वाले होने चाहिए तात्पर्य यह है कि पृषदाज्य के धारण में समर्थ होवें। पूरित कर के ही योजित करे क्योंकि सर्वोत्पादन में उस प्रकार से इष्ट होता है ।१६। दृषद् उपल में पुत्र अमा करे। आत्मा के उपयोग के लिये संग्रह करना चाहिए। इसमें गृह में नहीं लावे ।१७। और लोहायस कौलाल का संग्रहण करे। अन्य समस्त आयुधों का योजन करना चाहिए ।१८। अनुस्तरणी से वपा का उत्खेदन करके प्रेत के शिर और मुख को समाच्छादित कर देना चाहिए। "अग्नेर्वर्मपरिगोभिर्व्ययस्व" इस ऋचा से ही करे ।१९। इसके उपरान्त वृक्कों का उद्धरण करके प्रेत के हाथों में "अतिद्रवसारमेयौश्वानौ" इस ऋचा से दक्षिण पाणि में दक्षिण वृक्क को और सव्य में सव्य को देना चाहिए। मन्त्र का उच्चारण एक ही बार करना चाहिए ।२०।

हृदये हृदयम् ।२१। पिण्डयौ चार्के ।२२। वृक्कापचार इत्येके ।२३। सर्वां यथाङ्गं विनिक्षिप्य चर्मणा प्रच्छाद्येममग्ने चमसं मा विजिह्वर इति प्रणीताप्रणयनमनुमन्त्रयते ।२४। सव्यं जान्वाच्य दक्षिणाग्नावाज्याहुती-

जुहुयादग्नये स्वाहा कामाय स्वाहा लोकाय स्वाहाऽनुमतये स्वाहेति ।२५। पञ्चमीमुरसि प्रेतस्यास्माद्वै त्वमजा यथा अयं त्वदधिजायतामसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति ।२६। ख० ३ ।

हृदय को उद्धृत करके हृदय में आधान करे ।२१। कुछ का मत है कि पिण्डयों को हाथों में तूष्णी भाव से देवे। इस प्रकार से वृक्कों का और पिण्डयों का समुच्चय होता है। कुछ मनीषियों का कथन है कि वृक्क के अभाव में पिण्डयों का आधान करना चाहिए ।२२। अनुस्तरणी से चर्म को पृथक् करके प्रेत के जो-जो अङ्ग हैं उस-उस अङ्ग में कल्पित पशु का भी वही-वही अङ्ग विनिक्षिप्त करके उसी के चर्म से प्रच्छादन करके "इममग्ने चमसं मा विजिह्वर" इससे प्रणीता प्रणयन का अनुमन्त्रण करता है ।२३-२४। सव्य जानु को निपतित करके दक्षिणाग्नि में आज्याहुति से हवन करना चाहिए। मन्त्र ये हैं—"अग्नये स्वाहा, कामाय स्वाहा—लोकाय स्वाहा—अनुमतये स्वाहा" ।२५। पाँच की आहुति प्रेत के उरःस्थल में हवन करे। मन्त्र—"अस्माद्वै त्वम जायथा अयं त्वदधिजायत्वामसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इति। यह है। तात्पर्य यह है कि जिस-जिस प्रेत का दाह करना स्मृति में विहित होता है उस प्रेत को इसी विधि से दग्ध करना चाहिए ।२६।

प्रेष्यति युगपदग्नीन्प्रज्वालयतेति ।१। आहवनीयश्चे-त्पूर्वं प्राप्नुयात्स्वर्गंल्लोक एन प्रापदिति विद्याद्रा-स्यत्यसावमुत्रैवम् अस्मिन्निति पुत्रः ।२। गार्हपत्यश्चेत्पूर्वं प्राप्नुयादन्तरिक्ष लोकएन प्रापदिति विद्याद्रा स्त्यस्यसावमुत्रवमयमस्मिन्निति पुत्रः ।३। दक्षिणाग्निश्चेत्पूर्वं प्राप्नुयान्मनुष्यलोक एनं प्रापदिति विद्याद्रास्त्यस्यत्यसावमुत्रैवमयस्मिन्निति पुत्रः ।४। युगपत्प्राप्तौ परामृद्धिं वदन्ति ।५। तं दह्यमानमनुमन्त्रयते प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिरिति समानम् ।६। स एवंविदा दह्यमानः सहैव धूमेन स्वर्गं लोकमेतीति ह विज्ञायते ।७।

इसके अनन्तर परिकर्मी का कर्त्ता 'प्रेपानि युगपत्त्नीम्प्रज्वालयत' इति—इससे व वैसा ही करे ।१। यदि आहवनीय आहिताग्नि शरीर को प्रथम प्राप्त हो जावे तो इस आहिताग्नि को स्वर्ग लोक में प्राप्त करा देवे—यह जान लेना चाहिए । यह आहिताग्नि इस स्वर्ग लोक में ऋद्धि को प्राप्त करेगा इसी प्रकार से मनुष्य लोक में पुत्र ऋद्धि को प्राप्त करेगा यह समझ लेवे ।२। पूर्व में यदि गार्हपत्यअग्नि प्राप्त करे तो उसको अन्तरिक्ष लोक प्राप्त हुआ—यह समझ लेना चाहिए । और इस लोक में पुत्र भी यह प्राप्त करेगा यह समझ लेवे ।३। दक्षिणाग्नि के पूर्व में प्राप्त होने पर बहुत ही शीघ्र उत्पन्न होकर बहुत-सा अन्न आहिताग्नि मनुष्य लोक में प्राप्त किया करता है । और पुत्र इस लोक में बहुत अन्न वाला होता है—यह जान लेवे ।४। यदि सभी अग्नियां एक ही साथ शरीर को प्राप्त होवे तो आहिताग्नि को विशिष्ट स्थान में अत्यन्त उत्कृष्ट ऋद्धि को ब्रह्मवादी लोक कहते हैं । पुत्रों को इस लोक में परम ऋद्धि को बतलाते हैं ।५। यहाँ पर 'तम्' का ग्रहण इस ज्ञापन के करने के लिए है कि उसके प्रति अन्य कर्म भी होता है इस से प्रेत को देकर पितृमेधादि लौकिक करना चाहिए जो दहन किये जाने वाला प्रेत है उसका अनुमन्त्रण करता है । मन्त्र यह है—"प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः" यह समान है ।६। इस प्रकार से ज्वाला के साथ ही वह श्मशान धूम के द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त होता है—यह जाना जाता है ।७।

उत्तरपुरस्तादाहवनीयस्य जानुमात्रं गर्त्तं खात्वाऽवकां शीपालमित्यवधापयेत्ततो ह वा एष निष्क्रम्य सहैव धूमेन स्वर्गं लोकमेतीति विज्ञायते ।८। इमे जीवा वि मृतैरावृत्रन्निति सव्यावृतो व्रजन्त्यनवेक्षमाणाः ।९। यत्रोदकमवहद्भवति तत्प्राप्य सकृदुन्मज्ज्यैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम च गृहीत्वोत्तीर्यान्यानि वासांसि परिधाय सकृदेतान्यापीड्यादग्दशानि विसृज्याऽऽसत आ नक्षत्रदर्शनात् ।१०।

जानुमात्र गर्त में इतने काल तक अनिवाहिक शरीर को समास्थित करके आहिताग्नि संस्कार की प्रतीक्षा करता है। इसके अनन्तर इस काल में सन्नवर से निकल कर धूम के साथ ही स्वर्ग को जाता है—यह सुना जाता है।८। "इमे जीवा विमृतें राववृत्रन्निति" इस ऋचा का जप करके इसके पश्चात् सब समावृत होकर पीछे की ओर अन्वीक्षमाण होते हुए जावें।६। जहाँ पर उदक बहता हुआ स्थिर होता है उसके प्रति जाते है और उसको प्राप्त करके एक बार निमज्जन करते हैं। समानोदक एक बार अञ्जलि का उत्सर्ग किया करते हैं पुरुष और स्त्रियां सभी उसका नाम और गोत्र का ग्रहण करके—यह उदक तुम्हारे लिये है—यह कहकर सेचन किया करते है और दक्षिण की ओर मुख वाले होते हैं। उदक से उत्तरण करके अन्य वस्त्रों को धारण करना चाहिए एक बार आर्द्र वस्त्रों को पीडित करते हैं। उदगु वस्त्रों को शोषण के लिये विसर्जन कर देते हैं। फिर नक्षत्रों के देखने पर गृहों में प्रवेश करना चाहिए। सभी बान्धव गण ऐसा ही करें।१०।

आदित्यस्य वा दृश्यमाने प्रविशेयुः ।११। कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठजघन्याः ।१२। प्राप्यागारमश्मानमग्निं गोमयमक्षतांस्तिलानप उपस्पृशन्ति ।१३। नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन् ।१४। क्रीतोत्पन्नेन वा वर्तेरन् ।१५। त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनः स्युः ।१६। द्वादशरात्रं वा महागुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन् ।१७। दशाहं सपिण्डेषु ।१८। गुरौ चासपिण्डे ।१९। अप्रत्तासु च स्त्रीषु ।२०।

अथवा आदित्य देव के दृश्यमान होने पर प्रवेश करना चाहिए। ।११। सनसे कनिष्ठ सबसे प्रथम प्रवेश करें और ज्येष्ठ उनके पीछे घर में प्रवेश करें।१२। घर में प्राप्त होकर अश्म अग्नि-अक्षत-तिल और जल का उपस्पर्शन करते हैं।१३। बान्धवगण उस रात्रि में अन्न का परिपाक नहीं करें।१४। अथवा क्रीत किये हुए अथवा उत्पन्न हुए अन्न से वृत्ति करें। कुछ विद्वान् इस सूत्र को नहीं पढ़ते हैं।१५। समस्त बान्धवगण तीन रात्रि पर्यन्त अक्षार लवण का अशन करने वाले रहें

।१६। माता पिता, और जो सम्पूर्ण वेद का अध्यापन किया करता है—ये महा गुरु होते हैं । इनके मृत हो जाने पर बारह रात्रि पर्यन्त दान और अध्ययन को वर्जित कर देना चाहिए । दश दिन तक—इसका विकल्प है । यहाँ पर आशौच का विधान नहीं किया जाता है बल्कि केवल दान और अध्ययन का वर्णन ही होता है आशौच तो स्मृति में कहा हुआ दश ही दिन का होता है ।१७। जो सपिण्ड हैं उन सब में दश दिन तक ही शवाशौच होता है । असपिण्ड हैं उनमें भी दश दिन अथवा बारह दिन का होता है—यह विकल्प है ।१८। माता-पिता के और असपिण्ड के होने पर भी दश दिन अथवा बारह दिन का होता है—यह विकल्प है ।१९। और अप्रत्त स्त्रियों के मृत होने पर दश ही दिन का शवाशौच होता है ।२०।

त्रिरात्रमितरेष्वाचार्येषु ।२१। ज्ञातौ चासपिण्डे ।२२। प्रत्तासु च स्त्रीषु ।२३। अदन्तजाते ।२४। अपरिजाते च ।२५। एकाह सब्रह्मचारिणि ।२६। समानग्रामीये च श्रोत्रिये ।२७। ख० ४।

इतर एक देश के अध्यापन करने वाले आचार्यों का आशौच तीन ही रात्रि का होता है ।२१। असपिण्ड ज्ञाति के मृत होने पर तीन ही रात्रि का होता है।२२। प्रत्ता स्त्रियों के मृत होने पर तीन रात्रि का ही आशौच होता है ।२३। जिनके दांत नहीं निकले हों उन बच्चों के मृत होने पर भी तीन रात्रि का ही होता है ।२४। जो गर्भ सम्पूर्ण हो उसके पात होने पर भी तीन ही रात्रि का आशौच होता है ।२५। साथ पढ़ने वाले ब्रह्मचारी के मृत होने पर एक दिन वर्जित कर देना चाहिए ।२६। समान ग्राम में निवास करने वाले श्रोत्रिय के मृत हो जाने पर एक दिन का वर्जन कर देवे । अर्थात् अध्यापन मात्र को ही वर्जित कर देवे दानादिक का वर्जन नहीं करे ।२७।

सञ्चयनमूर्ध्वं दशम्याः कृष्णपक्षस्यायुग्मेष्वेकनक्षत्रे ।१। अलक्षणे कुम्भे पुमांसमलक्षणायां स्त्रियमयुजोऽमिथुनाः

प्रवयसः ।२। क्षीरोदकेन शमीशाखया त्रिः प्रसव्य-मायतन परिव्रजन्प्रोक्षति शीतिके शीतिकावतीति ।३। अङ्गुष्ठोपकानिष्ठिकाभ्यामेकैकमस्थ्यसह्लादयन्तोऽवदध्युः पादौ पूर्वं शिर उत्तरम् ।४। सुसंचितंसचित्य पवनेन सपूय यत्र सर्वत आपो नाभिस्यन्देरन्नन्या वर्षाभ्यस्तत्र गर्तेऽवदध्युरुपसर्प मातरं भूमिमतोमिति ।५। उत्तरया पांसूनवकिरेत् ।६। अवकीर्योत्तराम् ।७। उत्ते स्तभ्नामीति कपालेनापिधायाथानपेक्ष प्रत्याव्रज्याप उप स्पृश्य श्राद्धमस्मै दद्युः ।८। ख० ५।

जिस कर्म के द्वारा अस्थियों का संचयन होता है उसी को संचयन कहते है । कृष्ण पक्ष की दशमी ऊर्ध्व में अयुग्म तिथियों में जैसे एकादशी-त्रयोदशी और पञ्चदशी है और एक नक्षत्र मे अर्थात् जिस नाम से एक ही नक्षत्र अधीत किया जाता है तन्नामक नक्षत्र में अर्थात् जैसे दो आषाढा है—दो फाल्गुनी है और दो भाद्रपदा है इनको छोड़कर अन्य किसी नक्षत्र में करना चाहिए ।१। पुरुष की अस्थियों का अलक्षण कलश में संचय करे । जो कुम्भस्तम्भ रहित हो उसे अलक्षण कलश कहा जाता है । अलक्षणा कुम्भी मे स्त्री की अस्थियों का संचयन करना चाहिए । कुम्भी स्तन वाली होती है ।२। "शीतिके शीतकावती" इससे क्षीर,मिश्रित उदक से शमी की शाखा के द्वारा प्रसव्य-आयतन का परिव्रजन करता हुआ कर्त्ता प्रोक्षण करता है ।३। जो संचय करने वाला है वह अङ्गुष्ठोप कनिष्ठकाओं से एक २ अस्थि को ग्रहण करे । कुछ भी शब्द न हो इस तरीके से कुम्भ में रक्खे । पैरों को पूर्व में और शिर को उत्तर में रखना चाहिए ।४। "उपसर्प मातरं भूमिमतोम्" इस ऋचा को कर्त्ता को बोलना चाहिए । शिर तक कुम्भ में रखकर सूर्प से भस्म का संशोधन करे । सूक्ष्म अस्थियों को शिर के ऊपर संचित करके दोनों तरफ आकाश लक्षण युक्त देश में गर्त खोदकर जिसमें कहीं से भी जल प्रवेश न करे उसमें कुम्भ को रख देवे ।५। उत्तर भाग वाली ' उच्छ्वंच स्वेति" इस ऋचा के धूलि को अवकीर्ण करना चाहिए

।६। अवकिरण करके फिर उत्तर भाग का जाप करे "उच्छ्वं चमानेति" यह उत्तरा भाग है ।७। "उत्ते स्तभ्नामि" इससे धरादिक कपाल से कुम्भ का अभिधान कर गर्त्त को पूरण कर देवे जिससे कुम्भ दिखलाई न पड़े । फिर पीछे की ओर न देखते हुए प्रत्याव्रजन करता है । जल उपस्पर्शन करके इस दिन में प्रेत के लिये श्राद्ध देना चाहिए ।८।

गुरुणाऽभिमृता अन्यतो वाऽपक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्म कुर्वीरन् ।१। पुरोदयादग्निं सहभस्मानं सहायतन दक्षिणा हरेयुः क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरमित्यर्धर्चेन ।२। त चतुष्पथे न्युप्य यन्त्र वा त्रिः प्रसव्यं परियन्ति सव्यैः पाणिभिःसव्यानूरूपनाघ्नानाः ।३। अथानवेक्ष प्रत्याव्रज्याप उपस्पृश्य केशश्मश्रुलोमनखानि वापयित्वोपकल्पयीरन्नवान्मणिकान्कुम्भानाचमनीयांश्च शमी सुमनोमालिनः शमीमयमिध्मं शमीमय्यावरणी परिधींश्चाऽऽनडुहं गोमयं चर्म च नवनीतमश्मान च यावत्यो युवतयस्तावन्ति कुशपिञ्जूलानि ।४। अग्निवेलायामग्निं जनयेदिहैवायमितरो जातवेदा इत्यर्धर्चेन ।५।

गुरु के द्वारा अभिमृत और यथापक्षि पुत्र हिरण्य आदि से अपक्षीयमाण होते हुए अमावस्या में शान्ति कर्म करना चाहिए । मध्यवर्ती क्रिया को ज्येष्ठ करता है ।१। पूर्व में आदित्य के उदय से भस्म सहित अग्नि को आयतन के साथ दक्षिण दिशा में नयन करें । "क्रव्याद मग्निं प्रहिणोमि दूरम्" इस आधी ऋचा से नयन करे । यहाँ पर आयतन शब्द से अधिश्रवणार्थ मेखला आदि कहे जाते है—यह समझ लेना चाहिए ।२। इसके अनन्तर उस अग्नि को चौराहे पर प्रक्षिप्त करके सव्य पाणियों से सव्य ऊरुओं को ताड़न करते हुए उस अग्नि को तीन बार अप्रदक्षिण परियन करते हैं ।३। पीछे की ओर न देखते हुए ही प्रत्याव्रजन करते हैं । इसके उपरान्त सब स्नान किया करते है फिर सब केश—श्मश्रु, लोम और नखों का वापन कराया करते हैं । पुनः भी

स्मृति प्राप्त स्नान करते है अर्थात् स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर आगे बतलाये जाने वाले पात्रों का उपकल्पन करना चाहिए। अर्थात् पुरानों का उत्सर्ग करके उनके स्थान मे भी नवीनों का उपयोग करे। मणिक उसको कहते है जो जल धारण करने के लिए एक विशेष पात्र होता है। कुम्भ तो बतला ही दिये गये है। आचमनीय आचमन के साधन होते हैं। जोकि उदञ्जन कमण्डलु प्रभृति होते है। शमी के पुष्पों की माला वाले होते है। कुछ का मत है कि "शमीपुष्पमालिन" यह मणिकादिक का विशेषण है। अन्य लोग कर्त्ताओं का विशेषण मानते हैं। शमीमय इध्म और शमीमयी अरणी की उपकल्पना करनी चाहिए। परिधियों की उपकल्पना करे—आनडुह चर्म, गोमय, नीलवत अश्म और जितनी युवतियां हों उतने ही कुशा के पिञ्जूल भी होने चाहिए ॥८॥ इसके उपरान्त अग्निहोत्र के विहरण काल मे अपराह्न समय में शमीमयी अरणियों से आधी ऋचा के द्वारा अग्नि का मन्थन करना चाहिए। ऋचा यह है—" इहैवायमितरो जातवेदा" ॥५॥

तं दीपयमाना आसत आ शान्तरात्रादायुष्मतां कथाः कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानीत्याख्यापयमानाः ।६। उपरतेषु शब्देषु सम्प्रविष्टेषु वा गृहं निवेशनं वा दक्षिणाद्द्वारपक्षात्प्रक्रम्याविच्छिन्नामुदकधारां हरेत्तन्तु तन्वन्रजसो भानुमन्विहीत्योत्तरस्मात् ।७। अथाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुहं चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम तस्मिन्नमात्यानारोहयेदारोहताऽऽयुर्जरसं वृणाना इति ।८। इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामीति परिधिं परिदध्यात् ।९। अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेनेत्यश्मानमित्युत्तरतोऽग्नेः कृत्वा परं मृत्यो अनु परेहि पन्थामिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्तीत्यमात्यानीक्षेत ।१०। युवतयः पृथक्पाणिभ्यां दर्भतरुणकैर्नवनीतेनाङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामक्षिणी आञ्ज्य पराञ्चो विसृजेयुः ।११। इमा नारीरविधवाः सुपत्नीरित्यञ्जाना ईक्षेत ।१२।

उस मन्त्र को कथन करते हुए आयुष्मान् कुल वृद्धों की कथा का कीर्त्तन करते हुए और इतिहास आदि माङ्गल्य को बोलते हुए उस अग्नि को दीप्त करने वाले घर से बाहर ही शान्त रात्रि तक निशा मे चुप रहने चे।६। इसके पश्चात् उस समय में जब कोई भी शब्द नहीं बोलते हैं अथवा अमात्यों के संनिविष्ट होने पर गृह अथवा निवेशन में प्रवेश करने की कामना करते हैं। दक्षिण द्वार के पक्ष से संतत उदक की धारा का सिंचन करना चाहिए। सिञ्चन की ऋचा यह है—"तन्तुं तन्वद् जसो भानुमन्विहीति"। यह उत्तर भाग है।७। इसके अनन्तर अग्नि का उपसमाधान करके पीछे इसके आनुडुह चर्म का आस्तरण करके उस पर प्राग्ग्रीव उत्तर लोम सब अमात्यों का आरोहण करावे। "मन्त्र आरोहताऽऽयुर्जरसं वृणाना" यह है।८। "इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि" इस मन्त्र से अग्नि की परिधि का परिधान करना चाहिए।९। "अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन"—इस मन्त्र से अग्नि के उत्तर में अश्म को करके "परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्" इन चार ऋचाओं से प्रति ऋचा हवन करके "यथा ह्यान्यनुपूर्वं भवन्ति" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अमात्यों का ईक्षण करे।१०। अमात्यो में जो युवती स्त्रियां हैं वे दर्भों के तरुणकों के द्वारा नवनीत को ग्रहण करके उसमे अंगुष्ठ और उपकनिष्ठिका से हाथों से नेत्रों का अञ्जित करती हैं। इनके पश्चात् न देखते हुए कुशों के पिञ्जूलों का विसर्जन करें।११। "इमा नारीरविधवाः सु पत्नीः" इस ऋचा से कर्त्ता युवतियों को देखे।१२।

अश्मन्वतीरीयते संरभध्वमित्यश्मानं कर्ता प्रथमोऽभिमृशेत् ।१३। अथापराजितायां दिश्यवस्थायाग्निनाऽनडुहेन गोमयेन चाविच्छिन्नया चोदकधारयाऽपो हि ष्ठा मयो भुव इति तृचेन परीमे गामनेषतेति परिक्रामत्सु जपेत् ।१४। पिङ्गलोऽनड्वान्परिणेयः स्यादित्युदाहरन्ति ।१५। अथोपविशन्ति यत्राभिरंस्यमाना भवन्त्यहतेन वाससा प्रच्छाद्य ।१६। आसतेऽस्वपन्त ओदयात् ।१७। उदित आदित्ये सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपित्वाऽन्नं संस्कृत्याप नः

शोशुचदघमिति प्रत्यृचं हुत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत गोः कसोऽहतं वासश्च दक्षिणा ।१८। ख० ६।

इसके अनन्तर अपराजिता दिशा मे स्थित होकर आनुबुह गोमय से और अविच्छिन्न उदक की धारा से "आपोहिष्ठा मयो भुवः" इस ऋचा से सिच्यमान से अमात्यों मे औपमन अग्नि का परिक्रमण करते हुओं के "परीमेगामनेषुत" इस का जप करना चाहिए । और इसके पूर्व "अश्मन्वती रीयते सरयध्वम्" इस मन्त्र से कर्त्ता अश्म को पूर्व में अभिमृष्ट करे ।१३-१४। इस प्रकार के गुण से युक्त अनड्वान् का परिणत करना चाहिए । इसके उपरान्त स्विष्टकृत् आदि का समापन करना चाहिए यह उदाहरण देते हैं ।१५। इसके उपरान्त जहाँ पर अभिरम्यमान होते हैं और जो देश अभीष्ट होता है उस को अहत अर्थात् नवीन वस्त्र से समाच्छादित करके बैठ जाते है ।१६। वही पर उदय पर्यन्त स्वय न करते हुए बैठा करते हैं ।१७। आदित्यदेव के उदित होने पर सतौर्य अर्थात् सूर्य सम्बन्धी स्वस्त्ययनों का जाप करके अग्न संस्कृत्यायनः एने शुच दघम्" इति—इस से प्रतिऋचा हवन करके ब्राह्मणों का भोजन कराकर स्वस्त्ययन का वाचन करावे और गौ-कम तथा नूतन वस्त्र दक्षिणा में देवे ।१८।

अथातः पार्वणे श्राद्धे काम्य आभ्युदयिक एकोद्दिष्टे ।१। ब्राह्मणञ्श्रु तशीलवृत्तसम्पन्नानेकेन वा काले ज्ञापितान्स्नातान्कृतपच्छाचानाचान्तानुदङ्मुखान्पितृवदुपवेश्यैकंकमेकंकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्वं न त्वेवैकं सर्वषाम् ।२। काममनाद्ये ।३। पिण्डैर्व्याख्यातम् ।४। अपः प्रदाय ।५।

इसमें अथ शब्द अधिकारार्थ है । अतः यह शब्द हेतु के अर्थ वाला है । कारण यह है कि मृतों के द्वारा भी श्राद्ध से निःश्रेयस की प्राप्ति की जाया करती है । श्राद्ध पार्वण-काम्य-आभ्युदयिक और एकोद्दिष्ट होते हैं । पितृगण का उद्देश्य करके जो हार्दिक श्रद्धा से ब्राह्मणों को दिया जाता

है वह श्राद्ध होता है। जो पर्व में किया जाता है वह पार्वण होता है। जो किसी कामना से होता है उसे काम्य कहते हैं। जो वृद्धि पूर्त निमित्तक होता है वह आभ्युदयिक श्राद्ध होता है। जो केवल एक ही का उद्देश्य करके दिया जाता है वह एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है।१। ब्राह्मण शब्द का ग्रहण क्षत्रियादि की निवृत्ति के ही लिये होता है। स्वाध्याय-शील और वृत्त शाध्यदयादि युक्त तथा क्रोधादि से रहित ब्राह्मणों को श्राद्ध में ग्रहण करें। वृत्त का तात्पर्य शास्त्र में जिनका विधान है उनको करे और जो निषिद्ध हो उसको नहीं करे। ब्राह्मणों को समय पर ज्ञापित कर देवे अर्थात् उचित समय पर निमन्त्रित कर देवे। नियम से स्नान किये हुओं को ही श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए। जो स्नान करने में असमर्थ हों उनको भोजन नहीं करावे। हाथ पैरों का प्रक्षालन कर शुद्ध हुए ब्राह्मणों को उत्तर की ओर मुख करने वालों को बिठाना चाहिए। अपने पितृगण का उद्देश्य करके ही उनको पिता-पितामह आदि के उद्देश्य से एक-एक दो-दो अथवा तीन-तीन को बिठाना चाहिए। वृद्धि में फल की अधिकता होती है। पिता-पितामहादि सब के लिये एक ही ब्राह्मण को नहीं रखना चाहिए।२। तीनों का उद्देश्य करके किये गये श्राद्ध के मध्य में आद्य सपिण्डी करण ही प्रथम है। इससे वर्जित समस्त श्राद्धों में इच्छापूर्वक एक ही को भोजन कराना चाहिए।३। जीवभृतों का पिण्ड नियरण का अधिकार करके जो पक्ष पितृपिण्ड यज्ञ में कहे गये हैं उनको श्राद्ध में भी जान लेना चाहिए।४। उपदेश के अनन्तर ब्राह्मणों के हाथों में जल देता है। आग्नेयी उपदिशा की ओर मुख करता प्राचीनावीती होकर पितृगण का कर्म करना चाहिए।५।

दर्भान्द्विगुणभुग्नानासनं प्रदाय ।६। अपः प्रदाय ।७। तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वप आसिच्य शंनोदेवीरभिष्टय इत्यनुमन्त्रितासु तिलानावपति तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृनिमाल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वधा नम इति ।८। प्रसव्येन ।९। इतरपाण्यङ्गुष्ठा-

न्तरेणोपनीतित्वाद्दक्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेद ते अर्घ्यं प्रपितामहेदं ते अर्घ्य-मिति ।१०।

इसके अनन्तर द्विगुण भुग्न दर्भों को आसनों पर देता है । आसन प्रदान करता । यहाँ पर सप्तमी के अर्थ में द्वितीया है ।६। इसके अनन्तर पुनः जल देता है ।७। इसके उपरान्त तीन पात्र रक्खे—उन पात्रों में एक पात्र तो तैजस होना चाहिए, एक पात्र अश्ममय हो और एक मृन्मय होना चाहिए । तीन द्रव्यों के सम्भव न होने पर तीनों पात्र चाहे एक ही द्रव्य के होवे । ऐसे ही तीनों तैजस हों, अश्ममय हों या मृन्मय होवें । इन तीनों को आग्नेयी दिशा में संस्थित करे । उनमें दर्भों को डाले फिर उनमें जल का निषेचन करे । "शंनोदेवी" इत्यादि ऋचा से तीनों पात्रों में स्थित जल का अनुमन्त्रण करे । फिर "तिलोऽसि"—इस मन्त्र के द्वारा उनमें तिलों का आवपन करता है । प्रतिपात्र मन्त्र की आवृत्ति करे । पात्रों में गन्धमाल्य आदि का आवपन करना चाहिए ।८। समस्त पितृ कर्म प्रसाम अप्रदक्षिण होकर ही करना चाहिए ।९। उपवीति के विधान में यह सम्पूर्ण पितृ कर्म प्राचीन रीति के ही द्वारा करना चाहिए । अब उपवीतित्व के हेतु के निर्देश होने से यहाँ से आरम्भ करके अर्वाक् गन्ध माल्यादि के दान आदि कर्म यज्ञोपवीति के द्वारा ही करना चाहिए—ऐसा गृह्यवेत्ता कहते है । अन्य सव्य करके द्वारा अङ्गुष्ठान्तर से अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । जिस कर के द्वारा कर्म करता है वह दक्षिण हो अथवा सव्य हो उसके अंस पर स्थित यज्ञोपवीत के होने पर प्राचीनावीती होता है । तथा अन्य अंस पर स्थित होने से उपवीती हुआ करता है । अर्घ्य देने के समय में—हे पित ! यह अर्घ्य आपके लिये है—हे पितामह ! यह अर्घ्य आपके लिये है—हे प्रपितामह ! यह अर्घ्य आपके लिये है—ऐसा कह कर ही अलग अलग अर्घ्य देवे ।१०।

अप्पूर्वम् ।११। ताः प्रतिग्राहयिष्यन्सकृत्स्वधा अर्घ्या इति ।१२। प्रसृष्टा अनुमन्त्रयेत या दिव्या आपः पृथिवी

सबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शंस्योना भवन्त्विति संस्रवान्समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो मुखमनक्ति ।१३। नोद्धरेत्प्रथमं पात्रं पितॄणामर्घ्यपातितम् । आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत् ।१४। ख० ७।

अर्घ्य के प्रदान करने से पूर्व में अन्य जल देना चाहिए ।१। वे अर्घ्य के लिये दिये हुए जलों को प्रतिग्रह कराता हुआ प्रतिग्रहण में पहिले एक-एक बार अर्घ्य के जल को निवेदित करना चाहिए। मन्त्र—"स्वधा अर्घ्याः" यह होता है । पितृगण के लिये जितने भी ब्राह्मण है उन सबके लिये प्रथम एक ही पात्र देवे प्रति ब्राह्मण एक ही बार निवेदन करना चाहिए । एक-एक के पक्ष मे तो एक-एक पात्र का एक-एक को निवेदन करे। अन्य जल एक-एक को देकर अर्घ्य भी एक-एक को ही देना चाहिए। सब को एक के पक्ष में तीनों पात्र उसी को निवेदन करके पुनः अन्य जल देकर उसको ही तीन अर्घ्य तीन मन्त्रों से देने चाहिए ।१२। या दिव्या आपः पृथिवी संबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः, हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः सस्योना भवन्तु" इस मन्त्र से ब्राह्मणों के द्वारा प्रगृह अर्घ्यों अप अनुमन्त्रण करे । प्रति ब्राह्मण अनुमन्त्रण पृथक् होना है । सब को अर्घ्य देने मे स्रवों अर्थात् अर्घ्यशेषों को जो पेमात्रगत हैं एक करता है । उन एकीकृत जलों से यदि पुत्र की कामना वाला है तो मुख को अतक्त करे और पुत्र काम न हो तो न करे ।१३। पितृगण के अर्घ्यशेष जल जिस पात्र में एकीकृत हों ऐसे प्रथम पात्र को उस समवनयन देश से अपनीत नही करना चाहिए जब तक श्राद्ध की परिसमाप्ति न होवे क्योंकि उस पात्र से पितर विहित स्थित होते है—ऐसा शौनक ने कहा है । यदि उस पात्र को उद्धृत करे अथवा जब वह विहृत होता है उस समय में पितृगणों के क्रुद्ध हो जाने से वह श्राद्ध आसुर हो जाया करता है ।१४।

एतस्मिन्काले गन्धमाल्यधूपदीपाच्छादनानां प्रदानम् ।१। उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौ करिष्ये करवै

करवाणीति वा ।२। प्रत्यभ्यनुज्ञा क्रियतां कुरुष्व कुर्विति ।३। अथाग्नौ जुहोति यथोक्त पुरस्तात् ।४। अग्न्यनुज्ञायां पाणिष्वेव वा ।५। अग्निमुखा वै देवाः पाणिमुखाः पितर इति हि ब्राह्मणम् ।६। यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशति ।७।

एक ही काल में वस्त्र—गन्ध—माल्य—धूप और दीपों का प्रदान पाँचों ब्राह्मणों के लिये होना है । गो हिरण्य आदि का प्रदान श्राद्ध के अन्त में प्राक्स्वधा वचन से करना चाहिए । स्मृति में भी लिखा है—"दत्वा दुदक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत" अर्थात् ब्राह्मणों को शक्ति से दक्षिणा देकर स्वधाकार का उच्चारण करना चाहिए ।१। इध्म के उप समाधन के अन्त तक पिण्ड पितृ यज्ञ को करके और ब्राह्मण यच्छोश्याद्याच्छादना का पार्वण श्राद्ध को करके पिण्ड पितृ यज्ञ के स्थाली पाक से अन्न को लेकर घृताक्त करे और पित्रार्थ ब्राह्मणों से अनुज्ञा प्राप्त करता है—मैं अग्नि में करूंगा, अग्नि में करूँ अथवा अग्नि में करूं ।२। ब्राह्मणों के द्वारा ऐसी अनुज्ञा देनी चाहिए कि यथा सत्य करो ।३। इसके अनन्तर अग्नि में जैसा कि आगे कहा गया है वैसा हवन करता है । सोमाय पितृमते स्वधा—नमोऽग्नये-कव्य वाहनाय स्वधा नमः—इस स्वाहाकार से या अग्नि को पहिले यज्ञोपवीती होकर करे ।४। यदि ब्राह्मण करों में होम की अनुज्ञा देते हैं तो ऐसा होने पर करों में हवन करता है । जहाँ पर पिण्ड पितृ यज्ञ प्राप्ति है वहाँ पर अग्नि की प्राप्ति के सद्भाव से पाणि होम की अनुज्ञा नहीं देते है । और जहाँ पर पिण्ड पितृ यज्ञ के कल्प की प्राप्ति नहीं है वहाँ पर अग्नि की प्राप्ति का अभाव होने से पाणि होम की अभ्यनुज्ञा देने है ।५। पाणि होम को श्रुति के द्वारा सुदृढ़ करते हुए कहते हैं—देव गण अग्नि मुख होते है अर्थात् देवों का मुख अग्नि ही होता है और पितृ गणों का मुख पाणि होता है इसीलिये पाणि होम युक्त होता है—यह ब्राह्मण वचन है ।६। यहाँ पर दो अर्थ करना अभीष्ट है—ऐसा गम्यमान होता है—वहाँ पर अग्नि में करके भाजनों में भोजन के लिये अन्य

अन्न देता है—यह एक अर्थ है । यदि पाणि होम होता है तो आचान्तों में अन्य अन्न देता है यह दूसरा अर्थ होता है । आचान्त [illegible] कुछ निर्धान-पत्ति करने वाले कहते हैं—जब पाणियों में होम होता है तब हुत अन्न को पात्रों में रख कर, न खाकर ही [illegible] आचमन करना चाहिए ।७।

अन्नमन्ते ।८। शुद्ध दद्याद्गुणवन्ति ।९। तृप्तान् ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमदन्तेति च ।१०। सम्पन्नमिति पृष्ट्वा यद्यदन्नमुपयुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेत् ।११। अभिमतेऽनुमते वा भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यात् ।१२। आचान्तेष्वेके ।१३। प्रकीर्यान्नमुपवीयं स्वधाः स्वस्तिरिति विसृजेत् ।१४। अस्तु स्वधेति वा ।१५। ग० ८।

हुत शेष अन्न को [illegible] लिये [illegible] पात्रों में [illegible] में अन्न को देता है । [illegible] होम में और पाणि होम में [illegible] प्रभूत अन्न देना चाहिए । भोजन के [illegible] न दें, किन्तु [illegible] भी अधिक देना चाहिए । [illegible] वाला है ।९। मधुमती—तीन मधुमती—इस नाम से प्रसिद्ध हैं । अन्नादि से निवृत्त हुई इच्छा को जानकर 'मधुमती'—इन तीनों को और "अक्षन्नमी-मदन्त"—इस मन्त्र का श्रावण करना चाहिए । मनु महर्षि ने भी कहा है—"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीति-हासांश्च पुराणानि खिलानि च" अर्थात् पितृगण के लिये स्वाध्याय—धर्मशास्त्र—आख्यान—इतिहास और सब पुराणों को श्रवण कराना चाहिए ।१०। क्या सम्पन्न हो गया—इस वाक्य से ब्राह्मणों को पूछता है । [illegible] सम्पन्न हो गया—यह उत्तर देते हैं । इसके पश्चात् जो अन्न उपभुक्त हुआ है—उस-उस अन्न से पिण्ड के लिये उद्धृत करता है । फिर स्थाली पाक के साथ उसे एकीभूत करता है फिर शेष भुक्तोद्धृत को ब्राह्मणों के लिये निवेदित कर देना चाहिए । आचार्य ने आठ प्रकार के श्राद्ध [illegible]

है—यथा—"अन्वष्टक्य च पूर्वेद्युर्मासि मासि च पार्वणम् । काम्य मध्यु-दर्येऽष्टमे मोदिष्ट" यथाइरवरै अन्वष्टक्य-पूर्वेद्यु-मास मास में होने वाला और पार्वण इन चारो में स्थालीपाक से उद्धृत करके अग्नि मे करे । पीछे के चारो में भोजनार्थ अन्न से उद्धृत करके घृत से अक्त करके पाणि होम करना चाहिए ।११। शेष निवेदित ब्राह्मणो के द्वारा जो भी स्वीकार करने को अभिमत हो उस उस समय में उनको दे देना चाहिए। फिर आचान्त न होने पर पूर्वोक्त विधि से पिण्डों का निपरण करना चाहिए । मनु ने भोजन से पूर्व ही निपरण का विधान बताया है । भुक्त-वान् होने पर ही सिद्धान्ततः निपरण करना चाहिए । 'भुक्तवत्सु' इस वचन से यही सिद्ध होना है ।१२। कतिपय विद्वान् आचान्त होने पर ही निपरण चाहते हैं ।१३। अन्वान्न होने पर पिण्ड दान के पक्ष मे पिण्डो को देकर फिर उच्छिष्टों के समीप में अन्न का प्रकिरण करना चाहिए । फिर यज्ञोपवीती होकर दक्षिणा देकर ब्राह्मणो को विसर्जित कर देना चाहिए । 'ॐ स्वधा उच्यताम्'—यह कहकर ही ब्राह्मणों को विदाई देवे । ब्राह्मण भी 'ॐ स्वधा'—यह कहें ।१४। 'अस्तु स्वधा' अथवा इस कहकर विराजन करना चाहिए ।१५।

अथ शूलगवः ।१। शरदि वसन्ते वाऽऽर्द्रया ।२। श्रेष्ठं स्वस्य यूथस्य ।३। अकुष्ठिपृषत् ।४। कल्माष मित्येके ।५। काम कृष्णमालोहवांश्चेत् । । व्रीहियवमतीभिरद्भिर-भिषिच्य ।७। शिरस्त आ भसदः ।८। रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्वेति ।९। तं वर्धयत्सगम्रदन्तमृषभ वा ।१०

इसके उपरान्त शूलगव नामक कर्म के विषय में बतलाते हैं । शूल - इस मत्वर्थीय अच प्रत्यय होने से शूली अर्थ निकल आता है अर्थात् शूली शिव के लिए जो पशु के द्वारा याग को ही शूलगव कहा जाता है ।१। शूलगव कर्म को शरद—वसन्त इन दो ऋतुओं में से किसी भी एक मे जब आर्द्रा नक्षत्र हो तभी करना चाहिए ।२। अपने यूथ में जो श्रेष्ठ हो उसको ही ग्रहण करे और काया के द्वारा अभि-षिचन करके करना चाहिए । इससे सम्बन्ध होता है ।३। यह पशु

ऐसा होना चाहिए जो कुष्ठी और पृषत् अर्थात् पृषद्वर्ग वाला लोहित एवं शुक्ल विन्दुओं से युक्त नहीं होना चाहिए—उसे ही ग्रहण करे ।४। कुछ विद्वान् कहते है कल्माष होना चाहिए अर्थात् वह पशु ऐसा हो जो कृष्ण विन्दुओं से युक्त होना चाहिए ।५। यदि आन्तोहवान् हो तो स्वेच्छया कृष्ण वर्ण वाले को ग्रहण करे जो जामुन के फल के समान होवे ।६। इस प्रकार के गुण से युक्त पशु का पूर्व में ही व्रीहि और यवों वाले जल से स्वयमेव अभिषिञ्चन करता है ।७। शिर से ऊपर आरम्भ करके पुच्छ प्रदेश तक स्नपन करना चाहिए ।८। "रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्व'—इस मन्त्र से करे । उत्सृष्ट पशु जब तक उत्पन्न दाँतो वाला अन्य का सेचन समर्थ होकर बढ़ता है ।९। उस पशु को इस प्रकार से अथवा ही वर्धित करे । इसके उपरान्त अन्यतर अवस्था में कर्म करे । वह सम्पन्न दाँतो वाला हो अथवा पूर्ण होवे ।१०।

यज्ञियायां दिशि ।११। असंदर्शने ग्रामात् ।१२। ऊर्ध्व-मर्धरात्रादुदित इत्येके ।१३। वैद्यं चरित्रवन्तं ब्राह्मण-मुपवेश्य सपलाशामार्द्रशाखां यूप निखाय व्रतत्यौ कुशरज्जू वा रशने अन्यतरया यूपं परिवीयापरयाऽ-र्धशिरसि पशुं बद्धवा यूपे रशनायां वा नियुनक्ति यस्मै नमस्तस्मै त्वा जुष्टं नियुनज्मीति ।१४। प्रोक्षणादि समानं पशुना विशेषान्वक्ष्यामः ।१५।

इस कर्म को ग्राम से बाहिर प्राची अथवा उदीची की दिशा में करना चाहिए।११। जहाँ पर स्थित को ग्राम न देखे अथवा जहाँ पर स्थित ग्राम को न देखे उस देश में करे ।१२। कुछ लोगों का मत यह है कि आधी से ऊपर उदित होने पर ही इस कर्म का करना चाहिए ।१३। जो शूलगर्व कर्म को जानता है उसे वैद्य कहते हैं। जो स्वयं कर्म करने वाला हो वह चरित्रवान् कहलाता है । इस प्रकार के गुण वाले ब्राह्मण को इस कर्म में उपविष्ट कराना चाहिए । यूप के लिये पलाशों के सहित आर्द्र शाखा को अग्नि के आगे निखनित करता है । कुशों की रज्जु अथवा

रसना होनी चाहिए। अथवा बल्ली की होवे। इन दोनों में से किसी एक से यूप का परिवेष्टन करें और दाहिना सींग जिस तरह से बद्ध होवे उस तरह पशु को बद्ध करे "यस्मै नमस्तस्मै त्वा जुष्टं नियुनज्मि" इस मन्त्र के द्वारा करना चाहिए।१४। पशु कल्प के समान ही प्रोक्षण आदि होता है। जो विशेष हैं उन्हें बतलायेंगे।१५।

पात्र्या पलाशेन वा वपां जुहुयादिति ह विज्ञायते ।१६। हराय मृडाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवोग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शंकरायेशानाय स्वाहेति ।१७। षड्भिर्वोत्तरैः ।१८। रुद्राय स्वाहेति वा ।१९। चतसृषु चतसृषु कुशसूनासु चतुसृषु दिक्षु बलिं हरेद्यास्ते रुद्र पूर्वस्यां दिशि सेनास्तास्य एनं नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीरित्येवं प्रतिदिशं त्वादेशनम् ।२०। चतुर्भिः सूक्तैश्चतस्रो दिश उपतिष्ठेत कद्रुद्रायेमारुद्रायाऽऽतेपितारमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति ।२१। सर्वरुद्रयज्ञेषु दिशामुपस्थानम् ।२२।

पात्री दारुमयी होती है। पलाश पर्ण को कहते है। वपा के होम के समय में पात्री से अथवा पलाश से हवन करना चाहिये यह जाना जाता है ।१६। इन तीनों प्रदानों के होम मन्त्र को बतलाते है—"हराय मृडाय शर्वाय शिवाय भवाय महादेवोग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शंकराय ईशानाय स्वाहा।१७।यह दश नामक मन्त्र है। अथवा "उमाय' इत्यादि षण्नामक मन्त्र होता है।१८। "रुद्राय स्वाहा''—यह एक नामक वा मन्त्र है।१९। वपा स्थालीपाकाय दान होम पर्यन्त करके चारों दिशाओं में चार कुश सून रखकर उन पर वप के शेष से और मांस के शेष से बलि का आहरण करना चाहिए। "यास्ते रुद्र पूर्वस्यां दिशि" इससे प्रत्येक दिशा में त्वादेशन करना चाहिए। सब दिशाओं का नाम लेकर यथा 'यास्ते रुद्र दक्षिणस्यां दिशि'' इस क्रम से देवे। दर्भों के स्तम्बों से और तृणों से कल्प के समान ग्रथन करके सबके अग्रभाग को ग्रहण कर एकत्रित करके जो ग्रथित होते है वे कुशसून कहे जाते हैं। पूर्व दिशा में जो सेना हैं उनके

लिये उसको नमस्ते होवे हिंसा मत मत करो—इसी प्रकार [illegible] प्रतिदिशा में दशादेवन होता है ।२०। चारों दिशाओं में चारों सूक्तों से [illegible] उपस्थान करना चाहिए। कद्रुद्राय [illegible] इत्यादि द्वारा [illegible] यज्ञ "इम सूक्त में 'अग्ने मोष धियमभीत्य', इत्यादि के द्वारा [illegible] की निवृत्ति के लिये है ।२१। और दिशाओं में उपस्थान [illegible] रुद्र यज्ञों में होता है। इसी देवता [illegible] के [illegible] में [illegible] करना चाहिए ।२२।

तुषान्फलीकरणांश्च पुच्छं चर्म शिरः पादानित्यग्ना(व)वनुप्रहरेत् ।२३। भोगं चर्मणा कुर्वीतेति शाम्बव्यः ।२४। उत्तरतोऽग्नेर्दर्भवीतासु कुशसूनासु वा शोणितं निनयेद्बाहिनीर्घोषिणीर्विचिन्वतीः समश्नुतीः सर्पा एतद्वोऽत्र तद्धरध्वमिति ।२५। अथोदङ्ङावृत्य बाहिनीर्घोषिणीर्विचिन्वतीः समश्नुतीः सर्पा एतद्वोऽत्र तद्धरध्वमिति सर्पेभ्यो यत्तत्रासृगूवध्यं वाऽवस्रुतं भवति तद्धरन्ति सर्पाः ।२६।

स्थाली पाक और व्रीहियों के जो तुष और फली करण अर्थात् [illegible] कण हैं उनको और पुच्छ आदिक को अनुप्रहरण करना चाहिए ।२३। [illegible] आचार्य तो चर्म से उपानत् आदि भोग करना चाहिए—ऐसा मानते हैं ।२४। अङ्गों के अवदान के समय में [illegible] के द्वारा शोणित का ग्रहण करे। "बाहिनीर्घोषिणीर्विचिन्वतीः समश्नुती. सर्पा एतद्वोऽत्र तद्धरध्वम्" इस मन्त्र से उस समय में अग्नि के उत्तर में दर्भ [illegible] में अथवा कुशसूनाओं में शोणित का [illegible] करना चाहिए ।२५। [illegible] वहां पर स्थित होता हुआ ही उदङ्मुख आवृत्त करके "बाहिनीर्" इत्यादि मन्त्र के द्वारा जो वहां पर [illegible] देश में भूमि में [illegible] होता वह सर्पों के लिये उद्दिष्ट करता है और [illegible] के रूप में उसका सर्प हरण किया करते हैं ।२६।

सर्वाणि ह वा अस्य नामधेयानि ।२७। सर्वाः सेनाः ।२८।

सर्वाणि चक्षुरणानि ।२९। इत्येवंविद्यजमानं प्रीणाति ।३०।
नास्य ब्रुवाण चन हिनस्तीति विज्ञायते ।३१।

जितने भी लोक में नामधेय हैं वे सब इसी के नाम हैं अर्थात् जितने भी लोक में शब्द हैं वे सब इसी को कहते हैं। त्रिलोकी में जितने भी पदार्थ हैं वे सब रुद्र ही हैं। ऐसा कथन करते हुए रुद्र को सब में रहने वाला दिखलाया है।२७। त्रैलोक्य में जितनी भी सेना है वह सब इसी की सेना है। अन्य अजर शाश्य वाले की सेना सम्भव नहीं होती है। इसके तो महाभाग्य से उत्पन्न होती ही है। इस प्रकार से कहते हुए ने राजा आदि और देवादि रुद्र ही हैं—ऐसा कथित होता है और स्तुतियों में पुनरुक्तता दोष नहीं होता है।२८। जितने भी लोक में विद्वत्ता से, अध्येतृता से, अध्यापयितृता से, दातृता से, नमस्कृतता से अथवा अन्य किसी भी विशेषता से उत्कृष्टगुण हैं वे सब उसी के अंश हैं। इस प्रकार से अनेक रीतियों से आचार्य ने स्तुति की थी ।२९। इस वर्णित मार्ग के द्वारा जो रुद्र देव को जान कर जो यजन करता है उस यजमान पर रुद्र-देव प्रसन्न होते हैं।३०। उस कर्म के बोलने वाले को—विज्ञाता को, अध्येता को और उपकर्त्ता को भी रुद्रदेव विनष्ट नहीं किया करते हैं—ऐसा सुना जाता है ।३१।

नास्य प्राश्नीयात् ।३२। नास्य ग्राममाहरेयुरभिमारुको ह्येष देवः प्रजा भवतीति ।३३। अमात्यानन्ततः प्रतिषेधयेत् ।३४। नियोगात्तु प्राश्नीयात्स्वस्त्ययन इति ।३५। स एष शूलगवो धन्यो लोक्यः पुण्यः पुत्र्यः पशव्य आयुष्यो यशस्यः ।३६। इष्ट्वाऽन्यमुत्सृजेत् ।३७।

इस पशु के हुत से शेष का प्राशन नहीं करना चाहिए। यह निषेध कुछ के मत से होता है क्योंकि उत्तर में प्राशन का विधान होता है ।३२। इस कर्म से सम्बन्धित द्रव्यों का ग्राम में आहरण नहीं करना चाहिए यह देव प्रजा का अभिमारक होता है। आहरण करने पर आहृत करने वाली प्रजा का यह रुद्रदेव हनन कर देते हैं ।३३। इसके समीप में

पुत्रादिक को प्रतिपिद्ध कर देना चाहिए अर्थात् यहाँ पर उनको नहीं आना चाहिए ।३४। पशु के हुत शेष को नियम से स्वस्त्ययन करके प्राशन करना चाहिए । इसी लिये यह जाना जाता है कि जो इसका निपेध किया गया है—वह एक पक्षीय ही होता है ।३५। अब इस कर्म का फल कहते हैं—शूलगव के द्वारा यजन करने वाले पुरुप के धन, लोक, पुण्य, पुत्र, पशु, आयु और यश हुआ करते हैं ।३६। इस प्रकार से शूलगव के द्वारा यजन करके अपने यूथ के अन्य श्रेष्ठ पशु का अभिषेचन करके शूलगव करण के लिये उत्सृजन करना चाहिए ।३७।

नानुत्सृष्टः स्यात् ।३८। न ह्यपशुर्मवतीति विज्ञायते ।३९। शान्तातीयं जपन्गृहानियात् ।४०। पशूनामुपताप एतमेव देवं मध्ये गोष्ठस्य यजेत् ।४१। स्थालीपाकं सर्वंहुतम् ।४२। बर्हिराज्यं चानुप्रहृत्य धूमतो गा आनयेत् ।४३। शान्तातीयं जपन्पशूना मध्यमियान्मध्यमियात् ।४४। नमः शौनकाय नमः शौनकाय ।४५। ख० ९।

सर्वथा अनुत्सृष्ट नहीं होना चाहिए । शूलगव के लिये एक बार उत्सर्ग अवश्य ही करना चाहिए । और इस प्रकार से करके यह नित्य कर्म ही होता है—ऐसा जाना जाता है ।३८। शूलगव नाम वाले पशु-कर्म्म से रहित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा सुना जाता है अतएव एक बार उत्सर्ग अवश्य ही करना चाहिए ।३९। शूलगव कर्म को समाप्त करके ग्राम में प्रवेश करे और फिर पूर्व में कथित शान्तातीय का जप करता हुआ घर को गमन करना चाहिए ।४०। आत्मीय पशुओं को जब भी उपताप व्याधि होवे तब इसी देव का द्वादश नामक, षण्नामक अथवा एक नामक का गोष्ठ के मध्य में यजन करना चाहिए ।४१। आज्य भागान्त करके सब स्थाली पाक को दर्वी से रख कर हवन करना चाहिए । इसके अनन्तर सर्व प्रायश्चित्तादि का समापन करना चाहिए ।४२। इसके अनन्तर बर्हिप आज्य, तुप और सूक्ष्म कणों को अनुप्रहृत करके प्रतिधूम गौओं को आनीत करना चाहिए ।४३। फिर शान्तातीय का जप करता हुआ पशुओं के मध्य में गमन करे । अन्य विद्वानों ने तो शान्ताति

शब्दों वाले सूक्तों को ही शान्तातीय शब्द से कहा जाता है—ऐसी व्याख्या करते हैं। "ईते द्यावा पृथिवी"—'इदं ह नूनमेषाम्'—'उतदेवा अवहितम्'—ये इतने हैं। "शन इन्द्राग्नी"—यह शान्तातीय है यह प्रसिद्ध है ऐसा हमने पहिले कहा है।४४। शौनक के लिये बारम्बार नमस्कार है।४५।

※ इत्याश्वलायन गृह्यसूत्र समाप्तम् ※

अथ गृह्यपरिशिष्टम्

प्रथमोऽध्यायः

१—ग्रन्थप्रतिज्ञा

अथास्मिन्नाश्वलायनगृह्ये यानि कर्माणि विहितान्युक्ताना-हेतुना नाऽऽचार्येणानुक्तानि ज्ञातव्यानि यानि चान्यप्रदर्शितक्रियाणि तानि सर्वाणि वक्ष्यामो यथावदभिज्ञ-रणायः कर्ता स्नातो धौतवासा आर्द्रवासा यज्ञोपवीत्याचान्तः। प्राङ्मुख आसीनो दक्षिणाग्रमार्गे समाहितो मन्त्रान्ते कर्म कुर्वीत प्रत्यृचान्ते मन्त्रेऽनादेशे आज्यं द्रव्यं स्रुवः करणमवदानवत्सु दर्वी पाणिः कठिनेषु कर्मावृत्तौ मन्त्रोऽभ्यावर्त्येत कर्मणोऽन्त आचमनं चेति सामान्यम्।१।

१—इस आश्वलायन गृह्य में जो कोई अनुक्त हैं उनको इसका गृह्य पर रचने वाले आचार्य ने जो उनको अनुगत कहा है वे भी ज्ञात किए गये हैं और उनके कर्म भी उपदर्शित किये गये हैं। यह सब हम ज्ञान प्राप्त करने के लिये यथावत् बतलायेंगे। कर्म कर्ता स्नात हो, धुले हुए आर्द्र वस्त्र वाला, यज्ञोपवीती, आचान्त, प्राङ्मुख आसीन, दक्षिणाग्र मार्गे समाहित होकर मन्त्र के अन्त में कर्म करे। प्रत्येक ऋक् के अन्त में अनादेश आज्य, द्रव्य, स्रुव, करण अवदान वालों में दर्वी पाणि कर्म की आवृत्ति में मन्त्र की आवृत्ति और आचमन यह सामान्य है।१।

२—सन्ध्यावन्दनकालादि प्राणायामान्तम्

अथ सन्ध्यामुपासीतेत्याचार्यो यावहोरात्रयोः सन्धी यत्र पूर्वाह्णापराह्णयोस्तत्कालभवा देवताराध्यातामुपासीत।

बहिर्ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वाऽन्यस्यां दिश्यनिन्दितायामनल्पमुदकाशयमेत्य प्रातः शुचिर्भूतः पाणिपादमुखानि प्रक्षाल्य, शुचौ देशे भूमिष्ठपादोऽनपाश्रित उपविष्टः शिखां बद्ध्वाऽऽचामेत् । प्रकृतिस्थमफेनाबुद्बुदमुदकमीक्षितं दक्षिणेन पाणिनाऽऽदाय कनिष्ठाङ्गुष्ठौ विश्लष्टौ वितत्य, तिस्र इतराङ्गुलीः संहतोर्ध्वाः कृत्वा ब्राह्मेण तीर्थेन हृदयप्रापि त्रिः पीत्वा पाणि प्रक्षाल्य स्पृष्टाम्भः साङ्गुष्ठमूलेनाऽऽकुञ्चिताष्ठमास्यं द्विः प्रमृज्य सकृच्च सहतमध्यमाङ्गुलीभि पाणि प्रक्षाल्य सव्य पाणि पादौ शिरश्चाभ्युक्ष्य स्पृष्टाम्भः सहतध्यमाङ्गुलित्रयाग्रेणाऽऽस्यमुपस्पृश्य साङ्गुष्ठया प्रदेशिन्या घ्राणबिलद्वयमनामिकया चक्षुःश्रेत्रे कनिष्ठिकया च नाभिं तलेन हृदयं सर्वाभिरङ्गुलीभिः शिरस्तग्रैरसौ चोपस्पृशेदित्येतदाचमनम् । एव द्विराचम्याऽऽत्मानमभ्युक्ष्य ततो दन्ताञ्शाधयित्वा पुनर्द्विराचम्य दर्भपवित्रपाणिः प्रथममन्त्रकं पञ्चदशमात्रिकं प्राणायामत्रय कृत्वा समन्त्रकं सकृत्कुर्यादायतप्राणः सप्रणवां सव्याहृतिका सावित्रीं सशिरस्कां त्रिरावर्तयेदित्येप समन्त्रः प्राणायामः ।२।

२—जो अहोरात्र की सन्धि है और जो पूर्वाह्ण पराह्णों के समय में होने वाले देवता है सन्ध्या में उनकी उपासना करना आचार्य का कर्त्तव्य है। ग्राम से बाहिर प्राची अथवा उदीची में या अन्य अनिन्दित दिशा मे किसी बहुत जल वाले जलाशय पर जाकर प्रातः काल में पवित्र होकर हाथ पैरों को धोकर शुचि देश मे अनपाश्रित भूमिष्ठ पाद बैठकर शिखा को बाँधकर आचमन करना चाहिए। स्वाभाविक बिना झागों वाला बुलबुलों से रहित जलको देखकर दाहिने हाथ से ग्रहण कर। कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ को विश्लिष्ट कर इतर तीन अङ्गुलियों को संहत ऊपर को करके ब्राह्मतीर्थ से हृदय तक प्राप्त हो ऐसी

रीति से तीन बार पान करे। फिर हाथों को धोकर अङ्गुष्ठ मूल से जल का स्पर्श कर आकुञ्चित ओष्ठ वाले मुख को दो बार प्रमार्जित करे और एक बार सहित मध्यमाङ्गुलियों से हाथ धोकर सव्य पाणि, दोनों पैर और शिर का अभ्युक्षण करे। जल का स्पर्श कर सहित मध्यम तीन अंगुलियों के अग्रभाग से मुख का उपस्पर्शन करे और अंगुष्ठ के सहित प्रदेशिनी से दोनों नासिका के छिद्रों को, अनामिका से चक्षु और श्रोत्रों को, कनिष्ठिका से नाभि को, तल से हृदय को सब अंगुलियों से शिर और उनके अग्रभागों से कन्धों का उपस्पर्शन करना चाहिए—यह आचमन है। इस प्रकार से दो बार आचमन करके अपने आपका अभ्युक्षण करे। फिर दोनों का शोधन करके पुनः दो बार आचमन करके दर्भ की पवित्री हाथ में लेकर प्रथम पञ्चदश मात्रा वाले मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। आयत प्राण होकर एक बार समन्त्रक प्राणायाम करना चाहिए। प्रणव के सहित सात व्याहृतियों से युक्त सशिरस्क सावित्री की तीन बार आवृत्ति करे—यही समन्त्रक प्राणायाम है।२।

३ मार्जनाविधि।

अथ कर्म संकल्प्य शुचौ पात्रे सव्ये पाणौ वाऽप आधाय स्थिरे तूदकाशये यावति कर्म कुर्वीत तावत उदकस्य विभागं कल्पयित्वा तीर्थानि तत्राऽऽवाह्य ता अपः सदर्भपाणिनाऽऽदायोत्तानशिरसि मार्जयेदापूर्वं पच्छ आपो हिष्ठेति तिसृभिरथाऽऽचमनम् उदकमादाय, सूर्यश्चेति पिबेत्। सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि, इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेत्येतत्समन्त्रमाचमनमथ पुनराचम्य मार्जयेत्प्रणवव्याहृतिसावित्रीभिर्दश आपो हिष्ठेति

सूक्तेन गायत्रीशिरसा चाम्भसाऽऽत्मानं परिषिञ्चे-
देतन्मार्जनम् ।३।

३—इसके अनन्तर कर्म का सङ्कल्प करे। शुचिपात्र में अथवा सव्य पाणि में जल को ग्रहण कर स्थिर उदकाशय मे जितना कर्म करें उतने विभाग करके तीर्थों का आवाहन करे। उस जल को सव्य पाणि से ग्रहण कर उत्तान शिर पर मार्जन करना चाहिए। ॐ पूर्वक "आपोहिष्ठा मयो भुव।" इन तीन मन्त्रों से मार्जन करना चाहिए। फिर "सूर्यश्च" इस मन्त्र से जल लेकर आचमन करे। पूर्ण मन्त्र यह ऐसा है—"सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्राव्या पाप मकार्ष मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या मुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु, यत्किञ्चिद्दुरितं मयि, इदमहं माममृत यो नौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा"—यह मन्त्र है आचमन करने का। पुनः आचमन करके मार्जन करना चाहिए। प्रणव व्याहृति सावित्रीयों से और आपोहिष्ठा इस सूक्त से तथा गायत्री शिर से जल के द्वारा आत्मा का परिषिञ्चन करे यह मार्जन होता है।३।

४ अघमर्षणम्।

अथ गोकर्णवत्कृतेन पाणिनोदकमादाय, नासिकाग्रे धारयं-कृष्णघोरपुरुषाकृतिं पाप्मानमात्मानमन्तर्व्याप्य स्थितं विचिन्त्य, संयतप्राणोऽघमर्षणसूक्तं द्रुपदामृच चाऽऽवर्त्य दक्षिणेन नासाबिलेन शनैः प्राणं रेचयन्सर्वतस्तेन संहृत्य, कृष्ण रेचनवर्त्मना पाणिस्थ उदके पतितं ध्यात्वा, तदुद-कमनवेक्षमाणो वामतो भुवि तीव्राघातेन क्षिप्त्वानं वज्राहतं सहस्रधा दलितं भावयेदेष पाप्मऽपपोहः। एन-मेके न कुर्वन्ति। मार्जनेनैव तस्य व्यपोहितत्वादिति। 'द्रुपदादिवेन्मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूत पवित्रेणेवाऽऽज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः' इतीयं द्रुपदा ऋक् पापशोधिनी।४।

४—गो कर्ण के समान किये हुए पाणि से उदक लेकर नासिका के आगे धारण करते हुए परम घोर काले रंग वाले पुरुष की आकृति से युक्त पाप को अपने अन्दर व्याप्त होकर स्थित रहने वाले का चिन्तन करके संयत प्राण वाला होकर अघमर्षण सूक्त की और द्रुपदा-इस ऋचा की आवृत्ति करके दक्षिण नासिका के छिद्र से धीरे से प्राण का रेचन करते हुए सब ओर से सहन करके उस कृष्ण वर्ण वाले को रेचन मार्ग से हाथ में स्थित जल में पतित हुआ ध्यान करके उस जल को अवेक्षित न करते हुए ही भूमि पर बाईं ओर तीव्र आघात के साथ क्षिप्त करे और उस पाप को वज्र से आहत सहस्रों टुकड़ों में दलित हुआ उस पाप के व्यपोह की भावना करनी चाहिए। इसको कोई लोग नहीं किया करते हैं क्योंकि मार्जन के द्वारा ही उसको व्यपोहित स्वीकार करते हैं। "द्रुपदादिवेन्मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः" इति—यह द्रुपदा ऋक् पाप शोधिनी है ॥४॥

५ अर्घ्यादि गायत्र्यर्थान्तम् ।

अथाऽऽचम्य दर्भपाणिः पूर्णमुदकाञ्जलिमुद्धृत्याऽऽदित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिर्निवेदयन्नुत्क्षिपेद्य पुनः पाप्मव्यपोहं नेच्छति त आचम्येवार्घ्यमुत्क्षिपेयुरेतदेवार्घ्यनिवेदनमसावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं परियन्परिपिच्याप उपस्पृश्य, शुचौ देशे दर्भाग्रसोक्षिते दर्भानास्तीर्य, व्याहृतिभिरुपविश्य, प्राणायामत्रयं कृत्वाऽऽत्मानं व्याहृतिभिरभ्युक्ष्य सावित्र्या दैवतमनुस्मृत्यार्षादिकं वा तामेतां चक्षुरक्षरशो विभक्तामन्तर्योजितैः षड्भिस्तदङ्गमन्त्रैर्यथाङ्गमात्मनि विन्यस्याऽऽत्मानं तद्रूपं ध्यायेद्यथा तत्सवितुर्हृदयाय नम इति हृदये, वरेण्यं शिरसे स्वाहेति शिरसि, भर्गो देव शिखायै वषडिति शिखायां, स्यधीमहि कवचाय

ह्युमित्युरसि धियो यो नो नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रललाट-
देशेषु विन्यस्याथ प्रचोदयादस्त्राय फडिति करतलयोरस्त्र
प्राच्यादिषु दशसु दिक्षु विन्यसेदेषोऽङ्गन्यासः ।
एनमेके नेच्छन्ति स हि विभिरवैदिक इत्यर्थमनुसद-
धानाः । मन्त्रदेवतां ध्यात्वाऽऽगच्छ वरदे देवीत्यावाह्य
तिष्ठेन्नष्टेषु नक्षत्रेष्वाण्मण्डलदर्शनात्मन्त्रार्थं मनुसदधानः ।
सधान नेच्छन्त्येके । प्रणवव्याहृतिपूर्विकां सावित्री
जपेत् । जपं चाक्षसूत्रेणानामिकाया मध्या दारभ्य
प्रदक्षिणं दशभिरङ्गुलीपर्वभिर्वा गणयेत् । 'आगच्छ
वरदे देवि जप्ये मे सनिधा भव । गायन्तं त्रायसे यस्मा-
द्गायत्री त्वं ततः स्मृता' इत्यावाहनमन्त्रः । सवितुर्देवस्य
वरणीयं तेजो ध्यायेमहि योऽस्माकं कर्मणि प्रेरयतीति
मन्त्रार्थः । ।

५—इसके अनन्तर आचमन करके हाथ में दर्भ ग्रहण करने वाला पूर्ण उदक की अञ्जलि का उद्धरण कर सूर्य्य की ओर अभिमुख होवे और स्थित होकर प्रणव और व्याहृतियों के सहित सावित्री से तीन बार निवेदन करता हुआ उत्क्षेपण करना चाहिए । जो पाप का व्यपोह नही चाहता है वह आचमन करके ही वामव्य दिशा मे उत्क्षिप्त करना चाहिए । यह ही अर्घ्य का निवेदन होता है । यह आदित्य ब्रह्म है—इससे प्रदक्षिण परिपन करता हुआ जल का उपस्पर्शन करके दर्भ और जल से ऊक्षित शुचि देश में दर्भों का आस्तरण करके व्याहृतियों से उपवेशन करे । फिर तीन प्राणायाम करके अपने आपको व्याहृतियो से अभ्युक्षण करे । सावित्री से दैवत का अनुस्मरण करके अथवा आर्यादिक को चार अक्षरों में विभक्त कर उसको अन्तर्योजित छै अङ्ग मन्त्रो से यथाङ्ग आत्मा मे विन्यास कर के अपने आपको उसी प्रकार से भावित करना चाहिए । "तत्सवितु र्ह्रदयाय नमः" इससे हृदय में, "वरेण्यं शिर से स्वाहा"—इससे शिर

में, "भर्गोदेवस्य शिखायै वषट्" इससे शिखा में, "धीमहि कवचाय हुम्" इससे उर में, "धियो योनः नेत्र त्रयाय वौषट्"—इससे नेत्र ललाट देशों में, विन्यास करके इसके अनन्तर—"प्रचोदयात् अस्त्रायफट्"—इससे करतलों में अस्त्र को प्राची आदि दश दिशाओं में विन्यास करना चाहिए—यह अङ्गन्यास है। कुछ लोग इसको नहीं चाहते है और वे ऐसा अनुसधान किया करते है कि वह विधि अवैदिक है। मन्त्र के देवता का ध्यान करके 'आगच्छ वरदे देवी"—इससे आवाहन करके स्थित रहे और नक्षत्रों के नष्ट हो जाने पर आमण्डल दर्शन में मन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करता हुआ रहे। कुछ लोग अनुसन्धान करने की भी इच्छा नहीं करते है। फिर प्रणव व्याहृतियों के सहित सावित्री का जाप करना चाहिए। जप अक्ष सूत्र के द्वारा अनामिका के मध्य से आरम्भ करके प्रदक्षिण दश अङ्गुलियों के पर्वो से गणना करनी चाहिए। आवाहन का मन्त्र यह है—"आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे सन्निधा भव। गायन्त त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता"। सविता देव का वरणी। तेज का ध्यान करते है जो हमारे कर्म में प्रेरणा देता है। यही मन्त्र का अर्थ होता है ॥५॥

६ त्रिकालगायत्रीध्यानादि ।

अथ देवताध्यानम् । यासन्ध्योक्ता सैव मन्त्रदेवता खन्नूपास्यते ता सर्वदेवरूपां ध्यायेदनुसन्ध्यमन्यान्यरूपा वा यदैकरूपामृग्यजुःसामत्रिपदां त्रिवर्गं भूर्भुवःस्वः दिक्षु षट्कुक्षि पञ्चशिरसमग्निमुखीं विष्णुहृदयां ब्रह्मशिरस्का रुद्रशिखां दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजा शुभ्रवर्णा शुभ्राम्बरानुलेपनस्रगाभरणां शरच्चन्द्रसहस्रप्रभां सर्वदेवमयीमिमां देवी गायत्रीमेकामेव तिसृषु सन्ध्यासु ध्यायेदथ यदि भिन्नरूपां तां प्रातर्बालां बालादित्यमण्डलमध्यस्थां रक्तवर्णां रक्ताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां चतुर्वक्त्रां दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजां ब्रह्मदैवत्यामृग्वेदमुदा-

हरन्तीं भूर्लोकाधिष्ठात्री गायत्रीं नाम देवतां ध्यायेदथ मध्यदिने तां युवती युवादित्यामण्डलमध्यस्थां श्वेतवर्णा श्वेताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्र त्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गडमरुकाङ्कचतुर्भुजां वृषभासनारूढां रुद्रदैवत्यां यजुर्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकाधिष्ठात्रीं सावित्रीं नाम देवतां ध्यायेदथ सायं तां वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्थां श्यामवर्णां श्यामाम्बरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां शंखचक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजां गुरुडासनारूढां विष्णुदैवत्यां सामवेदमुदाहरन्ती स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सरस्वती नाम देवतां ध्यायेद्ध्यानं नेच्छन्त्येके। तत आवाह्य जपित्वा जातवेदसे सुनवाम सोम तच्छंयोरावृणीमहे नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नय इत्येताभिरुपस्थाय प्रदक्षिणं दिशः साधिपा नत्वाऽथ संध्यायै गायत्र्यै सावित्र्यै सरस्वत्यै सर्वाभ्यो देवताभ्यश्च नमस्कृत्य तत 'उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखमिति सध्या विसृज्य भद्रं नो अपिवातय मन इत्युक्त्वा शान्तिं च त्रि[illegible] नमो ब्रह्मण इति प्रदक्षिणं परिक्रामन्नासत्यलोकादापातालोद्वालोकालोकपर्वतात्। ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्य नमो नमः' इति नमस्कृत्य भूमिमुपसंगृह्य गुरून्वृद्धांश्चोपसंगृह्णीयादेवम्। सायं विशेषास्तु सूर्यश्चेति मन्त्रे सूर्यस्थानेऽग्निपदंमावपेद्राव्याहूना रात्रिरहः [illegible] ज्योतिष्मीत्यन्तो ब्रूयाज्जपं चार्धास्तमिते मण्डले आ [illegible]दासीनेति ।६।

६—इसके अनन्तर देवता का ध्यान है। जो सन्ध्या कही गयी है वह ही मन्त्र का देवता उपासना किया जाता है। सर्वदा एक रूप वाली उसका ध्यान करना चाहिए। अथवा अनुसन्ध्य अन्यान्य रूप वाली

का ध्यान करे। जब एक रूप वाली उसका ध्यान करे तो ऋक्, यजु, साम के त्रिपदा को—तिर्यक्-ऊर्ध्व और अधो भाग मे दिशाओ मे छे कुक्षि वाली, पाँच शिरों वाली, अग्नि के मुख वाली, विष्णु के हृदय वाली, ब्रह्मा के शिर वाली, रुद्र को शिखा मे धारण किये हुए, दण्ड-कमण्डलु अक्षसूत्र और अभय इनको चारो हस्तो मे रखने वाली—शुभ्र वर्ण से युक्त, शुभ्र वस्त्र, शुभ्र अनुलेपन, शुभ्र स्रक् और शुभ्र आभरणो से समन्वित, शरत्कालीन सहस्र चन्द्रों की प्रभा वाली सर्व देवों से परिपूर्ण उस देवी गायत्री का ही तीनो सन्ध्याओ मे ध्यान करना चाहिए। यदि उसका भिन्न रूपों वाली उसका ध्यान करना हो तो प्रातः काल मे बाला बाल आदित्य मण्डल मे मध्य मे स्थित, रक्त वर्ण वाली, रक्त ही वस्त्र, अनुलेपन, स्रक् और आभरणो से युक्त, चार मुखो वाली दण्ड कमण्डलु अक्षसूत्राभय—इन चारो को चारो करो मे धारण करने वाली, हंसासन पर समारूढ ब्रह्म दैवत्य वाली, ऋग्वेद का उच्चारण करती हुई, भूलोक की अधिष्ठात्री गायत्री नाम वाले देवता का ध्यान करना चाहिए।

इसके अनन्तर मध्य दिन मे उसका ध्यान युवती के रूप मे और युवा ही आदित्य के मण्डल मे मध्य मे स्थित, श्वेत वर्ण वाली, श्वेत अम्बर, अनुलेपन, स्रक् और आभरणो से युक्त, पाँच मुखों वाली, प्रत्येक मुख मे तीन २ नेत्रो वाली, शेखर मे चन्द्र को धारण करने वाली, चारो भुजाओं में त्रिशूल-खट्वाङ्ग-डमरु और कार्मुक को धारण किये हुए, वृषभ के आसन पर समारूढ, रुद्र देवता वाली, यजुर्वेद का उच्चारण करती हुई, भुवर्लोककी अधिष्ठात्री सावित्री नाम वाले देवता का ध्यान करना चाहिए। इसके अनन्तर सन्ध्या के समय मे उसका ध्यान किस रूप से करे—यह बतलाते है—सायङ्काल में वृद्ध स्वरूपा—वृद्ध आदित्य के मण्डल में मध्य में समवस्थित, श्याम वर्ण से युक्त, श्याम ही वस्त्र, अनुलेपन—स्रक् और आभरणों से समन्वित एक मुख वाली, शंख-चक्र-गदा और पद्म—इनको चारों करों मे धारण करती हुई गरुड़ पर समारूढ़, विष्णु दैवत्य वाली, सामवेद का उच्चारण करती हुई, स्वर्ग लोक की अधि-

प्रात्री सरस्वती देवता का नाम वाली का ध्यान करना चाहिए। कुछ विद्वान् ध्यान की इच्छा नहीं करते है।

इसके उपरान्त आवाहन करके जाप करे। 'जात वेद से सुनवाम सोमरात्त्वं पोरावृणी महे नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नयें'' इन ऋचाओं से उपस्थान करके प्रदक्षिण मे अधिरों के साथ दिशाओं को नमस्कार करके इसके बाद सन्ध्या के लिये, गायत्री के लिये, सावित्री के लिये, सरस्वती के लिये, सब देवताओ के लिये नमस्कार करे। इसके उपरान्त ''उत्तरे शिखरे देविभूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्। इससे सन्ध्या का विसर्जन कर के ''भद्रं नो अपिवातय मन'' यह कह कर तीन बार शान्ति का उच्चारण करे ''नमो ब्राह्मणे'' इससे प्रदक्षिण परिक्रमा करते हुए ''आसत्यलोकादापातात्विदा लोकालोक पर्वतात्। येसन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमोनमः। इससे नमस्कार करे। फिर भूमिका उपसंग्रह करे। इसी प्रकार से गुरु वर्ग को और वृद्धों का उप सग्रहण करना चाहिए। सायङ्काल मे विशेषता यही है कि 'सूर्यश्चेति' इस मन्त्र मे सूर्य के स्थान में अग्निपद का आवयम करे 'रात्र्याह्ना रात्रि रहः रात्येज्योतिषी'—इसके अन्त में बोलना चाहिए। अर्धास्तमित मण्डल के होने पर नक्षत्रों के दर्शन तक समालीन होकर जप करे।६।

७ आचमनमन्त्रादि ।

अथ मध्यंदिन आपः पुनन्त्विति मन्त्राचमनमापः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति-र्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहङ्-स्वाहेत्याथाऽऽकृष्णीयया हृमवत्या वा त्रिः सकृद्वा-ऽर्घ्यं गुत्क्षिप्योर्ध्वबाहुरुन्मुख उदुत्यं जातवेदस चित्रं देवानामिति सूक्ताभ्यामाभ्यां वा मन्त्राभ्यां तच्चक्षुरित्ये-तया वाऽऽदित्यमुपस्थाय जप प्राङ्मुख आसीनो यथेष्ट-काल कुर्यादित्येप सध्याविधिर्व्याख्यातः।७।

७—इसके उपरान्त मध्यन्दिन में "आपः पुनन्त्विति मन्त्र से आचमन करे "आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम्" । 'यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहम् स्वाहा"—इससे आचमन करे या उससे तीन बार या एक बार अर्घ्य को उत्क्षिप्त करके ऊर्ध्वबाहु खड़ा होकर उदङ्मुख हो 'उदुत्यं जातवेदसम् चित्रं देवानाम्"—इन सूक्तों से अथवा मन्त्रों से अथवा "तच्चक्षु" इस एक ऋचा से आदित्य देव का उपस्थान करके समासीन हो प्राङ्मुख रहते हुए यथेष्ट कालपर्यन्त जप करना चाहिए—यही सन्ध्याकी विधि है जिसकी व्याख्या कर दी गयी है ।७।

८ मन्त्राणामृपिदैवतच्छन्दःक्रम ।

अथास्य मन्त्राणामृषिदेवतच्छन्दांसि । प्रणवस्य ब्रह्मा परमात्मा देवी गायत्री,व्याहृतीनां सप्तानां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपाः प्रजापतिर्वाऋषिर्वाऽग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यग्निर्नृणामाद्यानां समस्तानां वा देवता प्रजापतिर्बृहती सावित्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री शिरसः प्रजापतिर्ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवता यजुश्छन्दः । आपो हि ष्ठेति सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वाऽऽपो गायत्र्यश्चानुष्टुबन्तं पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त्ये द्वे सूर्यश्च त्वमग्ने यममन्युपतय. प्रकृतिरापः पुनन्तु विष्णुरापो हि ष्ठा अग्निश्च रुद्रोऽग्निमन्युमन्युपतयः प्रकृतिः ऋतं च माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमानुष्टुभ जातवेदसे कश्यपो जातवेदा अग्निस्त्रिष्टुप् तच्छंयोः शंयुर्विश्वे देवाः शक्वरी नमो ब्रह्मणे प्रजापतिर्विश्वे देवा जगती आकृष्णेन हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप् हंसः शुचिषद्वामदेवः सूर्यो जगत्युदुत्यं प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्रमन्त्या-स्तस्त्रोऽनुष्टुभश्चित्रं देवानामिति कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् तच्च-

क्षुर्वसिष्ठः सूर्यः पुरउष्णिक् दैवतस्मरणमेव वा कुर्यादेव-मन्यत्र व्याख्यातम् ।८।

८—इसके अनन्तर मन्त्रों के ऋषि देवता और छन्दों को बतलाया जाता है । प्रणव का ब्रह्मा परमात्मा है-देवी गायत्री है । सात व्याहृतियों के विश्वामित्र-भरद्वाज-गौतम-अत्रि-वसिष्ठ कश्यप अथवा प्रजापति हैं । सब व्याहृतियों के देवता अग्नि-वायु आदित्य-बृहस्पति-वरुण-इन्द्र और विश्वे-देवा हैं ।गायत्री-उष्णिक् अनुष्टुप बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुप-जगती छन्द हैं ।अथवा आद्य समस्तों का देवता प्रजापति है,बृहती सावित्री का विश्वामित्र सविता गायत्री शिर का प्रजापति है, ब्रह्मा अग्नि-वायु-आदित्य देवता हैं और यजु छन्द है ।८।

९ स्नानविधिः ।

अथ स्नानविधिस्तत्प्रातर्मध्याह्ने च गृहस्थः कुर्यादेकत-रत्र वा प्रातरेव ब्रह्मचारी यतिस्त्रिषु सवनेषु द्विस्त्रिर्वा वानप्रस्थस्तत्प्रातः सह गोमयेन कुर्यान्मृदा मध्यादिनेसायं शुद्धा मिरद्भिर्नं प्रातः स्नानात्प्राक्सध्यामुपासीत प्रात-रुत्सृष्टं गोमयमन्तरिक्षस्थं सगृह्य भूमिष्ठं वोपर्यधश्च संत्यक्तं तीर्थमेत्य धौतपादपाणिमुख आचम्य संध्योक्त-वदात्माभ्युक्षणादि च कृत्वा द्विराचम्य दर्भपाणिः संयत-प्राणः कर्म सकल्प्य गोमय वीक्षितमादाय सव्ये पाणौ कृत्वा व्याहृतिभिस्त्रेधा विभज्य दक्षिणं मार्गे प्रणवेन दिक्षु विक्षिप्योत्तरोत्तरं तीर्थे क्षिप्त्वा मध्यमं मानस्तोक इत्यृचाऽभिमृश्य गन्धद्वारामित्यनया मूर्धादिसर्वाङ्गमा-लिप्य प्राञ्जलिर्वरुणं हिरण्यशृङ्गमिति द्वाभ्यामवते हेड इति द्वाभ्यां प्रसम्राजे बृहदर्चेति सूक्तेन प्रार्थ्य हिरण्य-शृङ्ग वरुण प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः । यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः । यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृत कृतम् । तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः

सविता च पुनन्तु पुन पुनरिति । अथ याः प्रवतो निवत उद्वत इत्येतया तीर्थमभिमृश्यावगाह्य स्नातो द्विराचम्य मार्जयेदम्बयो यन्त्यध्वभिरित्यष्टाभिरापो हिष्ठेति च नवभिरथ तीर्थमङ्गुष्ठेनेम मे गङ्गे इत्यृचा त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य प्रकाशपृष्ठमग्नावघमर्षणसूक्तं त्रिरावर्त्य निमज्योन्मज्याऽऽदित्यमालोक्य द्वादशकृत्व आप्लुत्य पाणिभ्यां शङ्खमुद्रया योनिमुद्रया वोदकमादाय मूर्ध्नि मुखे बाह्वोरुरसि चाऽऽत्मानं शाखयाऽभिषिञ्चन् 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वानिति' द्वाभ्यां 'नरस्ममदीधावत्तीति' च सूक्तेन पुनः स्नायान्मूर्ध्नि चाभिषिञ्चेत्—'तद्विष्णोः परमं पदमग्ने रक्षाणो अंहसा यत्किञ्चेदं वरुणदैव्येजने' इत्येता जपेत् । प्रांतामिमुखः सरित्सु स्नायादन्यत्राऽऽदित्याभिमुखोऽथ साक्षताभिरद्भिः प्राङ्मुख उपवीती देवतीर्थेन व्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ता भिर्ब्रह्मादीन्देवान्सकृत्सकृत्तर्पयित्वाऽथोदङ्मुखो निवीती सयवाभिरद्भिः प्राजापत्येन तीर्थेन कृष्णद्वैपायनादीनृषीन्द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां तर्पयित्वाऽथ दक्षिणाभिमुखः प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरद्भिर्व्याहृतिभिरेव सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्ताः कव्यवाहन इत्यादीन्त्रीन्त्रींस्तर्पयेदेतत्स्नानाङ्गतर्पणमथ तीरमेत्य दक्षिणाभिमुखः प्राचीनावीती 'ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः । ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकमिति ' वस्त्रं निष्पीड्य यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य परिधानीयमभ्युक्ष्य परिधाय द्विनीयं चोत्तरीयं पर्युक्षित प्रावृत्य द्विराचामेदथोक्तसन्ध्यामुपासीतेदं प्रातः स्नानविधानम् ।६।

६—इसके अनन्तर स्नान की विधि बतलाते हैं— प्रातःकाल में और मध्याह्न में गृहस्थ को करना चाहिए । अथवा एक ही समय में प्रातःकाल

ही मे करे। ब्रह्मचारी और यति तीनों सवनों में दो बार अथवा तीन बार करे। वानप्रस्थ प्रातः काल मे गोमय के साथ करे, मध्य दिन में मृत्तिका से करे तथा सायंकाल में केवल शुद्ध जल से करे। प्रातःकाल में स्नान से पहिले सन्ध्योपासना नहीं करनी चाहिए। प्रातः काल में उत्सृष्ट गोमय को अन्तरिक्ष में स्थित का सग्रह करके भूमि में स्थित अथवा ऊपर नीचे मलयुक्त को लेवे। तीर्थ में जाकर हाथ-पैर और मुख को धोने वाला आचमन करके सन्ध्या में कथित के समान आत्मा का अभ्युक्षण आदि करके दो बार आचमन करके हाथ मे कुश लेकर सयतप्राण वाला होवे कर्म का सङ्कल्प करके वीक्षित गोमय को लाकर सव्यपाणि में रक्खें। व्याहृतियों से उसके तीन भाग करके दक्षिण मार्ग को प्रणव से दिशाओं मे विक्षिप्त करके उत्तरोत्तर तीर्थ मे क्षेपण करे। मध्यम को " इस ऋचा से अभिमर्षण करके "गन्धद्वाराम्'...इस ऋचा से मूर्धा आदि सब अङ्ग का आलेपन कर प्राञ्जलि होकर "वरुण दिव्य श्रृङ्गम्"—इन दो से "मव ते हेड-इन दो से 'प्रसम्राजे बृहदर्चग—इस सूक्त से प्रार्थना करे।" हिरण्य शृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः। यन्मया भुक्तम साधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः। यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम्। तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविताच पुनन्तु पुन. पुनः" इति। इसके उपरान्त 'याः प्रवतो निवत उद्वत'' इस ऋचा से तीर्थ का अभिमर्षण करके अवगाहन करे। स्नात होकर दो बार आचमन करे और मार्जन करना चाहिए। 'अम्बयो यन्त्यध्वभिः'' इन आठो से और "आपोदिष्ठा" इन नौ से तीर्थ को अगुष्ठ के द्वारा 'इमंमेगङ्ग''—इस ऋचा से तीन बार प्रदक्षिण आलोडन करके प्रकाशपृष्ठ अग्नि मे अघमर्षण सूक्त की तीन वार आवृत्ति करके निमज्जनोन्मज्जन करके आदित्य देव का आलोकन करे। बारह बार आप्लुत होकर दोनों हाथो से शङ्ख की अथवा योनि की मुद्रा से जल लेकर मूर्धा में, मुख में, बाहुओं मे, उर म अपने आपको गायत्री से अभिषेचन करना चाहिए। फिर "त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्"—इन दो से तरत्समं दीधी"-इस सूक्त से पुनः स्नान करे और मूर्धा में अभिषेचन करना चाहिए। इसके पश्चात् "तद्विष्णोः परमं पदगग्ने रक्षाणो अहंसो यस्कि-

ऋग्वेद वरुण दैव्यंजने—इनका जाप करे। स्रोत के अभिमुख होकर नदियों में स्नान करना चाहिए। अन्य स्थलों में आदित्य के अभिमुख होकर करना चाहिए। अक्षतों के सहित जल से प्राङ्मुख होकर उपवीती देवतीर्थ से व्यस्त समस्त व्याहृतियों से ब्रह्मादि देवों का एक-एक बार तर्पण करके फिर उत्तर की ओर मुख वाला होकर निवीती होवे और यवों के सहित जल से प्राजापत्य तीर्थ से उन व्याहृतियों के द्वारा कृष्ण द्वैपायन आदि ऋषियों को दो दो बार तर्पण करे। इस के उपरान्त दक्षिणाभिमुख होकर प्राचीनावीती होवे और पितृ तीर्थ से तिलों से युक्त जल से व्याहृतियों के ही द्वारा सोम, पितृमान्, यम, आङ्गिरस्वान्, अग्निष्वात्ता, कव्यवाहन—इत्यादि का तीन-तीन बार तर्पण करे। यह स्नानाङ्ग तर्पण है। इसके अनन्तर तीर्थ पर प्राप्त होकर दक्षिणाभिमुख होवे और प्राचीनावीती होकर "ये के चास्मत्कुलेजाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः। ते गृह्णन्तु मयो दत्तं वस्त्र निष्पीडनोदकम्"—इस का उच्चारण कर वस्त्र का निष्पीडन करे। यज्ञोपवीती जल का उपमार्जन कर परिधानीय का अभ्युक्षण करे और दूसरा उत्तरीय का परिधान कर पर्युक्षित को प्रावृत्त कर दो बार आचमन करना चाहिए। इसके पश्चात् सन्ध्या की उपासना करे। यह प्रातः स्नान का विधान है।९।

१० मध्याह्नस्नानविधि

अथ मध्यंदिने तीर्थमेत्य धौतपाणिपादमुखो द्विराचम्याऽऽयतप्राणः स्नानं सकल्प्य दर्भपवित्रपाणिः शुची देशे खनित्रेण भूमिं गायत्र्यस्त्रेण खात्वोपरि मृदं चतुरङ्गुलमुद्वास्याधस्तान्मृदं तथा खात्वा गायत्र्याऽऽदाय गर्तं-मुद्वासितया मृदा परिपूर्य मृदमुपात्तां शुची देशे तीरे निधाय गायत्र्या प्रोक्ष्य तच्छिरसा त्रेधा विभज्यैकेन मूर्ध्न आ नाभेरपरेण चाधस्तादङ्गमनुलिप्याप्स्वाप्लुत्य क्षालयित्वाऽऽदित्य निरीक्ष्य, तं ध्यायन्स्नायादेतन्मल-स्नानमाहुः। अथ तीरे द्विराचम्य तृतीयमस्त्रेणाऽऽदाय

सव्ये पाणौ कृत्वा व्याहृतिभिस्त्रेधा विभज्य दक्षिण-भागमस्त्रेण दिक्षु दशसु विनिक्षिप्योत्तरं तीर्थे क्षिप्त्वा तृतीयं गायत्र्याऽभिमन्त्रितमादित्याय दर्शयित्वा तेन मूर्ध्न आ पादाद्गायत्र्या प्रणवेन वा सर्वाङ्गमनुलिप्य सुमित्र्या न आप ओषधयः सन्त्विति सकृदद्भिरात्मान-मभिषिच्य दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति मृच्छेषमद्भिः क्षालयेत् । अथ वरुणप्रार्थना । तर्पणान्तेनोक्तेन विधिना स्नायान्नस्मिन्प्राग्ब्रह्मयज्ञत-र्पणाद्वस्त्रं निष्पीडयेद पुत्रादयो ह्यन्ते तर्प्या इष्येष स्नान-विधिः । तदेतदसभवेऽद्भिरेव कुर्याद्भौमदिनादिषु च न च गृहे मृदा स्नायान्न च शीतोदकेन शीतोष्णोदकेन गृहे स्नायान्मन्त्रविधि वर्जयेद्बहिर्वाशुचौ देशे सर्वं पश्चा-त्कुर्यादिति । १० ।

१०—मध्य दिन में तीर्थ पर पहुंच कर हाथों और मुख को धोकर दो बार आचमन करे फिर आयत प्राण वाला होकर स्नान करने का संङ्कल्प करे। हाथ मे दर्भ ग्रहण कर किसी शुचि देश में गायत्र्यस्त्र के द्वारा खनित्र से भूमि का खनन करे। ऊपर की चार अङ्गुल मृत्तिका को उद्वासित करके नीचे की मिट्टी को गायत्री से लेवे और खोदी हुई मिट्टी से गर्त्त को भर देवे। उस ग्रहण की हुई मृत्तिका को पवित्र देश में रखकर उसका गायत्री से प्रोक्षण करना चाहिए। उसको शिर से तीन भागों में विभक्त करके एक भाग से मूर्धा को दूसरे से नाभि पर्यन्त अङ्ग को और नीचे के अङ्ग को अनुलिप्त करके जल में गोता लगावे और सबको क्षालित कर सूर्य का निरीक्षण करे और उसी का ध्यान करता हुआ स्नान करे—इसको मल स्नान कहते हैं।

इसके उपरान्त तीर पर दो बार आचमन करके तृतीय भाग को अस्त्र से सव्य पाणि मे लेकर व्याहृतियों से तीन भागों में विभाजित करके दक्षिण भाग को अस्त्र से दशों दिशाओं में विनिक्षिप्त करे

और उत्तर को तीर्थ में पवित्र करे तथा तीसरे भाग को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके आदित्य देव को दिखाकर उससे मूर्धा से लेकर पाद पर्यन्त गायत्री से अथवा प्रणव से सब अङ्ग को अनुलिप्त करके "सुमित्र्या न आप ओषधयः सन्तु"—इससे एक बार जल से अपने आपका अभिषेचन करे। "दुर्मित्रास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः" इससे शेष मृत्तिका का जल में क्षालन कर देना चाहिए। इसके अनन्तर वरुण की प्रार्थना है। तदनन्तर उक्त विधि से स्नान करना चाहिए। उसमें आचमन सब तर्पण में वस्त्र का निचोड़ना नहीं करना चाहिए। जो अघमर्षण है उनका अन्त में तर्पण करना चाहिए—यह स्नान की विधि है। यह आचमन दोनों जल के द्वारा ही करना चाहिए। भौमदिनादिक में घर में मिट्टी से स्नान न करे—शीतोदक से, शीतोष्णोदक से गृह में स्नान करे। मन्त्र विधि को धोकर कर देवें। बाहिर किसी शुचि देश में सब विधि करना चाहिए।१०।

११ मन्त्रस्नानप्रकारः।

अथाशक्तस्य मन्त्रस्नानं शुचौ देशे शुचिराचान्तः प्राणानायम्य दर्भपाणिः सव्ये पाणावपः कृत्वा तिसृभिरापोहिष्ठीयाभिः पच्छः प्रणवपूर्वं दर्भादकैर्मार्जयेत्। पादयोर्मूर्ध्नि हृदये मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चार्धार्धर्चशो मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथ ऋक्शो हृदये पादयोर्मूर्ध्नि तृचेन मूर्ध्नीति मार्जयित्वा गायत्र्या दशधाऽभिमन्त्रिता अपः प्रणवेन पीत्वा द्विराचामेदेतन्मन्त्र स्नानम्। ११।

११—जो स्नान करने में किसीभी कारणसे असमर्थ हो वह किसी पवित्र देश में शुचि होकर आचमन करे और प्राणायाम करके हाथ में दर्भ ग्रहण करे और सव्य पाणि में जल लेकर तीन "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रों से प्रणव पूर्वक दर्भोदक से मार्जन करना चाहिए। पैरों में, मूर्धा में, हृदय में—मूर्धा में हृदय में, पैरों में इसके अनन्तर आधी ऋचाओं

से मूर्धा में, हृदय मे, पादों में तथा हृदय में, पादों में मूर्धा में और इसके उपरान्त ऋचाओं से हृदय मे, पादों मे और मूर्धा में मार्जन करके गायत्री मन्त्र से दश बार अभिमन्त्रित जल को प्रणव से पान करके दो बार आचमन करना चाहिए—यह मन्त्र स्नान की विधि है।

१२ वैश्वदेवविधिः।

अथ वैश्वदेवी दिनस्य प्रारम्भो नात्र पाकयज्ञतन्त्रमग्निमौपासन पचनं वा परिसमुह्य पर्युक्ष्याऽऽयतनमलकृत्य सिद्धं हविष्यमधिश्रित्याद्भिः प्रोक्ष्योदगुद्वास्याग्नेः प्रत्यग्दर्भेषु निधाय सर्पिषाऽभ्यज्य सव्य पाणितलं हृदये न्यस्य सकृदवदानेन पाणिना जुहुयात्। 'सोमाय वनस्पतये' इत्येकाहुतिं 'दिवाचारिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः' इति सर्वभूतानां विशेषणं प्रजापतेरुक्तिरिष्यते प्रधानबलेरुदक्पुरुषबलिस्तदिदमन्नाभावे मण्डुलादिभिः कुर्यादिके चान्ते च परिसमुह्य पर्युक्षेदेके नात्र तन्त्रमिति पर्यूहनोक्षणे अपि न कुर्वन्ति केवलं हुत्वोपतिष्ठन्ते। विश्वेदेवाः सर्वे देवास्तद्दैवत्यमितीदं वैश्वदेवम्। १२।

१२—इसके अनन्तर वैश्वदेव दिन का प्रारम्भ है। इसमें पाक यज्ञ तन्त्र, अग्नि, औपासन अथवा पचन का परिसमूहन न करके पर्युक्षण करे। आयतन को अलङ्कृत करके सिद्ध हविष्य को अधिश्रित करके जल से प्रोक्षण करना चाहिए। उत्तर की ओर उद्वासन करके अग्नि के प्रत्यक् दर्भों पर रखकर घृत से अभिजन करके सव्य पाणितल को हृदय पर रक्खे। एक बार अवदान से हाथ के द्वारा हवन करना चाहिए।"सोमाय वनस्पतये" इससे एक आहुति "दिवा चारिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः" इससे सर्व भूतों का विशेषण प्रजापति की उक्ति अभीष्ट होती है। प्रधान बलि से उदक्पुरुष बलि है। वह उस अन्न के अभाव में मण्डुलादि के द्वारा करनी चाहिए। कतिपय लोग अन्न मे परिसमूहन करके पर्यु-

क्षण करना चाहिए। कुछ लोग कहते है—यहां पर तन्त्र नहीं है। ये लोग पर्युंक्षण और ऊक्षण भी नही किया करते है और केवल हवन करके अवस्थित हुआ करते है। विश्वेदेवा सब देव है उसका दैवत्य होता है—यही वैश्वदेव होता है।१२।

१३ पुण्याहवाचनविधि.।

अथ स्वस्तिवाचनमृद्धिपूर्तेषु स्वस्त्ययनं वाचयेदित्याचार्य ऋद्धिविवाहान्ता अपत्यसंस्काराः, प्रतिष्ठोद्यापने पूर्ते, तत्कर्मण आद्यन्तयोः कुर्याच्छुचि स्वलंकृतो वाचयीत तथाभूते सर्वान मङ्गलसंभारभृति युग्मान्ब्राह्मणान्प्रशस्तानाचारलक्षणसम्पन्नानर्घ्यादिभिरभ्यर्च्य दक्षिणया तोषयेत्। अथ प्राङ्मुखा प्रशस्ता दर्भपाणय आसित्ष्ठेयुस्तद्दक्षिणतो वाचयितोदगुत्तरः सस्त्रीकार्या वाचयितुर्दक्षिणपार्श्वमातिष्ठेयु। अथ वाचयिता दर्भपाणिरपां पूर्णमुदकुम्भं स्वर्चितं सपल्लवमुखं धृत्वा तिष्ठन्समाहितो 'मनः समाधीयतामिति' ब्राह्मणान्ब्रूयात्समाहितमनसः स्मः' इति ते ब्रूयुः 'प्रसीदन्तु भवन्तः' इति वाचयिता 'प्रसन्नाः स्मः' इतीतरे। अथ ते सर्वे संहत्य शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिवृ द्धिरविघ्नमायुष्यमारोग्यं शिवं कर्म कर्मसमृद्धिर्धर्मसमृद्धि पुत्रसमृद्धिर्वेदसमृद्धिः शास्त्रसमृद्धिर्धनधान्यसमृद्धिरिष्टसमृद्धिरित्येतानि पञ्चदश तन्त्राण्युक्तानि तन्नाम्ना कर्मदेवता प्रीयतामिति ब्रूयुः। अथ वाचयिता पूर्ववत्तल्लिङ्गमन्त्रान्पठित्वा त्रिस्त्रिर्मन्द मध्योच्चस्वरैरों भवन्तो ब्रुवन्तु स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्त्विति ब्रूयात्तेऽपि तथा प्रत्येक प्रतिब्रूयुरोमित्यृध्यतामित्यृद्धी प्रतिब्रूयुः। अथ प्राङ्मुखमासीनं सामात्यं कर्तारं ब्राह्मणाः सपल्लवदर्भपाणयः प्राङ्मुखास्तिष्ठेयुः शान्तिपवित्रलिङ्गाभिर्ऋग्भिरभिषिञ्चेयुः पुरन्ध्र्यो नीराजनादि कुर्युः।।१३।

इसके अनन्तर स्वास्ति वाचन समृद्धि पूर्तों में स्वस्त्ययन् का वाचन करना चाहिए। ऋद्धि विवाहान्त अपत्य संस्कार होते है। प्रतिष्ठोद्यापन मे पूर्त्त होता है। उस कर्म के आदि–अन्त में करना चाहिए। शुचि और भली भाँति अलकृत होकर वाचन करना चाहिए। उस प्रकार के मङ्ग-लिक सम्भारों से समान्वित सद्म में आचार के सुलक्षणों से युक्त, परम प्रशस्त दो ब्राह्मणों को अर्घ्य आदि के द्वारा अभ्यर्चन करके उन्हे दक्षिणा से तोषित करना चाहिए। इसके अनन्तर प्राङ् मुख, प्रशस्त और हाथो में दर्भ ग्रहण करके स्थित रहना चाहिए। दक्षिण की ओर उदङ मुख वाचयिता सत्कार्य हें और वाचयिता के दक्षिण पार्श्व में समास्थित होवें। इसके उपरान्त वाचन करने वाला हाथो में दर्भ ग्रहण करके पूर्ण कुम्भ को भली भांति अर्चित करके और मुख में पल्लव लगाकर धरे और स्थित होता हुआ ही समाहित होकर ब्राह्मणों से यह कहे—"मनः समाधीयताम्" अर्थात् मन को समाहित करिए। फिर उन्हे भी कहना चाहिए—"समाहित मनसः स्मः" अर्थात् हम समाहित मन वाले हे। वाचयिता कहे—"प्रसीदन्तु भवन्त" अर्थात् आप सब प्रसन्न होवे। दूसरों को कहना चाहिए—"प्रसन्नाः स्मः "अर्थात् हम सम सब प्रसन्न है। इसके उपरान्त वे सभी संहृत करके शान्ति-पुष्टि–तुष्टि-वृद्धि–अविघ्न-आयुष्य - आरोग्यशिवकर्मसमृद्धि-धर्म समृद्धि पुत्र समृद्धि-वेद समृद्धि शास्त्र समृद्धि-धनधान्य समृद्धि और इष्ट समृद्धि ये पञ्चदश तन्त्र कहे गये है। तन्नाम से कर्म देवता प्रसन्न होवें–यह बोलें। इसके अनन्तर वाचन करने वाला पूर्व की ही भाँति उनलिंग मन्त्रों को पढ़कर तीन-तीन बार मन्त्र-उच्च स्वरों से ॐ पुण्याहं भवन्त" यह बोलें—आप लोग 'स्वस्ति' बोले, आप सब ऋद्धि बोले—यह बोलना चाहिए। वे भी प्रत्येक वैसा ही प्रति वचन कहें। "ओमिति ऋध्य स्तम्' यह ऋद्धि में प्रति वहन करना चाहिए। इसके अनन्तर पूर्व की ओर मुख वाले वैठे हुए अमात्यों के सहित कर्त्ता को ब्राह्मण पल्लव और दर्भ हाथो में लिये हुए प्राङ्मुख ही स्थित रहें। शान्ति

पवित्र लिङ्गों वाली ऋचाओं से अभिषिञ्चन करे और पुरुषों को नीराजन आदि करना चाहिए ।१३।

१४ स्थण्डिलादि ।

अथ होष्यद्धर्मे किंचिदुच्छ्रिता समाऽकृत्रिमा भूमिः स्थण्डिलमुच्यते । तदिग्मात्रावरं सर्वतो गोमयेन प्रदक्षिणमुपलिप्य यज्ञियशकलमूलेनोल्लिख्य शकलं प्रागग्रं निधाय स्थण्डिलमभ्युक्ष्य शकलमपास्यापः उपस्पृशेत् । एष आयतनसंस्कारः । तत्राग्नि व्याहृतिभिरग्न्याधान प्रतिष्ठाप्यान्वादधाति । कर्मसंकल्पपुरःसरं द्रव्यदेवताग्रहणाय द्वयोस्तिसृणां वा समिधामग्न्याधानमन्वाधानम् । अथैष्मावर्हिषी सनह्य दर्भैः प्रादेशमात्रैस्त्रिसंधी त्रिवृतो रज्जू कुर्यात्पाणिभ्यां सव्योत्तराभ्यां पूर्वं वर्तयेत्ततो दक्षिणोत्तराभ्यामन्ते प्रदक्षिणावृतं रज्जुं कुर्यादितरज्जुकरणम् । प्रथमां रज्जुमुदगग्रामास्तीर्य प्रादेशमात्रं दर्भमुष्टिं छित्वा प्रागग्रां तस्यां निधाय तया बर्हिर्द्विरावेष्टयित्वा(वेष्ट्य) तन्मूलं च द्विरावेष्टय तां प्रथमवेष्टनस्याधस्तादुत्तरे देवद्वितायेऽध्मं सकृदावेष्टय संनह्यं वरत्न्यायाम इध्मः पञ्चदशदारुकस्तदुपरि निदध्यादेतदिध्माबर्हिषोः संनहनम् । अथ सादकेन पाणिना प्रागुदीच्या आरम्य प्रदक्षिणमग्निं त्रिः परिसमुह्य प्रादेशमात्रैर्दर्भैः प्रदर्णोण प्राच्यादिषु प्रतिदिशमुक्तसंस्थ परिस्तृणीयाद्दक्षिणोत्तरयोः सन्धिषु मूलाग्रै राच्छादयेदुद्गाधिष्ठान्वा दर्भस्तयोस्तृणीयादुत्तरतः पात्रासादनाय दक्षिणतो ब्रह्मासनाय कांश्चिद्दर्भानास्तीर्याग्निं पर्युक्षेदेषोऽग्निसंस्कारः । अथ तेषु दर्भेषु पात्राणि न्यग्बिलानि द्वन्द्वं प्रागग्रमुदगपवर्ग प्रयुनक्ति प्रोक्षणपात्रस्रुवौ चमसाज्यपात्रे इध्मा-

बर्हिषीत्याज्यहोमेषु तथा चरुस्थालीप्रोक्षणपात्रे दर्वी-स्रुवो चममाज्यपात्रे इध्मावर्हिषी चेति दर्वीहोमेषु प्रोक्षणपात्रमुद्धृत्य पवित्रमन्तर्धायाप आसिच्य तूष्णी ताः पवित्राभ्या त्रिरुत्पूय पात्राण्युत्तानानि कृत्वध्म विस्रस्य पात्राणि ताभिरद्भिर्युगपत्त्रिः प्रोक्षेदेतत्पात्रा-सादनम् ।१४।

१४—इसके अनन्तर होष्यद्धर्म में कुछ उठी हुई सम और अकृ-त्रिम भूमि को स्थण्डिल कहा जाता है। वह इषुमात्र अवर सब ओर से गोमय (गोबर) के द्वारा प्रदक्षिण उपलेपन करके यज्ञिय शकल के मूल से उल्लेखन करे। पहिले अग्रभाग वाले शकल को रखकर स्थण्डिल का अभ्युक्षण करे फिर शकल को अग्नि कोण में निरसित करके जल का उपस्पर्शन करना चाहिए। यह आयतन का संस्कार होता है। उसमे व्याहृतियों के द्वारा आत्मा की ओर प्रतिष्ठापित करके अन्वाधान करता है। कर्म के सङ्कल्प पूर्वक द्रव्य देवता ग्रहण के लिये दो अथवा तीन समिधाओं जो अन्वाधान होता है उसी को अन्वाधान कहते हैं। इसके अनन्तर इध्म और वर्हि का सन्नहन करके प्रादेशमात्र दर्भों से तीन सन्धियों वाली और त्रिवृतरज्जुओं को करना चाहिए। सव्योतर हाथों से पूर्व से वर्तना चाहिए इसके पश्चात् फिर दक्षिणोत्तरों से अन्त में प्रदक्षिणा वृत रज्जु को करना चाहिए। यह रज्जुकरण होता है। प्रथम रज्जु को उदगग्राम आस्तरण करके प्रादेश मात्र दर्भों की मुष्टि का छेदन करके प्रागग्रा को उसमे निधापित करके उससे बर्हि को दो बार-आवेष्टित करके और उसके मूल को दो बार आवेष्टन करके उसको प्रथम वेष्टन के नीचे उन्नयन करना चाहिए। इसी प्रकार से द्वितीय इध्म को एक बार ही आवेष्टित करके सन्नद्ध करना चाहिए। अरत्नि आयाम वाला इध्म पन्द्रह दारुक से युक्त होता है। उसके ऊपर इध्म वर्हि का संगहन रक्खे। इसके उपरान्त जल से युक्त हाथ से पूर्व उत्तर से आरम्भ करके प्रदक्षिण अग्नि को तीन बार परिसमूहन करके

प्रादेश मात्र दर्भों से प्राची आदि में प्रदक्षिण प्रत्येक दिशा में उत्तराग्र का परिस्तरण करे । दक्षिण उत्तर में सन्धियों में मूल के अग्रभागों से आच्छादन करना चाहिए । अथवा नहीं दर्भियों को वा दोनों पर स्तरण करे । उत्तर की ओर पात्र सादन के लिए दक्षिण की ओर ब्रह्मा-सन के लिये कुछ दर्भों को बिछाकर अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए—यह अग्नि संस्कार है ।

इसके अनन्तर दर्भों पर स्थापित पात्रों को द्वन्द्व पूर्व की अग्रभाग और उत्तर को अपवर्ग प्रयोग करना है प्रोक्षण पात्र और स्रुव—सम्मार्ग और आज्यपात्र इध्म और ... आज्य दोनों में तथा ... और प्रोक्षण पात्र-दर्भ और स्रुव-सम्मार्ग और आज्य ...—इध्म और बर्हि-ये दर्भ होमों में प्रोक्षण पात्र को उत्तान करके पवित्र अन्तर्धान करके जल का आसेचन करे और पुनः साथ उनको ... में तीन बार उत्पवन ... पात्रों को उत्तान करके इध्म को विस्रंसन कर उन जलों में एक ही साथ पात्रों का तीन बार प्रोक्षण करना चाहिए यह पात्रासादन है ।१४।

१५. अथ स्रुक्स्रुवादिसंमार्जनम् ।

अथ चमसं प्रत्यगग्नेर्निधाय तत्र पवित्रे अन्तर्धायाद्भिः पूरयित्वा गन्धादि प्रक्षिप्य दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां नासिकान्तमुद्धृत्योत्तरेणाग्निं दर्भेषु निधाय दर्भैः प्रच्छादयेदेष प्रणीताप्रणयनम् । अथ ते एव पवित्रे प्रागग्नेराज्यपात्रेऽन्तर्धायाऽऽज्यमासिच्य बर्हिः परिस्तरणादङ्गारानुदपोह्य तेष्वाज्यमधिश्रित्य स्रुवेनावज्वाल्य । दर्भाग्रे प्रोक्ष्याऽऽज्यं प्रास्य ज्वलता तेनैवोल्मुकेनाऽऽज्य त्रिः परिहृत्योल्मुकं निरस्याप उपस्पृश्याऽऽज्य मुद्वास्योदगङ्गारान्निरूह्याऽऽज्यमुत्पूय पवित्रे प्रोक्ष्याग्नौ प्रास्याप उपस्पृशेदेष आज्यसंस्कारः । अथ बर्हिरात्मनोऽग्रे प्रागग्रमास्तीर्य तत्राऽऽज्यमासाद्य सह दर्भैर्दर्वीस्रुवावादायाग्नौ प्रताप्य दर्वीं निधाय स्रुव

सव्येन धारयन्दक्षिणेन पाणिना दर्भाग्रैर्बिलं प्रागारभ्य प्रादक्षिण्यं प्रागपवर्गं त्रिः परिमृज्य तैरेव बिलपृष्ठमभ्यात्म त्रिः समृज्याथ पृष्टादारभ्य यावदुपरिबिल दण्डं दर्भमूलैस्त्रिः संमृष्य स्रुवं प्रोक्ष्य प्रताप्योदगाज्याद्बर्हिष्यासाद्योदकस्पृष्टैस्तैरेवदर्भैरेवं दर्वीं च संस्कृत्य स्रुवादुदङ् निधाय दर्भान्प्रोक्ष्याग्नौ प्रहरेदेष स्रुक्स्रुवसंमार्ग ।१५।

१५—इसके उपरान्त चमस को अग्नि की ओर रखकर उन पवित्रों को धारण करे जलों से पूरित करके गन्ध आदि को प्रक्षिप्त करे। दक्षिणोत्तर हाथों से नासिका के अन्त तक उठाकर अग्नि के उत्तर में दर्भों पर रख कर दर्भों से पुच्छादित कर देना चाहिए। यह प्रणीता प्रणयन है। इसके पश्चात् उन्हीं पवित्रों को अग्नि के प्राक् आज्य में अन्दर रखकर आज्य का आसेचन करे। बाहिर परिस्तरण से अङ्गारों को उत्तर की ओर धगोहन कर उनमें आज्य को अधिश्रित करके उल्मुक से अवज्वालित कर दर्भों के अग्र में प्रच्छेदन करे। प्रोक्षण कर आज्य में प्रास करके जलते हुए उसी उल्मुक से आज्य को तीन बार को परिहरण करके उल्मुक को निरसित करे। फिर जल का उपस्पर्शन कर आज्य का कर्षण करने के ही समान उत्तर मे उद्वासित करके अङ्गारों का अतिसृजन करे। आज्य का उत्पूयन कर पवित्रों का प्रोक्षण करे और अग्नि में प्रागित करके जल का उपस्पर्शन करना चाहिए यह आज्य-संस्कार होता है।

इसके अनन्तर अपने आगे बर्हि को प्रकाण्ड समास्तृन करके उस पर आज्य का आसादन कर दर्भों के सहित वर्भी और स्रुव इन दोनों को लेकर अग्नि में प्रतापित करके दर्भी को रखकर स्रुव को सव्य कर से धारण करे तथा दक्षिण पाणि से दर्भों के अग्रभागों से बिल को पूर्व से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य प्रागप वर्ग का तीन बार परिमार्जन करे और उन्हीं से बिल पृष्ठ को अभ्यात्म तीन बार संमार्जन कर पृष्ठ से आरम्भ करके जब तक उपरिबिल दण्ड को दर्भों के मूलों से तीन बार

संमृष्ट कर स्रुव का प्रोक्षण करे और प्रतापन करके उत्तर की ओर आज्य से बर्हि में आसादन करके उदक संस्पृष्ट उन्हीं दर्भों से इस प्रकार दर्वी का संस्कार करके स्रुव से उत्तर की ओर रखकर दर्भों का प्रोक्षण करे और अग्नि में प्रहरण करे—यह स्रुक्-स्रुव का मार्जन है । ५।

१६ ब्रह्मणः पञ्च कर्माणि ।

अथ ब्रह्माऽस्मिंश्चेत्क्रियेत स प्राक् प्रणीताप्रणयना-त्समस्तपाण्यङ्गुष्ठो भूत्वाऽग्रेणाग्निं परीत्य दक्षिणत आस्तीर्णेषु दर्भेषु निरस्तः परावसुरिति तृणमङ्गुष्ठोप-कनिष्ठाभ्यां नैर्ऋत्यां निरस्याप उपस्पृश्येदमहमर्वावसोः सदने सीदामीत्युदङ्मुख उपविश्य बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदनमासिष्यते बृहस्पते यज्ञं गोपायेति मन्त्रं ब्रह्मा जपेदपां प्रणयने ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामीत्यतिसृष्ट ॐ भूर्भुवः स्वर्बृहस्पतिप्रसूत इति जपित्वा प्रणयेत्यतिसृजे-त्सर्वदा च यज्ञमना भवदिति नैकेच्छन्ति । निरसनमुपवेशनं जपः प्रागाश्रवणहोमं गत्वाजपेनोपस्थानं चेति पञ्च कर्माणि ब्रह्मणः ।१६।

१६——इसके उपरान्त यदि ब्रह्मा लिया जावे तो वह पहिले प्रणीता प्रणयन से समस्त पाण्यङ्गुष्ठ होकर अग्र से अग्नि की परीत करके दक्षिण की ओर आस्तीर्ण दर्भों पर "निरस्तः परा वसुः" इससे तृण को अङ्गुष्ठोपकनिष्ठा से नैर्ऋत्य दिशा में निरसन करके जल का उपस्पर्शन करना चाहिए । "इदमहमर्वावसोः सदने सीदामि" इससे उत्तर की ओर मुख वाला उपविष्ट होकर 'बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदन-मासिष्यते बृहस्पते यज्ञं गोपाय" इस मन्त्र को ब्रह्मा जप करे । "अपां प्रणयने ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि" इससे अति सृष्ट "ॐ भूर्भुवः स्वः बृह-स्पति प्रसूत" इसका जप करके "ॐ प्रणय" इससे अतिसृजन करना चाहिए और सर्वदा यज्ञ के मन वाला होवे । कुछ लोग नहीं चाहते हैं ।

निरसन-उपवेशन-जप-प्रायश्चित्त होम—संस्था जप से उपस्थान ये पाँच कर्म ब्रह्मा के होते हैं ।।१६।

१७ पार्वणस्थालीपाकः ।

अथ पार्वणस्थालीपाकस्तस्य पौर्णमास्यामारम्भोऽग्निमग्निषोमौ पौर्णमास्यां देवते अग्निरिन्द्राग्नी चामावास्याया देवते अपः प्रणीय शूर्पे व्रीहीन्निरू(रु)प्य प्रोक्ष्य प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम कृष्णाजिनमास्तीर्य नत्रोलूखल निधाय तानवहृत्य तण्डुलांस्त्रिःफलीकृतांस्त्रिः प्रक्षाल्य श्रपयेद्यदि सह श्रपयेच्चरुं विद्वत्येदममुष्मा इदममुष्मा इत्यभिमृशेत्स्विष्टकृत द्विरुपरिष्टादभिघारयेत्पश्चावत्ती द्वावत्ती पुरस्तादवद्ध्ये दिध्मरज्जुं विस्नस्याग्नौ प्रास्याथाश्चाग्नेऽस्यतो देवा इदं विष्णुरित्यन्ताभिर्व्याहृतितिश्च जुहुयादेताः सर्वाः प्रायश्चित्ताहुतय एता ब्रह्मणा कर्तव्याः परीत्य प्रत्यगुदीच्यामवस्थाय जुहुयात् । अथ बर्हिषि पूणपात्र निनीय तागिरद्भिरापो अस्मान्मातरः शुन्धयन्त्विव दमापः प्रवहतेत्येताभ्या सुमित्र्या न आप ओषधयः सन्त्वित्येतेन चाऽऽत्मानं शिरसि मार्जयेत्संस्कार्यमपि सस्कारकर्मसु । अथाग्निमों च म इति सस्थाजपेनापतिष्ठते । ततो ब्रह्मा च । अथ कर्ताऽग्नः परिसमूहनपर्युक्षणे कुर्यादेतत्तन्त्रमन्येषाम स्थालीपाकचरुसुकृतकर्ममन्त्राञ्जुहुयात् ।।१७।

१७—इनके अनन्तर पार्वण स्थाली पाक है । उसका पौर्णमासी में आरम्भ है । पौर्णमासी मे अग्नि सोम अग्निषोम देवता हे । अग्नि और इन्द्राग्नि अमावस्या मे देवता है अप का प्रणयन करके शूर्प में व्रीहियो को निरूपित करके प्रोक्षण करके प्राग्ग्रीव उत्तरलोम कृष्णाजिनका आस्तरण करके यहाँ पर उलूखलको रक्खे । उन तण्डुलों का अब हनन कर त्रिफली कृत उनको तीन वार प्रक्षालन कर श्रपण करना चाहिहे । यदि चरु

के साथ धारण करे तो यह उसके लिये है और यह उसके लिये है --ऐसा अभिमर्षण करना चाहिए। स्विष्टकृत दो को उत्पन्न अभिघारण करना चाहिए। पश्चावत्ती द्वावत्ती आगे अवदान करे। दर्भरज्जु को विसर्जन करके अग्नि में प्रागिन करे "याश्चनजगतो देवा इह विष्णु" इस से अन्त तक व्याहृतियों से हवन करना चाहिए। ये सब प्रायश्चित्ताहुतियाँ है। ये ब्रह्मा के द्वारा करनी चाहिए। परीत होकर प्रागुदीची में अवस्थित होकर हवन करे।

इसके अनन्तर बाद में पूर्ण पात्र विनीन करके उस जल से "आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु"–"इमापः प्रवहत"–इन ऋचाओं से और "सुमित्र्या न आप ओषधयः सन्तु" इस एक के द्वारा अपने आपके शिर में मार्जन करे। संस्कार कर्मों में सरकार्य को भी करे। इसके उपरान्त "अग्निमी च म इति" मन्त्रों से उपस्थान करना चाहिए। और इसके पश्चात् ब्रह्मा करे। उसके अनन्तर कर्ता अग्नि का परिसमूहन पर्युक्षण करे। इस तन्त्र को अन्यों के अस्थालीपाक वत् सूक्त कर्म मन्त्रों से हवन करे। १७।

१८ नित्यमग्न्युपासनम्।

अथ नित्यगोपासनं तस्य सायमारम्भोऽस्तमित आदित्ये सायमग्नेः प्रादुष्करणमनुदिते प्रातः प्रदोषान्तः सायं होमकालः सङ्गवान्तः प्रातर्नातिक्रमेदिति तदर्थमिध्यतेऽग्निं परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्य होम्यमपक्वं स्रुक्स्रुवेणावज्वाल्य तेनैव त्रिः परिहृत्योल्मुकं निरस्येत्पक्वं चेदङ्गारेष्वधिश्रित्य प्रोक्ष्योद्गृह्यास्य नानङ्गारानतिमृजेदेष होम्यसंस्कारः। पयो दधि सर्पिर्यवागूरोदनस्तण्डुलाः सोमस्तैलमापो व्रीहयो यवास्तिला इति होम्यानि तण्डुला नीवारश्यामाकयावनाला व्रीहिशालियवगोधूमप्रियङ्गवः स्वरूपेणाहिहोम्यास्तिलाः स्वरूपेणैव शत चतुःषष्टिर्वाऽऽहुतिः। व्रीहियवानां तदर्धं तिलानां

तदर्धं सर्पिस्तैलं च तिलं वा तिलातसीकुसुम्भानां येन प्रथमामेतां जुहुयात्तेनैव द्वितीयां जुहुयाद्येनैव सायं जुहुयात्तेनैव प्रातः सायंप्रातर्होमौ सायं वा समस्येन्न तु प्रातः सायंप्रातर्होमौ ।१८।

१८—इसके अनन्तर उसका नित्य औपासन सायङ्काल में आरम्भ होता है। जब आदित्य अनस्तमित हो उस समय में सायकाल में अग्नि का प्रादुष्करण होता है। प्रातः काल में सूर्य के अनुदित होने पर प्रातः होता है। प्रदोषान्त सायंकाल में होम का समय होता है। सगवान्त प्रातःकाल है। यहाँ पर तन्त्र अभीष्ट नहीं होता है। अग्निका परिसमूहन—परिस्तरण और पर्युक्षण करके अयक होम्य को उल्मुक के द्वारा अवज्वलित करके उससे ही तीन बार परिहरण करे और उल्मुक का निरसन कर देवे। पक को उदक्की ओर अङ्गारों पर अधिश्रित करके, प्रोक्षण करके उदक् को उद्वासित करे और उन अङ्गारों को अति समूहन कर देवे—यह होम्य संस्कार होता है।

पय-दधि सर्पि-यवागू- ओदन-तण्डुल- सोम-आय-तैल-व्रीहि-मन—तिल ये होम्य हैं। तण्डुल नीवार—श्यामाक—पावनाल-व्रीहि-शालि- यव-गोधूम- प्रियगुम्वरूप से आत होम्य है। तिल स्वरूप से ही शत अथवा चौसठ आहुति है। व्रीहि यवों की उससे आधी-तिलों की उससे भी आधी-सर्पि, तैल-तिल-तिल अलसी कुसुम्भों में जिसके द्वारा प्रथम इसका हवन करे उसी से द्वितीय आहुति का हवन करना चाहिए। जिससे सायंकाल को हवन करे उसी से प्रातः काल को करे अथवा प्रातःकाल साय प्रातः होमों को साथ मिलाकर करे किन्तु प्रातः साय प्रातः होमों को न करना चाहिए।१८।

१६ नष्टेऽग्नौ पुनराधानम् ।

अथ पुनराधानमनुगतेऽग्नि शिष्टागारादानीयोक्तवदुपसमाधाय परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्याऽऽज्यमुत्पूयायाश्चाग्न इत्येकामाज्याहुतिं हुत्वा यथापूर्वं परिचरं-

देवमा द्वादशरात्रादत ऊर्ध्वं विवाहगृहप्रवेशहोमाश्रया-मेकतन्त्राभ्यामादध्यात् । तत्रविवाहाज्याहुतयो लाजा-हुतयो गृहप्रवेशाज्याहुतयो हृदयाऽन भवति । कर्तैव लाजानावपत्येतत्पुनराधानं नित्यहोममतीत्य मनस्वत्या चतुर्गृहीतं जुहुयाद्वा द्वादशरात्राद्दूर्ध्वं पुनराधानमेव कुर्यात् ।१९।

१९—इसके अनन्तर पुनराधान का वर्णन किया जाता है, अनुगत होने पर शिष्ट पुरुषक आगार में लाकर उक्त विधि के समान उपसमाधान करके परिसमूहन, परिस्तरण और पर्युक्षण करके आज्य को उत्पवन कर 'आयाश्चाग्ने'—इससे एक स्रुवा की आहुति का हवन करके यथापूर्व परिचरण करे। इस प्रकार से द्वादश रात्रि से पहले इसमें आगे विवाह गृह प्रवेश होमों से एकतन्त्रों से आधान करना चाहिए। उसमें विवाहा-ज्याहुति—लाजा हुति-गृह प्रवेशाज्याहुति और हृदयाञ्जन होता है। कर्त्ता ही लाजाओं का आवपन करता है—यह पुनराधान नित्य होम को अतीत करके मनस्वती से चतुर्गृहीत का हवन करे और द्वादश रात्रि से ऊर्ध्व में पुनराधान ही करना चाहिए।१९।

२० अनेकभार्यस्याग्निविचारः ।

अथानेकभार्यस्य यदि पूर्वगृह्याग्निनावान्तरा विवाहः स्यात्तेनैव साऽप्यस्य सह प्रथमया धर्माग्निभागिनी भवति । यदि तु लौकिके पाणिग्रहणं तु पृथक्त्वेन पारगृह्य पूर्वेणैकीं कुर्यात्तौ पृथगुपसमाधाय पूर्वोपरयापरया पत्न्याऽन्वारब्धोऽग्निमीळे पुरोहितमिति सूक्तेन प्रत्यृचं हुत्वाऽयास्याग्नेऽयानि स्थन्त्विय इति तं समिधमादाय प्रत्यवरोहेति द्वितीये वर्गे आज्यभागान्तं कृत्वा भार्या-भ्यामन्वारब्धोऽग्निमीळे जुहुयादग्निनाऽग्निः समिध्यते, त्वं ह्यग्ने, अग्निना, पाहि नो अग्न एकयेति तिसृभिरस्ती-दमधिमन्थनमिति च तिसृभिरथैनं परिचरेत्पूर्णामनेन

रांस्कृत्यान्यया नपुनराध्यादथवाऽग्नि विभज्य तद्भागेन सस्कुर्याद्वह्लीनामप्येवमेवाग्नियोजनं कुर्याद्गमिथुन दक्षिणा।२०।

२०—इसके अनन्तर अनेक भार्याओ वाले का यदि पूर्व ब्रह्माग्नि में ही अनन्तर विवाह है तो उसीसे वह उसके साथ प्रभया से धर्माग्नि भागिनी होती है। यदि लौकिक परिणय में उसको वृन्दकत्ता से परिग्रहण करके पूर्व के साथ एकीकरण करे तो उन दोनों को पृथक् उपसमाधान करके पूर्व मे पूर्व पत्नी से 'अन्वारब्धोऽग्निमीले पुरोहितम्' इस सूक्त से प्रतिऋचा हवन करके उपस्थान कर 'अमते योनिऋ'-त्विय' इति—इससे उस समिधा को आरोपित करके 'प्रत्यवरोह' इति इससे द्वितीय में वर आज्य भागान्त को करके फिर दोनो से 'अन्वारब्धोऽग्नि मीले' हवन करे। "अग्नि नाऽग्नि. समिध्यते, त्वं अग्ने, अग्निना याहिनो अग्ने एकया" इन तीनो से और "अस्तीदमधि मन्थनम्" इन तीनों से इसका परिवरण करे। मृता को इससे सस्कार करके अन्य से पुनराधान करे। अथवा अग्नि का विभाजन करके उसके भागसे सस्कार करना चाहिए। वह्नियों का भी इसी प्रकार से अग्नि योजन करना चाहिए और गौओं का जोड़ा दक्षिणा होती है।२०।

२१ कन्यावरणादि।

अथ कन्यावरणं कन्यां परिणेष्यमाणो द्वौ चत्वारोऽष्टौ वरपितुराप्तान्प्रशस्ताकारकर्मणोऽनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था इति प्रहिणुयात्ते तावतीभिः पुरन्ध्रीभिः सहिता मङ्गलगीततूर्याभ्यां कन्यागृहमेत्य शुभे पीठासने प्राङ्मुखासीनाया दातृज्ञातिबान्धवोपेतायाः कन्यायाः पाणौ फलं प्रदाय कन्यावरणकाले वृणीरन्नासीनाः प्रत्यङ्मुखा वसिष्ठगोत्रोद्भवायामुष्य प्रपौत्रायामुष्य पौत्रायामुष्य पुत्राय श्रुतशीलनाम्ने वराय वत्सगोत्रोद्भवाममुष्य प्रपौत्रीममुष्य पौत्रीममुष्य पुत्रीं सुशीलानाम्नीमिमां

कन्यां भार्यात्वाय वृणीमह इति ब्रूयुरथ दाता भार्या-
ज्ञातिबन्धुसमेतो यथोक्तमनूद्य वृणाध्वमिति ब्रूयादेव
त्रिः प्रयुज्य दाता प्रदास्यामीति चोच्चैस्त्रिर्ब्रूयादथ
ब्राह्मणा उक्तस्वस्त्ययनाः शिवा आपः सन्तु सामन-
स्यमस्त्वक्षतं चारिष्टं चास्तु दीर्घमायुः श्रेयः शान्ति
पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्वित्युक्त्वैनद्गन्धमाल्यवस्त्रानूद्य समानीय
आकूति प्रशुम्भन्नाधिप मानस्य सक्षगीतसेना पठेयुः
पुरन्ध्रय. कन्यायै कल्याणान्कुलधर्माचारान्कुर्युः ।२१।

२२ विवाहप्रयोगः ।

अथोपयमन लक्षण्यो वरो लक्षणवतीं कन्यां यवीयसी-
ममपिण्डामसगोत्रजामविरुद्धसंबन्धामुपयच्छेत्पितृतः सप्त-
पुरुष सापिंड्यं मातृतः पञ्चपुरुषं भृगुवत्साङ्गिरसश्च
प्रवरे न एकर्षियोगे सगोत्रा एकर्षियोग इतरे दंपत्योर्मिथः
पितृविरुद्धः सबन्धो यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नी
स्वसा चेति । केचिन्मातृगोत्रता च वर्जयित्वा तदपत्य-
मसगोत्रं स्यादिति । सुस्नातोऽलंकृतो वरः स्वस्ति वाच-
यित्वा सहितः स्वर्चितैर्ब्राह्मणैः पुरन्ध्रीभिर्ज्ञातिबान्धवैः
पदातिभिर्मङ्गलगीततूर्यघोषाभ्या संबन्धिनो गृहमेत्य
चतुष्पदे सोत्तरच्छदे हरितदर्भास्तीर्णे भद्रपीठे प्राङ्मुख
उपविश्य तस्य पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखी भद्रपीठासीनां
सुस्नातामलंकृतामहतवासस स्रग्विणीं कन्यां पुरस्कृत्य
दाता सामात्य उपविशेद्वरं विधिदभ्यर्चयेत् । अथ
दक्षिणतः पुरोधा उदङ्मुख उपविश्य मध्ये प्रागग्रोद-
गग्रान्दर्भानास्तीर्य तैजसमपा पूर्णकलश निधाय व्रीहि-
यवानोप्य गन्धादिभिरलंकृत्य दूर्वापल्लवैर्मुखमवस्ती-
र्याब्लिङ्गाभिर्ऋग्भिरभिमन्त्र्य ताभिरद्भिः प्रयोजयेत् ।
अथ दाता पुण्याहादीनि वाचयित्वा शिवा आपः सन्तु
सौमनस्यमस्त्वक्षत चारिष्टं चास्तु दीर्घमायुरस्तु शान्तिः
पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु तिथिकरणमुतनक्षत्रसंपदस्त्वित्युक्त्वा
भार्यादिसमेतः कन्यां प्रतिगृह्य वत्सगोत्रोत्पन्नाममुष्य
प्रपौत्रीममुष्य पौत्रीममुष्य पुत्री सुशीलानाम्नीमिमां
कन्यां वसिष्ठगोत्रोद्भवायामुष्यप्रपौत्रायामुष्यपौत्रायामुष्य
पुत्राय श्रुतशीलनाम्नेऽस्मै वराय सप्रददे कन्यां प्रतिगृ-
ह्णातु भवानिति ब्रुवन्वरस्य पाणौ हिरण्यमुपधाय कल-
शादकधारामासिञ्चन्मनसाप्रजापतिःप्रीयतामितिब्रूयात्।

अथ शिरसि पुण्याहाशिषो वाचयित्वा दक्षिणांसे कन्यामभिमृश्य क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णात्विति जपित्वा प्रजापतिमनुस्मृत्य धर्मप्रजासिद्ध्यर्थं कन्यां प्रतिगृह्णामीति ब्रूयादेवं त्रिः प्रयुज्य परोक्षा दातृवर्गे प्रतिश्राव्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीरिति तिस्रो अग्निर्वेत्वद्भः सम-समुद्रमस्त्विति ब्रूयात् ।२२।

२२—इसके अनन्तर उपयमन को बताते हैं — उससे शुभ वर सुलक्षणों वाली यवीयसी असपिण्ड असगोत्र नाम विरुद्ध सम्बन्धों वाली कन्या का उपादान करे। पिता से सात पुरुष तक सपिण्डता होती है और माता से पाँच पुरुषों तक अर्थात् पाँच पीढ़ी तक सपिण्डता होती है। भृगु के समान आङ्गिरस और प्रवर एक ऋषि के भोग से सगोत्रता होती है इतर एकादियोग में दम्पतियों के परस्पर में पितृ विरुद्ध सम्बन्ध होता है यथा भार्या की स्वसा की दुहिता और पितृव्य की पत्नी की स्वसा है। कुछ विद्वान् मामा की सगोत्रता का वर्जन करके उसकी सन्तति सगोत्र होती है—ऐसा मानते हैं। भली भाँति स्नान किया हुआ और अलङ्कृत हुआ वर स्वस्ति वाचन कराकर भली भाँति अग्नि। ब्राह्मणों के सहित और पुरन्ध्री, ज्ञाति बान्धव और पत्नियों के सहित मङ्गल गीत एवं घोषों से सम्बन्धी के गृह में आकर मधुपाद उत्तरच्छद से युक्त हरितादर्भास्तरण वाले भद्रपीठ पर प्राङ्मुख होकर उपविष्ट कराकर उसके आगे प्रत्यङ्मुखी भद्रपीठ के आसन वाली भली भाँति स्नान की हुई अलङ्कृत नूतन वस्त्रों वाली माला धारिणी कन्या को आगे करके दाता अमात्यों के सहित उपवेशन करे और वर का विधिवत् अभ्यर्चन करना चाहिए। इसके अनन्तर दक्षिण दिशा में पुरोहित बैठ कर मध्य में पूर्व की ओर उदगग्रदर्भों को फैलाकर तैजस जल से भरा हुआ कलश रखकर व्रीहि

और यवों को बोकर गन्धादि के द्वारा अलंकृत करके दूर्वापल्लवों से मुख का अयस्तरण कर अब्लिङ्ग वाली ऋचाओं से अभियन्त्रित करके उन जलो से प्रयोग करे।

इसके अनन्तर दाता पुण्याह वाचनादि का वाचन कराकर "शिवा आपः सन्तु, सौमनस्य मस्तु, अक्षतं चारिष्टंचास्तु, दीर्घमायु रस्तु, शान्ति पुष्टिस्तुष्टि श्चास्तु, तिथि करण मुहूर्त नक्षत्र सम्पदस्तु"—यह कहकर भार्यादि समेत कन्या का प्रति ग्रहण कर वत्सगोत्र में समुत्पन्ना अमुक की प्रपौत्री अमुक की पौत्री, अमुक की पुत्री सुशील नाम वाली इस कन्या को वसिष्ठ गोत्र में उद्भूत अमुकका प्रपौत्र, अमुक का पौत्र और अमुक का पुत्र श्रुतशील नाम वाले इस वर के लिये सम्प्रदान करता हूँ। आप इस कन्या को प्रतिग्रहण करें—यह कहता हुआ वर के हाथ मे हिरण्य का उपधान करके कलश के उदक की धारा का आसेचन करना चाहिए मन से प्रजापति प्रसन्न होवें—यह बोलना चाहिए। इसके अनन्तर शिर पर पुज्याशीष् का वाचन करा कर दक्षिण अंस में कन्या का अभि मर्शण कर के "कइह कस्मा अदात् कामः कामामाहात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविश का मे न त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु" इसका जाप करके प्रजापति का अनुस्मरण करे "धर्मप्रजा सिद्धयर्थं कन्यामि मां प्रतिगृह्णामि"—यह बोलना चाहिए। इस प्रकार से तीन बार प्रयोग करके पुरोहित दाता और वर के प्रति "ऋतस्य हिशुरुधः सन्ति पूर्वीः" इसको तीनों का जाप करके "व. सत्यसमृद्धमस्तु'—यह बोलना चाहिए।२२।

२३ परस्परावलोकनम्।

अथानयोर्निरीक्षणं स्वलङ्कृते वेश्मनि मङ्गलगीततूर्यनिर्घोषे पूर्वापरावरत्न्युच्छ्रितौ हस्तान्तरालौ शुक्लतण्डुलराशी कृत्वा मध्ये स्वस्तिकां तिरस्करिणीं धारयेयुः। अथ पूर्वस्मिन्राशौ प्रत्यङ्मुखीं गुडजीरकपाणि कन्यां स्थापयेयुरपरस्मिन्प्राङ्मुख तथाभूत वरं तौ मनसेप-

देवतां ध्यायन्तौ तिष्ठन्तौ ब्राह्मणाः सूर्यसूक्तं पठेयुः पुरन्ध्र्यो मङ्गलगीतानि कुर्युः । अथ ज्योतिर्विदादिष्टे काले प्रविष्टे सद्यस्तिरस्करिणीमुदगपसार्य कन्यावरौ परस्परगुडजीरकादनकिरन्तौ परस्परं निरीक्षेयाताम्- भ्रातृघ्नीमिति तामक्षिमाणो जपत्यघोरचक्षुरपतिघ्न्ये- धाति तथेक्ष्यमाणोऽस्याः भ्रुवोर्मध्यं दर्भाग्रेण परि- मृज्य दर्भं निरस्याप उपस्पृशेत् । अथ ब्राह्मणा. बान्धवाः पुरन्ध्र्यस्तावाशीर्भिरभिनन्दयेयुः ॥२३॥

२३—इसके अनन्तर इन दोनों का एक दूसरे के निरीक्षण के विषय में बतलाया जाता है—इन दोनों में निरीक्षण सुन्दर रूप से अलङ्कृत घर में मङ्गल गीत और तूर्य की ध्वनि होने पर पूर्वापरस्थरन्ध्रितरिक्त एक हाथ अन्तराल वाली श्वेततण्डुलों की राशि बनाकर मध्य में तिरस्करिणी और तिरस्करिणी धारण करावें । इसके उपरान्त पूर्व राशि में पश्चिम मुख वाली गुड और जीरा हाथ में लेनेवाली कन्या को स्थापित करानी चाहिए । दूसरी पर प्राङ्मुख उस प्रकार वाले वर को स्थापित करें । वे दोनों ही मन से इष्ट देवता का ध्यान करते हुए स्थित रहें । ब्राह्मण सूर्य सूक्त पाठ करें और पुरन्ध्रियाँ मङ्गल गीतों का गान करें । इसके अनन्तर ज्योतिषी के द्वारा आदिष्ट काल में प्रविष्ट होने पर तुरन्त ही तिरस्करिणी को उत्तर की ओर अपसारण करके कन्या और वर दोनों परस्पर में गुड़ जीरा का अवकिरण करते हुए आपस में देखें । उसको देखते हुए "अभ्रातृघ्नीम्" इसका जाप करना है । "अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि" इससे उस तरफ देखते इसके भौहों के मध्य को दर्भों के अग्रभाग से परिमार्जन करके दर्भको डालकर जल का उपस्पर्शन करे । इसके अनन्तर सब ब्राह्मण, बान्धव और पुरन्ध्री उन दोनों का आशीर्वादों से अभिनन्दन करें ।२३।

२४ अक्षतारोपणादि ।

अथानयोरार्द्राक्षतारोपणं तैजसेन पात्रेण क्षीरमानीय घृतमासिच्यान्येनार्द्राक्षततण्डुलान् । अथ तथास्थितयोर्व-

धूवरयोर्वर्धनकमेतत्कारयेयुरमृतंक्षीरमायुर्घृतमरिष्टरक्षता अप एतेषामारोपणमिष्यते । वरः प्रक्षालितयाणिर्वध्वाः प्रक्षालितेऽञ्जलौ क्षीरघृतं पाणिना द्विरुपस्तीर्यं द्विस्तण्डुलानञ्जलिनाऽऽवपति यथापूर्वेत ततो द्विरुपरिष्टादभिघारयत्येवं वराञ्जलावन्यस्तण्डुलापूरणं कुर्याद्दातातयोरञ्जल्यो हिरण्यमवदघात्यथ वरःकन्याञ्जलौ स्वाञ्जलि धारयेद्दाता कन्या तारयतु दक्षिणाः पान्तु बहु देयचास्तु पुण्य वर्धतां शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रसपदस्त्वित्युक्त्वा कन्यामुत्क्षिप्य तदञ्जल्यक्षतान्वरमूर्ध्न्यारोपयेद्वरोऽपितन्मूर्ध्नि स्वाञ्जल्यक्षतानारोपयेदेवं त्रिर्वधूपूर्वं वराञ्जलौ वधूस्तण्डुलपूरणं कुर्यात्तदञ्जलावन्योऽथ समारोपण कारयेदिदानी दाता वराय गोभूमिदासीयानशयनमन्नादिकमनुदान दधात् । अथ पुरोधाः कास्ये पय आसिच्यौदुम्बर्याऽर्द्रयाशाखयासपलाशया सहिरण्यपवित्रया सदूर्वापवित्रयाऽभिषिञ्चेदब्लिङ्गाभिर्ऋग्भिः । अथ वधूवरौ स्वशेखरपुष्प क्षीरघृतेनाऽऽप्लाव्य परस्परतिलक कुरुतः कण्ठे स्रज चाऽऽमुञ्चतः कौतुकसूत्रं च करे बध्नीयाताम् । अथ पुरोधास्तयोरुत्तरीयान्तयोः पञ्च पुगफलानि विवाहव्रतरक्षिणं गणाधिपमनुस्मृत्य गणानां त्वा गणपति हवामहे इत्यातून इन्द्र क्षुमन्तमिति च बधूवरयोरुत्तरीयान्तौ च नोललोहित भवतीति बध्नीयात् । अथ दाता सभार्यो वृद्धाः पुरन्ध्र्यो ज्ञातिबान्धवाश्च क्रमादाशीर्भिरार्द्राक्षतारोपणं कुर्युः ॥२४॥

२४—इसके इन दोनों का आर्द्राक्षत रोपण बतलाया जाता है—तैजस पात्र के द्वारा क्षीर लाकर घृतका आसेचन कर अन्य के द्वारा आर्द्राक्षत तण्डुलों का आरोपण करे । इसके अनन्तर उस तरह से स्थित वर वधू के वर्धन करने वाले इस कृत्य को कराना चाहिए । अमृत-क्षीर आयु और अरिष्ट रक्षत अप—इनका आरोपण अभीष्ट होता है । प्रक्षालित हाथों वाला

वर वधू की प्रक्षालित अञ्जलि मे क्षीर घृत हाथ मे दो बार उपस्तरण करके दो बार तण्डुलों को अञ्जलि द्वारा आवपन करता है। जिस रीति से पूर्ण हो जावे उससे भी दो बार ऊपर अभिघारण करता है। इस प्रकार से वर की अञ्जलि में कोई अन्य पुरुष तण्डुलों का पूरण करे। दाता उन दोनो की अञ्जलियों मे हिरण्य को अवधारण करता है। फिर वर कन्या की अञ्जलि मे अपनी अञ्जलि को धारण करे। दाता रक्षा धारण करे, दक्षिणा रक्षा करे, गह बहुधा पुण्य होवे, शान्ति पुष्टि और तुष्टि होवे तिथि कारण-मुहूर्त्त और नक्षत्र की सम्पदा होवे - यह कह कर कन्या उत्क्षिप्त करके उसकी अञ्जलि के अक्षतों को वर के मूर्धा मे आरोपण करे वर भी उस वधू के मूर्धा मे अपनी अञ्जलि के अक्षतो को आरोपित करे। इस तरह मे तीन बार वधू पूर्व वराञ्जलि मे तण्डुलों का पूरण करे और उसकी अञ्जलि में अन्य समारोपण कराये। इस समय मे दाता वर के लिये गो- भूमि-दासी यान-शयन और अन्न आदि का अनुदान देवे उसके उपरान्त में पुरोहित कांसे के पात्र मे रस का आसेचन करके गूलर की गीली शाखा से जिसमे पत्ते भी होवें और हिरण्य पतित होवे तथा दूर्वा और पवित्र होने अव्लिङ्ग वाली ऋचाओं से अभिषेचन करे। इस के अनन्तर वधू वर दोनों अपने अंगार पुण्य को क्षीर घृत से आसादित करके परस्पर में तिलक करे कण्ठ मे स्रज का आमुञ्चन करे और कौतुक सूत्र को कर मे बांधना चाहिए। इसके अनन्तर पुरोहित उन दोनो के उत्तरीयों के छोरों मे पाच सुपारीयो को विवाह व्रत के रक्षा करने वाले भगवान् गणाधिप का अनुस्मरण करके "गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' यह और "आतूम इन्द्र क्षुमन्तम्" यह पढकर वधू वर के उत्तरीय वस्त्रो को "नील लोहित भवति"—इसमे बाध देवे। इस के अनन्तर दाता भार्या के सहित, वृद्ध पुरुष, पुरन्ध्रियां, और ज्ञाति बान्धव क्रम से आशीर्वादों के द्वारा आर्द्राक्षतारोपण करें।२४।

२५ ऋतुमतीकृत्यादि।

अथर्तुमत्याः प्राजापत्यमृतौ प्रथमेऽनुकूलेऽहनि सुस्नातयाऽन्वारब्धः प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा ॥

आज्याहुतीजु हुयाद्विष्णुर्योनिमिति तिस्रो नेजमेषेति तिस्रः प्रजापते न त्वदित्येकाऽथातो मूर्ध्न्यपनः शोशुचदघमित्यभिमृश्य याः फलि नीर्या अफला इति जपित्वा वधेन दस्यु प्रहि चातयस्वेति षड्भिरग्निस्तु विश्ववस्तममिति द्वाभ्यामग्निमुपस्थाय सूर्यो नो दिवस्पात्विति सूक्तेनाऽऽदित्यमुपतिष्ठेत । अथ गर्भलम्भनमृतावनुक्लायां निशि स्वलङ्कृते सुगन्धवासिते वेश्मनि तथ भूते पर्यङ्कशयने सुस्नातामलङ्कृतां शुक्लवसनां स्रग्विणी भार्या स्वयं तथाभूतः प्रवेश्य दूर्वाः पिष्टऽश्वगन्धां वा सूक्ष्मेण वाससा संगृह्योदीर्ष्वातः पतिवतीति द्वाभ्यां स्वाहाकारान्ताभ्यामुभयोर्नासाबिलयोर्निषिच्य सवेश्य गन्धवस्य विश्वावसोर्मुखमसीत्युपस्थमभिमृश्य विष्णुर्योनि कल्पयत्विति द्वाभ्यां विहृत्य यो गर्भमोषधीनामह गर्भमदधामोषधीष्विति जपित्वापगच्छेत्प्राणे ते रेतो दधाम्यसावित्यनुप्राण्या यथा भूमिरग्निगर्भा यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । वायुर्यथा दिशां गर्भ एव ते गर्भ दधाम्यसाविति हृदयमभिमृशेत्रेक उपगमने मन्त्रविधिमिच्छन्ति न ह्यनन किंचित्संस्क्रियत इति त ओषधीर्मिर्निषेक कृत्वापगच्छन्ति ॥२५॥

२५—इसके अनन्तर ऋतुमती के प्राजापत्य को बतलाते हैं—ऋतु में प्रथम अनुकूल दिन में भली भाँति स्नान की हुई के द्वारा अन्वारब्ध प्राजापत्य स्थाली पाक का हवन करके ये निम्न निर्दिष्ट आज्य की आहुतियों से हवन कराना चाहिए "विष्णुर्योनिम्" ये तीन आहुतियाँ, "नेजमेषेति", ये तीन "प्रजापतेन त्वद्" यह एक आहुति देवे । इसके उपरान्त मूर्धा में " अपनः शोशुचदघम्" इससे अभिमर्षण करके "याः फलिनीर्या अफला" इसका जाप करके "वधेन दस्यु प्रहि धातयस्व" इन छः से "अग्निस्तु विश्ववस्तमम्" इन दो से अग्नि का उपस्थान करके

"सूर्यो नो दिवस्पातु"—इस सूक्त से आदित्य देव का उपस्थान करना चाहिए। इसके अनन्तर गर्भलम्भन है। ऋतु में जो अनुकूल रात्रि हो उसमें किसी भली भाँति भूषित गृह में जो सुन्दर गन्ध से सुवासित होवे उसी प्रकार से सुवासित पर्यङ्क शयन में सुस्नाता—अलङ्कृता—शुक्ल वस्त्रधारिणी—स्रक्धारिणी भार्या को स्वयं भी उसी प्रकार से सुसज्जित होकर प्रवेश करके दूध को पीकर अथवा अश्वगन्धा को पीसकर एक सूक्ष्म वस्त्र से संगृहीत करके "उदीर्ष्वातः पतिवती" इन दो से जिनके अन्त में स्वाहाकार होवे दोनों नासिका के छिद्रों में निषेचन करके भली भाँति प्रवेश कराकर "गन्धर्वस्य विश्वावसो मुखमसि" इससे अपने से उपस्थ का अभिमर्शन करके "विष्णुर्योनिं कल्पयतु" इन दो ऋचाओं से विहृत करके "योगर्भमोषधीनां गवां गर्भ मश्वानामपाम्" इसका जाप करके उपगमन करे। "प्राणे ते रेतो दधाम्यसाविति" इससे अनुप्राणन करे "यथा भूमिरग्निगर्भा यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी। वायुर्यथा दिशां गर्भ एवं ते गर्भं दधाम्यसौ" इति—इससे उदर का अभिमर्शन करना चाहिए—ऐसा कतिपय मनीषी मन्त्र विधि की इच्छा उपगमन में चाहते हैं और इससे कुछ संस्कार नहीं किया जाता है। वे लोग औपनिषद से निषेचन करके उपगमन करते हैं ॥२५॥

२६ जातकर्मादि ।

अथ जातकर्म पुत्रे जाते पुत्रजन्मनिमित्ताग्निमिद्ध्वा प्रजापतिविश्वस्त्वा ब्रह्मात्मनादेशदेवता हुत्वा प्राक् स्विष्टकृतः सोपमधुप्राशनादि कुर्यात्। तत्र निष्क्रमणं चतुर्थे मास्यापूर्यमाणपक्षे स्वस्ति वाचयित्वा स्विष्टकृतः प्राक् सुस्नातालङ्कृतं कुमारमादाय सह भार्याज्ञातिबान्धवैः पुरन्ध्रीमिश्रं मङ्गलतूर्यनिर्घोषेण गृहान्निष्क्रम्य देवतायतनमेत्य देवतामुपहारेणाभ्यर्च्याऽऽशिषो वाचयित्वाऽऽयतनं प्रदक्षिणीकृत्य गृहमेयात्संबन्धिनो वा

गृहं नीत्वाऽऽयेदेवमन्नप्राशनादावपीच्छायामनादिष्टदेवता यष्टव्या यष्टव्याः ॥२६॥

२६—इसके अनन्तर जात कर्म बतलाते है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पहिले अन्यों के द्वारा आलम्भ से "अग्निरिन्द्रः प्रजापति विश्वेदेवा ब्रह्म" इससे अनादेश देवताओ का हवन करके पहिले स्विष्टकृत सर्पिमधु प्राशनादि करे। इस प्रकार से निष्क्रमण करे। चतुर्थ मास में आपूर्ण माण पक्ष मे स्वास्ति वाचन कराकर स्विष्टकृत पहिले भली-भाँति स्नान कराकर अलङ्कृत कुमार को लेकर भार्या-ज्ञाति और बान्धवों तथा पुरन्ध्रियों के साथ शंख तूर्य की ध्वनि से घर से निकल कर किसी देवायतन मे जाकर वहाँ के देवता का उपहार के द्वारा अभ्यर्चन करके आशिषों का वाचन कराकर देवायतन की प्रदक्षिणा करे गृह में आवे अथवा सम्बन्धी गृह को ले जाकर देव को लावे। अन्न प्राशनादि मे भी इच्छा में इष्ट देवताओं का यजन करना चाहिए।२६।

इति आश्वलायन गृह्यसूत्रे परिशिष्टे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

१ ग्रहयज्ञादि ।

अथ ग्रहयज्ञश्चैत्ययज्ञश्चेत्यमुपयाचितमुच्यते तत्र भवाः शान्तिपुष्टिदा देवताश्चैत्याः शान्तिं च खलु पुष्टिं च सर्वे ग्रहाः समुपयाचन्ते तनश्चैत्याः आदित्य इन्दुरङ्गारकः सौम्यो गुरुर्भार्गवः शनैश्चरो राहुः केतुरिति नव ग्रहास्ते हि स्वस्वगत्या जगदभिगृह्णन्ति तेषामुदगमनादिषु पुण्यकालेषु यजेत शान्तये सद्य उद्भूतेषु माङ्गल्यादिष्वाभ्युदयिकं करिष्यमाणो ग्रहयज्ञं कुर्यादाभ्युदयिकं हि शान्तिकर्म यदि तदानुकूल्यकामः कामं प्रागभ्युदयात्समहान्तरितान्कुर्वीत दश वाऽऽहुतीः स्वयमेकः कुर्याद्द्वंमापञ्चशत नत्वार ऋत्विजः स्युरा-शत वरमष्टौ नवम आचार्यः स्वयमेव वा यदि स्वयमाचार्यः स्यात्तद्वाग कल्पविदे दद्यात्तान्विधिवद्वरयित्वाऽऽहंयदाचार्यं आदित्याय जुहुयादितरेभ्य इतरे पूर्वास्तरतस्त्वमाचार्यः कुर्यात्तदितरत्स्वारमेरन् ॥१॥

१—इसके अनन्तर ग्रह यज्ञ और चैत्य यज्ञ उपयाचित कहा जाता है। उनमें होने वाले शान्ति पुष्टि के देने वाले देवता चैत्य हैं। सब ग्रह शान्ति और पुष्टि की समुप याचना करते हैं। इसके उपरान्त चैत्य आदित्य, चन्द्र, अङ्गारक, सौम्य, गुरु, भार्गव, शनैश्चर, राहु, केतु, ये नौ ग्रह हैं। वे अपनी-अपनी गति से सम्पूर्ण जगत् का अभिग्रहण करते हैं उनको उद्-गमनादि पुण्य कालों में यजन करना चाहिए। शान्ति के लिये सद्यः उद्-भूत माङ्गल्यादि में आभ्युदयिक को करने वाला होता हुआ ग्रह यज्ञ

करे। आभ्युदायिक ही शान्ति कर्म होता है। यदि उसके आनुकूल्य कामना वाला यथेच्छया अभ्युदय से पहिले जो एक सप्ताह के अन्तरित हो उसको करना चाहिए। दश पराहुतियों को स्वय एक ही करे। इसके आगे पांच सौ आहुतियाँ चार ऋत्विज करें। सौ तक आठ ही श्रेष्ठ है नवम आचार्य होते है अथवा स्वय ही होवे। यदि स्वयं आचार्य होवें तो उनका भाग कल्प वेत्ता को दे देना चाहिए। उनको विधिवत् वरण करके आचार्य करे और आदित्य देव के लिये हवन करे। इतर इतरो के लिये करें। आचार्य्य पूर्वोत्तर तन्त्र को करे और इतर अन्वारम्भ करें ।१।

२ ग्रहयज्ञसंभारादि।

अथास्य संभरा हस्तमात्रावरं चतुरस्त्र कुण्डं स्थण्डिल वा संस्कृत्य तत ईशान्या कुण्डवदायतं चतुरस्रां चतुरस्रद्वयङ्गुलोच्छ्रिता विस्तृता त्रिभूमिकां ग्रहवेदिं कुर्या त्तस्या च शुक्लव्रीहितण्डुलैः सकर्णिकमष्टदलमम्बुजमुल्लिख्य कर्णिकायां दलेषु च यथास्थान ग्रहपीठानि स्थापयेदुदीच्या धान्यपीठे तैजसं मृन्मय वा नवमनुलिप्तालंकृत शुभमभिषेककुम्भ निधाय प्रसुव आपो महिमानमित्यृचाऽद्भिः पूरयित्वा पञ्चगव्यानि पञ्चामृतानि नवपर्वतधातूस्त्रपवित्रमृदो नवरत्नानि प्रक्षिप्य दुर्वापल्लवैर्मुखमाच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयित्वा समुद्रादीनि पुण्यतीर्थान्यावाह्य कुम्भममिमृश्याभिलङ्गा वारुणाः पावमानोश्च जपेत् ।।२।।

२—इसके अनन्तर सम्भारों के विषय मे कहा जाता है—एक हस्त मात्रा वर चौकोर कुण्ड अथवा स्थण्डिल का संस्कार करके इसके अनन्तर ईशान दिशा मे कुण्डवत् आयत चतुरस्र चौकोर दो अङ्गुल उच्छ्रित—विस्तृत-त्रिभूमिका ग्रह वेदी करे और उसमें शुक्ल व्रीहि तण्डुलों से कर्णिका के सहित आठ दलों वाला अम्बुज (कमल) को उल्लिखित करके उसकी कर्णिका में और दलों मे यथा स्थान ग्रहो के पीठों की स्थापना करनी चाहिए। उत्तर दिशा में धान्य पीठ पर तैजस (धातु निर्मित) अथवा

मृत्तिका का नूतन-अनुलिप्त-अलङ्कृत और शुभ अभिषेक का कुम्भ निधापित करके "प्रसुव आपो महिमानम्" इस ऋचा से जल से परिपूर्ण करे और उसमें पञ्चगव्य-पञ्चामृत-नव पर्वत धातुएँ-नव पवित्र मृत्तिकाएँ-और नव रत्न प्रक्षिप्त करके दूर्वा तथा पल्लवों से उसके मुख को समाच्छादित करे। दो वस्त्रों से वेष्टन कर के समुद्र आदि पुण्य तीर्थों का उसमें आवाहन करे तथा कुम्भ का अभिमर्षण करके अग्निर्ज्ञा वारुणी और पवमानी ऋचाओं का जप करना चाहिए।२।

३ अर्चनाङ्गानि।

अथार्चनाङ्गानि ताम्रं स्फाटिकं रक्तचन्दनं कुङ्कुमं सुवर्णं तदेव रजतं लौहं सीसकं कांस्यमिति नव प्रतिमाद्रव्याणि सुवर्णमेकमेव वा सर्वेषां रक्तचन्दनं मलयजो देवदारुः कुङ्कुमो मनः शिला शङ्खपिष्टं तिलपिष्टं केतकीरजः कस्तूरीति नवानु लेपनानि मलयज एक एव वा सर्वेषां रक्तपद्मं कुमुदं रक्तकरवीरं पाटलं चम्पकं कुन्दमिन्दीवरं कृष्णधत्तूरं तच्चित्रवर्णमिति नव पुष्पाणि रक्तकरवीरमेकमेव वा पुष्पवर्णा अक्षता अहतवस्त्रयुग्मानि च कन्दरमयूरशिखादशाङ्गसर्जरसा बिल्वफलं निर्यासं कृष्णागुरु जटामांसी मधुकमिति नव धूपा गुग्गुलुरेक एव वा सर्पिषा दीपास्तिलतैलेन वा हविष्यान्नं पायसं पलान्नं गुडान्नं क्षीरोदनो दध्योदनः कृसरान्नमामान्नं चित्रान्नमिति नवोपहारास्त्रिवृदन्नमेकमेव वा माणिक्यं मौक्तिकं प्रवालो मरकतं पुष्परागो वज्रो नीलो गोमेदिकं वैदूर्यमिति नव रत्नान्येकमेव वा माणिक्यमर्कः पालाशः खदिरोऽपामार्गोऽश्वत्थ उदुम्बरः शमी दूर्वाः कुशा इति समिधः सर्वेषां पालाश एक एव वा।३।

३—इसके उपरान्त अर्चना के अङ्गों को बतलाया जाता है—ताम्र, स्फटिक निर्मित-रक्त चन्दन-कुङ्कुम सुवर्ण-रजत-लोह-सीसक-कांस्य—ये नौ

प्रतिमा द्रव्यों को अथवा एक ही सुवर्ण को सबका रक्त चन्दन-मलयज-देव दारु-कुङ्कुम-मैन सिल-शखविष्ट-तिल पिष्ट-केतकी का रुज-कस्तूरी—ये नौ अनुलेपन द्रव्य है अथवा इन सब में एक ही होवे। रक्त कुमुद, रक्त पद्म, रक्त कर वीर, पारल, चम्पक, कुन्द, इन्दीं वर, कृष्ण धत्तूर, तच्चित्र वर्ण ये नौ पुष्प अथवा एक ही रक्त कर वीर से पुष्प वर्ण वाली—अक्षता और अहृत दो वस्त्रो के युग्म, कन्दर मयूर शिखा दशाङ्ग सर्जरस, विल्व फल, निवास, कृष्णा गुरु, जटामांसी मधु—ये नौ धूप अथवा एक ही गुग्गुलु, घृत से ही एक अथवा तिल तैल से दीपक-हविष्यान्न, पायस, पलान्न, गुडान्न, दलीरोदन, दध्योदन, कृसरान्न, आमान्न, चित्रान्न—ये नौ उपहार, त्रिनृदन्त अथवा एक ही अन्न हो। माणिका, मुक्ता, प्रवाल, मरकत, पुष्य, राग, वज्र, नील, गोमेदिक, वैदूर्य—ये नौ रत्न अथवा एक ही माणिक्य हो। अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, अश्वत्थ, उदुम्बर, शमी, दूर्वा, कुश—ये समिधाएँ है अथवा सबमें से एक ही पलाश होवे।३।

४ पूजाविधिः ।

अथार्चनमाचार्यः प्राङ्मुख उपविश्य समाहितः पुण्याहादि वाचयित्वा कर्म सकल्प्य ग्रहवेदिपद्मीठेषु यथा स्थानमुखीं ग्रह प्रति मां स्थापयित्वा दक्षिणवामयोरधिदेवता प्रत्यधिदेवते तदभिमुख्यौ स्थापयेत्तदभावे पुष्पाक्षतादिष्वावाहयेदग्निरापः पृथिवी विष्णुरिन्द्र इन्द्राणी प्रजापतिः सर्पा ब्रह्मा च क्रमेण ग्रहाणामधिदेवता ईश्वर उमा स्कन्दः पुरुषो ब्रह्मेन्द्रो यमः कालश्चित्रगुप्त इति प्रत्यधिदेवता गणपति दुर्गो क्षेत्राधिपतिं वायुमाकाशमश्विनौ कर्मसादुण्यदेवता इमा यथाप्रत्ययम् निवश्य प्राच्यादिष्विन्द्रादिलोकपालान्श्चतुरक्षकानावाहयेत्पुष्पाञ्जलिप्रयोगेणाऽऽवाहनमन्त्रैर्नमोन्तैरावाह्य नामभिः क्रमेण दीपान्तानुपचारानर्पयेत् ।४।

४—इसके अनन्तर अर्चन को बतलाते हैं—आचार्य पूर्व की ओर मुख वाला होकर परम समाहित होकर पुण्याह आदि का वाचन करके कर्म का सङ्कल्प करे। ग्रह के ही पात्र पीठों पर यथास्थान मुख वाली ग्रह प्रतिमा को स्थापित करके दक्षिण वाम भागों में अधि देवता-प्रत्यधि देवता उसके अभिमुख स्थापित करे। उनके अभाव में पुष्पाक्षतादि में आवाहन करना चाहिए। अग्नि-आप (जल)-पृथिवी-विष्णु-इन्द्र-इन्द्राणी-प्रजापति-सर्प ब्रह्मा—ये ग्रहों के अधि देवता हैं, गणपति-दुर्गा-क्षेत्राधिपति-वायु-आकाश-अश्विनी कुमार दोनों क्रतु साद्गुण्य देवता उनको यथा प्रत्यक् निवेशित करके प्राच्यादि में इन्द्रादि लोकपालों का क्रतु के रक्षकों को आवाहित करे। पुष्पाञ्जलि प्रयोग के द्वारा आवाहन मन्त्रों से अन्त में 'नमः' यह शब्द लगाकर आवाहन करे। फिर नामों से क्रमशः षोडश उपचारों से अर्चन करना चाहिए ॥१४॥

५ ग्रहावाहनमन्त्राः ।

अथाऽऽवाहनमन्त्राः प्रणवमुच्चार्य भगवन्नादित्य ग्रहाधिपते काश्यपगोत्र कलिङ्गदेशेश्वर जपापुष्पसमाकृते द्विभुज पद्माभयहस्त सिन्दूरवर्णाम्बरमाल्यानुलेपनज्वलन्माणिक्यखचितसर्वाङ्गाभरण भास्कर तेजोनिधे त्रिलोकप्रकाशक ग्रहदेवतामयमूर्ते नमस्ते सप्ताश्वरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छाग्निरुद्राभ्यां सह पद्मकर्णिकायां ताम्रप्रतिमां प्राङ्मुखो वर्तुलपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्सोम द्विजाधिपते सुधामयशरीराऽऽत्रेयगोत्र यामुनदेशेश्वर गोक्षीरधवलाङ्गकान्ते द्विभुज गदावरदानाङ्कित शुक्लाम्बरमाल्यानुलेपन सर्वाङ्गमुक्तमौक्तिकाभरणरमणीय सर्वलोकाप्यायक देवतास्वाद्यमूर्ते नमस्ते संनद्धपताकध्वजपताकोपशोभितेन दशश्वेताश्वरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छाद्भिरुमया च सह पद्माग्नेय-

दलमध्ये स्फटिकप्रतिमां प्रत्यङ्मुखी चतुरस्रपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्नङ्गारकाग्न्याकृते भारद्वाजगोत्रावन्तिदेशेश्वर ज्वालापुञ्जोपमाङ्गद्युते चतुर्भुज शक्तिशूलगदाखड्गधारिन्रक्ताम्बरमाल्यानुलेपन प्रवालाभरणभूषितसर्वाङ्ग दुर्धरालोकदीप्ते नमस्ते सनद्धरक्तध्वजपताको शोभितेन रक्तमेषरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ भूमिस्कन्दाभ्यां सह पद्मदक्षिणदलमध्ये रक्तचन्दन प्रतिमां दक्षिणामुखी त्रिकोणपीटेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्सौम्य सौम्याकृते सर्वज्ञानमयात्रिगोत्र मगधदेश्वर कुङ्कुमवर्णाङ्गद्युते चतुर्भुज खड्गखेटकगदावरदानाङ्कित पीताम्बरमाल्यनुलेपन मरकताभरणालङ्कृतसर्वाङ्ग विवृद्धमते नमस्ते सनद्धपीतध्वजपताकोपशोभितेन चतुःसिंहरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ विष्णुपुरुषाभ्यां सह पद्मेशानदलमध्ये सुवर्णप्रलिमामुदङ्मुखी बाणाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्बृहस्पते समस्तदेवताचार्याऽऽङ्गिरसगोत्र शेश्वरसिन्धुदे तप्तसुवर्णसदृशाङ्गदीप्ते चतुर्भुज कमण्डलवक्षसूत्रवरदानाङ्कित पीताम्वरमाल्यानुलेपन पुष्परागमयाभरण रमणीय समस्तविद्याधिपते नमस्ते संनद्धपीतध्वजपताकोपशोभितेन पीताश्वरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छेन्द्रब्रह्माभ्यां सह पद्मोत्तरदलमध्ये सुवर्णप्रतिमामुदङ्मुखीं दीर्घचतुरस्रपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन् भार्गव समस्तदैत्यगुरो भार्गवगोत्र भोजकटदेशेश्वर रजतोज्ज्वलाङ्गकान्ते चतुर्भुज दण्डकमण्डलवक्षसूत्रवरदानाङ्कि शुल्कमाल्याम्बरानुलेपन वज्राभरणभूषितसर्वाङ्ग समस्तनीतिशास्त्रनिपुणमते नमस्ते सनद्धशुल्कध्वजपताकोपशोभितेन

शुक्लाश्वरथवाहनसहितेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नाग-च्छेन्द्राणीन्द्राभ्यां सह पद्मपूर्वदलमध्ये रजतप्रतिमा प्राङ्मुखी पञ्चकोणपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवञ्शनैश्चर भास्करतनय काश्यपगोत्र सुराष्ट्रदेशेश्वर कज्जलनिभाङ्गकान्ते चतुर्भुज चापतूणीरकृपाण।भयाङ्कित नीलाम्बरमाल्यानुलेन नीलरत्नभूषणालङ्कृतसर्वाङ्ग समस्तभुवनभीषणामर्षमूर्ते नमस्ते सनद्धनीलध्वजपताकोपशोभितेन नीलगृध्ररथवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ प्रजापतियमाभ्यां सह पश्चिमदलमध्ये कालायसप्रतिमा प्रत्यङ्मुखी चापाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्राहो रविसोममर्दन सिंहिकानन्दन पैठीनसिगोत्र बर्बरदेशेश्वर कालमेघसमद्युते व्याघ्रवदन चतुर्भुज खड्गचर्मधर शूलवराङ्कित कृष्णाम्बरमाल्यानुलेपन गोमेदकाभरणभूषितसर्वाङ्ग शौर्यनिधे नमस्ते संनद्धकृष्णध्वजपताकोपशोभितेन कृष्णसिंहरथवाहनेन मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छ सर्पकालाभ्यां पश्चिमनैर्ऋतदलमध्ये सीसकप्रतिमा दक्षिणामुखी शूर्पाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि । भगवन्केतो कामरूप जैमिनिगोत्र मध्यदेशेश्वर धूम्रवर्णध्वजाकृते द्विभुज गदावरदाङ्कित चित्राम्बरमाल्यानुलेपन वैदूर्यमयाभरणभूषितसर्वाङ्ग चित्रशक्ते नमस्ते सनद्धचित्रध्वजपताकोपशोभितेन चित्रकपोतवाहनेन मेरु प्रदक्षिणीकुर्वन्नागच्छब्रह्मचित्रगुप्ताभ्यां सह पश्चवायव्यदलमध्ये कांस्यप्रतिमा दक्षिणामुखी ध्वजाकारपीठेऽधितिष्ठ पूजार्थं त्वामावाहयामि ।५।

५—इसके अनन्तर आवाहन के मन्त्र बतलाये जाते हैं—प्रणव (ओं) का उच्चारण करके हे भगवन् आदित्य ! ग्रहों के अधिपति ! काश्यप गोत्र

वाले ! कलिङ्ग देश के ईश्वर ! जपा के पुष्प के समान अङ्ग की द्युति वाले ! दो भुजाओं से युक्त ! पद्म और अभय दान हाथों में धारण करने वाले ! सिन्दूर के वर्ण वाले वस्त्र-माल्य-अनुलेपन से युक्त तथा उज्ज्वल माणिक्यों से स्वचित सम्पूर्ण आभरणों वाले ! तेज की खान ! त्रिलोकी को प्रकाश देने वाले ! त्रिदेवता मय मूर्त्ति वाले ! भास्कर ! आपको नमस्कार है । संनद्ध अरुण ध्वजा और पताका से उपशोभित सात अश्वों से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए अग्नि और रुद्र के साथ आइये । पद्म की कर्णिका में पूर्व की ओर मुख वाली ताम्र की प्रतिमा में वर्त्तुल पीठ पर अधिष्ठित होइए पूजाके लिये तुम्हारा आवाहन करता हूँ ।

हे भगवन् ! हे सोम ! द्विजों के अधिपति ! सुधामय शरीर ! आत्रेय गोत्र वाले ! यामुन के देश के ईश्वर हे गो क्षीर के समान धवल अङ्ग कान्ति वाले ! दो भुजाओं से युक्त-गदा और वरदान से युक्त हाथों वाले ! शुक्ल माल्य, वस्त्र और अनुलेपन वाले ! सब अङ्गों में मौतिक आभरणा से रमणीय ! सब लोकों का आप्यायन करने वाले ! देवताओं के द्वारा आस्वादन करने योग्य मूर्त्ति वाले आपको नमस्कार है । संनद्ध पीत वर्ण की ध्वजा-पताकाओं से उपशोभित दश श्वेत वर्ण वाले अश्वोंसे युक्त रथ क वाहन वाले ! मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए जलों और उमा के साथ आइये और पद्म के आग्नेय दिशा वाले दल के मध्य में स्फटिक प्रतिमा जोकि प्रत्यङ्मुखी है चौकोर पीठ पर अधिष्ठित होइये । पूजा के लिये आपका आवाहन करता हू ।

हे भगवन् ! अग्नि की आकृति वाले अङ्गारक ! भारद्वाज गोत्र वाले ! अवन्ति देश के ईश्वर ! ज्वालाओ के पुञ्ज के समान अङ्ग की द्युति वाले ! चार भुजाओ से युक्त ! चारों हाथों में शक्ति-शूण गदा और खड्ग को धारण करने वाले ! रक्त वर्ण के वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! प्रवाल (मूंगा) के आभरणो से भूषित समस्त अङ्गो वाले ! दुर्धर आलोक दीप्त वाले ! आपको नमस्कार है । सनद्ध रक्त ध्वजा और पता-

काओ से उपशोभित ! रक्त वर्ण वाले मेषों से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए भूमि और स्कन्द के सहित आइये और पद्म के दक्षिण दल के मध्य में रक्त चन्दन प्रतिमा जो दक्षिण मुख वाली है त्रिकोण पीठ पर अधिष्ठित होइये। पूजा करने के लिये आपका आवाहन करता हूं।

हे भगवन् सौम्य ! सौम्य आकृति वाले ! सर्व ज्ञान से परिपूर्ण अत्रि गोत्र वाले ! मगध देश के स्वामी ! कुङ्कुम के वर्ण के तुल्य अङ्ग की द्युति वाले ! चार भुजाओं वाले ! खड्ग खेटक गदा और वरदानों को चारों हाथों में रखने वाले ! पीले वर्ण का वस्त्र, माल्य अनुलेपन धारी ! मरकत मणि के आभूषणों से अलङ्कृत सब अङ्गों से युक्त ! विशेष रूप से बुद्ध मति से समन्वित ! आपके लिये प्रणाम है। सन्नद्ध पीत ध्वजा और पताकाओं से शोभा समन्वित चार सिंहों से युक्त रथ के वाहन द्वारा मेरु गिरि की प्रदक्षिणा करते हुए विष्णु पुरुषों के साथ आइये और पद्म के ईशान दिशा की ओर के दल के मध्य में उदङ्मुखी सुवर्ण प्रतिमा से बाणाकार पीठ के मध्य में अधिष्ठित होइए। अर्चन करने के लिये आपका आवाहन करता हूं।

हे भगवन् ! बृहस्पते ! सब देवों के आचार्य ! आङ्गिरस गोत्र युक्त ! सिन्धु देश के अधीश्वर ! तपे हुए सुवर्ण के समान अङ्ग की दीप्ति वाले ! चार भुजाओं से सयुत ! कमण्डलु, अक्ष सूत्र और वरदान से अङ्कित हाथों वाले ! पीत वस्त्र, माल्य और अनुलेपन से समन्वित ! पुष्पराग मय आभरणों से रमणीय ! समस्त विद्याओं के अधिपति ! आपको अभिवादन है। सन्नद्ध पीत ध्वजा-पताकाओं से शोभा वाले और पीत अश्वों से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए इन्द्र और ब्रह्मा के साथ आओ और पद्म के उत्तर दिशा वाले दल के मध्य में उदङ्मुखी सुवर्ण प्रतिमा में दीर्घ चतुरस्र पीठ पर अधिष्ठित होइए। मैं अभ्यर्चन के लिये आपका इस समय में आवाहन करता हूं।

हे भगवन् भार्गव ! हे समस्त दैत्यों के गुरुवर ! भार्गव गोत्र वाले ! भोजकट देश के ईश्वर ! रजत के समान उज्ज्वल अङ्ग की कान्ति वाले !

चार भुजाओं से युक्त ! वे चारों भुजाएँ कमण्डलु अक्ष सूत्र और वरदान से समन्वित है, शुक्ल वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! हीरो से जटित आभरणों से सब अङ्गों वाले ! सम्पूर्ण नीति शास्त्र में निपुण मति से सयुत ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । सनद्ध शुक्ल ध्वजा और पताकाओ से शोभा वाला, शुक्ल अश्व और रथ वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए इन्द्राणी और इन्द्र के सहित आइए और पद्म के पूर्व दल के मध्य मे रजत प्रतिमा में जो प्राङ्मुखी है पञ्चकोण के पीठ पर अधिष्ठित होइए । मैं पूजा के लिये आपका आवाहन करता हूं ।

हे भगवन् शनैश्चर ! हे भास्कर के पुत्र, काश्यप गोत्र वाले, सुराष्ट्र देश के अधीश्वर ! काजल के समान अङ्ग की कान्ति वाले ! हे चतुर्भुज ! चाप, तूणीर, कृपाण और अभय दान चारों हाथों में ग्रहण करने वाले ! नीले वस्त्र, माल्य और अनुलेपन वाले ! नीलम रत्नों से जटित भूषणों से अलङ्कृत सब अङ्गों वाले ! समस्त भुवनों मे भीषण और अमर्ष की मूर्त्ति वाले ! आपको नमस्कार है संनद्ध नील ध्वजा और पताकाओ से उपशोभित नीले गिद्धो से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए आइए प्रजापति और यम के सहित पश्चिम दल के मध्य में काले लोहे की प्रत्यङ्मुखी प्रतिमा मे चाप के आकार वाले पीठ पर अधिष्ठित होइए । पूजा के लिये आपका आवाहन करता हूँ ।

हे भगवन् हे राहो ! हे रवि और सोम के मर्दन करने वाले ! सिंहि के नन्दन ! पैठीनसि गोत्र वाले ! वर्वर देश के अधीश्वर ! काल मेघ के समान द्युति वाले ! व्याघ्र के समान मुख वाले ! हे चतुर्भुज ! खड्ग और चर्म (ढाल) को धारण करने वाले तथा शूल और वर से अङ्कित हाथों वाले ! कृष्णा वस्त्र, माल्य और अनुलेपन से समन्वित ! गोमेदक से जटित आभूषणों से विभूषित समस्त अङ्गों वाले ! हे शौर्य की निधि ! आपको नमस्कार है । बँधी हुई कृष्ण वर्ण की ध्वजा और पताकाओ से उपशोभित कृष्ण सिंहों से युक्त रथ के वाहन के द्वारा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए सर्प और काल—इन दोनो के साथ यहा पर पधारिये

और पद्म के नैर्ऋत दिशा वाले दल के मध्य में सीसा की प्रतिमा वाली दक्षिण मुखी मूर्ति में शूर्प के आकार वाले पीठ पर अधिष्ठित होइए। अभ्यर्चन करने के लिये ही मैं आपका यहाँ पर आवाहन करता हूँ।

हे भगवन् ! हे केतो ! काम से अर्थात् स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले ! जैमिनि गोत्र से युक्त ! मध्य देश के स्वामिन ! धूम्र वर्ण वाले ध्वज के तुल्य आकृति वाले ! दो भुजाओं से संयुत ! हाथों में गदा और वर धारण करते हुए चित्र वस्त्र, विचित्र माल्य और अनुलेपन वाले ! वैदूर्य रत्न से परिपूर्ण भूषणों से अलङ्कृत अङ्गों वाले ! हे चित्रध्वज शालिन् ! आपको मेरा प्रणाम है। सतत चित्रध्वज ध्वजा और पताकाओं से शोभा युक्त चित्र कपोतों के वाहन के द्वारा मेरु गिरि को प्रदक्षिणा करते हुए ब्रह्मा और चित्रगुप्त के साथ यहाँ आइये तथा पद्म के वायव्य कोण वाले दल के मध्य में दक्षिण मुखी कांस की प्रतिमा में ध्वज के आकार वाले पीठ पर अधिष्ठित होइए। पूजा करने के लिये ही मैं यहाँ पर आपका आवाहन करता हूँ ।५।

६ ग्रहाणामधिदेवताप्रत्यधिदेवताः ।

अथ ग्रहाणामधिदेवताप्रत्यधिदेवतावाहनं पिंगभ्रूश्मश्रुकेशं पिङ्गाक्षत्रिनयनमरुणवर्णाङ्गं छागस्थं साक्षसूत्रं सप्तार्चिषं शक्तिधरं वरदहस्तद्वयमादित्याधिदेवतामग्निमावाहयामि। अथ प्रत्यधिदेवता त्रिलोचनोऽपि पञ्चवक्त्रं वृषारूढं कपालशूलखड्गखट्वाङ्गधारिणं चन्द्रमौलिं सदाशिवमादित्यप्रत्यधिदेवं रुद्रमावाहयामि । स्त्रीरूपधारिणीः श्वेतवर्णा मकरवाहना: पाशकलशधारिणीमुक्ताभरणभूषिता: सोमाधिदेवता अप आवाहयामि । अक्षसूत्रकमलदर्पणकमण्डलुधारिणीं त्रिदशपूजितां सोमप्रत्यधिदेवतामुमामावाहयामि । शुक्लवर्णां दिव्याभरणभूषितां चतुर्भुजां सौम्यवपुषं चण्डांशुसहस्राम्बरां रत्नपात्रसस्यपात्रौषधिपात्रयोपेतकरां चतुर्दिङ्नगभूषितां पृष्ठगतामङ्गारकाधिदेवतां भूमिमावाहयामि ।

षण्मुखं शिखण्डकविभूषणं रक्ताम्बरमयूरवाहनं कुक्कुटघण्टापताकाशक्त्युपेत चतुर्भुजमङ्गारकप्रत्यधिदेवतां स्कन्दमावाहयामि। कौमोदकीपद्मशङ्खचक्रोपेतं चतुर्भुजं सौम्याधिदेवतां विष्णुमावाहयामि सौम्यप्रत्यधिदेवतां विष्णुवत्पुरुषमावाहयामि। चतुर्दन्तगजारूढ वज्राङ्कुशधरं शचीपतिं नाना भरणभूषित बृहस्पत्याधिदेवतामिन्द्रमावाहयामि। पद्मासनस्थ जटिलं चतुर्मुखमक्षमालास्रुवपुस्तककमण्डलुधारिण कृष्णाजिनवाससं पार्श्वस्थितहंसं बृहस्पतिप्रत्यधिदेवतां ब्रह्माणमावाहयामि। संतानमञ्जरीवरदानधरद्विभुजां शुक्राधिदेवतामिन्द्राणीमावाहयामि। चतुर्दन्तगजारूढ वज्राङ्कुशधर शचीपति नानाभरणभूषितं भार्गवप्रत्यधिदेवतां शक्रमावहयामि। यज्ञोपवितिनं हंसस्थमेकवक्रमक्षमालास्रुवपुस्तककमण्डलुसहित चतुर्भुज शनैश्चराधिदेवं प्रजापतिमावाहयामि। ईषत्पीनं दण्डहस्तं रक्तसदृशं पाशधरं कृष्णवर्ण महिषारुढं सर्वाभरणभूषितं शनैश्चरप्रत्यधिदेवतं यममावाहयामि। अत्रसूत्रधरान्कुण्डलाकारपुच्छयुक्तानेकभोगान्स्त्रीभोगन्भीषणाकारान्राह्वधिदेवतान्सर्पानावाहयामि। करालवदन नित्यभोषण पाशदण्डधर सर्पवृश्चिकरोमाण राहुप्रत्यधिद वतां कालमावाहयामि। पद्मासनस्थ जटिलं चतुर्मुखमक्षम ल स्रुवपुस्तकमण्डलुधरं कृष्णाजिनवाससं पार्श्वस्थितहंस केत्वधिदेवता ब्रह्माणमावाहयामि। उदीच्यवेषधर सोम्यदर्शन लेखनोपत्रोपेत द्विभुज केतुप्रत्याधिदेवतां चित्रगुप्तमावाहयामि।६।

६—इसके अनन्तर ग्रहों के अधिदेवता प्रत्यधि देवता वाहन को जो पिङ्ग वर्ण के भ्रू, श्मश्रु और केशों वाला है—पिङ्ग अक्ष और तीन नेत्रों वाला है—अरुण वर्ण के अङ्गों वाला—छाग पर स्थित—अक्ष सूत्र से

युक्त–सात अँचियों वाला–शक्ति धारी—दोनों हाथों से वरदान देते हुए आदित्य देव वाले अग्नि का आवाहन करता हूं । इसके अनन्तर प्रत्यधिदेवता तीन लोचनों से युक्त पाच वक्त्रों वाला–वृष पर समारूढ़-कपाल, शूल, खड्ग और खट्वाङ्ग को धारण करता–मस्तक में चन्द्र को धारण करते हुए–सदाशिव आदित्य प्रत्यधिदेव रुद्र का आवाहन करता हूं । स्त्री का स्वरूप धारण करने वाली–श्वेत वर्ण से युक्त–मकर के वाहन वाली–पाश और कलश को धारण करने वाली–मुक्ताओं के आभूषणोंसे भूषित–सोमाधिदेवता अपां का आवाहन करता हूं । अक्ष सूत्र, कमल, दर्पण और कमण्डलु को धारण करने वाली–देवों के द्वारा पूजित–सोम प्रत्यधिदेवता वाली उमा देवी का आवाहन करता हूं । शुक्ल वर्ण वाली–दिव्य आभरणों से भूषित–चार भुजाओं वाली–सौम्य शरीर धारिणी–सूर्य के तुल्य वस्त्रों वाली–रत्न पात्र, सस्य पात्र, औषधि पात्र और पद्म से संयुत करों वाली–चारों दिशाओं में नगों से भूषित–पृथुरस अङ्गारक (मङ्गल) के अधि देवता वाली भूमि का आवाहन करता हूं । छै मुखों वाले–दिव्यरत्न के भूषण वाले–रक्त वर्ण के वस्त्र तथा मयूर के वाहन वाले, कुक्कुट, घण्टा, पताका और शक्ति से युक्त–चार भुजाओं वाले-अङ्गारक के प्रत्यधिदेवता वाले स्कन्द का आवाहन करता हूं ।

कौमोदकी, शङ्ख, पद्म और चक्रसे उपेत–चार भुजा वाले–सौम्याधिदेवता विष्णु का आवाहन करता हूं । सौम्य प्रत्यधिदेवता-विष्णु वपुरूप का आवाहन करता हूं । चतुर्दन्त गज पर समारूढ़–वज्र और अङ्कुश को धारण करने वाले–शची (इन्द्राणी) के स्वामी–अनेक आभरणों से भूषित–बृहस्पति प्रत्यधिदेव वाले इन्द्र का आवाहन करता हूं । पद्म के आसन पर विराजमान–जटा धारी–चार मुखों वाले-अक्ष माला, स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु के धारण करने वाले–कृष्ण अजिन के वस्त्र धारी–पार्श्व भाग में स्थित हंस वाले–बृहस्पति प्रत्यधिदेव वाले ब्रह्माजी का आवाहन करता हूं । सन्तान मञ्जरी और वरदान को धारण करने वाली दो भुजाओं से युक्त–शुक्राधिदेवता वाली इन्द्राणी का मैं आवाहन करता हूं । चतुर्दन्त गज पर समारूढ़–वज्र और अङ्कुश को धारण करने वाले–

शची के पति–अनेक आभरणों से भूषित–भार्गव प्रत्यधिदेवता वाले शक्र का आवाहन करता हूं।

यज्ञोपवीत धारी—हंस पर स्थित–एक मुख वाले–अक्ष माला, स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु के सहित चतुर्भुज–शनैश्चर के अधिदेव वाले प्रजापति का आवाहन करता हूं। कुछ थोडे से पीन, दण्ड हस्त, रक्त के तुल्य पाश धारी कृष्ण वर्ण से युक्त, महिष पर समारूढ़–सब आभरणो से अलङ्कृत–शनैश्चर प्रत्यधिदेवता वाले यम का आवाहन करता हूँ। अक्ष सूत्र धारी–कुण्डल के आकार वाली पुच्छ से युक्त–एक भोग वाले–स्त्री भोग से संयुत–भीषण आकार वाले–राहु के अधिदेवता वाले सर्पो का आवाहन करता हू। कराल वदन वाले–नित्य ही भीषण–पाश और दण्ड के धारण करने वाले–सर्पो और वृश्चिको के रोमों वाले–राहु प्रत्यधिदेवता वाले काल का आवाहन करता हू। पद्म के आसन पर स्थित–जटाधारी–चतुर्मुख–अक्ष माला, स्रुक, पुस्तक और कमण्डलु के धारण करने वाले–कृष्ण अजिन के वस्त्र वाले–पार्श्व में स्थित हंस वाले–केतुके अधिदेवता वाले ब्रह्माजी का आवाहन करता हूँ। उदीच्य वेषधारी–सौम्य दर्शन से युक्त–लेखनी पत्र से युक्त–दो भुजा वाले–केतु के प्रत्यधिदेवता वाले चित्रगुप्त का आवाहन करता हूं।६।

७ क्रतुसाद्गुण्यदेवतावाहनादि

अथ सादुण्यदेवतावाहनं वायुप्रदेशे सर्वत्र सप्रणवव्याहृतिपूर्वकं त्रिनेत्र गजानन नागयज्ञोपवीतिनं चन्द्रधरं दन्ताक्षमाला परशु मोदकोपत चतुर्भुजं विनायकमावाहयामि। तत उत्तरतः शक्तिबाणशूलखड्गचक्रचन्द्रबिम्बखेटकपालपरशुकण्टकोपेतदशभुजां सिंहारूढां दुर्गाख्यदैत्यासुरहारिणीं दुर्गामावाहयामि। श्यामवर्णं त्रिलोचनमूर्ध्वकेशं सुदंष्ट्रं भ्रुकुटीकुटिलाननं नूपुरालक्तलाङ्घ्रि सर्पमेखलया युतं सर्पाङ्गमतिक्रुद्धं क्षुद्रघण्टाबद्धगुल्फावलम्बिकरोटिकामालाधारिणमुरगको-

पीनचन्द्रामौलिं दक्षिणहस्तैः शूलबाणाभयखड्गद्रुमिदधानं वामहस्तैः कपालघण्टाचर्मचापं दधानं भीमं दिग्भागगम-मिनद्धुनि क्षेत्रपालमावाहयामि । धावद्धरिणपृष्ठगं ध्वज-वरदानधारिणं धूम्रवर्णं वायुमावाहयामि । नानोत्पलाभ-नीलाम्बरधारिणं चन्द्रार्ककोपेतं द्विभुजं मेदमाकाशमावा-हयामि पञ्चकमौपलिप्य लक्ष्मीपतिदक्षिणवामहस्तावन्यान्य-मयन देहावेकरग दक्षिणपार्श्वे पद्मप वामपार्श्वे रत्नभा-ण्डधरं शुक्लाम्बरधारिनारीयुग्मोपेतौ देवौ भिषजावश्विना-वाहयामि । अथक्रतुसंरक्षकेन्द्रादिलोकपालानावाहनम् । स्वर्ण-वर्णं सहस्राक्षमैरावतवाहनं वज्रपाणिं शचीप्रियमिन्द्र-मावाहयामि । अरुणवर्णं धनञ्जयं समाश्रितं शक्तिधरं वर-दहस्तद्वययुग्ममग्निमावाहयामि । रक्तवर्णं दण्डधरं पाश-हस्तं महिषवाहनं स्वाहाप्रियं यममावाहयामि । नील-वर्णं खड्गचर्मधरमूर्ध्वकेशं नरवाहनं कालिकाप्रियं निर्ऋतिमावाहयामि । रक्तभूषणं नागपाशधरं मकर-वाहनं पद्मिनीप्रियं सुवर्णवर्णं वरुणमावाहयामि । स्वर्णवर्णं निधीश्वरं कुन्तपाणिमश्ववाहनं चित्रिणीप्रियं कुबेरमावाहयामि । शुद्धस्फटिकवर्णं वरदाभयशूलाक्ष-सूत्रधरं वृषवाहनं गौरीप्रियमीशानमावाहयामि । पूर्व-वत्पूजयेत् ।७।

७ — इसके अनन्तर मातृगण देवता [illegible] आदि का वर्णन किया जाता है - [illegible] प्रणव के सहित [illegible] तीन नेत्रों वाले, गज के समान मुख वाले, नागों के यज्ञोपवीत धारी, चन्द्र को धारण करने वाले, दन्त, अक्षमाला, परशु और मोदक से युक्त, चार भुजाओं वाले भगवान् विनायक का मैं आवाहन करता हूँ। इसके उपरान्त उत्तर की ओर शक्ति, बाण, शूल, खड्ग, चक्र, चन्द्र बिम्ब, ढाल, कपाल, परशु और कण्टक से युक्त दस भुजाओं वाली, सिंह पर समारूढ़, दुर्गा नाम वाली दैत्यों और असुरों के संहार करने वाली दुर्गा देवी का

आवाहन करता हूं। श्याम वर्ण वाले, त्रिलोचन, ऊपर की ओर केशों वाले, सुदृढ़, भृकुटियों के द्वारा कुटिल आनन वाले, नूपुरों से अलङ्कृत चरणों वाले, सर्पो की मेखला से युक्त, सर्पों से युक्त अङ्ग वाले, अत्यन्त क्रुद्ध, क्षुद्र घण्ट से वद्ध गुल्फों में अवलम्बी करोटिका माला के धारण करने वाले, उरगों की कोपीन वाले, चन्द्रमौलि, दाहिने हाथों में शूल, वेताल, खड्ग, दुन्दुभि धारण करने वाले, बाँये करों के द्वारा कपाल, घण्टा, चर्म और चाप को धारण करने वाले, भीम, दिग्वास के सर्मित द्युति वाले क्षेत्रपाल का आवाहन करता हूं।

दौड़ते हुए हरिण की पीठ पर स्थित-ध्वजा और वरदान के धारी, धूम्र वर्ण वाले वायु का आवाहन करता हूं। नील उत्पल के समान आभा वाले, नील वस्त्र के धारण करने वाले, चन्द्रमा के अङ्क से युक्त, दो भुजाओं वाले खेट आकाश का आवाहन करता हूं। प्रत्येक में ओषधि और पुस्तक से उपेत दक्षिण तथा वाम हाथों वाले, परस्पर मे संयुक्त देहों के धारण करने वाले, दक्षिण पार्श्व मे करके वाम पार्श्व में रत्न भाण्डश्‍र, शुक्ल वस्त्र धारी नारी युग्म से युक्त देव भिषज अश्विनी कुमारों का आवाहन करता हूं। इसके अनन्तर क्रतुओं के सरक्षक इन्द्रादि लोक-पाल वाहन-स्वर्ण के समान वर्ण वाले, सहस्र नेत्रों वाले, ऐरावत वाहन वाले, हाथ में वज्र धारण करने वाले, शची के प्रिय इन्द्र का आवाहन करता हूं। अरुण वर्ण से युक्त, तीन नेत्रों वाले, अक्ष सूत्र से युक्त, सात अर्चियों वाले, शक्ति धारी, दोनों हाथों मे वरदान देने वाले अग्नि का आवाहन करता हूं। रक्त वर्ण वाले, दण्डधारी, हाथ में पाश ग्रहण करने वाले, महिष के वाहन के सहित और स्वाहा प्रिय यम का आवाहन करता हूं। नील वर्ण वाले, खड्ग और चर्म को धारण वाले, उर्ध्व केशों वाले, नर के वाहन वाले, कालिका प्रिय निऋृति का आवाहन करता हूँ। रक्त भूषण वाले,नाग की पाश के धारण करने वाले, मकर वाहन, पद्मिनी प्रिय, सुवर्ण के समान वर्ण से युक्त वरुण का आवाहन करता हूं। स्वर्ण वर्ण वाले, निधियों के स्वामी, हाथ में कुन्त धारण करने वाले, अश्व के वाहन मे सयुत, त्रिवेणी प्रिय कुवेर का आवाहन करता हूँ। शुद्ध स्फटिक

के वर्ण वाले वरदान, अभयदान, अक्ष सूत्र के धारण करने वाले, वृष वाहन, गौरी प्रिय, ईशान का आवाहन करता हूँ — इस प्रकार पूर्व रीति से पूजन करे ।७।

८ अग्न्युपधानादि ।

अथाग्निमुपसमाधायान्वाधानाद्याज्यभागान्तं कृत्वा ग्रहर्त्विग्भिः समिच्चर्वाज्यानि प्रत्येकं शतेनावराभिः सहस्रपराभिर्वाहुतिभिर्निमित्तगौरवापेक्षया जुहुयात्प्रधानदशांशेन पार्श्वदेवतयोस्तदर्धेनेतरयोः स्वाहान्तैर्नामभिर्वा मन्त्रलिङ्गमन्त्रैर्वा सकृदवदानेन चरुहोमः पाणिना प्रसृतानामिन्धनाश्च स्वाहान्तैर्हुत्वा पात्रे निरुद्धृत्य ग्रहाणां घण्टादिवाद्यैरुपहारानुगृह्य गन्धादीनि रत्नानि तदभावे सुवर्णखण्डानि वा। तानामन्त्रणं प्रतीदत्तं भवन्ति इति प्रमाणं ग्रहाणामाये ग यदि मन्त्रैः स्तवेन मन्त्रा भवन्त्याकृष्णेन रजसा वर्तमानः, आप्यायस्व समेतु ते, अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्, उद्बुध्यस्व समनस सखायः, बृहस्पते अति यदर्यो अर्हात्, शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यत्, शमग्निरग्निभिः करत्, कयानश्चित्र आभुवत्, केतुं कृण्वन्नकेतवे इति ग्रहाणाम्। अग्निं दूतं वृणीमहे, अप्सु मे सोमो अब्रवीत्, स्योना पृथिवि भवा, इदं विष्णुर्विचक्रमे, इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि, इन्द्राणीमासु नारिषु, प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो, आयं गौः पृश्निरक्रमीत्, ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तादित्यधिदेवतानाम्। त्र्यम्बकं यजामहे, गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती, कुमारश्चित्पितरं वन्दमानम्। सहस्रशीर्षा पुरुषः, ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि, इन्द्रमिद्देवतातये, यमाय सोमं सुनुत, परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्। सवित्र्यग्निश्च चित्रगन्धमरमं, इति

प्रत्यधिदेवतानाम् । आतून इन्द्र क्षुमन्तम्, जातवेदसे सुनवाम सोमम्, क्षेत्रस्य पतिना वयम्, काणाशिशु-महानाम्, आदित्प्रत्नस्य रेतसः, अश्विनावर्तिरस्म-देतीत्येतत्साद्गुण्यदेवतानाम् । इन्द्रं वो विश्वदस्परि, अग्निमीळे पुरोहितम्, यमाय सोमं सुनुत, मोषुणः परापरा, उदुत्तम मुमुग्धिनः, तव वायवृतस्पते, त्व नः सोम विश्वतः, कद्रुद्राय प्रचेतस इति लोकपा-लानाम् । ।

८—इसके अनन्तर अग्नि उपसमाधान करके अन्याधानादि आज्य भाग के अन्त तक करके ऋत्विकों के साथ रामि आदिज्यो को प्रत्येक मे एक सौ से अवर और एक सहस्र से पर आहुतियों के द्वारा निमित्त शक्ति अपेक्षा से हवन करना चाहिए । प्रधान दशाण मे पार्श्व देवताओं का और उससे आधे के द्वारा इतरो का स्वाहा अन्त मे लगाकर नामों से होम कर अथवा तल्लिङ्ग मन्त्रो से सकृद् अवदान के द्वारा चरु का होम करे । हाथ से बहुत से तिलों को व्याहृतियों से हवन करके स्विष्ट-कृत से पहिले ग्रहों का घण्टादि शब्दोंसे उपहारों का उपग्रहण करके पुष्पों के सहित रत्नों को निवेदित करना चाहिए और । रत्नो का अभाव हो तो सुवर्ण पुष्पों का ही विकल्प मे निवेदन करना चाहिए । उसको नमस्कार करके "आप प्रसन्न होइए"—इस रीति से प्रसन्न करे और होम का समापन करना चाहिए । यदि वह मन्त्रो के द्वारा ही अभीष्ट हो तो दो मन्त्र होते है—"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानः'—'आप्यायस्व समेतु ते' —'अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्'—'उद्बुध्यध्व समनसः सखायः, — बृहस्पते अति यदर्यो अर्हात्—शुक्रन्त अन्यद्यजतन्ते अथयत्'—'शमग्नि रग्निनिः करत्'—'कयान'श्चित्र आभुवत्'—'केतु कृण्वन्नकेतव' ये यज्ञों के मन्त्र है । अधि देवताओं के मन्त्र ये है—"अग्नि दूतं वृणीमहे—अप्सु मे सोमो अब्रवीत्—स्योना पृथिवि भव—इद विष्णुर्विचक्रमे—इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि—इन्द्राणीमासु नारीषु-प्रजापतेन त्वदेतान्य-आयङ्गौः पृश्निरक्र-

मीत्—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्'—इति । "त्र्यम्बकं यजामहे—गीर्भिर्मिमाय सलिलानि तक्षती—कुमारश्चित्पितरं वन्दमानम्—सहस्रशीर्षा पुरुषः—ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि—इन्द्रमिद्देवतातये-यमाय सोमं सुनुत—परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्—अच्छिन्नं चित्रं चितयन्तं सम्मे—ये प्रत्यधि देवताओं के हैं । "आनून इन्द्र क्षुमन्तम्—जातवेदसे सुनवाम सोमम्—क्षेत्रस्य पतिना वयम्—क्षमा पिशु मंहीनाम्'—आदित्यानामग रैतगः—अश्विनावर्त्तिरस्मदा—ये तत्सावृगुण्य देवताओं के मन्त्र हैं ।" इन्द्रं वो विश्वतस्परि—अग्निर्मीळे पुरोहितम्—यमाय सोमं सुनुत—सोमस्य परम्परा—उदुत्तमं मुमुग्धि नः—तवत्याम् वृषभाने—त्वं सोम विश्वत—इन्द्राय पवतम्.—ये नौ ग्रहों के मन्त्र हैं ।

९ यजमानाभिषेकः ।

अथ यजमानाभिषेको ग्रहवेदेः प्रागुदीच्यां शुचौ देशे समृष्टालङ्कृते प्राक्प्रवणे चतुष्पादं दीर्घं चतुरस्रं सोत्तरच्छदं पीठं निधाय तत्रोदगग्रानमूलान्हरितदर्भानास्तीर्य प्राङ्मुखं कर्तारं सामात्यमुपवेश्याऽऽचार्यः सहर्त्विग्भिर्गभिर कुम्भमादाय प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्नौदुम्बर्याऽऽर्द्रया शाखया सपल्लवया हिरण्मय्या सकुशदूर्वयाऽन्तर्धाय कुम्भोदकपूर्णाद्भिरभिषिञ्चेत् । अब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिः पावमानीभिः अन्याभिश्च शान्तिपर्यायलिङ्गाभिश्च ह्यभिषेकमन्त्रैः समुद्रज्येष्ठा इति सूक्तेन सुरास्त्वामिति सूक्तेन (स्तोत्रेण) च श्रीसूक्तेन आपः शिवतमा इत्यृचेन देवस्य त्वेति च यजुषा भूर्भुवः स्वरिति च व्याहृतिभिरभिषिक्तस्तेभ्यो ग्रहोक्तां दक्षिणां दद्यात्सा गौः शङ्खो रक्तोऽनड्वान्हिरण्यं पीतं वासः श्वेताश्वः कृष्णा गौः कार्ष्णायसं हस्ती छागो वेति हानां पुनर्हिरण्येन संमितां कुर्यात् । अभावे गवा वा हिरण्यमेव वा तुष्टिकरं दद्याद्द्विगुणमाचार्याय । अथ

घृतान्नेन ब्राह्मणान्भोजयित्वा शान्तिः पुष्टिस्तुष्टि-श्चास्त्विति वाचयेत् । सबन्धिज्ञातिबान्धवांश्च तोषयेदेष ग्रहयज्ञः सर्वानिष्टशमनः सर्वपुष्टिकरः सर्वामीष्टकरस्त-स्मादेनं विभववान्विशेषतः कुर्यात् । अविभवः शान्ति-पुष्टकामो यथोपपत्ति कुर्यात् ।६।

६—इसके अनन्तर यजमान का अभिषेक होता है । ग्रह वेदीके पूर्व-उत्तर में शुचि देशमें जो कि भली-भाँति मार्जित एवं अलङ्कृत हो और प्राक्प्रवण हो चतुष्पाद, दीर्घ चौकोर उत्तर छदके सहित पीठ पर रखकर उस पर उदग्र मूलरहित हरे दर्भों को बिछाकर पूर्व की ओर मुख वाले अमात्यो के सहित कर्त्ता को बिठाकर आचार्य ऋत्विकों के साथ अभिषेक करने का कुम्भ को लेकर पश्चिम की ओर मुख करके स्थित होता हुआ गूलर की गीली शाखा से जिसमें पत्ते भी होंगे और हिरण्यमयी कुश और दूर्वा के सहित अन्दर डालकर उदक कुम्भ की बिन्दुओं से अधिषि-ञ्चन करना चाहिए । अब्लिङ्गा वारुणी पायमानी ऋचाओं से—और महाभिषेक के मन्त्रो से—'समुद्र ज्येष्ठा' इस सूक्त से—'सुरासनम्'—इस सूक्त से (स्तोत्र से) और श्रीसूक्त से—'इमा आप. शिवतमा" इस ऋचा से—'देवस्यत्व' इस यजु से–'भूर्भुवः स्वः' इन व्याहृतियों से अभिषिक्त होता हुआ उन सबको ग्रहों के लिये कथित दक्षिणा देवे । वह गौ-शङ्ख-रक्त अनड्वान्–हिरण्य-पीत वस्त्र- श्वेत अश्व–कृष्ण गौ–काष्णायस–हस्ती अथवा छाग इनको पुनः हिरण्य से सम्मत करना चाहिए । इन सब का यदि अभाव हो तो उस दशा मे सबको तुष्टि करने वाला हिरण्य ही देवे । आचार्य को दुगुना देना चाहिए । यहां पर धृतान्न के द्वारा ब्राह्मणो को भोजन कराकर शान्ति–पुष्टि और तुष्टि होवे–ऐसा वाचन करना चाहिए सम्बन्धी–ज्ञाति और बान्धवो को तुष्ट करना चाहिए । यह ग्रह यज्ञ है, समस्त अनिष्टों का शमन करने वाला होता है, सब प्रकार की पुष्टि के करने वाला है । सभी अभीष्टों को पूरा करने वाला है इस कारण से वैभव वाले पुरुष को यह विशेष रूप से करना चाहिए । जो विभव रहित

उसे शान्ति-पुष्टिका कामना वाला होकर उपपत्ति के अनुसार ही करना चाहिए।६।

१० होमविधानादिप्रयोग.।

अथ होमोऽहरहश्चैत्यग्नौ गृहस्थो ह्यहरहरिष्टान्देवा-निष्ट्वाऽभीष्टार्थोऽश्नोति तस्य तेऽहरहश्चैत्याग्ने गण-पतिर्वा स्कन्दो वा सूर्यो वा सरस्वती वा गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रीपतिर्वा श्रीर्वाऽन्यो वा योऽभिमतस्स एव यथारुचि समस्ता वज्यन्ते केचिद्गणपतिमादित्य शक्तिमच्युतं शिवं पञ्चकमेव वाऽहरहर्यजन्ते। तानग्नौ वाऽग्नौ वा सूर्ये वा स्वहृदये वा स्थण्डिले वा प्रतिमासु वा यजेत प्रतिमास्वक्षणिकासु नाऽऽवाहनविसर्जने भवतः स्वाकृतिषु हि शस्तासु देवता नित्यं संनिहिता इत्यस्थिरायां विकल्पः स्थण्डिले तूभयं भवतु प्रतिमा प्राङ्मुखीमुदङ्मुखो यजेतान्यत्र प्राङ्मुखः सभूतसभारो यजनभवनमेत्य द्वारदेशे स्थित्वा हरतता नैर्ऋत्येणापस-र्पन्तु ये भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्ता-रस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञयेति विघ्नानुत्सार्य प्रविश्य येषा माता मधुमत्पिन्वते पय एवापिबे विश्वदेवाय वृष्ण ऽ।। जपित्वा शुभासने पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चाऽऽसनमित्युपविश्याऽऽचम्याऽऽयम्य प्राणान् संकल्प्य शुचिशङ्खादिपात्रमद्भिः प्रणवेन पूरयित्वा गन्धाक्षतपुष्पाणि प्रक्षिप्य साविश्याऽभिमन्त्र्य तान्यात्मा-वाह्याभ्यर्च्य पवित्रपुष्पाणि तदुदकेनाऽऽर्द्रीकृत्यात्मा-त्मानमायतनं यज्ञनाङ्गानि चाभ्युक्ष्य क्रियाङ्गोद-ककुम्भं गन्धादिभिरभ्यर्च्य, तेनोदकेनाचमनं कुर्वीत तदन-न्तरमन्या तल्लिङ्गमन्त्रेण वा कर्मणोपचारान्दद्यात्पु-ष्पोदकेन पाद्यमर्घ्यं च पात्रान्तरेण सगन्धाक्षतकुसुमा-

न्दद्यादावाहनमासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीय स्नानमाचमनं वस्त्रमाचमनमुपवतिमाचमनं गन्धपुष्पाणि धूपं दीप नैवेद्यं पानार्थं जलमुत्तरमाचमनीयं मुखवासं स्तोत्र प्रणामं दक्षिणां विसर्जन च कुर्यात्। असंपन्नो मनसा सपादयेदाचमनं न पृथगुपचारः। प्रणामस्तोत्राङ्गं दक्षिणादि विसर्जनाङ्गम्। अथ मन्त्राः। गणानां त्वा गणपतिं हवामह इति गणपतेः, कुमारश्चित्पितरं वन्दमानमिति स्कन्दस्य, आकृष्णेन रजसा वर्तमान इत्यादित्यस्य, पावका नः सरस्वतीति सरस्वत्याः, जातवेदसे सुनवाम सोममिति शक्तेः, त्र्यम्बक यजामह इति रुद्रस्य, गन्धद्वारामिति श्रियः, इदं विष्णुर्विचक्रम इति विष्णोः। एव षोडशेमानुपचारान्पौरुषेणैव सूक्तेन प्रत्यृचं सर्वत्रैव प्रयुज्यन्तेऽन्ये सावित्र्या वा जातवेदस्यया वा प्राजापत्या व्याहृत्या वा प्रणवेनैव गा कुर्वन्ति स एष देवयज्ञोऽहर्गोदानसमितः सर्वाभीष्टप्रदः स्वर्ग्योऽपवर्ग्यश्च तस्मादेवमहरहः कुर्वीत तमेनं वैश्वदेवं हुतशेषेण पृथगन्नेन वा कुर्यान्नास्य शेषेण वैश्वदेवं कुर्यात्। अथास्य शेषेण गृहदेवतानां बलिर्द्वारे पितामहाय प्रक्रीडे रुद्राय, अथ गृहे प्राच्यां दिशि प्रतिदिशं सनवग्रहायेन्द्राय बलभद्राय यमविष्णुभ्यां स्कन्दवरुणाभ्यां सोमसूर्याभ्यामश्विभ्यां वसुभ्यो नक्षत्रेभ्योऽथ मध्ये वास्तोष्पतये ब्रह्मणेऽथ प्रागादिभित्तिमूलेषु सिद्ध्यै वृद्ध्यै कीर्त्यै वरुणायोदधानेऽश्विभ्यां दृषदुपलयोर्द्यावापृथिवीभ्या मुलूखलमुसलयोरथ निष्क्रम्य भूमावप आसिच्य श्वचाण्डालपतितवायसेभ्योऽन्न भूमौ विकिरेत्। ये भूताः प्रचरन्ति दिवा बलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेष्ठाः। तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददात्विति रात्रौ चेन्नक्त वा बालमिति

ब्रूयादथ प्रक्षालितपादपाणिराचम्य गृहं प्रविशेत् 'शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं द्यौर्नो देव्यभयं नो अस्तु। शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिपान्तु विश्वत इति जपित्वाऽन्यानि च स्वस्त्ययनानि ततो मनुष्ययज्ञपूर्वकं भुञ्जीत । १० ।

१०-इसके अनन्तर होम है। प्रतिदिन वैश्वदेव वाला गृहस्थ प्रतिदिन इष्ट देवों का यजन करके अभीष्ट अर्थ का चयन करता है। उसके लिए प्रति वे दैवत हैं—गणपति—स्कन्द—सूर्य—सरस्वती—गौरी—गौरीपति—श्रीपति—श्री अथवा अन्य जो कोई भी देव अभिमत होवे यथारुचि अथवा सभी देवों का यजन किया जाता है। कुछ लोग गणपति, आदित्य, अच्युत और शिव-इन पांच ही देवों का प्रतिदिन यजन किया करते हैं उन देवों को जल में अथवा अग्नि में-सूर्य में अथवा हृदय में-स्थण्डिल में अथवा प्रतिमाओं में यजन करे। अशिलामय प्रतिमाओं में आवाहन और विसर्जन नहीं होता है। अपनी आकृति वाली स्थिर प्रतिमाओं में देवता नित्य ही संनिहित रहा करते हैं। जो अस्थिरा हैं उनमें विकल्प होता है। स्थण्डिल में तो दोनों ही बातें होती हैं। प्राङ्मुखी प्रतिमा को उत्तर की ओर मुख वाला होकर ही यजन करना चाहिए। अन्यत्र प्राङ्मुख होता हुआ सभी संभार से युक्त होकर यजन करने के भवन में गमन करे। द्वार देश में स्थित होकर हाथ की तीन तालियां बजावे और गत विघ्नान्। तो वहां पर कहना चाहिए कि-जो प्राणी हो गये और जो भूमि में संस्थित हैं तथा प्राणी विघ्नों के करने वाले हैं, वे सब भगवान् शिव की आज्ञा से अपसरण करें तथा नष्ट होजावें फिर अन्दर प्रवेश करे। ''मेरुपृष्ठो माता सुभूमिरन्वते पयस्यापिनि निम्न देवाय कूर्म,-इसका जप करके शुचि आसन पर हे पृथ्वि! आपने लोकों का धारण किया है और हे देवि! आपको भगवान् विष्णु ने धारण किया था हे देवि! अब आप मुझको धारण करो और आसन को पवित्र करो। यह कह कर आसन पर उपविष्ट हो जावे। आचमन करके आयत प्राण होता हुआ सङ्कल्प करके शुद्ध शंख आदि पात्र को जल से प्रणव के द्वारा पूर्ण करके गन्ध अक्षत पुष्पों का प्रक्षेप करके सावित्री से

अभिमन्त्रित करना चाहिए। तीर्थों का आवाहन करके पवित्र पुष्पों से अभ्यर्चन करे और उस उदक से 'आपोहिष्ठामय भुवः "इन ऋचाओ से अपने आपका — आयतन का और यजनाङ्गों का अभ्युक्षण करना चाहिए क्रियाङ्गोदककुम्भ का गन्धादि के द्वारा अभ्यर्चन करके उस उदक से अवघ्यं करे। अन्त मे 'नमः'—यह लगा कर नामों से अथवा तल्लिङ्ग मन्त्र से क्रम से उपचारो को निवेदिन करना चाहिए। पुष्पोदक के द्वारा पाद्य और अर्घ्य देवे। अन्य पात्र से गन्धाक्षत कुसुमो को निवेदित करे। आवाहन आसन-पाद्य अर्घ्य आचमनीय-स्नान—आचमन—वस्त्र—आचमन—उपवीत आचमन—गन्ध और पुष्प-धूप-दीप नैवेद्य-पानार्थं जल-उत्तर आचमनीय-मुखवास स्तोत्र-प्रणाम-दक्षिणा और विसर्जन करे। जो सम्पन्न न हो उसे मन से ही सम्पादन करना चाहिये। आचमन पृथक उपचार नही हैं। प्रणाम स्तोत्राङ्ग दक्षिणादि विसर्जनाङ्ग है। इसके अनन्तर इनके मन्त्र बतलाये जाते है—"गणानां त्वा गणपति हवामहे"—यह गणपति का मन्त्र है। "कुमारश्चित्पितरं वन्दमानम्" इति—यह स्कन्द का मन्त्र है।" "आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानः" इति—यह आदित्य का मन्त्र है। "पावकी नः सरस्वती" इति —यह सरस्वती का मन्त्र है। "जातवेदसे सुनवाम् सोमम्" इति—यह शक्ति का मन्त्र है। 'त्र्यम्बकं यजामहे" इति—यह रुद्र का मन्त्र है। 'गन्धद्वाराम्' इति-यह श्री का मन्त्र है। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इति—यह भगवान् विष्णु का मन्त्र है। इस रीति से इन षोडश (सोलह) उपचारों को पौरुष सूक्त से ही प्रत्येक ऋचा से सर्वत्र ही प्रयुक्त किये जाते हैं। अन्य सावित्री से—जातवेदस्या से-प्राजापत्या व्याहृति से अथवा प्रणव से करते है। यह यह देवयज्ञ प्रतिदिन गोदान के समान है, समस्त अभीष्ट मनोरथो का देने वाला, स्वर्ग्य अर्थात् स्वर्ग प्रदान करने और अपवर्ग्य अर्थात् मोक्ष देने वाला होता है। इस कारण से नित्यप्रति करना चाहिए। उस इसको वैश्वदेव को हुत शेष अथवा पृथक् अन्न से करे। इसके शेष से वैश्वदेव को नहीं करना चाहिए। इसके अनन्तर इसके शेष से गृह देवताओं को बलि द्वार में पितामह रुद्र के लिये देवे। इसके उपरान्त गृह में, पूर्व दिशा में, प्रति दिशा में नवग्रहों के सहित

इन्द्र के लिये-बलभद्र के लिये-यम और विष्णु के लिये-स्कन्द वरुण के लिये-सोम सूर्य के लिये-अश्विनीकुमारों के लिये-वसुगण के लिये और नक्षत्रों के लिये देवे। इसके अनन्तर प्रागादिमिति सूत्रों में सिद्धि के लिये वृद्धि के लिये, श्री के लिये, कीर्ति के लिये, वरुणादि यथाभि अश्विनी कुमारों के लिये, हयदूतों के द्यावा पृथिवी का, उपरान्त सुमतों का करे इसके उपरान्त निकलकर भूमि में अन्न का आसेचन करके श्वान चाण्डाल पतित और कौओं के लिये अन्न को भूमि में फेंक देवे। जो भी भूत (प्राणी) बलि की इच्छा करते हुए दिवा प्रचरण करते हैं और नित्य के प्रेप्सु हैं उन सबके लिये पुष्टि की कामना करते वाला मैं बलि का आहरण करता हूँ। पुष्टि का स्वामी मुझ में पुष्टि प्रदान करे। यदि रात्रि में हो तो 'नक्तं या बलिम्'—यह बोलना चाहिए। इसके अनन्तर हाथ पैर धोकर आचमन करे और घर में प्रवेश करना चाहिए। 'शान्ता पृथिवी शिव-मन्तरिक्ष द्यौर्नो देव्यभयं नो अस्तु शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिपान्तु विश्वतः' इति—इस का जप करके और अन्य स्वस्त्ययनों का जाप करना चाहिए। इसके उपरान्त मनुष्य यश पूर्वक भोजन करे।१०।

११ भोजनप्रकारः।

अथ भोजनविधिरार्द्रपादपाणिराचान्तः शुचौ देशे प्राङ्-मुखः प्रत्यङ्मुखो वोपविश्य भस्मना वारिणा वा हस्तमात्रे चतुरस्रमण्डले पात्रमवस्थाप्य प्रणवव्याहृतिपू-र्वया सावित्र्याऽभ्युक्ष्य स्वादोपितोमधोपितो इत्यभिमन्त्र्य सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामीति दिवा परिषिञ्चेदृतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति रात्रावथ दक्षिणतो भुवि भूपतये भुवनपतये भूतानां पतय इति नमोन्तैः प्रागसंस्थं प्रत्यक्संस्थं वा बलिं निधाय हस्तं प्रक्षाल्य समाहितोऽमृतोपस्तरणमसीत्यपः प्राश्य सव्येन पाणिना पात्रमालभ्य, तर्जनीमध्यमाङ्-गुष्ठैः प्राणाय मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानाय कनिष्ठि-कानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानाय कनिष्ठिकातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदा-

नाय सर्वाङ्गुलीभिः समानाय च मुखे जुहुयात्सर्वाभि-
रेव वा सर्वभ्यो जुहुयादेव वाग्यतो भुक्त्वाऽमृतापिधान-
मसीत्यापिधान प्राश्य शोधितमुखपादपाणिर्द्विराचामेदेव
भुञ्जानोऽग्निहोत्रफलमश्नुते बलपुष्टिमान्भवति सर्वमा-
युरोति । ११ ।

११—इसके अनन्तर भोजन विधिका वर्णन किया जाता है। भीगे हुए हाथो वाला आचान्त होकर शुचि देश में प्राङ्मुख अथवा प्रत्यङ्मुख होकर बैठकर भस्म से अथवा जल से एक हाथ भर के चतुरस्र मण्डल में पात्र में स्थित अन्न को प्रणव और व्याहृतियो के सहित सावित्री से अभ्युक्षण करके "स्वादीयितो मधोपितो" इससे अभिमन्त्रित करके "सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि" इससे दिन मे परिषिञ्चन करना चाहिए। "ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि" इससे रात्रि मे परिषिञ्चन करना चाहिए। इसके अनन्तर दक्षिण की ओर भूमि मे "भूपतये भुवन पतये भूतानां पतये" इससे अन्त मे 'नमः' यह लगाकर प्राक् संस्थ अथवा प्रत्यक् संस्थ बलि का विकिरण करके हाथ को धोकर समाहित होकर "अमृतोपस्तरणमसि" इस मन्त्र से जल का अशन करके सव्य हाथ से जल का स्पर्श करके तर्जनी-मध्यमा और अङ्गुष्ठ से 'प्राणाय स्वाहाः'—मध्यमा अनामिका और अङ्गुष्ठ से 'अपानाय स्वाहा'-कनिष्ठिका-अनामिका और अंगुष्ठ से 'व्यानाय स्वाहा'—कनिष्ठिका तर्जनी और अंगुष्ठ से 'उदानाय स्वाहा'—सब अंगुलियो से 'समानाय स्वाहा' मुख मे हवन करे अथवा सबसे सबके लिये हवन करना चाहिए। इस प्रकार से वाग्यत (मौन) होकर भोजन करके 'अमृतापिधान मसि' इससे अपिधान करके शोधित मुख और हाथो वाला होकर दो बार आचमन करना चाहिए इस प्रकार से भोजन करने वाला अग्नि होत्र का फल प्राप्त करता है—बल और पुष्टि वाला है पूरी आयु को पाता है ।११।

१२ शयनादिविधिः ।

अथास्तमिते सायंसंध्यामुक्तवदुपास्य होमवैश्वदेवगृहब-
ल्यतिथ्यर्चनानि कृत्वा यदि देवादितकर्माण्यकृतानि

यावत्प्रहरं यामिन्यास्तावत्क्रमेण सर्वाणि सौरं वर्जयित्वा कुर्यादाकृष्णीययैवाध्व दद्यादिति विशेषाऽष्टमी चतुर्दशी भानुवार श्राद्धदिन तत्पूर्वदिन च वर्जयित्वाऽवशिष्टरात्रिषु नियमेनामात्यैः परिवृतो लघु भोजनं कृत्वा पत्न्या सह ताम्बूलादिसेवनं कृत्वा सन्ध्यायां शून्यालये श्मशाने चैत्यवृक्षे चतुष्पथे शिवमातृकायक्षनागस्कन्दभैरवाद्युपदेवगृहेषु धान्यगोदेवविप्राग्निगुरूणामुपरि वाऽशुचौ देशेऽशुचिरार्द्रवस्त्रोऽर्द्रो न नग्नः शयनं कुर्यात्। रात्रौ त्वन्यदागतानि सवन जागृत्वा प्राक्शिरा दक्षिणतः [शिरा वा] शिरो भूयागत्वा देवता नत्वा स्मरणं च कृत्वा वैणवदण्डमुदकपात्रं च शयन समीपे निधाय प्रक्षालितपादः शयनं कुर्यात्। प्रदोष पश्चिमौ निद्रयाऽऽनिद्रयाथ प्रभाते इष्टदेवता मनसा नत्वा तदहः कृत्यं स्मृत्वा धर्मशास्त्रोक्तविधिना मूत्रपुरीषोत्सर्गादि कुर्यात्। १२।

१२—इसके अनन्तर सूर्य के अस्तगमन होने के समय में उन के समान सायं सन्ध्या की उपासना करके होम वैश्वदेव सहित बलि और अतिथियों का अभ्यर्चन करके निवृत्त होवे। यदि दिन में न किये हुए कर्म न किये हुए होवें तो यामिनी के प्रहर तक क्रम से सबको। सौर कर्म को छोड़कर करना चाहिए। आकृष्णीया में ही अर्घ्य देवे—यह विशेष है कि अष्टमी चतुर्दशी-रविवार-श्राद्ध का दिन तथा उससे पूर्व-दिन को वर्जित करके अवशिष्ट रात्रियों में नियम से अमात्यों से परिवृत होता हुआ हलका भोजन करके पत्नी के साथ ताम्बूल आदि का सेवन करके सन्ध्या में-शून्यालय में-श्मशान में—चैत्यवृक्ष में चौराहों में-शिव, मातृका, यक्ष नाग, स्कन्द, भैरव आदि उपदेवों के गृहों में-धान्य, गौ, विप्र, देव और अग्नि गुरु वालों के ऊपर अथवा अशुचि देश में अपवित्र और गीले वस्त्र और पैरों वाला तथा नग्न होकर कभी शयन नहीं

करना चाहिए। "रात्री व्यक्तप्रहायनि" इस सूक्त का जप करके पूर्व की ओर सिर वाला होकर दक्षिण की ओर सिर को वेष्टित करके, देवता को नमस्कार करे और देव का स्मरण करे। वैणव दण्ड और जल का पात्र को शयन के समीप में रखकर पैर धोकर शयन करना चाहिए। प्रदोष के चर यामो को निद्रा से अतिक्रमण करके प्रभात में इष्ट देवता को मन से नमस्कार करके उस दिन में किये जाने वाले कृत्यों का स्मरण करे और फिर धर्म शास्त्र मे वर्णित विधि से मूत्र मल आदि का त्याग करे।

१३ श्राद्धविधिः।

अथ श्राद्धानि। तान्यष्टौ। पूर्वेद्युः पार्वणमष्टम्यन्वष्टक्यं मासिमासि काम्यमाभ्युदयिकमेकोद्दिष्टं पार्वणं चेति। पर्वामावास्या यत्र भव पार्वणम्। तदाहिताग्निः पिण्डपितृयज्ञो कृत्वा करीत्यनाहिताग्निस्तु तदितरेण व्यतिषज्यते यथाऽऽदा पिण्डपितृयज्ञो यावदिध्माधानादथ पार्वण व्र ह्मणपच्छौच द्याच्छादनान्त पुन पितृयज्ञ आ मेक्षणानुप्रहरणात्पुनः पार्वणमा तृप्तिज्ञानादथोभयशेषं क्रमेण समापयेदित्येष व्यतिषङ्गस्तमिममुदाहरिष्यामः पितृयज्ञऽपराह्णेऽग्निमुपसमाधाय, तस्यैकमुल्मुकं प्राक्दक्षिणा प्रणयेद्य रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्वस्मादिति सोऽग्निरतिप्रणीतो भवति। तत्रोपसमाधायोभौ प्रादक्षिणां प्रेदंमैः परिस्तृणीया त्मवं कर्मा णोद्व प्राग्दक्षिण गमयेत्। अथौपासनाग्नेः प्रागुदक्प्रत्यग्वा प्राग्दक्षिणाग्नान्दर्भानास्तीर्यैकैकश. पात्राणि प्रयुनक्तिचरुस्थाली शूर्पं स्फ्यमुलूखलं स्रुव ध्रुवां कृष्णाजिनं सकृदाच्छिन्नामिध्म मेक्षणं कमण्डलुमिति दक्षिणतो व्रीहिशकटं भवति। शूर्पं स्थालीं प्रगृह्य दक्षिणतः शकटमारुह्य स्थालीं व्रीहिभिः पूर-

यित्वा, शूर्पं निमृज्य शूर्पपतितान्शकटे प्रास्य स्थाल्यो-
स्थान्कृष्णाजिन उलूखलं कृत्वा पत्न्यवहन्त्यादविवेचम-
वहतान्सकृत्प्रक्षाल्यौपासने श्रपयेत् । अर्वागग्निप्रणीता-
त्स्फ्येन प्रागुदक्षिणागता लेखामपहता असुरा रक्षांसि
वेदिषद इत्युल्लिख्य तामभ्युक्ष्य सकृदाच्छिन्नं न बर्हिषा-
ऽवस्तीर्य बिलीनानुत्पूतमाज्य दक्षिणतो निधाय स्रुवेण
स्थालीपाकमभिघार्योदगुद्वास्य प्रत्यगग्निप्रणीतादारभ्य
दक्षिणतोऽभ्यञ्जनाञ्जनकशिपूपबर्हणानि चैतदन्त
पिण्डपितृयज्ञं कृत्वा पार्वणमारभेत । १३ ।

१३—इसके अनन्तर श्राद्धों का वर्णन किया जाता है। श्राद्ध संख्या में आठ होते हैं। पूर्वेद्यु—पार्वण—अष्टमी अन्वष्टका—मास-मास में काम्य—अभ्युदयिक एकोद्दिष्ट पार्वण है। पर्व अमावस्या, उसमें होने वाला पार्वण होता है। वह आहिताग्नि पिण्ड पितृयज्ञ करके किया करता है। अनाहिताग्नि तो उसके अतिरिक्त के द्वारा अनियुक्त होता है। जिस तरह से आदि में पिण्ड पितृयज्ञ जब तक इसका आधान होता है। इसके अनन्तर पार्वण ब्राह्मण गच्छोपाद्य से आच्छादन के अन्ततः और पुनः पितृ यज्ञ शेषाणानुप्रहरण से पुनः पार्वण तृप्ति प्रश्न तक है इसके अनन्तर उत्तर शेष के क्रम से समास करना चाहिए। यह अनियुक्त है। उसे इसका उदाहरण देते हैं। पिता पुत्र से 'अपराह्ण' में अग्नि का उप समाधान करके उसके एक उल्मुक को प्राक् दक्षिण में प्रणयन करे—'ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्' इससे वह अग्नि प्रणीत होता है। और उसका उपसमाधान करके दोनों प्राक् दक्षिणाग्रों से परिस्तरण करना चाहिए। यहाँ पर सब कर्मों को प्रागुदक्षिणा को ही समझना चाहिए।

इसके अनन्तर औपासन अग्नि के प्राक् उदक् प्रत्यक्पूर्वा प्रागुदक्षिणाग्र को आस्तरण करके एक-एक पात्रों का प्रयोग करना है। चरुस्थाली-

शूर्प– स्फ्य्–उलूखल–मुसल–स्रुव–ध्रुवा–कृष्णाजिन सकृत् आच्छिन्न इध्म मेक्षण–कमण्डलु–इति । दक्षिणतः व्रीहि शंकर होता है । शूर्प में स्थाली को प्रगृहीत करके दक्षिण से शकट पर समारोहण करे । स्थाली को व्रीहियो से पूर्ण करके शूर्प में निमार्जित करे और शूप में पतितो को शकट मे रखकर स्थाली में स्थितो को कृष्णानिल मे उलूखल को करे ओर पत्नी अवहनन करे। अविवेच अवहतों को एक बार प्रक्षालन करके औपासन अग्नि मे श्रयण करना चाहिए "अर्वागिति प्रणीता स्स्फ्येन प्राग्दक्षिणायता लेखममहता असुरा रक्षांसिवेदिषद" इति— उल्लेखन करके उसका अभ्युक्षण करे और सकृदाच्छिन्न वर्हि से अवस्तरण करके विलीनानुमून आज्य को दक्षिण की ओर रखकर स्रुव से स्थाली पाक का अवधारण करके उत्तर को उद्वासित करे । प्रत्यगति प्रणीता से प्राप्त कर दक्षिण की ओर अभ्यञ्जनाञ्जन कशिपूप वर्हणों को चैतदन्त पिण्डपितृ यज्ञ को करके पार्वण का आरम्भ करे ।१३।

१४ ब्राह्मणसंख्यानियमादि ।

अथ हविरर्हान्ब्राह्मणान्दैवे द्वौ त्रीन्पित्र्या एकैकं वोभयत्रं शक्तावेकस्यानेकान्वा काले निमन्त्रितान्स्वागतेनाभि पूज्य प्राच्यां शुचौ गृहाजिरे गोमयाम्भसा चतुरस्रमुत्तरं वर्तुलं दक्षिणे मण्डलद्वयमुल्लिख्य प्रागग्रान्दर्भान्स्तृत्वा-नुत्तरेणास्य दक्षिणाग्रान्सतिलानितरत्रोभे अभ्यर्च्य ब्राह्मणा यथोद्देशं यथावाग्यः पित्र्ये ज्यायांसो दैवे कनीयांस उभयत्र दक्षिणेन विनियुज्याथ प्रत्यङ्मुख उत्तरे मण्डले दैवनियुक्तयोर्यवाम्भसा पाद्यं दत्त्वा शुद्धेन शंनोदेव्या पादान्प्रक्षाल्य दक्षिणे चेतरेषां प्राचीनावीती तिलाम्भसा पाद्यं दत्त्वा तथैव क्षालयेत् । अथ तानुदग्द्विराचान्तानुद्दिष्टरूपान्ध्यायन्परिश्रिते दक्षिणप्रवण उपलिप्ते गृहे दैवे प्राङ्मुखावुदगपवर्गं दक्षिणतः पित्र्य उदङ्मुखान्प्रागपवर्गानुपवेश्याऽऽचान्तो यज्ञोप-

वीती प्राणानायम्य कर्म सङ्कल्प्य दैवे सर्वमुपचारमुदङ्-मुखो यज्ञोपवीती प्रदक्षिणं कुर्यात्पित्र्ये प्राग्दक्षिणामुख प्राचीनावीती प्रसव्यमथ तिलहस्तः 'अपहता असुरा रक्षांसि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवीमनु । अन्यत्रेतो गच्छन्तु यत्रैषां गतं मनः' इति सर्वतस्तिलैरवकीर्याक्षीरतामपर उत्तरगाम इति जपित्वा दर्भानभ्युक्ष्यान्यभ्युक्ष्य गयाया जनार्दन वस्वादिरूपान्पितॄंश्च ध्यात्वाऽथ प्रथमं दैवे ब्राह्मणहस्तयोरपो दत्त्वा पृथगुदक्प्रागग्रान्दर्भान्पित्र्ये च देवानामिदमासनमित्येकैकस्थाने दक्षिणतः प्रदायापो दद्यात् । एवं सर्वपितॄणां ब्राह्मणहस्तयोरपो दद्यात् । अथाभ्युक्षितायां भुवि प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्य तेषु स्थण्डिलं पात्रमासाद्योत्तानीकृत्वा तास्मिन्प्रागग्रं दर्भयुग्ममान्तर्हितं अप आसिच्य शं नो देव्या अनुमन्त्र्य, 'यवोऽसि धान्यराजो वा वारुणो मधुसंयुतः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम्' इति यवानोप्य गन्धादीनि च क्षिप्त्वा दैवपात्रं संस्थाप्य निर्णियमभिमृश्य दर्भहस्तो विश्वान्देवानावाहयिष्यामीत्युक्त्वा तास्यामावाहयेत्युक्तो 'विश्वे देवास आगतेति' पादादिमूर्धान्तं सदा संस्थितं यिश्वानवकाय 'आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः । ये अत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते' इत्युपस्थाय स्वाहार्घ्या इत्यर्घ्यमसम् : सकृत्रिवेद्याथ 'स्थैर्क प्रथममन्या अर्घ्या दत्त्वाऽर्घ्योदकेनानामयेद यो अर्घ्यामिति दत्त्वा 'या दिव्या आपः पयसा सबभूवुर्या अन्तरिक्षया उत पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः शं स्योना भवन्तु' इत्यनुमन्त्र्यैव द्वित गन्धादीनि अप दत्त्वाऽनुमन्त्र्य गन्धपुष्पधूपदीपानुभागान्वर्दत्त्वाऽऽच्छादनं दद्यात् । अथार्चनविधेः सम्पूर्णतां वाचयित्वा पितृवचनायामनुज्ञातः प्राचीना-

वीतो प्राग्दक्षिणाभिमुखः पित्रर्चनं कुर्यात् । १४ ।

१४—इसके अनन्तर हवि के योग्य ब्राह्मणों को जो देव कार्य दो तीन और पित्र्य कर्म मे एक-एक अथवा दोनो जगह अथवा शक्ति होने पर एक के अनेकों समय पर निमन्त्रितो को स्वागत के द्वारा अभिपूजन करके पूर्व दिशा मे पवित्र गृह के आँगन में गोमय जल से चतुरस्र उत्तर वर्त्तुल दक्षिण मे दो मण्डलो का उल्लेखन करे और प्रागग्र दर्भों को यवों के सहित उत्तर की ओर इसके दक्षिणाग्रों को तिलों के सहित इतरत्र दोनो को अभ्यर्चन करके ब्रह्मा के द्वारा उद्देश के अनुसार पित्र्य कर्म में ज्यायान अर्थात् बड़े दैव कर्म में और कनीयान अर्थात् छोटे दोनों कर्मों मे दक्षिण भाग में विनियुक्त करके प्रत्यङ्मुख होते हुए उत्तर मण्डल में दैव नियुक्तो को यव सहित जल मे पाद्य समर्पित करके शुद्ध जल से "शन्नो देव्या" इस मन्त्र से पैरों को धोकर और दक्षिण मे इतरों का प्राचीनावीती होकर तिलो से युक्त जल से पाद्य देकर उसी प्रकार से प्रक्षालन करना चाहिए । इसके अनन्तर उत्तर की ओर दो बार आचमन किये हुए उदिष्ट रूप वाले उनको ध्यान करते हुए परिश्रित—दक्षिण प्रवण—उपलित गृह मे दैव कर्म मे पूर्व की ओर मुखों वालो को उदगम वर्ग और पित्र्य कर्म मे दक्षिण मे उदङ्मुख प्रागपवर्गो को बिठाकर आचान्त, यज्ञोपवीती प्राणायाम कर करके तथा कर्म मे सम्पूर्ण उपचार को उदङ्मुख और यज्ञोपवीती होकर प्रदक्षिण करना चाहिए । पित्र्य कर्म मे प्राग्दक्षिणा मुख होकर प्राचीनावीती हाथ में तिल लेकर प्रसव्य हो "अपहृता असुरा रक्षांसि पिशाचा ये क्षयन्ति पृथिवी मनु । अन्यत्रे तो गच्छन्तु यत्रै तेषा गतं मनः" इस मन्त्र से सब और तिलों का अवकिरण कर 'उदीरता मवर उत्पराम" इसको जप करे और दर्भ युक्त जल से अन्नों का अभ्युक्षण करना चाहिए । गया मे जनार्दन का और वसु आदि रूप पितृगण का ध्यान करे ।

इसके अनन्तर सर्व प्रथम दैव कर्म में ब्राह्मणों के हाथ में जल देकर दो ऋजु, प्रागग्र दर्भों को 'विश्वेषां देवानामिदमासनम्' यह कह

कर एक-एक स्थान में दक्षिण की ओर देकर जल देवे। इस रीति से सभी उपचारों में आदि और अन्त में जल देना चाहिए। इसके उपरान्त अभ्युक्षित भूमि में पूर्व की ओर जिनके अग्रभाग होवें ऐसे दर्भों का आस्तरण करके उन पर त्यक्ति पात्र को रखकर उत्तान कराकर उस पर प्राजग दो कर्णों के अन्तर्हित में जलका आसेचन कर "शन्नो देव्या" इस मन्त्र से अनुमन्त्रित करे। फिर "यवोऽसि धान्य राजो वा वारुणो मधुसंयुतः। निर्णोदः सर्व पापानां पवित्र मृषिभिः स्मृतम्" इस से यवों का वपन कर गन्धादिक का क्षेपण करे। देवताय सम्पन्न हो गया है—ऐसा अभिमर्शन करके यव हाथ में लेकर विश्वेदेवों का आवाहन करूंगा—यह कह कर उन दोनों से आवाहन करो—ऐसा कहने पर 'विश्वेदेवास आगत" इससे पाद से आदि लेकर मूर्धा के अन्त तक सव्य में जो मस्थितों यवों का अवकिरण कर "आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते" इससे उपस्थान कर "स्वाहार्घ्या" इससे दोनों को अर्घ्य एक बार निवेदित करके प्रत्येक को अन्य जल देकर "अर्घ्यो दत्तं सावधानं वो अर्घ्यम्" इससे देकर "या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्ष उत पार्थिवीर्याः। हिरण्य वर्णा यज्ञिया स्ता न आपः शिवाः शं स्योना भवन्तु" इससे अनुमन्त्रित करे इसी प्रकार से द्वितीय को भी देकर अनुमन्त्रण कर गन्ध पुष्प धूप दीपों को दो बार देव और आच्छादन देना चाहिए। इसके अनन्तर अर्चनविधि की सम्पूर्णता का वाचन कराकर विप्रवचन से अनुज्ञात होता हुआ प्राचीनावीती प्राग्दक्षिणाभिमुख होकर पितरों का करना चाहिए ॥१४॥

१५. गन्धाद्युपचारः पिण्डपितृयज्ञान्तं कर्म च ।

पिता पितामहः प्रपितामह इति त्रयस्तेषां प्रत्येकमेक द्वौ बहुवद्वा निर्देशं कुर्यात्। अपो दत्त्वा दर्भान्द्विगुणभुग्नान-युग्ममान्दक्षिणाग्रानेवंगोत्रनाम रूपाणापितृणामिदमासन-मित्यैवमासनेषु सव्यतोदद्यादुक्तमर्पादानम्। अथभुवस-म्युक्ष्यदक्षिणाग्रान्दर्भानास्तीर्य त्रीणि तैजसादममृन्मयानि

पात्राण्यभाव एतद्रव्याणि वा न्यग्दिलानि प्राग्दक्षिणापवर्ग निधायोत्तानानि कृत्वा, तेषु तेष्वयुग्मदर्भान्तर्हितेष्वप आसिच्य त्रीण्यपि सकृच्छ नो देवीरित्यनुमन्त्र्य 'तिलाऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृनिमाँल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वधा नमः' इति पृथक्त्रिषु तिलानोप्य गन्धादीन्क्षिप्त्वा पितृपात्र सपत्रमित्येव तानि यथालङ्गमभिमृश्य तिलहस्तो यथालिङ्गं पितृन्पितामहान्प्रपितामहानावाहयिष्यमीत्युक्त्वा, तैरावाहयेत्युक्ते मूर्धादिपादान्त दक्षिणाङ्गुसस्थमेकैकस्मिन्नुशन्तस्त्वा निधीमहीति तिलानवकीर्य 'आयन्तु न. पितरः सोम्यास' इत्युपस्थायाथोपवीती स्वधा अर्घ्या इति पूर्वमर्घ्यं निवेद्यान्या अपो दत्त्वा सशेषमर्घ्यमादाय दक्षिणेन पाणिना सव्योपगृहीतेन 'पितरिद ते अर्घ्य पितामहेदं ते अर्घ्यम्' इति पितृतीर्थेन दत्त्वा प्रत्येकम् 'या दिव्या आपः' इत्यनुमन्त्रयेत। उभयत्रैकैकब्राह्मणपक्षे दैवे सर्वमर्घ्यमेकस्मै दद्यात्त्रित्र्येकमेस्मै निवेद्य पुनरन्याब्दानपूर्वं त्रीण्यपि तस्मा एव दद्यात्। अथैकस्यैकस्यानेकपक्षे यावन्त एकैकस्य तेभ्यस्तेभ्य एकैक तत्पात्र सकृन्निवेद्यार्घ्यमेकैक तावद्वा विगृह्य दद्यात्तु प्रत्येक पात्राणि कुर्यात्। अथेतरार्घ्यशेषानाद्यपात्रार्घ्यशेषे च निनीय ताभिरद्भिः पुत्रः कामो मुखमनक्ति तत्पात्र शुचौ देशे 'पितृभ्यः स्थानमसि' इति निधाय पितामहार्घ्यपात्रेण निदध्यात्। न्युब्जं वा तत्कुर्यात्। अथ प्राचीनावीती गन्धाद्याच्छादनान्तं दत्त्वाऽर्चनविधेः सपूर्णता वाचयेदेवमेतत्पार्वणस्य कृत्वा पुनरनन्तर पिण्डपितृयज्ञं कुर्यात् ।।१५।।

१५—पिता-पितामह-प्रपितामह—ये तीन हैं उनमें प्रत्येक को एक दो अथवा बहुवचन निर्देश करना चाहिए। जल देकर द्विगुण भुग्न, अयुग्म, दक्षिणाग्र दर्भों को इस प्रकार से गोत्र-नाम वाले पितरों का 'इदमासनम्'। ऐसा कहकर मध्य भाग में आसनों पर देना चाहिए। अर्घ्यदान कह दिया गया है। उसके अनन्तर भूमि का अभ्युक्षण करके दक्षिण की ओर अग्रभाग वाले दर्भों को बिछाकर तीन तैजस, अश्ममय और मृन्मय पात्रों को अथवा अभाव होने पर एक ही द्रव्य से निर्मित पात्रों को स्थापित करके प्रसाद दक्षिणापवर्ग रखकर उत्तान करे। उन उनमें अयुग्म दर्भान्तर्हिता में जल का आसेचन करके तीनों को एक बार "शन्नोदेवी" इससे अनुमन्त्रित करके 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वधा नमः" इस मन्त्र से प्रत्येक तीनों में तिलों का वपन कर मन्त्रादिक का अभिमर्शन करे। पितृपात्र सम्पन्न हो गया—ऐसा कहकर उनको यथा लिङ्ग अभिमर्शन कर और हाथ में लेकर लिङ्ग के अनुसार पिता—पितामह और प्रपितामहों को आवाहन करूँगा ऐसा कहकर उन ब्राह्मणों के द्वारा आवाहन करो—ऐसा कहने पर स्पर्श से आदि लेकर पादों तक अनन्तर दक्षिणाङ्ग मस्तक को पद-पद से 'उशन्तस्त्वा निधी महि' इस ऋचा को पढ़कर "आयान्तु नः पितरः सोम्यासः" इस मन्त्र से उपस्थान करे। फिर उपवीती होकर 'स्वधा अर्घ्याः' ऐसा कहकर अर्घ्य को निवेदन करके अन्य जल देकर सतिल अर्घ्य को लेकर दक्षिण हाथ से सव्यापसृष्टीन से "पितरिद ते अर्घ्यं पितामह इदं ते अर्घ्यं प्रपितामहेदं ते अर्घ्यम्" इस प्रकार से कहकर पितृतीर्थ के द्वारा दे और प्रत्येक को "या दिव्या आपः" इससे अनुमन्त्रित करना चाहिए। दोनों जगह एक एक ब्राह्मण के पक्ष में दैव कर्म में सम्पूर्ण अर्घ्य एक के ही लिए देना चाहिए। पित्र्य कर्म में तीनों पात्रों को एक को ही निवेदन करके पुनः अन्य जलदान पूर्वक तीनों को उन्हीं के लिये देना चाहिए।

इसके अनन्तर एक के अनेक पक्ष में जितने एक एक के हैं उनके उनके लिए एक एक उस पात्र को एकबार निवेदन करके एक एक अर्घ्य या

तब तक निग्रहण करके देवे प्रत्येक पात्रों को न करे। इसके पश्चात इतर अर्घ्य शेषों को आद्यपात्रार्घ्य शेष में निनयन करके उन जलों से पुत्र की कामना वाला मुख में अनक्त करता है उस पात्र को शुचि देश में "पितृभ्यः स्थानमसि" इसको कहकर निधापित करे और पितामह के अर्घ्य पात्र से निदध्यासन करे। अथवा न्युब्ज उसको करना चाहिए। इसके उपरान्त प्राचीनावीती गन्धाच्छादनान्त देकर अर्चन विधि की सम्पूर्णता का वाचन करावे। इस प्रकार से यह पार्वण का करके फिर अनन्तर पिण्ड पितृ-यज्ञ करना चाहिए ॥१५॥

१६ अग्नौकरणादिकर्म।

अथ स्थालीपाकादन्नमुद्धृत्य घृतेनाक्त्वाऽग्नौ करिष्यामीति पृष्ट्वा क्रियतामित्युक्तेऽतिप्रणीतेऽग्नाविध्ममुपसमाधाय मेक्षणेनाऽऽदायादानसपदा जुहुयात्। 'सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः' इति स्वाहाकारेण वा पूर्वमग्नि यज्ञोपवीती मेक्षणमनुप्रहरेदित्येतावत्पिण्डपितृयज्ञस्याथ पुनः पार्वणस्य भोजनाश्रयेपु दैवे चतुरस्रं मण्डले पित्र्ये वृत्तानि गोमयेनोपलिप्य सयवान्सतिलांश्च दर्भान्न्यस्य तेषु दैव सौवर्ण पित्र्ये राजतान्यभावे तदवसृष्टानि तंजसानि वा पात्राणि निधायाऽऽज्येनोपस्तीर्यान्नानि परिविष्य पितृपात्रान्नेपु हुतशेषं दत्त्वा दर्भैः पात्राण्युपर्यधश्चाभिगृह्याथ दैवऽन्नं साविश्याऽभ्युक्ष्य तूष्णीं परिषिच्य 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्त्वा मुखेऽमृतं जुहोमि। ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मामेक्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिंल्लोके' इत्यभिमन्त्र्य, इदं विष्णुर्विचक्रम इति ब्राह्मणपाण्यङ्गुष्ठ 'विष्णो हव्यं रक्षस्वेति' निवेद्य यवोद-

कमादाय 'वैश्वदेवा देवता इदमन्नं हविरयं ब्राह्मण आहवनीयार्थे इयं भूमिर्गयाऽयं भोक्ता गदाधर इदमन्नं ब्रह्मणे दत्तं गोत्रणात्रस्यमक्षय्यवटच्छायेयम्' इत्युक्त्वा 'विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽतृप्तेः स्वाहा' इत्युत्सृज्यैव द्वितीयेऽपि दत्त्वा ये देवासो दिव्येकादशस्थेत्युपस्थायाथ पित्र्ये प्राचीनावीती राजते स्वधाशब्दविशेषणेन यथालिङ्गमुद्दिश्य 'ये चेह पितरः' इत्युपस्थायाथोपवीत्यन्नेषु मधुसर्पिषीऽभिसिच्य सव्याहृतिं गायत्रीं मधुमतीं च जपित्वा 'मधुवाता' च त्रिरुक्त्वा पितॄननुस्मृत्यापोशनं प्रदाय ब्राह्मणान्यथासुखं जुषध्वमिति भाजनान्यभिमृशेत् । भुञ्जानान्वैश्वदेवरक्षोघ्नपित्र्यादीनि च श्रावयेत् । अथ तृप्ताञ्ज्ञात्वा, 'मधुमतीरक्षन्नमीमदन्त ' श्रावयित्वा सपात्रं पृष्ट्वा सुसम्पन्नमित्युक्ते भुक्तशेषान्सार्ववर्णिकमन्नं पिण्डार्थं विकिरार्थं च पृथगुद्धृत्य शेषं निवेद्यानुमते गण्डूषं दत्त्वा तेष्वाचान्तेष्वनाचान्तेषु वा तदन्नशेषेण पिण्डान्निपृणीयात् । यद्यनाचान्तेषु निपृणीयादाचान्तेष्वन्नं प्रकिरेत् । अथाऽऽचान्तेषु निपृणामनुकिरेच्चेत् पूर्वं निपरणात्प्रकिरेत् ।१६।

१६—इसके अनन्तर स्थालीपाक से अन्न को उद्धृत करके घृत से अक्त करे । 'अग्नौ करिष्यामि' अर्थात् अग्नि में हवन करूँगा यह पूछकर जब 'करो' यह कहा जावे तब आग्नि प्रणीत अग्नि में इध्म का उप समाधान करके मेक्षण से लाकर अवदान सम्पात से हवन करना चाहिए। "सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति—इससे अथवा स्वाहाकार से यज्ञोपवीती पूर्व अग्नि को मेक्षण की अनुप्रहरण करे । यहाँ इतना पिण्ड पितृयज्ञ का है । इसके अनन्तर पुनः पार्वण के भोजनाशयों मे दैवकर्म में चतुरस्र मण्डल मे पित्र्य कर्म में वृत्तों को गोमय से उप-

लेपन करके पत्रों के और तिलों के सहित दर्भो को प्रासित करके उन पर सुवर्ण निर्मित को और पित्र्य कर्म मे चाँदी से निर्मितों को यदि इनका अभाव हो तो उस दशा मे तदवशिष्ट अथवा तैजस पात्रो को रखकर आज्य से उपस्तीर्ण करके और अन्नो का परिवेषण करके गित्रपात्रों मे हुत शेष देकर दर्भो से पात्रो को ऊपर नीचे अभिग्रहण करे। दैवकर्म में सावित्री से अभ्युक्षण कर तूष्णी भाव स परिपिञ्चन करके 'पृथिवी ते पात्रं द्यौर पिधान ब्राह्मणस्त्ना मुखेऽमृत जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्या रतां प्राणापानयो र्जुहोम्य क्षितिमसि मामे क्षेष्ठा अमत्रामुष्मिल्लोके" इससे अभिमन्त्रित करके इदं विष्णुर्विचक्रमे इससे ब्राह्मण के पाणि—अगुंष्ठ को' विष्णो हव्य रक्षस्व" इस से निवेशित करे और फिर यवोदक लेकर "विश्वेदेवा देवता इदमन्नं हविरय ब्राह्मण आहवनीयार्थे इय भूमिर्गयाऽयं भोक्ता गदाधर इदमन्न ब्रह्मणे वस्त सौवर्ण पात्रस्थ मक्षय्य वटच्छायेयम्" यह कहकर "विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृत रूपं परिविष्ट परिवेक्ष्य माण चाऽऽतृप्तेः स्वाहा' इससे उत्सर्जन करे। द्वितीय मे भी देकर 'ये देवा सो दिव्ये का दशस्व" इससे उपस्थान करके पित्र्यकर्म मे प्राचीनावीती होना है।

स्वधा शब्द के विशेषण से लिङ्ग के अनुसार उद्देश करके "ये चेह पितर" इससे उपस्थान करके उपवीती होकर अन्नों में मधु अथवा घृत का प्रासेचन करके प्रणव के सहित और व्याहृतियों के सहित सावित्री और मधुमती का जप करके "मधिवति" इस को तीन बार कहकर पितृगण का अनुस्मरण कर आपोशन देकर ब्राह्मणों को सुखपूर्वक सेवन कीजिए यह कहकर भोजन के लिये अति सृजन करना चाहिए। भोजन करते हुए ब्राह्मणो को और वैश्वदेव रक्षोघ्न पित्रादि को श्रावण करावे। इसके अनन्तर तृप्त हुओ को जानकर "मधुमती रक्षघ्नी मदन्तेति" श्रवण कराकर 'सम्पन्नम्' अर्थात् सब ठीक है—यह पूछ कर 'सुसम्पन्नम्'—ऐसा उत्तर कहने पर भुक्त से जो शेष रहे उस अन्न से सार्व-वर्णिक अन्न को पिण्ड के लिये और विकिरण के वास्ते पृथक् उद्धृत करके शेष को निवेदन करके अनुमत होने पर गण्डूष होकर अर्थात् कुल्ली

कराकर उनके आचान्त होने पर अथवा अनाचान्त रहने पर उस शेष जल से पिण्डों का निपरण करना चाहिए। यदि अनाचान्तों में निपरण करे तो आचान्तों को अन्न का प्रकिरण करना चाहिए। इसके अनन्तर आचान्तों के निपरण के पीछे प्रकिरण करे निपरण से पहिले प्रकिरण नहीं करना चाहिए ॥१६॥

१७ पिण्डदानादिश्राद्धशेषसमापनम् ।

अथ पिण्डार्थमुद्धृतमन्नं स्थालीपाकेन सार्धमथ प्राचीनावीती सकृदाच्छिन्नास्तृणाति निधाय। पितृ पिण्डदशान् प्राग्दक्षिणापवर्गं शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति पितृतीर्थेन तिलाम्बु निनाय तेषु पिण्डान्पित्रादिभ्य एतत्ते पितरो ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च इति पराचीनेन पाणिना यथालिङ्गं दत्त्वा तान् 'अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्' इति सकृदनुमन्त्र्य सव्यावृदावृत्यादङ्मुखो यथाशक्त्यायतप्राणः प्रत्यावृत्य 'अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति' पुनरभिमन्त्र्य न तच्छेषमाघ्राय, पूर्ववत्पुनस्तिलाम्बु पिण्डेषु निनीय 'अभ्यङ्क्ष्वाञ्जनाक्ष्व कुर्वीत' यथालिङ्गं पिण्डेष्वञ्जनं दत्त्वा वासो दद्यात्सूत्रमूर्णास्तुका वा वयस्युत्तरे स्वहल्लोम 'एतद्वः पितरो वासो मा नो नातोऽन्यत्पितरो युङ्ग्ध्वम्' इति। अथैनान्गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्राञ्जलिः —'नमो वः पितर इषे नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय। स्वधा वः पितरो नमो वः पितरो नमो एता गृहान्नः पितरो दत्त सदो वः पितरो देष्म अस्माकं जीवा वो जीवन्त इह सन्तः स्याम' इति 'मनोन्वाह्वामहे' इति तिसृभिरुपस्थाय पिण्डस्थानानुप्रवाहणम्। परेतन

पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः । दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत ' इति । अग्ने दमद्ध्येत्यौपासनाग्नि प्रत्येन्य 'यदन्तरिक्ष पृथिवीमुत द्या यन्मातरं पितर वा जिहिंसिम । अग्निर्मा तस्मादेनसः प्रमुञ्चतु करोतु ममानेहसम् ' इति जपित्वा, अथ पिण्डान्नमस्कृत्य मध्यम ' वीरं मे दत्त पितरः' इत्यादायाऽऽधत्त पितरो गर्भं कुमार पुष्कर स्रजम् । यथायमरपा असत्' इतिपुत्रकामः पत्नीं प्राशयेन्न तदशुभश्राद्धेषु कुर्यादप्स्वितरावतिप्रणीतेऽग्नौ वा जुहुयात् । गवे वा ब्राह्मणाय वा दद्यात् । अथ यज्ञपात्राणि द्विवदुत्सृजेत् । उद्रिक्ते तृण द्वितीय कुर्यात् । एव पिण्डपितृयज्ञ समाप्याथ श्राद्धशेष समापयेत् ।१७।

१७ – इसके अनन्तर पिण्ड के लिए उद्धृत अन्न को स्थाली पाक से समिश्रित करके प्राचीनावीती एक बार आच्छिन्नास्तृता शाखायें तीन दर्भायें प्रागदक्षिणा पवर्ग—'शुन्धन्ता पितरः शुन्धन्तां पितामहाः, शुन्धन्तां प्रपितामहाः" यह पितृ तीर्थ से तिलाम्बु अर्थात् तिलमिश्रित जल का निनयन करके उन पर पिण्डों को पिता आदि के लिये—'एतत्ते विष्णो ये चत्वामात्रानु तेभ्यश्च' इससे प्राचीन पाणि के द्वारा लिङ्ग के अनुसार देकर उनको 'अत्र पितरो मादयध्व यथा भागमावृषायध्वम्" इसमे एक बार अनुमन्त्रित करे सव्य वृत्त वृति से उदङ्मुख होकर शक्ति के अनुसार आयत प्राण होवे और प्रत्यावृत्त होकर 'अमी मदन्त पितरो यथा भागमावृषा यीषत" इसमे पुन. अभिमन्त्रण करके और उसके शेष का आघुरण करके पूर्व की ही भाँति पुनः तिलाम्बु पिण्ड को उनपर निनयन करे । "अमावभ्यङ्क्ष्वा मा वङ्क्ष्वेति" यथालिङ्ग पिण्डों पर अभ्यञ्जनाञ्जन देकर वस्त्र देना चाहिए अथवा दशा ऊर्णास्तुका को अपर वय में स्वहृल्लोम 'एतद्व पितरो वासो मानो तोऽन्यात्पितरो युङ्ध्वम्' इस मन्त्र से देना चाहिए ।

इसके अनन्तर इनका गन्धादि के द्वारा अर्चन करे और प्राञ्जलि होकर—'नमो वः पितर इषे नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो रसाय। स्वधा वः पितरो नमो वः पितरो नम एता युष्माकं पितर इमा अस्माकं जीवा वो जीवन्त इह सन्तः स्याम" इति "मनो न्वा हुवामहे" इति— इन तीनों से उपस्थान करके पिण्डों में स्थित पितरों को प्रवाहित कर देना चाहिए। "परेतन पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्व्येभिः। दत्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत" इति हे अग्नि! उसका आज यह कह कर औपासन अग्नि के समीप आकर "यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम। अग्निर्मा तस्मादेनसः प्रमुञ्चतु करोतु मामनेहसम्" इस मन्त्र का जप करके इसके पश्चात् पिण्डों को नमस्कार करके मध्यम पिण्ड को "वीरं मे दत्त पितरः" इससे लेकर "आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथायमरपा असत्" इससे पुत्र की कामना वाली पुत्र पत्नी को प्राशन करा देवे। यह दशम श्राद्धों में नहीं करना चाहिए। दूसरों को जल में अथवा अग्नि में हवन कर देवें। गौ अथवा ब्राह्मण के लिए दे देना चाहिए। उसके उपरान्त सब पात्रों को छिद्र उन्मुख कर देवें। चौदह में तृण को छिन्न करें? इस प्रकार से पितृ पिण्ड यज्ञ को समाप्त करके इसके अनन्तर श्राद्ध शेष का समापन करना चाहिए ॥१७॥

१८ प्रकिरविकिरादि।

अथ ब्राह्मणानाचमय्य यस्माश्चर्वणिकं पृथगङ्गुलमस्थकेशास्नमस्मसा परिप्लाव्योच्छिष्टान्ते दर्भान्दक्षिणाग्रान्प्रकीर्य तत् 'ये अग्निदग्धा ये अग्निदग्धा.' इति तदन्नं प्रकीर्य, 'येऽग्निदग्धाः कुले जाता येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्' इति तिलाम्बु च निनीयाऽऽचामेत्। अथ ब्राह्मणहस्तेष्वपो दर्भांश्च दद्यात्। सर्वांस्तिलांश्चावधाय पुनरपो दद्यादपो हस्तशुद्धिः। अथ ब्राह्मणानभिवाद्योपवीयादरमद्यात्र

वर्धतामिति गोत्रवृद्धिं वाचयित्वा पात्राणि चालयित्वा देवान्पितॄंश्च यथालिङ्गमामन्त्र्य स्वस्तीति ब्रूतेत्यपो दद्यात्। अथ दैवे दत्त श्राद्धं दैवानामक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति पृथग् यवाम्बु दत्त्वा, पित्र्ये प्राचीनावीती दत्तं श्राद्धं च पितॄणामक्षय्यमस्त्विति ब्रूतेति यथा-लिङ्गं तिलाम्बु दत्त्वा न्युब्जं पात्रं विवृत्योपवीती ब्राह्मणेभ्यो मुखवासताम्बूलादि दक्षिणां च दत्त्वा तान्या-दावभ्यङ्गादिभिः प्रियोक्तिभिश्च परितोष्य कर्मसंपूर्णतां वाचयित्वा ॐ स्वधोच्यतामिति चास्तु स्वधेति चोक्त्वा पितृपूर्वं विसर्जयेत्। तथा ॐ स्वधेति वाऽस्तु स्वधेति वा ब्रुवन्त उत्तिष्ठेयुर्विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति देवब्राह्मणौ विसृजेत्। प्रीयन्तां विश्वदेवा इति ताभ्या-मुक्ते पिण्डनिपरणदेशं संमृज्याक्षतान्प्रास्य तत्र शान्ति-रस्त्वित्युदकधारामासिच्य दक्षिणामुखः प्राञ्जलि-स्तिष्ठन् 'दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु' इत्यनेन वरान्याचेतेति पार्वणकल्प एष चास्य पिण्डपितृयज्ञेन व्यतिषङ्ग एवमेवान्वष्टक्यं पूर्वेद्युर्मासिमासि श्राद्धानि नयेदस्ति हि तेषु पिण्डपितृयज्ञकल्प इति तत्र पूर्वेद्युरेक-कतन्त्रस्था होममन्त्रा एभ्योऽन्येषु चतुर्ष्वाहिताग्नि-पार्वणे च पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावात्। अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव इति ब्राह्मणानां पाणिहोमो भुक्तशेषेण वोच्छिष्टान्ते निपरण यथा ब्राह्मणानाच्छादनान्तेर-भ्यर्च्य भोजनार्थादन्नादुद्धृत्य सर्पिषाऽङ्क्त्वा होमप्रश्नं विनैव ब्राह्मणपाणिषु दक्षिणाग्रान्दर्भानन्तर्धाय मेक्षणेन पाणिना वा ताभ्यामेव मन्त्राभ्यां द्वे द्वे आहुती जुहोति सर्वेषु विगृह्य वैकैकां नात्र मेक्षणानुप्रहरणम्।

यदि पाणिना जुहुयात्सव्येन वावदानं संपादयेऽथ भुक्तशेषेणोच्छिष्टान्ते पिण्डान्निपृणीयान्नेहाग्ने तमद्यं ति समानमन्यदेव प्रत्यब्दिकादीनि मासिश्राद्धं यदि पर्वणि स्यात्पार्वणं तदा तेन विकल्पते काम्यं चेत्क्रियते तदा पार्वणं मासिश्राद्धं च तेनैव सिध्यतः । ८।

१८—इसके अनन्तर ब्राह्मणों को आचमन कराकर जो सार्ववर्णिक पृथक् उद्धृत है उसको प्रकिरण करता हुआ जल से परिप्लावन करके उच्छिष्ट के अन्त में दक्षिण की ओर अग्रभाग वाले दर्भों को प्रकीर्ण करके उसपर "ये अग्निदग्धा ये अनग्नि दग्धा" उस अन्न का प्रकिरण करके 'येऽग्नि दग्धा' "कुले जाता यज्य दग्धा कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृ ।।यान्तु परागतिम्" इससे तिल मिश्रित जल को निनयन कर आचमन करे । उसके अनन्तर ब्राह्मणों के हाथों में जल और दर्भों को देना चाहिए। यवों और तिलों को अवधारण कर पुनः जल देवे—यह हस्त शुद्धि है । इसके उपरान्त ब्राह्मणों का अभिवादन करके उपनीय हमारा गोत्र बढ़े—इससे गोत्र वृद्धि का वाचन कराकर पात्रों को चालित करा कर देवों को और पितरों को निम्नानुसार आमन्त्रित करके 'स्वस्ति' यह बोलो-यह कह कर जल देवे। इसके अनन्तर दैव कर्म में दिया हुआ श्राद्ध देवों को अक्षय्य होवे—यह बोलो यह कह कर पृथक् जल देकर पित्र्य कर्म में प्राचीनावीती और दिया हुआ श्राद्ध पितरों को अक्षय्य होवे-यह बोलो-यह कहकर यथा निम्न तिलाम्बु देकर पात्र को न्युब्ज, निवृत्योपवीती होकर ब्राह्मणों के लिये मुख वास ताम्बूल आदि और दक्षिणा देकर उनको आदि से अभ्यङ्ग आदि से और प्रिय उक्तियों से परितुष्ट करके कर्म की सम्पूर्णता का वाचन कराकर "ॐ स्वधोच्यताम्" इति और "अस्तु स्वधा" यह कहकर पितृ पूर्वक विसर्जित करना चाहिए।

"तथा ॐ स्वधा इति वा अस्तु स्वधा—इति वा" बोलते हुए उठें । "विश्वेदेवा प्रीयन्ताम्" इति यह कहकर देव और ब्राह्मण दोनों का विसर्जन करना चाहिए । "प्रीयन्ता विश्वदेवा " यह उन दोनों के द्वारा

कहने पर पिण्ड निपरण देश को भली भाँति संमार्जित करके अक्षतों को डालकर वहां पर शान्ति होवे—यह कहकर उदक की धारा का आसेचन करे और दक्षिण दिशा की ओर मुख वाला होकर हाथ जोड़ कर स्थित होता हुआ "दातारोनोऽस्मि वर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धाच तोमा व्यगमद्बहुधगव नोऽस्तु" इसके द्वारा वरों की याचना करे—यह पार्वण कल्प है और यह इसका पिण्ड पितृ यज्ञ से व्यतिषङ्ग है। इसी प्रकार से अन्वष्टक्य पूर्वेद्यु मास-मास में श्राद्धों को करे । उनमें पिण्ड पितृ यज्ञ कल्प है—इति । वहाँ पर पूर्वेद्यु में एक तन्त्रस्थ होम के मन्त्र है । इनसे अन्य चारों में और आहिताग्नि पार्वण मे पिण्ड पितृ यज्ञ कल्प का अभाव होता है ।

अभ्यनुज्ञा में हाथों मे ही ब्राह्मणों का पाणि होम अथवा मुक्त शेष से उच्छिष्ट के अन्त में निपरण यथा ब्राह्मणों को आच्छादनान्तों से अभ्यर्चित करके भोजनार्थ अन्न से लेकर घृत से अक्त करे और होम प्रश्न के बिना ही ब्राह्मणों के हाथ में दक्षिणा प्रदर्भों को रखकर मेक्षण से अथवा पाणि से उन्हीं मन्त्रों से दो-दो आहुतियों के द्वारा हवन करता है । अथवा सब में विग्रहण कर एक-एक का यहाँ पर प्रेक्षणानु प्रहरण नहीं होता है । यदि पाणि से ही हवन करे और सव्य से अवदान का सम्पादन करना चाहिए । इसके अनन्तर मुक्त शेष से उच्छिष्टान्त में पिण्डो का निपरण करना चाहिए । यहाँ पर "अग्ने तमद्य" इति इसके समान नही है । इसी प्रकार से अन्यत् प्रत्यब्दिकादि मासि श्राद्ध है । यदि पर्व में होवे तो पार्वण है, उस समय में उससे विकल्प होता है । यदि काम्य किया जाता है तब पार्वण और मासि श्राद्ध भी उसी से ही सिद्ध होते हैं ।१८॥

१९ आभ्युदयिकश्राद्धे विशेषः ।

अथाभ्युदयिके नान्दीमुखाः पिरत एकैकस्य युग्मा ब्राह्मणा अमूलदर्भा प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थः

प्राङ्मुखो यज्ञोपवीति कुर्याद्दृन्दर्भानासनं दक्षिणतो दद्यादर्घ्यपात्राणि प्राक्संस्थानि स्युः । 'यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनमांल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहा' इति यवावपन नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ता-मिति यथालिङ्गं सकृदर्घ्यं निवेद्य नान्दीमुखाः पितर इदं वो अर्घ्यमिति प्रत्येकं विगृह्य दत्त्वाऽनुमन्त्रण द्विर्द्विर्गन्धादि दद्यात् । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति पाणिपुक्तवद्धोमस्तृप्ते पूर्वास्मै गायता नर इति पञ्च मधुमतीरक्षन्नमीमदन्तेति श्रावयेदनाचान्तेषु भुक्ताशयानुगलिप्य, प्रागग्रा-न्दर्भानास्तीर्य पृपयाज्यमिश्रेण भुक्तशेषेण रुस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्पूर्वेण मन्त्रेण नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेति वा । यथालिङ्गमन्यद्दुदर्के नानुमन्त्रणादीच्छन्ति । नेह पिण्ड इत्यन्ये । गर्गिणि दम्पानर्यात, एवमेतत्पृपदा-ज्यमाह । संपन्नमिति विसृजेत्तदेतत्पुंसवनादिष्वपत्य-संस्कारेषु, अग्न्याधेयादिषु श्रौतेन च पूर्तेषु च क्रियते महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु तदिदमेके मातृणां पृथक् कुर्वन्त्यथ पितृणा ततो तामांमहानामिति त्रितय-मिच्छन्ति तस्माज्जीवत्पिता गुतसंस्कारेषु मातृमाताम-ह्योः कुर्यात्तयां जीवन्त्यां(न्या) पितृमातामह्योः कुर्यात्पित्रोर्जीवतोर्मातामहस्यैव कुर्यात्त्रिषु जीवत्सु न कुर्यात्त्रिषु जीवत्सु न कुर्यात् ।।१६।।

इसके अनन्तर आभ्युदयिक में नान्दीमुख पितर एक-एक के युग्म ब्राह्मण, अमूल दर्भ, प्रदक्षिण उपचार, यवो से तिलो का प्रयोजन, प्राङ्-मुख, यज्ञोपवीती–इनि–यह करना चाहिए । ऋजु दर्भों को आसन दक्षिण से देवे । अर्घ्य पात्रों की स्थिति प्राक्संस्थ होनी चाहिए । "यवोऽसि सोम देवत्यो गोसवे देव निर्मितः । प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्

पितृ निर्माल्लोकान्प्रीणयादि नः स्वाहा" इससे भर्त्रों का आवपन नान्दी-मुख पितर प्रसन्न होवें—यह कह कर यथालिङ्ग एक बार अर्घ्य का निवेदन करके "नान्दीमुखाः पितर इदं वो अर्घ्यम्' इसको कहकर प्रत्येक का विग्रहण कर अनुमंत्रण कर दे और दो-दो बार गन्धादि देना चाहिए। 'अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा—सोमाय पितृमते स्वाहा—इससे हाथों से तक्रवत् होम करे। "तृप्त यूपा स्मै गायता नरः" ये पाँच "मधुमक्षी रक्षसमी मदन्त" इसका श्रवण करावे। अनाप्तान्त होने पर मुक्ताशयों का का उपलेपन कर प्राग दर्भों को आस्तरण कर पृषदाज्य मिश्र के द्वारा भुक्त शेष में एक-एक को दो-दो पिण्ड देवे। अथवा पूर्व मन्त्र से 'नान्दी-मुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहा' इससे देना चाहिए।

अन्य विद्वान् यथालिङ्ग अन्य उदक से अनुमन्त्रणादि की इच्छा करते है और यहाँ पिण्ड नहीं चाहते हैं। सर्पि (घृत) में दधि का आनयम करना है। इस प्रकार से जब पृषदाज्य कहा है। सम्माद्य—इति—इससे विसर्जन करे। वह यह पुंसवन आदि अपत्य संस्कारों में और अग्न्याधेय आदि श्रौतों मे और मूर्तों में किया जाता है। महानों मे पूर्वेद्यु अल्पों में वह दिन वह यह कतिपय लोग मातृगणों का पृथक् करते हैं। इसके उपरान्त पितृगणों का और फिर मातामहों का त्रितय चाहते हैं। इससे जीवत्पिता सुत के संस्कारों में मातृमातामहादि दोनों का करे। माता के जीवित रहने पर पिता मातामह दोनों का करना चाहिए। माता-पिता दोनों के जीवित रहने पर केवल मातामह का ही करे। तीनों जीवित रहने पर नहीं करना चाहिए ॥१६॥

शांखायन गृह्यसूत्र

प्रथम अध्याय

॥ अथ आधमन्याधानम् ॥

अथातः पाकयज्ञान् व्याख्यास्यामः ।१। अभिगमावर्त्स्यमानो यत्रान्त्या समिधमभ्यादध्यात् तमग्निमिन्धीत ।२। वैवाह्यं वा ।३। दायाद्यकाल एके ।४। प्रेते वा गृहपतौ स्वयं ज्यायान् ।५। वैशाख्याममावास्यायामन्यस्यां वा ।६। कामतो नक्षत्र एके ।७। पुरु पशुविट्कुलाम्बरीषबहुयाजिनामन्यतमस्मादग्निमिन्धीत ।८। सायंप्रातरेके ।९। सायमाहुतिसंस्कारोऽध्वर्यु प्रत्यय इत्याचार्याः ।१०। प्रातः पूर्णाहुतिं जुहुयाद्वैष्णव्यर्चा तूष्णीं वा ।११। तस्य प्रादुष्करणहवनकालावग्निहोत्रेण व्याख्यातौ ।१२। यज्ञोपवीतीत्यादि च सम्भवत्सर्वं कल्पैकत्वात् ।१३। तदप्याहुः ।१४

पाकसंस्था हविःसंस्थाः सोमसंस्थास्तथापराः ।
एकविंशतिरित्येता यज्ञसंस्थाः प्रकीर्तिताः ।१५।

इसके अनन्तर पाक यज्ञों की व्याख्या करेंगे ॥१॥ अभिगमावर्तन किये जाने वाले पुरुष को चाहिए कि जिस अग्नि में अन्तिम जो समिधा हो उस का ग्रहण करें और उस अग्नि को धारण करना चाहिए। इससे अन्तिम अग्निकार्य लक्षित होता है ॥२॥ अथवा विवाह के समय में होने वाली अग्नि को धारण करें ॥३॥ कुछ लोगों का मत है कि दायाद्य काल में अग्नि को धारण करना चाहिए ॥४॥ गृहपति के प्रेत हो जाने पर जो भी सब से बड़ा हो वह स्वयं करे तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त

काल में अग्नि का यदि आधान नहीं किया गया हो और गृह का स्वामी पिता के द्वारा आधान नहीं किये जाने पर जो भी ज्येष्ठ हो वही अग्नि का आधान करे। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों में ज्येष्ठ ब्राह्मण होता है। वह स्वयं पाक यज्ञों को करता है और इतर वर्णों में पुरोहित के द्वारा पाक यज्ञ करने चाहिए। इसी तात्पर्य के प्रकाशन के लिये यहाँ पर 'स्वयं' शब्द को ग्रहण किया गया है। अर्थात् आभ्युदयिक पूर्वक उक्त योनि से अग्नि को लाकर चतुस्र में संस्थापित करके सौ ब्राह्मणों के भोजन के साथ कर्म को समाप्त करना चाहिए ॥५॥ वैसाख मास की अमावस्या में अथवा अन्य किसी में आधान करे ॥६॥ कुछ मनीषियों का मत है कि स्वेच्छया नक्षत्र मे करे ॥७॥ वित्त वाले जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य हों उनके यहाँ से अग्नि का आहरण करना चाहिए ॥८॥ कुछ विद्वानों का कथन है कि सायङ्काल में और प्रातः काल के होने के समय मे करे ॥६॥ कुछ आचार्य कहते है कि सायङ्काल में समाहरण की हुई अग्नि का आहुतियो के द्वारा अध्वर्यु को करना चाहिए किन्तु इस प्रकार का आधान दो दिन मे होता है और अन्य आधान तुरन्त ही हो जाया करता है ॥१०॥ प्रात.काल मे पूर्णाहुति का हवन करना चाहिए। अथवा चुप चाप तूष्णी भाव से वैष्णवी अर्चा करे ॥११॥ उसके प्रादुष्करण और हनन करने के काल अग्निहोत्र के द्वारा व्याख्यात कर दिये गये हैं ॥१२॥ और यज्ञोपवीती—इत्यादि सब सम्भव एवं कल्प होने से ही होता है ॥१३॥ यह भी कहा गया है ॥१४॥ पाक सस्था—हविःसस्था सोम संस्था तथा दूसरी ये सब इक्कीस है जोकि यज्ञ संस्था कीर्त्ति। की गयी है ॥१५॥

॥ अथ ब्राह्मणभोजनम् ॥

कर्मापवर्गे ब्राह्मणभोजनम् ।१। वाग्रूपवयः श्रुतशीलवृत्तानि गुणाः ।२। श्रुत सर्वानत्येति ।३। न श्रुतमतीयात् ।४। अधिदैवमथाध्यात्ममधियज्ञमिति त्रयम् ।
मन्त्रेषु ब्राह्मणे चैव श्रुतमित्यभिधीयते ।५।

क्रियावन्तमधीयानं श्रुतवृद्धं तपस्विनम् ।
भोजयेत् त सकृद्यस्तु न त भूयः क्षुदश्नुते ।६।
या तितर्पयिषेत् काञ्चिद्देवतां सर्वकर्मसु ।
तस्या उद्दिश्य मनसा दद्यादेवविधाय वै ।७।
नैवविधे हविर्न्यस्तं न गच्छेद्देवता क्वचित् ।
निधिरेष मनुष्याणां देवानां पात्रमुच्यते ।८।

कर्म के अपवर्ग में अर्थात् अवसान में ब्राह्मणों का भोजन होता है। अर्थात् जब कर्म समाप्त हो तो विप्रों को अन्त में भोजन कराना चाहिए ॥१॥ वाणी—रूप—वय—श्रुत—शील और वृत्त (चरित्र) ये गुण होते है। ॥२॥ इन उपर्युक्त गुणों में श्रुत गुण ही आदर करने के योग्य होता है जो कोई श्रुतवान् हो उसी का आदर करना चाहिए क्योंकि श्रुत सब अन्य गुणों का अतिक्रमण करके रहा करता है। आपस्तम्भ ने भी यही बतलाया है कि श्रुतवान् का अपक्रमण नहीं करना चाहिए। श्रुत का कभी अतिक्रमण न करे ॥३-४॥ अधिदैव—अध्यात्म और अधियज्ञ—ये तीन हैं। मन्त्रों में और ब्राह्मण में श्रुत—इस नाम से कहा जाता है ॥५॥ क्रियावान्—अधीयान—श्रुत में वृद्ध—तपस्वी ब्राह्मण को ही भोजन कराना चाहिए। जिसको एक बार भोजन करा दिया है उसको पुनः नहीं कराना चाहिए ॥६॥ जिस किसी देवता को समस्त कर्मों में तृप्त करने की इच्छा रक्खे उसी देवता का मन से उद्देश्य करके इस उपर्युक्त गुण से सम्पन्न ब्राह्मण को देना चाहिए ॥७॥ यदि इस प्रकार के ब्राह्मण को हवि का निन्यास नहीं किया गया हो तो कहीं पर भी वह उस देवता को प्राप्त नहीं होता है। मनुष्यों की यह निधि है जो देवों का पात्र कहा जाया करता है ॥८॥

॥ अथ दर्शपूर्णमासौ ॥

अथ दर्शपूर्णमासा उपोष्य ।१। प्रातर्यवतन्महावृक्षाऽग्राणि सूर्यं आतपति स होमकालः स्वस्त्ययननमः सर्वासामावृतामन्यत्र निर्देशात् ।२। सुमनाः शुचिः शुचौ वस्व्यदर्शी

पूर्णविघनं चरु श्रपयित्वा दर्शपूर्णमासदेवताभ्यो यथाविभागं स्थालीपाकस्य जुहोति ।३। स्थालीपाकेषु च ग्रहणासादनप्रोक्षणानि मन्त्रदेवताभ्यः ।४। अवदानधर्माश्च ।५। पूर्वं तु दर्शपूर्णमासाभ्यामन्वारम्भणीयदेवताभ्यो जुहुयात् ।६। आ पौर्णमासाद्दर्शस्यानतीतः कालः, आ दर्शात्पौर्णमासस्य ।७। प्रातराहुतिं चैके सायमाहुतिकालेऽत्ययान्मन्यन्ते ।८। नियतस्त्वेव कालोऽग्निहोत्रे प्रायश्चित्तदर्शनाद् भिन्नकालस्य ।९। नित्याहुत्योर्व्रीहियवतण्डुलानामन्यतमद्धविः कुर्वीत ।१०। अभावेऽन्यदप्रतिषिद्धम् ।११। तण्डुलांश्चेत् प्रक्षाल्यैके ।१२। इतरेषामसस्कारः ।१३। सायमग्नये प्रातस्सूर्याय ।१४। प्रजापतये चानूभयोस्तूष्णीम् ।१५। प्राक् प्रागाहुतेः समिधमेके ।१६। यथोक्तं पर्युक्षणम् ।१७।

इसके अनन्तर दर्श और पूर्णमास को उपोषित करना चाहिए। प्रातः काल के समय में बड़े वृक्षों के अग्रभागों पर जहाँ कि सूर्य देव की किरणें आकर पड़ा करती है वही होम का समय अधिक स्वस्त्ययन करने वाला होता है। सब का आवृत है ऐसा अन्यत्र निर्देश किया जाता है ।।१-२।। सुन्दर मन वाला और शुचि होकर पवित्र वस्त्र्य देश में विघन चरु को श्रवण करके दर्श पूर्ण मास देवताओं के लिये स्थालीपाक का विभाग के अनुसार हवन करता है ।।३।। स्थालीव पाकों में में ग्रहण—आसादन और प्रोक्षण मन्त्र देवताओं के लिये करे ।।४।। और अवदान धर्म होते है ।।५।। दर्श पूर्ण मासों के पूर्व में अन्वारम्भणीय देवताओं के लिये हवन करना चाहिए ।।६।। पौर्णमास से लेकर दर्श का अनतीत काल होना है और दर्श से लेकर पौर्ण मास का काल अतीत नहीं होता है ।।७।। कुछ मनीषीगण प्रात.काल में आहुति को सायकाल मे अत्यय से मानते हैं ।।८।। अग्नि होत्र में काल नियत ही होता है क्योंकि भिन्न काल का प्रायश्चित्त देखा जाता है ।।९।। नित्य आहुतियों मे व्रीहि–यव–तण्डुल–इनमें से अन्यतम हवि करनी चाहिए ।।१०।।

अभाव में अन्य सिद्ध होती है ।।११।। यदि तण्डुल की हवि हो तो उनका प्रक्षालन करके करे—ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं । अन्यों के मत मे संस्कार नहीं होना है ।।१२-१३।। सायंकाल में अग्नि के लिए व प्रातः काल मे सूर्य के लिये देनी चाहिए ।१४। प्रजापति के लिये दोनो मे तूष्णी भाव से देवे । कुछ विद्वानों का मत है कि पहिले प्राक् आहुति की समिधा देवे ।।१५-१६।। जैसा कि पर्युक्षण कहा गया है।।१७।।

।। अथ स्वाध्यायविधिः ।।

उत्थात प्रातराचम्याहरहः स्वाध्यायमधीयीन "अ न्ना नो देव सवितरिति" द्वे "अपेहि मनसस्पत इति सूक्तम्, ऋतं च सत्य चेति" सूक्तम्, आदित्या अव हि ख्यतेति" सूक्तशेषः, "इन्द्र श्रेष्ठानीति" एका, "हंसः शुचिषदिति" एका, "नमो महद्भ्य इति" एका, "यत इन्द्र भयामह इति" एका, "अध स्वप्नस्येति" एका, "यो मे राजन्निति एका, "ममाग्ने वर्च इति" सूक्तम्, "स्वस्ति नो मिमीतामिति च पञ्च ।२।

प्रातःकाल में उठकर आचमन करके दिन प्रति दिन स्वाध्याय का अध्ययन करना चाहिए ।।१।।"अन्नानो देव सवितरि"ति ये दो हैं । अपेहि मनस्पत" इति—यह सूक्त है ।" ऋत च सत्य चेति" यह सूक्त है । "आदित्या अव हि ख्यतेति" यह सूक्त शेष है । "इन्द्र श्रेष्ठानीति"—यह एक ऋचा है । "हंसः शुचिषद् इति" यह एक ऋचा है "नमो महद्भ्य इति" यह एक ऋचा है । "यत इन्द्र भयामह इति" यह एक ऋचा है । "अधः स्वप्नस्येति" - यह एक ऋचा है । "योमे राजन्निति" यह एक ऋचा है । "ममाग्ने वर्च इति"—यह सूक्त है । "स्वस्तिनो मिमीताम् इति" ये पाँच है ।।२ ।

।। अथ कन्यालक्षणानि ।।

चत्वारः पाकयज्ञा हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशित इति ।१।
पञ्चसु बहिःशालायां विवाहे चूडाकरण उपनयने केशान्ते

सीमन्तोन्नयन इति ।२। उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्नि प्रणीय ।३। निर्मथ्यंके विवाहे ।४। उदगयन आपूर्यमाण-पक्षे पुण्याहे कुमार्यै पाणिं गृह्णीयात् ।५। या लक्षणसपन्ना स्यात् ।६। यस्य अभ्यात्ममङ्गानी स्युः ।७। समाः केशा-न्ताः ।८। आवर्तावपि यस्यै स्यातां प्रदक्षिणौ ग्रीवायाम् ।९। षड् वीरान्जनयिष्यतीति विद्यात् ।१०।

चार पाकयज्ञ होते हैं—हुत—आहुत—प्रहुत—प्राशित—ये चार प्रकार हैं ।।१।। विवाह मे—चूडाकरण में—उपनयन में—केशान्त में —सीमन्तोपनयन मे पाँचों में शाला के बाहिर करना चाहिए ।।२।। उप-लिप्त में—उद्धता वोक्षित मे अग्नि का प्रणयन करे । कुछ विद्वानों का मत है विवाह में निर्मथन करके करे ।।३-४।। उदगयन मे आपूर्यमाण पक्ष में पुण्यदिन मे कुमारी का पाणिग्रहण करना चाहिए ।।५।। उसी कुमारी का पाणिग्रहण करे जो कुमारी लक्षणों से सम्पन्न होवे ।।६।। जिस के अङ्ग अध्यात्म होवें । यहाँ पर आत्म शब्द से हृदय लिया गया है क्योंकि उसमें ही अनुभव किया जाया करता है । कन्या के हृदय को अभिलक्षित करना चाहिए । हृदय के अभिमुख होने के ही समान जिस कन्या के अङ्ग होवें - वे अङ्ग भी कन्धरा—नाभि—अङ्गुष्ठ उत्तरोष्ठ और नासिका है ।।७।। जिस कन्या के केशों के अग्रभाग सम अर्थात् अकुटिल हों उसी के साथ उद्वाह करना चाहिए ।।८।। जिसकी ग्रीवा में भ्रमर प्रदक्षिण हों अर्थात् दक्षिण की ओर जाने वाले हों उसका वरण करे । ऐसी कन्या छै वीरों का जनन करेगी—ऐसा ही जानना चाहिए ।।९-१०।।

।। अथ कन्यावरणम् ।।

जायामुपग्रहीष्यमाणोऽनृक्षरा इति वरकान् गच्छतोऽनु-मन्त्रयते ।१। अभिगमने पुष्पफलयवानादायोदकुम्भश्च ।२। "अयमहं भो इति त्रिः प्रोच्य ।३। उदिते प्राङ् मुखा गृह्याः प्रत्यङ् मुखा आवहमाना गोत्रनामान्य नुकीर्तयन्तः

कन्यां वरयन्ति।४। उभयतो रुचिते पूर्णपात्रीमभिमृशन्ति पुष्पाक्षतयवहिरण्यमिश्राम्—

"अनाधृष्टमस्यानाधृष्यं देवानामोजो ऽनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम् अञ्जसा सत्यमुप गेयम् सुविते मा धा इति" ।५। "आ नः प्रजामिति त्वयि कन्याया आचार्य उत्थाय मूर्धनि करोति "प्रजां त्वयि दधामि, पशूंस्त्वयि दधामि, तेजो ब्रह्मवर्चसं त्वयि दधामीति" ।६।

जाया को ग्रहण करने वाले अनुचर हैं—यह गमन करते हुए वरणों को अनुमन्त्रित किया जाता है। कन्या के वरण करने के लिए गमन करने में मल्लिका आदि के पुष्प—नारिकेल प्रभृति फल—यव और जल का कलश आदि ग्रहण करके वर के पिता आदि जाया करते हैं। फिर आचार्य के सहित वर के पिता आदि सब कन्या के दाता के घर में पहुँच कर मण्डप में स्थित होकर तीन बार 'मैं यहाँ पर उपस्थित हूँ'—ऐसा ऊँचे स्वर से कहता है। इसके पश्चात् कन्या के पक्ष वालों के द्वारा 'हमारी कन्या आप वर के लिये देनी है—ऐसा कहने पर कन्या के पक्ष वाले सब गृह्य अर्थात् घर में रहने वाले ज्ञान वृद्धों के सहित प्राङ्-मुख होकर वहाँ बैठ जाते हैं। वर के पक्ष वाले आचार्य प्रत्यङ्मुख होकर स्थित होते हैं। जो भी वहाँ पर आगमन हैं वे अपने गोत्र और नामों का अनुकीर्तन करते हुए ही कन्या का वरण किया करते हैं। दोनों ओर से रुचित होने पर पूर्वोक्त पूर्ण पात्रों को "आ नः प्रजाम्" इस मन्त्र के द्वारा स्थापित वर पक्ष का आचार्य किया करता है। वह पूर्ण पात्री पुष्प-अक्षत-यव और हिरण्य से मिश्रित होती है। कन्या का आचार्य उठकर मूर्धा में करता है और यजुर्वेद के तीन मन्त्रों को पढ़ के ही कन्या के मूर्धा में आचार्य किया करता है। इन तीन मन्त्रों का अर्थ है—तुझ कन्या में प्रजा को—पशुओं को और ब्रह्मवर्चस को धारण करता हूं।

॥ अथ प्रतिश्रुते होमः ॥

प्रतिश्रुते जुहोति ।१। चतुरस्रं गोमयेन स्थण्डिलमुपलिप्य ।२। पूर्वयोर्व्विदिशोर्दक्षिणां प्राचीं पित्र्ये ।३। उत्तरा दैवे ।४। प्राचीमेवैके ।५। उदक्संस्थां मध्ये लेखां लखित्वा ।६। तस्यै दक्षिणत उपरिष्टादूर्ध्वामेकां मध्य एकामुत्तरत एकाम् ।७। ता अभ्युक्ष्य ।८।
"अग्निं प्र णयामि मनसा शिवेनाऽयमस्तु सङ्गमनो वसूनाम् । मा नो हिंसीः स्थविरं मा कुमारं, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे" इत्यग्निं प्रणीय ।६। तूष्णीं वा ।१०। प्रदक्षिणमग्नेः समन्तात्पाणिना सोदकेन त्रिः प्रमार्ष्टि तत्समूहनमित्याचक्षते ।११। सकृदपसव्यं पित्र्ये ।१२।

प्रतिश्रुत होने पर हवन करता है ॥१॥ चौकोर स्थण्डिल को गोमय से उपलिप्त करे ॥२॥ पूर्व में जो आग्नयी और ऐशानी विदिशाऐं हैं उन दोनों में जो दक्षिणा पूर्वाग्नेयी विदिशा है उसको पित्र्य कर्म में मास-मास में पितृगण को देवे—इत्यादि में पूर्वा की कल्पना करे। आग्नेयी में पित्र्यकर्म करने चाहिए दैव कर्म में उत्तरा को ग्रहण करे ॥३-४॥ कुछ विद्वानों का मत है कि दैव कर्म में प्राची को ही ग्रहण करना चाहिए ॥५॥ स्थण्डिल के मध्य में उदक् संस्था लेखा को लिखे। जो साग्निक हों वे स्रुक् से और जो निराग्नि हों उनको स्रुव से लिखना चाहिए ॥६॥ उनके मध्य मे दक्षिण से उदीची को कुश के मूल आदि से एक सरल लेखा को लिखता है। उसके दक्षिण भाग से उसका निन्दन करते हुए ही उसके ऊपर प्राची में तीन रेखाऐं लिखता है। एक ऊपर को—एक मध्य में और एक उत्तर को लिखे। उन रेखाओ का अभ्युक्षण करे ॥७-८॥ फिर—"अग्नि प्रणयानि मनसा शवेनायमस्तु सङ्गमनो वसूनाम्। मा नो हिंसीः स्थविरं मा कुमार शन्नो भव द्वियदे शंसचतुष्पदे" —इस मन्त्र का उच्चारण करके अग्नि का प्रणयन करे ॥९॥ अथवा चुपचाप करे। अग्नि के प्रदक्षिण में चारों ओर जल के सहित हाथ से

तीन बार प्रमार्जन करता है उसको समूहन कहते हैं। पित्र्य कर्म में एक बार अपसव्य करे ॥१२॥

॥ अथ परिस्तरणम् ॥

अथ परिस्तरणम् ।१। प्रागग्रैः कुशैः परिस्तृणाति त्रिवृत् पञ्चवृद्धा ।२। पुरस्तात् प्रथममथ पश्चाद् अथ पश्चात् ।३। मूलान्यग्रैः प्रच्छादयति ।४। सर्वाश्चावृतो दक्षिणतः प्रवृत्तय उदक्संस्था भवन्ति ।५। दक्षिणतो ब्रह्माण प्रति ष्ठाप्य "भूर्भुवः स्वरिति" ।६। सुमनोभिरलङ्कृत्य ।७। उत्तरतः प्रणीताः प्रणीय "को वः प्रणयती" ति ।८। सव्येन कुशानादाय दक्षिणेनापनीति ।९। दक्षिण जान्वाच्य ।१०। सव्यं पित्र्ये ।११। नाज्याहुतिषु नित्य परिस्तरणम् ।१२। नित्याहुतिषु चेति माण्डूकेयः ।१३। कुशतरुणो अविषमे अविच्छिन्नाग्रे अनन्तर्गर्भे प्रादेशेन मापयित्वा कुशेन छिनत्ति "पवित्रे स्थ इति" ।१४। द्वे त्रीणि वा भवन्ति ।१५। प्रागग्रे धारयन् "वैष्णव्याविति" अभ्युक्ष्य ।१६। कुशतरुणाभ्यां प्रदक्षिणमग्नि त्रिः पर्युक्ष्य ।१७। "महीनां पयोऽसीति आज्यस्थालीमादाय" ।१८। "इषे त्वेति" अधिश्रित्य ।१९। "ऊर्जे त्वेति" उदगुद्वास्य ।२०। उदगग्रे पवित्रे धारयन्नङ्गुष्ठाभ्यां चोपकनिष्ठिकाभ्यां चोभयतः प्रतिगृह्योर्ध्वाग्रे प्रह्वे कृत्वाज्ये प्रत्यस्यति । "सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिरिति ।२१। आज्यसंस्कारः सर्वत्र ।२२। नासंस्कृतेन जुहुयात् ।२३। स्रुवे चापः "सवितुर्व इति" ।२४। ताः प्रणीताः प्रोक्षणीश्च ।२५।

पहिले अग्र कुशाओं से त्रिवृत अथवा पञ्चवृतपरिस्तरण करता है।१-२। पहिले प्रथम को और इसके अनन्तर पीछे कर ।३। अग्रभागों से मूलों का प्रच्छादन करता है ।४। सब आवृत्त दक्षिण प्रवृत्तियाँ उदक संस्था

होती हैं। इसके अनन्तर दक्षिण में ब्रह्मासन और कुशोत्तर उत्तर में प्रणीतार्थ आसन कुशोत्तर देवे। इसके पश्चात् कुशमय ब्रह्माको "भूभु'वः स्वः" इससे प्रतिष्ठापित करना चाहिए और उसको पुष्पों से अलंकृत करे।५-७। उत्तर की ओर प्रणीताओं का प्रणयन करे अर्थात् प्रणीता पात्र को मोदक करके दर्भासन पर 'को नः प्रणयति" इस मन्त्र से प्रणयन करना चाहिए। इनके पश्चात् परिस्तरण होता है। सव्य प्राणि मे स्तरण योग्य पृथक्कृत पत्र कुशलादि को लेकर दक्षिण को जान्वाच्य करे। देव और पित्र्य मे वाम को करे। दक्षिण कर से कुशाओं का आकर्षण करता हुआ प्रागग्र उनसे अपवर्गतया अग्नि के आगे स्तरण करता है। फिर आगे विस्तृत कुश मूलों को आच्छादित करते हुए उसके पीछे स्तरण करता है।८।११। आज्याहुतियों में नित्य परिस्तरण नहीं होता है।१२। माण्डूकेम कहता है। नित्याहुतियों मे होता है।१३। जिसका अग्र भाग अविछिन्न हों ऐसे अविषमकुशतरुण में प्रादेश के द्वारा अन्तर्गर्भ मे माप करके "पवित्रेस्थ" इस मन्त्र से कुशा से छेदन करता है।१४। दो अथवा तीन होते है। प्राक् अग्र में धारण करते हुए "वैष्णव्याविति" इस मन्त्र से अभ्युक्षण करे।१५-१६। कुश तरुणों से प्रदक्षिण अग्नि को तीन पर्युक्षण करे। "महानां पयोसीति" इस मन्त्र से आज्य (घृत) की स्थाली का ग्रहण करे।१७-१८। "ऊर्जे त्वेति" इस मन्त्र से चरु का उद्वास न करे।१९-२०। उदगग्र पवित्री धारण करते हुए अंगूठों से और उर कनिष्ठकाओं से दोनों से प्रतिग्रहण करके ऊर्ध्वाग्र प्रहन में करके आज्य में प्रत्यसन करता है। "सवितुष्टा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिस्ति" यह मन्त्र है। आज्य (घृत) का संस्कार सर्वत्र होता है।२१-२२। कभी भी जिसका संस्कार नहीं हुआ है उस घृत से हवन नहीं करना चाहिए।२३। सवितुर्वेति"— इस मन्त्र से स्रुव में आग लगावे।२४। ये प्रणीता और प्रोक्षणी पात्र हैं।२५।

॥ अथ आज्यहोमः ॥

स्रुवः पात्रम् ।१। अर्थलक्षणग्रहणम् ।२। सव्येन कुशानादाय दक्षिणेन मूले स्रुवं "विष्णो हंस्तोऽसीति ।३। स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति ।४। उत्तरपश्चार्धादग्नेरारभ्याविच्छिन्नं दक्षिणतो जुहोति "त्वमग्ने प्रमतिरिति" ।५। दक्षिणपश्चार्धादग्नेरारभ्याविच्छिन्नमुत्तरतो जुहोति "यस्येमे हिमवन्त इति ।६। आग्नेयमुत्तरमाज्यभाग सौम्य दक्षिणम् ।७। मध्येऽन्या आहुतयः ।८। अग्निर्जनिता स मेऽमूं जायां ददातु स्वाहा ।। सोमो जनिमान्स माऽमुया जनिमन्तं करोतु स्वाहा । पूषा ज्ञानिमानन्स माऽमुष्यै पित्रा मात्रा भ्रातृभिर्ज्ञातिमन्तं करोतु स्वाहेति ।९। नाज्याहुतिश्च नित्यावाज्यभागौ स्विष्टकृच्च ।१०। नित्याहुतिपू चेति माण्डूकेयः ।११। महाव्याहृतिसर्वप्रायश्चित्त प्राजापत्यान्तरमेतदावापस्थानम् ।१२।आज्यैहविषि सव्ये पाणौयैकुशास्तानुदक्षिणेनाग्रं संगृह्यमूले सव्येन तेषामग्रं स्रुवे समनक्ति मध्यमाज्यस्थाल्याम् मूलं च ।१३। अथ चेत् स्थालीपाकेषु स्रुच्यग्रं मध्यस्रुवेमूलमाज्य स्थाल्याम् ।१४। तानुनुप्रहृत्य अग्नेर्वासोऽसीति।१५।निम्नःमभिघोऽरूयाधाय।१६। यथोक्तं पर्युक्षणम् ।१७। अनाम्नातमन्त्रास्वादिष्टदेवनाम् अमुष्यै स्वाहाऽमुष्यै स्वाहेति जुहुयात् स्वाहाकारेणशुद्धेन ।१८। व्याख्यात.प्रतिश्रुते होम कल्पः ।१९।

स्रुव पात्र है ।१। स्रुवादिक के जो लक्षण चिह्न परिमाण आदि हैं तथा जैसा जिस पद का अर्थ अर्थात् प्रयोजन है उसका ग्रहण है अर्थात् जानना चाहिए । जिसका जहाँ पर जैसा भी अर्थ हो उसका वैसा ही परिणाम आदि करना चाहिए ।२। हाथ से कुशाओं को लेकर दक्षिण से "विष्णोहंस्तो ...ि" इस मन्त्र से मूल मे स्रुव को ग्रहण करे ।३। स्रुव से आज्याहुतियों का हवन करता है ।४। उत्तर पश्चार्ध अग्नि के अभ्याविच्छिन्न दक्षिण से "त्वमग्ने प्रमतिरिति" —इस

मन्त्र हवन करता है ।५। दक्षिण पक्षार्धे अग्नि के अभ्याविच्छिन्न उत्तर से "यस्येमे हिमवन्त इति " इस मन्त्र से हवन करता है ।६। आग्नेय उत्तर आज्य भाग सोम्य दक्षिण है ।७। मध्य में अन्य आहुतियां होती हैं ।८। "अग्निर्जनिता समेऽमूं जायां ददातु स्वाहा"—"सोमो जनियान्त्स माऽमुया जनियन्तं करोतु स्वाहा"—"पूषा ज्ञातिमानन्त्स मा मुष्यै पित्रा मात्रा भ्रातृभिर्ज्ञातिमन्तं करोतु स्वाहा" इन मन्त्रों से आहुतियां होती हैं । अन्याहुतियों मे अन्य आहुतियां नहीं होती हैं । नित्य आज्य भाग और स्विष्टकृत् है ।९।१०। माण्डूकेय कहता है—और नित्याहुतियों में होता है ।११। महाव्याहुतियां चार है—यथा भूः स्वाहा—भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा—भूर्भुवः स्वः स्वाहा"। महाव्याहृति प्रायश्चित प्राजापत्यान्तर यह आवाप स्थान है ।१२। आज्य में—हवि मे—सव्य पाणि में जो कुशा हैं उन को दक्षिण से आगे संग्रह करके मूल में सव्य से उनके अग्र को स्रुव में समनक्त करता है और मध्यमाश्रयस्थाली में मूल को करता है ।१३। इसके अनन्तर यदि स्थाली पाकों में सूच्यग्र मध्य स्रुव में आज्यस्थाली में मूल होवे ।१४। उनको "अग्नेर्वासोसीति"—इस मन्त्र से अनुप्रहरण करे ।१५। तीन समिधाओं का अभ्याधान करे ।१६। जैसा भी पहिले कहा गया है वैसे ही पर्युक्षण करे ।१७। अनाम्नात मन्त्रों वाले आदिष्ट देवताओं में "अमुष्मै स्वाहा—अमुष्मै स्वाहा " इस क्रम से शुद्ध स्वाहा-कार से हवन करना चाहिए ।१८। प्रति श्रुत में होम कल्प व्याख्यात है ।१९।

।। अथ पाकयज्ञभेदाः ।।

प्रकृतिर्भूतिकर्मणाम् ।१। सर्वासां चाज्याहुतीनाम् ।२। शाखापशूनाम् ।३। चरुपाकयज्ञानां च ।४। त एते प्रजाया अननुयाजा अनिला अनिगदा आसामिधेनीकाश्च सर्वे पाकयज्ञा भवन्ति ।५। तदपि श्लोकाः ।६।
हुतोऽग्निहोत्रहोमेनाऽहुतो बलिकर्मण ।
प्रहुतः पितृकर्मणा प्राशितो ब्राह्मणे हुतः ।७।

अनूर्ध्वज्ञु व्युं लजानुर्जुहुयात् सर्वदा हविः ।
न हि बाह्यहुतं देवाः प्रतिगृह्णन्ति कर्हिचित् ।८।
रौद्रं तु राक्षस पित्र्यमासुर चाऽऽभिचारिकम् ।
उक्त्वा मन्त्रं स्पृशेदप आलभ्यात्मानमेव च ।९।

भूति कर्मों की प्रकृति है । आचार्य के लिये, अग्नि के लिये, ऋत्विक के लिए और बार्हस्पति के लिये एवमादिकों की यह प्रकृति होती हैं ।१। और सब आज्याहुतियों की भी होती है ।२। शाल्या पशुओं की होती है ।३। और चरु पाक् यज्ञों की होती है । वे ये प्रयाज–अनुयाज अनिल अभिगह और असामधेनीक सब पाकयज्ञ होते हैं । ये श्लोक भी हैं ।४-६। अग्निहोत्र होम के द्वारा हुत बलि कर्म के द्वारा अहुत पितृ कर्म के द्वारा प्रहुत-ब्राह्मण में प्राशित हुत होना है।७। अनूर्ध्वज्ञ व्यूल जानु सर्वदा हवि का हवन करे । देवगण बाह्य हुत को कभी भी ग्रहण नहीं किया करते हैं ।८। रौद्र राक्षस पित्र्य असुर और आभिचारिक के मन्त्र का उच्चारण करके जल का स्पर्श करो और आत्मा का आलभन करके करे ।९।

।। अथ इन्द्राणीकर्म ।।

अथैतां रात्रीं भ्यस्तृतीयां वा कन्यां वक्ष्यन्तीति ।१। तस्यां राज्यामतीते निशाकाले सर्वौषधिफलोत्तमैः सुरभिमिश्रैः सशिरस्कां कन्यामाप्लाव्य ।२। रक्तमहत वासः परिधाय ।३। पश्चादग्नेः कन्यामुपवेश्यान्वारब्धायां महाव्याहृतिभिर्हुत्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति—

अग्नयेसोमायप्रजापतयेमित्रायवरुणायेन्द्रायेन्द्राण्यैगन्धर्वाय भगाय पूष्णे त्वष्ट्रे बृहस्पतये राज्ञे प्रत्यानीकायेति ।४। चतस्रोऽष्टौ वाऽविधवाः शाकपिण्डीभिः सुरयाऽन्नेन च तर्पयित्वा चतुर् आनर्तनं कुर्युः ।५। एता एवदेवतापुंसः ।६। वैश्रवणमीशान च ।७। अतो ब्राह्मणभोजनम् ।८।

इसके अनन्तर विवाह के अङ्ग इन्द्राणी कर्म बतलाया जाता है स्त्रियों का मन्त्र मे अनाधिकार होने से आचार्य करता है। इसके अनन्तर इस रात्रि को अथवा श्वस्तृतीया को कन्या को बोलेंगे। उस रात्रि में निशा काल के अतीत हो जाने पर सुगन्ध से मिश्रित सर्वोषधि फलोत्तमों से शिरके सहित कन्या को आप्लावित करे।१-२। रक्त वर्ण का जो हवन हो ऐसा वस्त्र का परिधान करे।३। अग्नि के पीछे कन्या को बिठाकर अन्यारब्धा में महा आहुतियों से हवन करके फिर आज्य की आहुतियों का हवन करना है। अग्नि के लिये सोम के लिये प्रजापति के लिये मित्र के लिये वरुण के लिये, इन्द्र के लिये, इन्द्राणी के लिये, गन्धर्व के लिये, भग के लिये, पूषा के लिये, त्वष्टा के लिये, बृहस्पति के लिये और प्रत्यानीक गुणविशिष्ट राजा के लिये आहुतियाँ देता है।४। चार अथवा आठ अविधवा शाक पिण्डीयों से, सुरा से और अन्न से तर्पण करके चार आवर्तन करे। पुरुष के ये ही देवता हैं।५-६। और वैश्रवण ईशान को करें। अतः ब्राह्मण भोजन है।७-८।

॥ अथ विवाहकर्म ॥

स्नातं कृतमङ्गलं वरमविधवाः सुभगा युवत्यः कुमार्यै वेश्म प्रपादयन्ति ।१। तासामप्रतिकूलः स्यादन्यत्राभक्ष्य-पातकेभ्यः ।२। ताभिरनुज्ञातोऽथास्यै वासः प्रयच्छति रैभ्यासीदिति ।३। चित्तिरा उपवर्हणमिति आञ्जनकोश-मादत्ते ।४। समञ्जतु विश्वे देवा इति समञ्जनीया ।५। दक्षिणे पाणौ शलली त्रिवृतं ददाति ।६। रूप रूपमिति आदर्शं सव्ये ।७। रक्तकृष्णमाविकं क्षौमं वा त्रिमणि प्रति-सरं ज्ञातयोऽस्या बध्नान्ति नीललोहितमिति ।८।मधुमती-रोपधीरिति मधूकानि बध्नाति।६। विवाहे गामर्हयित्वा गृहेषु गा ते माधुपर्किक्यौ ।१०। पश्चादग्नेः कन्यामुपवे-श्यान्वारब्धायां महाव्याहृतिभिस्तिस्रो जुहोति।११। सम स्ताभिश्चतुर्थी प्रतोयेतैतस्यां चोदनायाम् ।१२। एवमना-

देशे सर्वेषु भूतिकर्मसु पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चैताभिरेव जुहुयात् ।१३।

स्नान किये हुए तथा मङ्गल कृत्य किये जाने वाले वर को सौभाग्यवती सुभगा युवतियां कुमारी के लिये वेश्म (गृह) का प्रपादन करती हैं ।१। अन्यत्र अमत्य पातकों से उन के अप्रतिकूल होवे ।२। उनके द्वारा अनुज्ञा प्राप्त किया हुआ इसके अनन्तर उसके लिये वस्त्र प्रदान किया करता है और "रैभ्यासीद्" इस मन्त्र का उच्चारण करके ही वस्त्र देता है ।३। चीत्तरा उपवर्हणम्" इस मन्त्र के द्वारा आञ्जन कोश का दान करता है ।४। "समञ्जन्तु विश्वे देवा" इत्यादि मन्त्र के द्वारा भली भाँति अञ्जन करने के योग्य होती है । वर के कौतुकागार गमन से पहिले कन्या का दान करने वाला मधुपर्क करता है । कौतुक गृह से निकले हुए जामात का श्वशुर के द्वारा अर्घ करना चाहिए । जिस प्रकार से इसने शची की तथा सुपुत्रों वाली अदिति की रक्षा की उसी प्रकार से अविधवा तुम्हारी रक्षा की है, यहां पर इसकी रक्षा करो । दक्षिण हाथ में शलली को त्रिवृत करके देता है ।५-६। 'रूपं रूपम्" इस मन्त्र से सव्य हाथ में आदर्श (शीशा) देता है । ।७। रक्तकृष्ण आविक अपना क्षौम और क्षिमणि प्रति सर इसके ज्ञाति वाले "नील लोहितम्" इस मन्त्र से बाँधते है ।८। "मधुमती रोषधीः" इस मन्त्र से मधुकों को बाँधती है ९। विवाह में गौ की पूजा करके और "माता रुद्राणाम्" इस ऋचा का जाप करके गृहों का परिणाम करके आगात के द्वारा मधुपर्क से सम्बन्ध रखने वाली गौ का पूजन करता है । वहाँ पर आचार्य मधुपर्क से इस वर का अर्घ करता है । तुम्हारे लिये ये गौऐं मधुपर्क सम्बन्धिनी होवें ।१०। पीछे अग्नि के समीप में कन्या को बिठा कर अन्वारब्धा में महाव्याहृतियों से तीन आहुतियाँ देता है ।११। इस प्रेरणा में समस्तों से चतुर्थी का प्रत्यय करना चाहिए ।१२। इसी प्रकार से अनादेश में सम्पूर्ण भूतिकर्मों में पहिले से और ऊपर से इन्हीं से हवन करना चाहिए ।१३।

।। अथ पाणिग्रहणम् ।।

सम्राज्ञी श्वशुरे भवेति पिता भ्राता वाऽस्यग्रेण मूर्धनि जुहतिस्रु वे णवातिष्ठन्नासीनायाःप्राङ्मुख्याःप्रत्यङ्मुख।१। गृभ्णामि ते सौभगात्वायु हस्तमिति दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पाणिं गृह्णाति साङ्गुष्ठमुत्तानेनोत्तान तिष्ठन्नासीनायाः प्राङ्मुख्याः प्रत्यङ्मुखः।२। पञ्च चोत्तरा जपित्वा ।३।

अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोह द्यौरहं पृथिवी त्वम् ऋक्त्वमसि सामहं सा मामनुतन्नाभव ।
तावेह वि वहाव है, प्रजां प्र जनयावहे, पुत्रान्विन्दावहै बहून्, ते सन्तु जरदष्टय इति ।४। उदकुम्भन्नवं भू र्भुवः स्वरिति पूरयित्वा ।५। पुन्नाम्नो वृक्षस्य सक्षीरान्त्सपलाशात्सकुशानोप्य ।६। हिरण्यमिति चैके ।७। त ब्रह्मचारिणे वाग्यताय प्रदाय ।८। प्रागुदीच्यां दिशि ताः स्थेयाः प्रदक्षिणा भवन्ति ।९। अश्मान चोत्तरत उपस्थाप्य ।१०। एहि सूनरीति उत्थाप्य ।११।
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मेव त्वं स्थिरा भव ।
अभि तिष्ठ पृतन्यतः सहस्व पृतनायत इति ।।"
दक्षिणेन प्रपदेनाश्मानमाक्रमय्य ।१२। प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीय ।१३। तेनैव मन्त्रेण द्वितीय वसनं प्रदाय ।१४। लाजाञ्च्छमीपलाशमिश्रान् पिताभ्राता वा स्य।दञ्जलावावपति ।१५।उपस्तरणाभिघारणप्रत्यभिघारण चाज्येन ।१६। ताञ्जुहोति ।१७।

पिता अथवा भ्राता "साम्राज्ञी श्वशुरेभव" इस मन्त्र से अस्यग्रभाग से मूर्धा में हवन करता है अथवा स्रुव से हवन करता है। स्वयं प्रत्यङ् मुख हो कर खड़े होते हुए पूर्व की ओर मुख करके बैठी हुई के मूर्धा मे आहुतियाँ दी जाती है ।।१।। "गृभ्णामि ते सौभगात्वायु हस्तम्"

इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए वर अपने दाहिने हाथ से. कन्या के दक्षिण कर को ग्रहण करता है अंगुष्ठ के सहित उत्तान से प्रत्यङ्मुख वाला हो कर खड़े होते हुए पूर्व की ओर मुख वाली बैठी हुई कन्या का कर ग्रहण करना चाहिए ॥२॥ पाँच उत्तराओं का जाप करे । वे पाँच ये है—"अमोहमस्मि सात्वं सा त्वस्य मोहम्—द्यौरहं पृथिवी त्वम्—ऋक् त्वमसि सामहं सा—मामनुव्रताभव-तावेह विवहावहै प्रजां प्रजनयाव-है पुत्रान्विन्दावहै बहून ते सन्तु जरदष्टय" ॥४॥ जल के कुम्भ को "भूः-भुवः-स्वः" इन महा व्याहृतियों से पूरित करके पुन्नाम वाले उदुम्बर आदि वृक्ष के क्षीर सहित नवीन पल्लवों को कुशाओं के साथ प्रक्षप करे ॥५-६॥ कुछ विद्वानों का मत है कि हिरण्य भी डाले ॥७॥ उसको वाग्यत ब्रह्मचारी के लिये प्रदान करे ॥८॥ प्राग् उदीची दिशा में वे प्रदक्षिणाऐं स्थेय होती है । आचार्य का कर्त्तव्य है कि उत्तर की ओर पाषाण को उपस्थापित करे ॥९-१०॥ "एहि सूनरित"—इत्यादि मन्त्र से उत्थापित करे । यहाँ आओ और इस पाषाण पर स्थित हो और इसी पाषाण की ही भाँति तुम स्थिरा हो जाओ । पृतन्य के समक्ष स्थित होओ और पृतनायत सहन करो । अश्म पर पदाक्रमण का कार्य कराना चाहिए । दक्षिण प्रपद से अश्म पर आक्रमण करे ॥११-१२॥ प्रदक्षिण अग्नि का पर्याणयन करके उसी मन्त्र से द्वितीय वस्त्र का प्रदान करना चाहिए ॥१३-१४॥ पिता अथवा भ्राता लाजाओं को जो शमी और पलाश के मिश्रित होवें अपनी अञ्जलि में वपन करता है ॥१५॥ आज्य से उपस्तरण धारण तथा प्रत्यभिधारण करे ॥१६॥ उनका फिर हवन करता है ॥१७॥

॥ अथ सप्तपदक्रमणम् ॥

"इयन्नार्य्युप ब्रूते लाजानावपन्तिका ।
शिवा ज्ञातिभ्यो भूयास चिरं जीवतुमेपतिस्वाहेति॥"
तिष्ठन्ती जुहोति पतिर्मन्त्रं जपति ।१। अश्मक्रमणवं व द्वितीयम् ।२। एव तृतीयम्।३।तूष्णींकामेनचतुर्थम् ।४।

प्रागुदीच्यां दिशि सप्तपदानि प्रक्रमयति ।५। इष एकपदी ऊर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी, आयोभव्याय चतुष्पदी पशुभ्य पञ्चपदी, ऋतुभ्य षट्पदी, सखा सप्तपदी भवेति" ।६। तान्यद्भिः शमयति ।७। आपोहिष्ठीयाभिस्तिसृभिः स्थेयाभिरद्भिर्मार्जयित्वा ।८। मूर्धन्यभिषिच्य ।९। गां ददानीत्याह ।१०। ब्राह्मणेभ्यः किञ्चिद्दद्यात्सर्वत्र स्थालीपाकादिषु कर्मसु ।११। सूर्यां विदुषे वाधूयम् ।१२। गौर्ब्राह्मणस्य वरः ।१३। ग्रामो राजन्यस्य ।१४। अश्वो वैश्यस्य ।१५। अधिरथं शत दुहितृमते ।१६। याज्ञिकेभ्योऽश्वं ददाति ।१७।

लाजाओं का आगमन करने वाली नारी बोलती है ज्ञाति वालों को शिवा नारी कहती है मेरा पति बहुत अधिक काल तक जीवित रहे स्वाहा। वह खड़ी होती हुई हवन करती है और पति मन्त्र का जाप करता है ।।१।। इस प्रकार से अश्म क्रमण आदि द्वितीय है ।।२।। इसी प्रकार से तृतीय ।।३।। तूष्णी काम वाले के द्वारा चतुर्थ है ।।४।। प्राक् उदीची दिशा में सप्तपदों का प्रक्रम होता है ।।५।। वे सप्त पदियाँ निम्न भाँति से है—"इष"—यह एक पदी है। "ऊर्जे" यह द्विपदी है। "रायस्पोषाय" यह त्रिपदी है। "आयोभव्याय"—यह चतुष्पदी है। "पशुभ्यः"—यह पञ्चपदी है। "सखा सप्त पदी भव"—यह षट्पदी है ।।६।। उनको जलो से शमन करता है ।।७।। आपोहिष्ठीय तीन स्थेयाओं से जल से मार्जन करके मूर्धा में अभिषेचन करे ।।८-९।। फिर 'गांददाति"—यह कहे ।।१०।। सर्वत्र स्थाली पाकादिक कर्मों मे ब्राह्मणों को कुछ देना चाहिए ।।११।। विद्वान् के लिये सूर्या वाधूय है ।।१२।। ब्राह्मण का वर गौ है ।।१२।। क्षत्रिय का ग्राम है। वैश्य का अश्व है। दुहिता वाले के लिये शत अधिरथ है। याज्ञिकों के लिये अश्व देता है ।।१३-१७।।

अथ वरगृहप्रस्थानम् ॥

"प्र त्वा मुञ्चामीति" तृच गृहात् प्रतिष्ठमानायाम् ।१। जीव रुदन्तीति प्ररुदन्त्याम् ।२। अथ रथाक्षस्योपाञ्जनं पत्नी कुरुते अक्षन्नमीमदन्तेति एतया सर्पिषा ।३। शुची ते चक्रे द्वे ते चक्रे इति चैताभ्या चक्रयोः पूर्वया पूर्वमुत्तरयोत्तरम् ।४। उस्त्रौ च ।५। खे रथस्येति एतया फलवतो वृक्षस्य शम्यागर्तेष्वेकैकां वयाम्भिंखाय ।६। नित्या वाऽभिमन्त्र्य ।७। अथोस्त्रौ युञ्जन्ति युक्तस्ते अस्तु दक्षिण इति द्वाभ्याम्, शुक्रावनड्वाहाविति एतेनार्द्धर्चेन युक्तावभिमन्त्र्य ।८। अथ यदि रथाङ्गं विशीर्येत छिद्येत वाऽऽहिताग्नेः गृहान् कन्यां प्रपाद्य ।९। अभि व्ययस्व खदिरस्येति एतया प्रतिदध्यात् ।१०। त्वं विदश्रमिति ग्रन्थिम् ।११। स्वस्ति नो मिमीतामिति पञ्चर्चं जपति ।१२। सुकिंशुकमिति रथमारोहन्त्याम् ।१३। मा विदन् परिपन्थिन इति चतुष्पथे ।१४। ये वध्व इति श्मशाने ।१५। वनस्पते शतवल्श इति वनस्पत्,वर्द्धर्चं जपति ।१६। सुत्रामाणमिति नावमारोहन्त्याम् ।१७। अश्मन्वतीति नदीं तरन्त्याम् ।१८। अपि वा युक्तेनैव ।१९। उद्व ऊर्मिरिति अगाधे ।२०। प्रेक्षण च ।२१। इह प्रियमिति सप्त गृहान् प्राप्तायाः कृता· परिहाप्य ।२२।

गृह से प्रतिष्ठमान होने के समय मे "प्रत्वामुञ्चामि" इस तृच को पढ़े । प्ररुदन कपने वाली में "जीवं रुदन्तीति"—इसको पढ़े ॥१-२॥ इसके अनन्तर "अक्षन्नमी मदन्त" इससे सर्पि के द्वारा पत्नी रथ के अक्ष का उपाञ्जन करती है ॥३॥ "शुची ते चक्रे—द्वे ते चक्रे" इत्यादि दो मन्त्रों से चक्रों का करे । पहिली ऋचा से प्रथम का और दूसरी से दूसरे का करे। दोनों उस्त्रों का भी करे ॥४-५॥ "खे रथस्य"—इत्यादि ऋचा से फल वाले वृक्ष के शम्या,र्थ कृत गर्त्तों में

वय से निखनन करे ॥६॥ अथवा नित्या अति मन्त्रण करके कर्म करे। नित्या युगस्था ही होती है जो पुरातना है वह शम्या है उस रथाङ्ग सस्कार के अनन्तर 'स्वस्ति न'—इस स्वस्त्ययन को मार्ग में कल्याण के सम्पादन के लिये जाप करता है ॥७॥ इसके पश्चात् दोनों उक्षों का योग करते है। "युक्त स्ते अस्तु दक्षिणा" इन दो से योजन करे। "शुक्रावनड्वाहौ''—इस अर्ध ऋचा से युक्त हुए दोनों को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥८॥ इसके उपरान्त यदि रथ का अङ्ग विशीर्ण हो जावे अथवा छिन्न हो जावे तो आहिताग्नि वाले के गृहों में कन्या को प्रपन्न करा देवे ॥९॥ "अभिव्ययस्व खदिरस्य'' इस ऋचा से प्रतिधान करना चाहिए। "इव विदम्बम्"—इससे ग्रन्थिका करे ॥१०-११॥ "स्वस्ति नो मिमिताम्" इत्यादि पाँच ऋचाओं का जाप करता है। ॥१२॥ जब रथ पर आरोहण करे उस समय में 'सुकिंशुकम्" इसका जाप करे ॥१३॥ "माविदन् परिपन्थिन" इसका चतुष्पथ में जप करता है। "ये वध्व"—इससे श्मशान मे—"वनस्पते शतवल्श" इसका वनस्पति मे आधी ऋचा को जपता है ॥१४-१६॥ जब वह नाव में आरोहण करती है उस समय मे "सुत्रामाणम्"—इसको जपता है ॥१७॥ जिस समय में नदी में तरण करे उस समय में "अश्मन्वतीति" इसको जपना चाहिए ॥१८॥ अथवा युक्त से भी करे ॥१९॥ अगाध मे जब हो तो "उद्व ऊर्मिः" इस को जपे ॥२०॥ और प्रेक्षण करे ॥२१॥ "इह प्रियम्" इससे सात गृहों में प्राप्त का कृत पर्ि ह प्यन करे ॥२२॥

॥ अथ गृहप्रपादनम् ॥

आनडुहमित्युक्तम् ॥१॥ तस्मिन्नुपवेश्यान्वारब्धायां पतिश्चतस्रो जुहोति । । अग्निना देवेन पृथिवीलोकेन लोकानामृग्वेदेन वेदानां तेन त्वा शमयाम्सौ स्वाहा । वायुना देवेनान्तरिक्षलोकेन लोकानां यजुर्वेदेन वेदानां तेन त्वा शमयाम्यसौ स्वाहा । सूर्येण देवेन द्यौर्लोकेन लोकानां सामवेदेन वेदानां तेनत्वाशमयाम्यसौ स्वाहा चन्द्रेणदेवेन

दिशां लोकेन लोकानां ब्रह्मवेदेन वेदानां तेन त्वा शमया-म्यसौस्वाहा।३। भूर्यतिपत्तिघ्न्यलक्ष्मीदेवरघ्नीजारघ्नीतां करोम्यसौ स्वावेति वा प्रथमया तहाव्याहृत्या प्रथमो-पहिता द्वितीयया द्वितीया तृतीयय ।तृतीयासमाभिश्चतु-र्थी।४। अघोरचक्षुरितिआज्यलेपेनचक्षुषीविमृजीत५।कया-नश्चित्र इति तिसृभिःकेशान्तानभिमृश्य ।६। उतत्या दैव्याभिषजेतिचतस्रोऽनुद्रुत्यान्तेस्वाहाकारेण मूर्धनिसं-स्रावम्।७। अत्रहैके कुमारमुत्सङ्गमानयन्त्युभयतःसुजात-मुआतेयोनिमिति एतया ।८। अपि वा तूष्णीम्।९।तस्याऽ-ञ्जलौ फलानिदत्त्वावाचयति।१०।पुंसवतीह भवति।११। इहैव स्तमिति सूक्तशेषेण गृहान् प्रपादयन्ति ।१२।

आनडुहम्—यह कह दिया गया है। उस पर अर्थात् जुते हुए बैलों वाले रथ पर उसको बिठाकर अन्वारब्धा मे पति चार आहुतियों का हवन करता है ॥१-२॥ "अग्निना देवेन पृथिवी लोकेन लोकानाम्—ऋग्वेद के द्वारा—"वेदानां तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा। वायुना देवेनान्तरिक्ष लोकेन लोकानां यजुर्वेद के द्वारा—"वेदानां तेनत्वा शमया म्यसौ स्वाहा। सूर्येण देवेन द्यौर्लोकेन लोकाना सामवेद से "वेदानां तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा ।चंद्रेण देवेन दिशां लोकेन लोकाना ब्रह्म वेद के द्वारा अथवा"वेदाना तेनत्वा शमयाम्यसौ स्वाहा -॥३॥ भूर्यति पतिघ्न्य लक्ष्मी देवराघ्नी आरघ्नी तां करोम्यसौ स्वाहा" इससे प्रथमा महा व्याहृति से प्रथमा उपहिता है—द्वितीय व्याहृति से द्वितीया—तृतीय व्याहृति से तृतीया और समस्त व्याहृतियों से चतुर्थी उपहिता होती है ॥४॥ "अघोर चक्षुः" द्वारा आज्य के लेपन से दोनों नेत्रों का विमृजन करना चाहिए ॥५॥ "कयानश्चित्र" इससे तीनो से केशान्तो का अभिमृशन करे ॥६॥ उतत्या दैव्या भिषजा" इत्यादि चार ऋचाऐं है। अनुद्रुति के अन्त में स्वाहाकार से मूर्धा मे सस्राव करे ॥७॥ यहां पर कुछ मनीषियों का मत है कि कुमार को उत्सङ्ग में आननयन करने वाली दोनों ओर से सुजात से "आते योनिम्" इससे करना चाहिए ॥८॥ या तूष्णी भाव से

ही करे ॥९॥ उसकी अञ्जलि में फलों को देकर पुण्याह वाचन गावना है ॥१०॥ यहाँ पर पुंसवती होती है ॥११॥ "इदैव स्तम्" इस सूक्त शेष से गृहों को प्रतिपादन करते हैं ॥१२॥

॥ अथ ध्रुवदर्शनम् ॥

दधिक्राव्णो अकारिषमिति दधि सपिवेयाताम् ।१। वाग्यतावासीयातामाध्रुवदर्शनात्।२। अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति ध्रुवैधिपोष्या मयीति ।३। ध्रुवं पश्यामि प्रजां विन्देयेति ब्रूयात् ।४। त्रिरात्र ब्रह्मचर्यं चरेयाताम् ।५। अधःशयीयाताम् ।६। दध्योदनं सभुञ्जोयाताम् पिबतञ्च तृष्णुत चेति तृचेन ।७। सायप्रातर्वैवाह्यमग्निं परिचरेयाताम् अग्नये स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति ।८।
पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसाश्विनामुभौ ।
पुमानिन्द्रश्चाग्निश्च पुमांसं वर्धतां मयि स्वाहेति
पूर्वां गर्भकामा ।९। दशरात्रमविप्रवासः ।१०।

"दधि क्राव्णो अकारिषम्"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दधि का पान करे। ध्रुव दर्शन से वाग्यत अवास करे ॥१-२॥ सूर्य के अस्तमित हो जाने पर "ध्रुवैधिपोष्या मयी" इससे ध्रुव को दिखाता है ॥३॥ "ध्रुव पश्यामि प्रजां विन्दय"—यह बोलना चाहिए ॥४॥ तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य व्रत का समाचरण करना चाहिए। ॥५॥ नीचे भूमि पर शयन करे ॥६॥ दध्योदन का भोजन करे। और वह भोजन भी "पिवतच्च तृणुतंच" इस तृच से करना चाहिए ॥७॥ सायङ्काल और प्रातःकाल दोनों समयों में वैवाह्य अग्नि का परिचरण करना चाहिए। "अग्नये स्वाहा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इस मन्त्र को पढ़ कर करना चाहिए। ॥८॥ मित्रावरुण दोनों पुमान् हैं—दोनों अश्विनी कुमार पुमान् है—इन्द्र और अग्नि पुमान् है—मुझमे पुमांस की वृद्धि होवे। पूर्वा गर्भ की कामना वाली है। दश रात्रि तक विप्रवास नहीं होना चाहिए ॥९ १०॥

॥ अथ चतुर्थीकर्म ॥

अथ चतुर्थीकर्म ।१। त्रिरात्रे निवृत्ते स्थालीपाकस्य जुहोति ।२।
अग्ने प्रायश्चित्तिरसि त्व देवानां प्रायश्चित्तिरसि ।
याऽस्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अप जहि ॥
वायो प्रायश्चित्तिरसि त्व देवानां प्रायश्चित्तिरसि ।
याऽस्या अपुत्रिया तनूस्तामस्या अप जहि ॥
सूर्यं प्रायश्चित्तिरसि त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ।
यास्या अपशव्यस्या तनूस्तामस्या अप जहि ॥
अर्यमणंनुदेव कन्या अग्निमयक्षत सेमा देवो अर्य्यमा प्रेतो मुञ्चातु मामुत. । वरुण नु देव कन्या अग्निमयक्षत सेमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातु मामुतः ।३। प्रजापत इति सप्तमी ।४। सौविष्टकृत्यष्टमी ।५।

इसके अनन्तर चतुर्थी होता है ॥१॥ तीन रात्रि व्यतीत हो जाने पर स्थाली पाक का हवन करता है ॥२॥ हे अग्ने ! आप प्रायश्चित्ति है । आप देवों के प्रायश्चित्ति है । जो इसकी पत्नि का हनन करने वाली तनू है इसके उसका आप अपत्याग करवें अर्थात् उसे हरा देवें ! हे वायुदेव ? आप प्रायश्चित्ति हैं और देवों के प्रायश्चित्ति होते है जो इसकी अपुत्रिया तनू है । इसके उसका आप अपहरण करें । हे सूर्य ! आप प्रायश्चित्ति है और आप देवो के प्रायश्चित्ति है । जो इसका अपशव्या तनू है इसके उसको आप अपत्याग करें । कन्या ने अर्यमा देव का और अग्नि का यजन किया वह यह है अर्यमा देव प्रेत इसको छोड़ देवें मेरे लिये । कन्या ने वरुण देव अग्नि का यजन किया है वह देव पूषा प्रेत इसको मेरे लिये मुक्त कर देवें । "प्रजापत"–यह सप्तमी है । सौविष्टकृती अष्टमी है ॥३-५॥

॥ अथ गर्भाधानम् ॥

अध्याण्डामूल पेषयित्वर्तु वेलायाम् उदीर्ष्वातः पतिवतीति

द्वाभ्यामन्तेस्वाहाकाराभ्यां नस्तो दक्षिणतो निषिञ्चेत्
।१। गन्धर्वस्य विश्वावसोर्मुखमसीति उपस्थं प्रजनयिष्य-
माणोऽभिमृशेत् ।२। समाप्ते अर्थे जपेत् ।३। प्राणे ते रेतो
दधाम्यसाविति अनुप्राण्यात् ।४।
यथा भूमिरग्निगर्भा यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ।
वायुर्यथा दिशां गर्भ एव गर्भं दधामि तेऽसाविति वा।५।
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरो अत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।६।
पुमांस पुत्रं जनय त पुमाननु जायताम् ।
तेषां माता भविष्यसि जातानां जनयामि च ।७।
पुंसि वै पुरुषे रेतस्तत्स्त्रियामनु षिञ्चतु ।
तथा तदब्रवीद्धाता तत्प्रजापतिरब्रवीत् ।८।
प्रजापतिर्व्यदधात् सविता व्यकल्पयत् ।
स्त्रीषूयमन्यात् स्वादधत्पुमांसमा दधादिह ।९।
यानि भद्राणि बीजानि पुरुषा जनयन्ति नः ।
तेभिष्ट्व पुत्रं जनय सुप्रसूर्धेनुका भव ।१०।
अभिक्रन्द वीलयस्व गर्भमा धेहि साधय ।
वृषाण वृषन्ना धेहि प्रजायै त्वा हवामहे ।११।
यस्य योनिं पतिरेतो गृभाय पुमान् पुत्रो धीयतां गर्भे अन्तः ।
तंपिपृह्दिदशमास्योऽन्तरुदरेसजायतांश्रेष्ठयतमःस्वानामितिवा।।

अभ्याण्डर पर्ण फलिनी है—इस कर्म को भर्त्ता ही करता है क्योंकि पुंस संस्कार का जनन होता है अतः अन्य नहीं किया करता है। अभ्याण्डा के मूल को ऋतु के समय में पेषण करे "नदीष्वतिः पतीवतीति" इस मन्त्र से अन्त में स्वाहाकार वाले दोनों से दक्षिण से निषिञ्चन करे ।।१।। गन्धर्वस्य विश्वावसोर्मुखमस्तीति" इस मन्त्र से उपस्थ को प्रजन मिष्यमाण अभिमर्षित करना चाहिए ।।३।। अर्थ के समाप्त होजाने पर जाप करे। अनुप्राण्य होने से "प्राणे ते रेतो दधाम्यसाविति"—इस मन्त्र से जाप करे ।।३-४।। जिस प्रकार से यह भूमि अग्नि को गर्भ में

दूर्ध्वं सीमन्तमुन्नयति भूर्भुवः स्वरिति ।८। उत्सङ्गे निधाय ।९। त्रिवृति प्रतिमुच्य कण्ठे बध्नाति अयमूर्जावतो वृक्ष ऊर्जीव फलिनी भवेति ।१०। अथाऽऽह वीणा गाथिनः राजानं संगायतेतिः यो वाप्यन्यो वीरतर इति ।११। उदपात्रेऽक्षतानवनिनीय विष्णुर्योनिं कल्पयतु राकामहमिति ।१२। षड्भ्टचेन पाययेत् ।१३। अथास्या उदरमभिमृशेत् ।१४।

सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः ।
छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम साम ते तनूः ।१५।

मोदमानी गापयेत् ।१६। महाहेमवतीं वा ।१७। ऋषभो दक्षिणा ।१८।

प्रथम गर्भ में सात मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार होता है ।१। स्नान की हुई अहत वस्त्र धारिणी महाव्याहृतियों से हवन करे ।२-३। स्थाली पाक का हवन करना चाहिए। कुछ विद्वानों का मत है कि मुग्दौदन का हवन करना चाहिए ।४-५। पुंवत उपकरण होने चाहिए और नक्षत्र भी होना चाहिए । धाता असुष में प्राची को देवें और अक्षिति जीवातु को प्रदान करें। हम सत्य धर्म वाले देव की सुमति को ध्यान में लाते है। धाता प्रजा का और राय का ईश है। धाता ने इस विश्व भुवन को जन्म दिया है। अर्थात् धाता जी ने इस सम्पूर्ण विश्व एवं भुवन को समुत्पन्न किया है। धाता यजमान के लिये पुत्र का प्रदान करने वाला है। उसी के लिये हव्य को घृत की भाँति हवन करो। "नेजमेष परा वर्तेति" ये तीन है। "प्रजापत" यह षष्ठी है ।७। तीन श्वेत वाली शलसी से अथवा दर्भ (कुश) की सूची से उदुम्बर शलादुओं के साथ मध्य से ऊर्ध्व को "भुर्वः स्वः" इनसे सीमन्त का उन्नयन करता है। ।८। उत्सङ्ग मे रखे ।९। त्रिवृत् में प्रतिमोचन करके कण्ठ में बांधता है। "आयुर्मृ जायतो वृक्ष ऊर्जीविकलिनी भवेति"—इस ऋचा से बांधना चाहिए ।१०। इसके अनन्तर वीणागाथियों को कहता है। और "राजानं संगामतेति यो वाप्यन्यो वीरतर इति"—इस मन्त्र का उच्चारण करके ही

कहना चाहिए ।११। जल के पात्र में अक्षतों को अव विनयय करके इस निम्न ऋचाओं का उस समय में उच्चारण करे—"विष्णुर्योनि कल्प मनु" "राकामहामोति" ।१२। षट् ऋच से पायन करना चाहिए ।१३। इसके अनन्तर उदर त्रिवृत्त में शिर और चक्षु का गाने वाले का त्राण करने वाले हे । यजुर्वेद के छन्द अङ्गों की रक्षा करे और साम तुम्हारे तनु की रक्षा करे ।१५। मोदमानी का गान करावे ।१६। अथवा महा हेमवती का कराना चाहिए ।१७। ऋष मे दक्षिणा से है ।१८।

।। अथ सूनिकागृहोपलेपनम् ।।

काकातन्या मचकचातन्याः कोशातक्या वृहत्याः काल-क्लीतकस्येति मूलानि पेषयित्वोपलेपयेद्गृहं यस्मिन् प्रजायेत रक्षसामपहृत्यै ।१।

राक्षसो के विनाश के लिये जो सूतिका गृह हो अर्थात् जिसमे जनम होवे उस घर को काकातनी-मचक चातनी कोशातकी-कालकीलक और वृहती इस पाँचों वनस्पतियो के मूलो को पीसकर उस भाग का उप लेपन करना चाहिए । इन उक्त वनस्पतियों को लोक में काककदली पयोटी-घोषावती-काली बेरु और वृहती इन नामो से प्रसिद्धि है । यह गर्भ का सस्कार नही है केवल राक्षसो के विनाशार्थ ही प्रिय लेपन होता है ।

।। अथ जातकर्म ।।

अथ जातकर्म ।१। जात कुमारं त्रिर् अभ्यवान्यानुप्राण्यात् ऋचा प्राणिहि यजुषा समनिहि, साम्नोदनिहीति ।२। सर्पिर्मधुनी दध्युदके च सन्निनीय व्रीहियवौ वा सन्निघृष्य त्रिः प्राशयेज्जातरूपेण ।३।

प्र ते यच्छामि मधुमन्मखाय वेद प्रसूतं सवित्रा मघोना । आयुष्मान् गुपितोदेवताभि शतंजीवशरदोलोकेअस्मिन्निति ।। असाविति नामास्य दधाति घोषवदाद्यन्तरन्तस्थ द्व्यक्षरं चतुरक्षर वाऽपि वा षडक्षर कृत कुर्यान्नत द्धितत् ।४।

तदस्य पिता माता च विद्याताम् ।५। दशम्यां व्यावहारिकं ब्राह्मणजुष्टम् ।६। गोः कृष्णस्य शुक्लकृष्णानि लोहितानि च रोमाणि मष कारयित्वैतस्मिन्नेव चतुष्टये सन्निनीय चतुः प्राशयेदिति माण्डूकेयः ।७। भूऋँग्वेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, भुवो यजुर्वेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, स्वः सामवेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, भूर्भुवः स्ववकिो वाक्यमितिहासपुराणमों सर्वान् वेदाँस्त्वयि दधाम्यसौ स्वाहेति वा ।८। मेधाजननं दक्षिणे कर्णे वागिति त्रिः ।९। वाग्देवी मनसा सविदाना प्राणेन वत्सेन सहेन्द्रप्रोक्ता । जुषतांत्वा सौ मनसाय देवी महोमन्द्रा वाणी वाणीची सलिला स्वयम्भूरिति । चानुमन्त्रयेत।१०। शणसूत्रेण विग्रन्थ्य जातरूपम् ।११। दक्षिणे पाणावपिनह्य आ उत्थानात् ।१२। ऊर्ध्वं दशम्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ।१३। अमा वा कुर्वीत ।१४।

इसके अनन्तर प्रसून हुए शिशु का कर्म बतलाया जाता है।१। जो कुमार जन्म ग्रहण करके माता के उदर दरी से बाहिर आया है उसको अनुप्राणित करने के लिये "ऋच, प्राणीहि यजुषा मननिहि साम्नो दनिहि इति" इसका उच्चारण करे ।२। घृत-मधु-दधि-उदक में भली भांति निनयन करके अथवा व्रीहि और यवो को सन्निघर्षण करके जातरूपसे तीन बार प्राशन कराना चाहिए ।३। मख के लिये तुझको सविता मघवान के द्वारा प्रसूत मधुमत् वेदको देता हूँ । तू देवताओं के द्वारा आयुष्मान और सुरक्षित किया हुआ है इस लोक में सौ वरस तक जीवित रहो। यह है—ऐसा इसका नाम धारण कराता है। घोप वाला आद्यन्तस्थ दो अक्षरों वाला—अथवा चार अक्षरो वाला नाम किया जाना चाहिए। षडक्षर भी नाम करे किन्तु वह हित कर नही होता है ।४। वह इसके माता और पिता जाने ।५। दशमी मे व्यवहार सम्बन्धी है जो ब्राह्मणों से जुष्ट होता है ।६। कृष्ण गौ के शुक्ल कृष्ण हित रोमों का भष्ट

करा कर इसी चतुष्टय में भली भांति निनयन करके प्राशन कराना चाहिए—यह माण्डूकेय प्रतिपादित है ।७। भूः ऋग्वेद को तुझ में धारण करता हूं यह स्वाहा है—भुवः यजुर्वेद को तेरे अन्दर रखता हूँ—यह स्वाहा है—स्वः सामवेद को तुझ में धारण करता हूं यह स्वाहा है—भूर्भुवः स्वः वाक्ये वाक्य इतिहास पुराण समस्त वेदों को तुझ में धारण करता हूँ—यह स्वाहा है अथवा महकरे।८। मेधा के जनन को दक्षिण कर्ण में "वाणीति" इसको तीन बार करे ।९। वाग्देवी मन से सविधाना होती हुई प्राण के वत्स के साथ इन्द्र प्रोक्ता है । देवी मही मन्द्रा वाणी बर्णीची सलिला स्वयम्भू तेरा सेवन करे । और अनुमन्त्रित करे ।१०। क्षणा सूत्र से जात-रूप को विग्रथित करे ।११। जब तक सूतिका उत्थान हो दक्षिण हाथ में बाँधे ।१२। दशमी के ऊपर ब्राह्मणों को दे देना चाहिए ।१३। अथवा यथा करे ।१४।

॥ अथ नामकर्म ॥

दशरात्रे चोत्थानम् ।१। मातापितरौ शिरः स्नातावहत-वाससौ ।२। कुमारश्च ।३। एतस्मिन्नेव सूतिकाग्नौ स्था-लीपाकं श्रपयित्वा ।४। जन्मतिथिं हुत्वा त्रीणि च भानि सदैवतानि ।५।तन्मध्ये जुहुयाद्यस्मिन् जातः स्यात् पूर्वं तु दैवत सर्वत्र ।६।

आयुष्टे अद्य गीर्भिरयमग्निर्वरेण्यः ।
आयुर्नो देहि जीवसे आयुर्दा अग्ने हविषा वृधानो ।
घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यम् ।
पितेवपुत्रमिहरक्षतादिममिति। त्वंसोममहेभगमिति ।
दशमी स्थालीपाकस्य ।७। नामधेयं प्रकाश्य कृत्वा ।८।
ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य ।९। एवमेव मासि-मासि जन्म-तिथिं हुत्वा ।१०। ऊर्ध्वं सवत्सराद् गृह्येऽग्नौ जुहोति।११।

दश रात्रियों के समाप्त होने पर सूतिका का उत्थान होता है ।१। शिशु के माता-पिता दोनो शिर से स्नान किये हुए अहत धारण करें । और उद्भव जात कुमार को भी स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र धारण कराना चाहिए ।३। इसी दिन में-इसी सायक से ऐसा स्पष्ट होता है कि पहिले सूतिक गृह मे रक्षण के लिये अग्नि को धारण रखना चाहिए और उसीमे जातकर्म करना चाहिए । इसी सूतिकाग्नि में स्थालीपाक का श्रवण करे अर्थात् हवन करना चाहिए ।४। जन्म तिथि को हवन करके और तीन सदैवतो को करे ।५। जिसमें जात होवे उसके मध्य मे हवन करना चाहिए । पूर्व में तो सर्वत्र दैवत करे ।६। हे आयुषे! आज वाणियो के द्वारा यह अग्नि वरेण्य है । हे अग्ने ! हवि के द्वारा वर्धमान होते हु आयु के देने वाले हमको आयु दो जिससे जीवित रहता है घृत प्रतीक घृतयोनि घृत-मधु और चारुगव्य को पीकर वृद्धि को प्राप्त होवे । पिता की ही भाँति इन पुत्र की यहाँ पर रक्षा करो । आप सोम है भग का यजन करे । दशमी स्थाली पाक का है ।७। नामधेय को प्रकाशित करे ।८। ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराना चाहिए ।९। इस तरह से मास-मास में अर्थात् प्रत्येक मास में जन्म तिथि को हवन करे ।१०। एक वर्ष के ऊपर गुह्य अग्नि में करता है ।११।

।। अथ होमः ।।

अग्नये कृत्तिकाभ्यः ।१। प्रजापतये रोहिण्यै ।२। सोमाय मृगशिरसे ।३। रुद्रायाऽऽर्द्राभ्यः ।४। अदितये पुनर्वसुभ्याम् ।५। बृहस्पतये पुष्याय ।६। सर्प्पेभ्यो ऽश्लेषाभ्यः ।८। पितृभ्यो मघाभ्यः ।८। भगाय फल्गुनीभ्याम् ।९। अर्यम्णे फल्गुनीभ्याम् ।१०। सवित्रे हस्ताय ।११। त्वष्ट्रे चित्रायै ।१२। वायवे स्वातये १३। इन्द्राग्निभ्यांविशाखाभ्याम् ।१४। मित्रायाऽनुराधायै ।१५। इन्द्राय ज्येष्ठायै ।१६। निर्ऋत्यै मूलाय ।१७। अद्भ्योऽषाढाभ्यः ।१८।

विश्वेभ्यो देवेभ्योऽषाढाभ्यः ।१९। ब्रह्मणेऽभिजिते ।२०।
विष्णवे श्रवणाय ।२१। वसुभ्यो धनिष्ठाभ्यः ।२२। वरु-
णाय शतभिषजे ।२३। अजायैकपदे प्रोष्ठपदाभ्यः ।२४।
अहिर्बुध्न्याय प्रोष्ठपदाभ्यः ।२५। पूष्णेरेवत्यै ।२६।
अश्वि भ्यामश्विनीभ्याम् ।२७। यमाय भरणीभ्यः ।२८।

'अग्नये'—इत्यादि प्रक्षिप्त खण्ड है तथापि देवताओं के ज्ञानके लिये इसकी व्याख्या की जाती है—अग्नि देवता के लिये कृत्तिकाओं को आहुति देवे ।१। रोहिणी का देवता प्रजापति है अत एव प्रजापति के लिये रोहिणी के देवे ।२। सोम देवता को लिये मृग शिरा को देवे ।३। रुद्र के लिए आर्द्राओं को देवे ।४। अदिति के लिए पुनर्वसुओं को देवे ।५। बृह-स्पति देव के लिये पुरुष को देवे ।६। सर्पों के लिये अश्लेषाओं को देवे ।७। पितृगण के लिये मघाओ को देवे ।८। भगदेव के लिये दोनों पूर्वोत्तरा फाल्गुनियों को देवे ।९। अर्यमा के लिये फाल्गुनियों को देवे ।१०। सविता के लिये हस्त को देवे ।११। त्वष्टा के लिये चित्रा को देवे ।१२। वायुदेव के लिये स्वाति को देवे ।१३। इन्द्र और अग्नि दोनों देवों के लिये विशाखाओं को देना चाहिए ।१४। मित्र के लिये अनुराधा को-देवे ।१५। इन्द्र के लिये ज्येष्ठा को देवे ।१६। निर्ऋति के लिये मूल को देवे ।१७। जलों के लिये अषाढ़ाओं को देवे ।१८। विश्वेदेवों के लिये अषाढ़ाओं को देवे ।१९। ब्रह्मा के लिये अभिजित को देवे ।२०। विष्णु के लिये श्रवण को देवे ।२१। वसुगण के लिये धनिष्ठाओं को देना चाहिए ।२२। वरुण के लिये शतभिषा को देवे ।२३। अज एक पद के लिये प्रोष्ठ-पदाओं को देवे ।२४।अहिर्बुध्न्य के लिये प्रोष्ठपदाओं को देवे ।२५। पूषा के लिये रेवती को देवे ।२६। अश्विनीकुमारों के लिये आश्विनियों को देवे ।२७। यम के लिये भरणियों को देवे ।२८।

॥ अथ अन्नप्राशनम् ॥

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ।१। आजमन्नाद्यकामः ।२। तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः ।३। मात्स्यं जवनकामः ।४। घृतौदनं

तेजस्कामः ।५। दधिमधुघृतमिश्रमन्नं प्राशयेत् ।६।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र-प्र दातार तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।।
यच्छिद्धि महश्चित्
इममग्न आयुषे वर्चसे तिग्ममोजो वरुण सोम राजन् ।
मातेवास्मा अदितिः शर्मयसद्विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासदिति ।।
हुत्वा ।७। अग्न आयूंषीति अभिमन्त्र्य ।८। उदगग्रेषु केशेषु स्योना पृथिवि भवेति उपवेश्य ।९। महाव्याहृतिभिः प्राशनम् ।१०। शेषं माता प्राश्नीयात् ।११।

छटवें मास में अन्न का प्राशन करावे ।।१।। अन्नाद्य की कामना वाला अजा के शरीर से समुत्पन्न को प्राशन करावे ।२। ब्रह्मवर्चस् की कामना वाला तीतर का प्राशन करावे ।३। जवन की कामना वाला मात्स्य आमिष का प्राशन करावे ।४। तेज की कामना वाला घृतोदन का प्राशन करावे ।५। दधि—घृत—मधु से मिश्रित अन्न का प्राशन कराना चाहिए ।६। "अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमी वस्य शुष्मिणः । प्र-प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।"—"यच्छिद्धी"—"महश्चित्"—"इममग्न आयुषे वर्चसे तिग्म मो जो वरुण सोम राजन् । मातेवास्मा अदिति शर्म यं स विश्वेदेवा जरदष्टि यथासदिति"— इन ऋचाओं से हवन करे ।७। "अग्नि आयूंषि" इससे अभिमन्त्रित करे। ।८। उदग्र कुशाओं पर "स्योना पृथिवि भवेति"—इस मन्त्र से बिठा देवे ।९। महा व्याहृतियों से प्राशन करावे ।१०। शेष जो रह जावे उसको माता को खा लेना चाहिए ।११।

।। अथ चूडाकर्म ।।

संवत्सरे चूडाकर्म ।१। तृतीये वा वर्षे ।२। पञ्चमे क्षत्रियस्य ।३। सप्तमे वैश्यस्य ।४। अग्निमुपसमाधाय ।५।व्रीहियवानां तिलमाषाणामिति पात्राणि च पूरयित्वा ।६।

आनडुह च गोमय कुशभित्तं च केशप्रतिग्रहणायादर्शन-
वनीत लोहक्षुर चोत्तरत उपस्थाप्य ।७।
सपृच्यध्वं ऋतावरीर्ऊर्मिणा मधुमत्तमाः ।
पृञ्चतीर्मधुना पयो मन्द्रा धनस्य सातय इति ॥
उष्णास्वप्सु शीता आसिञ्चति ।८।
आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे ।
त्र्यायुष जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
अगस्त्यस्य त्र्यायुष यद्देवानां त्र्यायुषम् ।
तत्ते करोमि त्र्यायुषमिति ॥"
असाविति शीतोष्णाभिरद्भिर्दक्षिणं केशपक्ष त्रिरभ्यनक्ति
।९। शलल्यैके विजटान् कृत्वा ।१०। नवनीतेनाभ्यज्य
।११। ओषधे त्रायस्वंनमिति कुशतरुणमन्तर्दधाति ।१२।
केशान् कुशतरुणं चाऽऽदर्शन सस्पृश्य ।१३। तेजोऽसि,
स्वधितिष्टे पिता मैन हिंसीरिति लोहक्षुरमादत्ते ।१४।
येनावपत् सविता श्मश्रग्रे क्षुरेण राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
येन धाता बृहस्पतिरिन्द्रस्य चावपच्छिरः ।
तेनब्रह्माणोवपतेदमद्याऽऽयुष्मान्दीर्घायुरयमस्तुवीरोऽसाविति॥
केशाग्राणि छिनत्ति कुशतरुणं च ।१५। एवं द्वितीयमेव
तृतीयम् ।१६। एव द्विरुत्तरतः ।१७। निकक्षयोः षष्ठसप्तमे
गोदानकर्मणि ।१८। एतदेव गोदानकर्म यच्चूडाकर्म ।१९।
षोडशे वर्षेऽष्टादशे वा ।२०। तृतीये तु प्रवपने गां ददा-
त्यहतं च वासः ।२१। तूष्णीमावृतः कन्यानाम् ।२२।
प्रागुदीच्यां दिशि बह्वौषधिके देशेऽपां वा समीपे केशा-
न्निखनन्ति ।२३। नापिताय धान्यपात्राणि नापिताय
धान्यपात्राणि ।२४।

सम्वत्सर में चूड़ाकर्म होना चाहिए। अर्थात् एक वर्ष के अन्दर ही चूड़ा संस्कार कर देवे ।१। अथवा यदि किसी अड़चन के कारण प्रथम

वर्ष मे चूड़ाकर्म न हो सके तो तृतीय वर्ष मे करे। तात्पर्य यह है कि द्वितीय वर्ष में इस कर्म को नही करना चाहिए।२। यह नियम विप्र के लिये है। क्षत्रिय का चूड़ाकर्म पाँचवें वर्ष होता है।३। वैश्य का चूड़ाकर्म सातवें वर्ष में हुआ करता है।४। अग्नि का उप समाधान करे। ।५। व्रीहियवों के और तिलमाषों के पात्रों को पूरित करके।६। आनडुह और गोमय तथा मूल सहित कुशा को केशों के प्रति ग्रहण के लिये आदर्श—नवनीत और लोहे के छुरा को उत्तर की ओर उपस्थापित करना चाहिए।७। "संपृच्छध्वं स्मृता नदी र्ऊर्मिणा मधुमत्तमाः पृञ्जती-मंधुना पयोमन्द्रा धनस्य सातम" इस मन्त्र का उच्चारण करके उष्ण जलों में शीतलजल का आसिञ्चन करता है।८। "आप उन्दन्तु जीव से दीर्घायुत्वाय वर्चसे। त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। अगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषम्। तत्तेकरोमि त्र्यायुषम्" यह इस मन्त्र से शीतल और उष्ण जलों से दक्षिण केशों के पक्ष को तीन बार अभ्यनक्त करता है।९। कुछ विद्वानों का मत है कि शलली से विजटा करे ।१०। नवनीत से अभ्यक्त करे।११। "ओषधे त्रायस्वैनम्" इस मन्त्र से कुशतरुण की अन्तर्धान करता है।१२। केशों को और कुशतरुणों को आदर्श (दर्पण) से संस्पर्शन करे।१३। तेजोऽसि स्वाधितिष्ठे पिता, मैनं हिंसीः"—इस मन्त्र से लौह के क्षुर का ग्रहण करता है।१४। "येनाव-पत्सविता श्मश्रूणे क्षुरेण राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। येनधाता बृहस्पति इन्द्रस्य चावपच्छिरः तेन ब्रह्माणो वपते दमंचाऽऽयुष्मान् दीर्घायुरय-मस्तु वीरोऽसाविति"—इस मन्त्र से केशों के अग्र भागों को और कुश-तरुण को छेदन करता है।१५। इसी प्रकार से द्वितीय, तृतीय को करे। ।१६। इसी रीति से दो उत्तर की ओर से करें।१७। निकक्षों में षष्ठ सप्तम गोदान कर्म में होता है।१८। यह ही गोदान कर्म है जो कि चूड़ा कर्म होता है।१९। सोलहवें वर्ष मे अथवा अठारहवें वर्ष में होता है।२०। तृतीय वपन में तो गो को देता है। और अहत अर्थात् नूतन वस्त्र होता है।२१। चुपचाप आवृत होता हुआ कन्याओं का करे।२२। प्राक्उदीची दिशा में—बहुत औषधियों वाले देश में अथवा जलों के

समीप में केशों को निखनन किया करते हैं ।२३। नापित के लिये धान्य पात्रों को देना चाहिए । नाई को जो क्षुरा से वपन करता है उसको धान्य पात्रों को देवे ।२४।

इति शाङ्खायनगृहचसूत्रे प्रथमोऽध्यायः

द्वितीय अध्याय

।। अथ उपनयनम् ।।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत ।१। ऐणेयेनाऽजिनेन ।२। गर्भदशमेषु वा ।३। गर्भेकादशेषु क्षत्रियं रौरवेण ।४। गर्भद्वादशेषु वैश्यं गव्येन ।५। आ षोडशाद् वर्षाद् ब्राह्मणस्याऽनतीतः कालः ।६। आ द्वाविंशात् क्षत्रियस्य ।७। आ चतुर्विंशाद् वैश्यस्य ।८। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ।९। नैनानुपनयेयुः ।१०। नाऽध्यापयेयुः ।११। न याजयेयुः ।१२। नैभिर्व्यवहरेयुः ।१३। अहतेन वा सर्वान्मे- खलिनः ।१४। मौञ्जी मेखला ब्राह्मणस्य ।१५। धनुर्ज्या क्षत्रियस्य ।१६। ऊर्णासूत्री वैश्यस्य ।१७। पालाशो बैल्वो वा दण्डो ब्राह्मणस्य ।१८। नैयग्रोधः क्षत्रियस्य ।१९। औदुम्बरो वैश्यस्य ।२०। प्राणसमितो ब्राह्मणस्य ।२१। ललाटसमितः क्षत्रियस्य ।२२। केशसंमितो वैश्यस्य ।२३। सर्वे वा सर्वेषाम् ।२४। येनाऽऽबद्धेनोपनयेताऽऽचार्याधीनं

तत् ।२५। परिवाप्योपनेयः स्यात् ।२६। आप्लुत्याऽलङ्-
कृत्य ।२७। हुत्वा जघनेनाऽग्नि तिष्ठतः प्राङ्मुख आचा-
र्यः प्रत्यङ्मुख इतरः ।२८।तिष्ठँस्तिष्ठन्तमुपनयेत् ।२९।
मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविर समृद्धम् ।
अनाहनस्यं वसन चरिष्णु परीदं वाज्यजिन दधेऽहम् ।३०।।

गर्भ धारण जब करे उससे आठवें वर्ष मे ब्राह्मण का उपनयन करा देना चाहिए ।१। ऐणेय अजिन अर्थात् मृग चर्म के द्वारा उपनयन ब्राह्मण का करे ।२। अथवा गर्भ काल से दशम वर्ष में करना चाहिए ।३। गर्भ से ग्यारहवें वर्ष मे रौरव अर्थात् रुरु के चर्म के द्वारा क्षत्रिय का उपनयन करे ।४। गर्भ काल से बारहवें वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार गव्य चर्म के द्वारा करे ।५। सोलह वर्ष तक ब्राह्मण का काल अतीत नही होता है ।६। बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का उपनयन काल अतीत नही होता है ।७। चौबीस वर्ष की आयु तक वैश्य के उपनयन संस्कार का समय अनतीत रहा करता है ।८। इन बतायी हुई तीनों वर्णों की अवस्थाओ से ऊपर ये सब सावित्री के अधिकार से पतित हो जाया करते है ।९। सावित्री से पतित हो जाने वाले इन लोगों का फिर उपनयन नही करना चाहिए ।१०। न इन लोगो का अध्यापन ही करना चाहिए ।११। इन पतितो से याजन कर्म भी न करावे ।१२। इन पतित दशा मे पंहुच जाने वालों के साथ कोई व्यवहार भी नही रखना चाहिए । ।१३। जिनका उपनयन कराना हो और जो इस सस्कार के योग्य पात्र हों उनको अहत के द्वारा सबको मेखला वाले बनावे ।१४। मूञ्ज की बनी हुई मेखला ब्राह्मण वर्ण वाले की होती है । क्षत्रिय वर्ण वाले बालक की मेखला धनुष की प्रत्यञ्चा की बनवानी चाहिए ।१६। वैश्य वर्ण के बालक की मेखला ऊन सूत की होनी चाहिए ।१७। ढाक वृक्ष का अथवा विल्व वृक्ष का दण्ड ब्राह्मण का होता है ।१८। क्षत्रिय वर्ण के बालक का दण्ड वट वृक्ष का होता है । वैश्य का दण्ड गूलर वृक्ष का हुआ करता है ।१९-२०। ब्राह्मण

का प्राण संमित होता है अर्थात् प्राण वायु जहाँ रहता है वहाँ तक लम्बाई में परिमाण वाला दण्ड होना चाहिए।२१। क्षत्रिय वर्ण का दण्ड ललाट के बराबर पहुंचने वाला होना चाहिए।२२। वैश्य का दण्ड माथे के केशों के बराबर पहुंचने वाला होना है। ।२३। अथवा सब के दंड सभी होते है।२४। जिस आवबद्ध से द्वारा उपनयन क्रिया जावे वह आचार्य के अधीन होता है।२५। परिवायन करके ही उपनयन करने के योग्य होता है। ।२६। आप्लवन करके अलकृत करे ।२७। हवन करके जवन के द्वारा अग्नि के समीप स्थित हुए के प्राङ्मुख आचार्य रहते हैं और इतर प्रत्यङ्मुख होकर स्थित रहा करता है ।२८। खडे होते हुए को खडा होते हुए ही उपनयन करना चाहिए ।२९। मित्र का चक्षु वरुण वलीय-तेज-यशस्वी–स्थावर और समृद्ध है। अनाहनस्य वसन का चरिष्णु मैं बाजि का अजिन धारण करता हूँ।३०।

इयं दुरुक्तात् परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती न आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमाविशन्ती सखा देवी सुभगा मेखलेयमिति॥

त्रिर्मेखलां प्रदक्षिणां त्रिः परिवेष्टय ।१। ग्रन्थिरेकश्चयोऽपि वाऽपि वा पञ्च ।२। यज्ञोपवात कृत्वा यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोप नह्यामीति ।३। अञ्जली पूरयित्वाऽथैनमाह को नामासीति ।४। असावहं भो इतीतरः ।५। समानाऽऽर्षेय इत्याचार्यः ।६। समानार्षेयोऽह भो इतीतरः ।७। ब्रह्मचारी भवान ब्रूहीति ।८। ब्रह्मचार्यहं भो इतीतरः ।९। भूर्भुवः स्वरिति अस्याऽञ्जलींस्त्रीन् आसिच्य।१०। दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां पाणी संगृह्य जपति ।११। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामुपनयाम्यसाविति ।१२। गणानान्त्वेति गणकामान्।१३। आ गन्ता मा रिषण्यतेति योधान् ।१४। महाव्याहृतिभिर्व्याधितान् ।१५।

"यह दुरुक्त से परिबाधामाना होती हुई पवित्र वर्ण की पावन बनाती हुई नही गयी । प्राणापान से बल में प्रवेश करती हुई यह सखा:- देवी सुभगा मेखला है । त्रिगुणित मेखला को प्रदक्षिण तीन वार परि-वेष्टन करे ।१। उस मेखला मे ग्रन्थि एक हो तीन होवे अथवा पाँच होसकती है ।२। यज्ञोपवीत बनाकर यह निम्न मन्त्र पढ़े—"आप यज्ञो पवीत हो, यज्ञ के उपवीत के द्वारा उपनद्ध करता हूँ।" ।३। दोनों हाथों की अञ्जलियों को पूरित करके इसके उपरान्त इससे कहे—"क्या नाम वाले हो?" ।४। दूसरा कहता है—,भो ! मैं यह हूँ अर्थात् मै अमुक नाम वाला हूं ।५। फिर आचार्य कहता है—"समानार्षेय:" है । दूसरा कहता है—"भो ! मै समानार्षेय हूं" ।६-७। फिर आचार्य कहता है—"आप कहो मै ब्रह्मचारी हूं" ।८। दूसरा उत्तर देता है—'भो ! मैं ब्रह्मचारी हूँ" ।९। फिर "भूर्भुवःस्वः" इससे इसकी अञ्जलि में तीन अञ्जलियों का आसेचन करके दक्षिण—उत्तर हाथों से दोनो हाथो को सग्रहण करके जाप करता है ।१०। वह जप यह है—"देवस्य त्वा सवितु प्रसवेश्विनोबाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या मुप नयाभ्यसौ—इति" ।११-१२। गण कामों को "गणानान्त्वेति"—योधाओ को—" आ गन्ता मा रिषण्येतेति"—व्याधितों को महा व्याहृतियों से करे ।१३-१५।

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पूषा ते हस्तमग्रभीदर्यमा हस्तमग्रभीत् ।
मित्रस्त्वमसि धर्म्मणाऽग्निराचार्य्यस्तव ॥

असावहं चोभौ अग्न एतं ते ब्रह्मचारिणं परि ददामि, इन्द्रं तं ते ब्रह्मचारिणं परि ददामि, आदित्यैत ते ब्रह्म-चारिणं परि ददामि, विश्वेदेवा एतं वो ब्रह्मचारिण परि-ददामि दीर्घायुत्वाय सुप्रजास्त्वाय सुवीयाय रायस्पोषाय सर्वेषां वेदानामाधिपत्याय सुश्लोक्याय स्वस्तये ।१। ऐन्द्रीमावृतमावर्तं आदित्यस्याऽऽवृतमन्वावर्तं इति दक्षिणं

बाहुमन्वावृत्य।२। दक्षिणेन प्रादेशेन दक्षिणमंसमन्वव-हृत्य अरिष्यतस्ते हृदयस्य प्रियो भूयासमिति हृदयदेश-मभिमृशति।३। तूष्णीं प्रसव्यं पर्यावृत्य।४। अथास्योर्ध्वा-ङ्गुलि पाणिं हृदये निधाय जपति।५।

भग ने तेरे हाथ को गृभ्णित किया है, सविता ने हाथ को गृभ्णित किया है--पूषा ने तेरे हाथ को गृभ्णित किया है--अर्यमा ने हस्त को गृभ्णित किया है। तू मित्र है धर्म्म से तेरा अग्नि आचार्य है। "यह मैं और दोनों हे अग्ने! तुम्हारे इस ब्रह्मचारी को परिदान करता हूँ--हे इन्द्र! इस तुम्हारे ब्रह्मचारी को देता हूँ--हे आदित्य! तुम्हारे इस ब्रह्म चारी को परिदान करता हूँ--विश्वेदेवा! इस आपसे ब्रह्मचारी को दीर्घ आयुष्य के लिये, सुन्दर प्रजास्त्व के लिये, सुन्दर वीर्य के लिये, रायस्पोष के लिये अर्थात् धन के पोषण के लिये, सम्पूर्ण वेदों के आधिपत्य के लिये, सुश्लोक्य और स्वस्ति के लिये परिदान करता हूँ।१। "ऐन्द्रीमावृतयावर्तं' आदित्यस्याऽऽवृतमन्वावर्त इति" इस मन्त्र का उच्चारण करके दक्षिण बाहु का अन्वावर्तन करे।२। दाहिने प्रादेश से, दक्षिण अंस को अन्वहरण करके "अरिष्यतस्ते हृदयस्य प्रियो भूयासमिति" इस मन्त्र से हृदय देश का अभिमृष्ट करता है।३। मौनभाव से प्रसव्य का पर्यावर्तन करे।४। इसके अनन्तर ऊर्ध्व की ओर अङ्गुलि वाले पाणि को हृदय पर रखकर जाप करता है।।५।।

मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति।१। कामस्य ब्रह्मचर्यस्यासाविति।२। तेनैव मन्त्रेण तथैव प-र्यावृत्य।३। दक्षिणेन प्रादेशेन दक्षिणमसमन्वारभ्य जपति।४। ब्रह्मचार्यसि समिध मा धेहि अपोऽशान कर्म कुरु मा दिवा सुषुप्थाः वाचं यच्छ आ समिदाधानात्।५। एषा ते अग्ने समिदिति अस्यादधाति समिध तूष्णीं वा।६।

"तुम्हारे व्रत मे मेरे हृदय को धारण करता हूं मेरा चित्त तेरे चित्त के पीछे होवे मेरे वचन को एक मन वाला होकर सेवन करो अर्थात् एकाग्र मनसे मेरे वचनों का परिपालन करो। वृहस्पति तुमको मेरे लिये नियुक्त करें" ।१। काम का ब्रह्मचर्य का यह है इति ।२। उस ही मन्त्र के द्वारा उसी भांति या वर्त्तन करे ।३। दाहिने प्रादेश से दक्षिण अ स को अन्वारब्ध करके जप करता है ।४। ब्रह्मचारी हो, समिधाओ को मत धारण करो, अपोऽशान कर्म करो । दिन के समय में शयन मत करो । समिधादान से लेकर वाणी को दो ।५। हे अग्ने ! "यह तुम्हारी समिधा है" इति—इससे समिधा को कहता है अथवा तूष्णीभाव से करता है ।६।

।। अथ सावित्रानुवाचनम् ।।

संवत्सरे सावित्रीमन्वाह ।१। त्रिरात्रे ।२। अन्वक्षं वा ।३। गायत्री ब्राह्मणायानुब्रू यात् ।४। त्रिष्टुभं क्षत्रियाय ।५। जगतो वैश्याय ।६। सावित्री त्वेव ।७। उत्तरेणाग्निमुपविशतः ।८। प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुखइतरः ।९। अधीहि भो इति उक्त्वा ।१०। आचार्यः ॐकारं प्रयुज्याथेतर वाचयति सावित्री भो अनुब्रूहीति ।११। अथास्मै सावित्रीमन्वाह तत्सवितुर्वरेण्यमिति एता पच्छोऽर्द्धर्चशोऽनवानम् ।१२।

सम्वत्सर में सावित्री का अनुकथन करे । तीन व्रत हैं जिनके काल वक्ष्यमाण है—सावत्सरिक है । यहां पर तीन विकल्प है—सम्वत्सर में—त्रिरात्र में और अन्वक्ष । उनी के लिए यह कहा गया है—कामस्य अर्थात् ब्रह्मचर्यस्य । यह तात्पर्य है कि हे अमुक शर्मन् ! मेरे लिये सावित्र साम्वत्सरिक, त्रैरात्रिक अथवा आन्वक्षिक ब्रह्मचर्य का नियुक्त करो ।१-३। गायत्री छन्द ब्राह्मण के लिये बोलना चाहिए ।४। क्षत्रिय के लिये त्रिष्टुप कहे—।५। वैश्य वर्ण वाले के लिये जगती छन्द का कथन

करना चाहिए ।६। सावित्री को ही कहे ।७। अग्नि के उत्तर मे उपविष्ट होवे ।८। आचार्य जो हो उसे पूर्व की ओर मुख करके बैठना चाहिए और इतर को प्रत्यङ्मुख होकर रहना चाहिए ।६। "भो ! अध्ययन करो" यह कहे ।१०। आचार्य 'ॐकार' का प्रयोग करके इतर से सावित्री बँचाता है और कहता है—'भो ! सावित्री को पीछे से बोलो" ।११। इसके अनन्तर इसको सावित्री "तत्सवितुर्वरेण्यम्" यह बोलता है। इसको पच्छ आधी ऋचा का अववान है ।।१२।।

॥ अथ व्रतानि ॥

आपो नाम स्थ शिवा नाम स्थ।
ऊर्जा नाम स्थाऽजरा नाम स्थ।
अभया नाम स्थऽमृता नाम स्थ।

तासां वोऽक्षीय सुमतौ मा धत्ते ति एव त्रिरप आचम-य्य ।१। स्वस्ति नो मिमीतामिति पञ्चर्चेन दण्ड ।२। वरो दक्षिणा ।३। प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीय भिक्षते ग्रामम् ।४। मातरं त्वेव प्रथमाम् ।५। या वैनं न प्रत्याचक्षीत ।६। आचार्याय भैक्ष्यं निवेदयित्वाऽनुज्ञातो गुरुणा भुञ्जीत ।७। अहरहः समिदाधानं भिक्षाचरणमधःशय्या गुरुशुश्रूषेति ब्रह्मचारिणो नित्यानि ।८।

"आपो नाम स्थ, शिवा नामस्थ, ऊर्जा नामस्थ, अजय नाम स्थ ! अभया नाम स्थ अमृता नाम स्थ" । तासां केक्षीय सुमतौ मा धत्ते ति"— इन पाँच ऋचाओं से दण्ड को देता है ।१-२। वर दक्षिणा है ।३। प्रदक्षिण अग्नि को पर्याणयन करके ग्राम में भिक्षाटन करता है ।४ सबसे प्रथम माता से ही भिक्षा माँगे ।५। जो कि उसका प्रत्याख्यान करेगी । अर्थात् माताओं को अवश्य ही अपने ब्रह्मचारी पुत्र को भिक्षा देनी होगी।६।जो भी भिक्षा से प्राप्त हो उस सब को लाकर अपने आचार्य की सेवा में सर्व प्रथम ब्रह्मचारी को निवेदित कर देना चाहिए । जब आचार्य अनुज्ञा प्रदान कर देवें तो अपने गुरुदेव के ही साथ उसको खाना चाहिए ।७।

नित्य प्रति नियम से समिधाओं का लाना—प्रतिदिन भिक्षाचरण करना—भूमिपर नीचे शयन करना और रोज ही अपने श्री गुरुदेव की सेवा—शुश्रूषा करना ये सभी ब्रह्मचारी के लिये नैत्यिक व्रत हुआ करते है ।८।

॥ अथ अनुवाचनम् ॥

अथाऽनुवाचनस्य ।१। अग्नेरुत्तरत उपविशत ।२। प्राङ् मुख आचार्यः प्रत्यङ मुख इतरः ।३। अभिवाद्य पादावाचार्यस्य पाणी प्रक्षाल्य ।४। दक्षिणेन जानुनाऽऽक्रम्य मूले कुशतरुणान् ।५। दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां मध्ये परिगृह्य ।६। तान्त् सव्येनाऽऽचार्योऽग्रे सग्रह्य दक्षिणनार्ऽद्भि: परिषिच्यप्रथेतर वाचयति ।७। सावित्रीं भो अनु ब्रूहीति इतरः ।८। सावित्रीं ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।९। गायत्री भो अनु ब्रूहीति इतरः, गायत्रीं ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१०। वैश्वामित्रीं भो३अनु ब्रूहीति इतरः वैश्वानरीं ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।११। ऋषीन् भो३अनु ब्रूहीति इतरः ऋषींस्ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः।१२। देवता भो३अनु ब्रूहीति इतरः देवतास्ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१३। छन्दांसि भो३ अनु ब्रूहीति इतरः, छन्दांसि श्रुति ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१४। श्रुतिं भो३ अनु ब्रूहीति इतरः श्रुति ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१५। स्मृतिं भो३ अनु ब्रूहीति इतरः स्मृति ते अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१६। श्रद्धा-मेधे भो३-अनु ब्रूहीति इतरः श्रद्धा-मेधे अनु ब्रवीमीति आचार्यः ।१७। एवमेवमृषेर्यस्य-यस्य यो-यो मन्त्रो यद्दैवत्यो यच्छन्दाश्च तथा-तथा त त मन्त्रमनुब्रूयात् ।१८। अपि वाऽविन्दन्नृषिदैवतच्छन्दांसि तत्सावितुर्वरेण्यमिति एतां पच्छाऽर्द्धचशोऽनवानमित्येषेति समाप्त आहाऽऽचार्य्यः ।१९। एवमेकैकमृषिमनुवाकं वाऽनुब्रूयात्,।२०। क्षुद्रसूक्तेष्वनुवाकम्।२१। यावद्वा गुरुर्मन्येत ।२२। आद्योत्तमे कामं

सूक्ते वाऽनुब्रूयादृषेः ।२३। अनुवाकस्य वा ।२४। एकैकां सूक्तादाविति ।२५। एषा प्रभृतिरिति कामं सूक्तादावाचार्य इति ।२६। एतदृषिस्वाध्याये व्याख्यातम् ।२७। समाप्ते कुशतरुणानादायाऽनडुहेन मूले कुण्डं कृत्वा यथासूक्तं कुशेष्वपो निषिञ्चति ।२८। अहःशेष स्थानमुपयासश्च ।२९।

इसके अनन्तर अनुवाचन के विषय मे वर्णन किया जाता है ।१। गुरु और शिष्य दोनों अग्नि के उत्तर भाग में उपविष्ट हो जाते हैं ।२। आचार्य को पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित रहना चाहिए और इतर को प्रत्यमुख होकर बैठना चाहिए ।३। अपने आचाय देव के चरणो मे अभिवादन करके दोनों हाथों का प्रक्षालन करना चाहिए ।४। दक्षिण जानु (घुटना) से तरुण कुशाओं के मूल में आक्रमण करे ।५। दाहिने और बाये हाथो से मध्य में परिग्रहण करे ।६। उनको आचार्य आशेसब्य से सग्रहण करके दाहिने से जल क द्वारा परिषिञ्चन करता हुआ शिष्य ब्रह्मचारी को बँचवाता है ।७। शिष्य कहता है—"भो ! आचार्यवर ! सावित्री का वाचन करिए" ।८। आचार्य कहता है—मैं तुझको सावित्री बतलाता हूँ ।९। फिर शिष्य कहता है "भो ! आचार्य वर ! गायत्री बतलाइये" आचार्य कहते हैं—मैं तुमको गायत्री बतलाता हूँ ।१०। ब्रह्मचारी कहता है—"भो गुरुवर ! वैश्वामित्री मुझे बतलाइये ।" आचार्य कहते हैं "वैश्वानरी तुमको बतलाता हूं ।११। इतर अर्थात् शिष्य कहता—'भो ! मुझको ऋषियों को बतलाइये" । आचार्य वर कहते हैं—मैं तुमको ऋषियों को बतलाता हूं" ।१२। शिष्य कहता है —"भो गुरुवर ! देवताओ के विषय में बतलाइए" । आचार्य कहते हैं—"मैं तुमको देवताओं के विषय में स्पष्ट रूप से बोलता हूँ ।१३।ब्रह्मचारी कहता है भो आचार्य !मुझको छन्दो के विषय मेंबतलाइये। आचार्यकहतेहैं-बतलाताहूँ इतर कहता है-भो आचार्यवर ! मुझे आप श्रुति बतलाइये" ।आचार्य कहते हैं—"मै तुमको श्रुति के विषय में बतलाता हूँ" ।१५। शिष्य कहता है—"भो गुरुदेव ! आप मुझ को स्मृति

बतलाइए " । आचार्य कहते हैं—"मैं तुमको स्मृतियों के विषय में बतलाता हूँ" ।१६। शिष्य निवेदन करता है—"हे गुरुदेव ! आप मुझ को श्रद्धा और मेध बतलाइए। आचार्य कहते है-"मैं तुमको श्रद्धामेधबतलाता हूँ।१७। इसी प्रकार से जिस-जिस ऋषि का जो-जो मन्त्र है और जो देवता वाला और जिस छन्द वाला है उस-उस मन्त्र को उसी प्रकार बोलना चाहिए।१८।अपिना ऋषि-दैवत-छन्दों को न प्राप्त करते हुए तत्सवितुर्वरेण्यम् इति—इसको आधी ऋचा के पच्छ को अनवान् कर यह समाप्त हो गया है ऐसा आचार्य बोलता है ।१६। इस प्रकार से एक-एक ऋषि अथवा अनुवाक को बोलना चाहिए ।२०। क्षुद्र सूक्तों में अनुवाक होता है ।२१। अथवा जितना गुरु मानते हो ।२२। अथवा आद्योत्तम में इच्छा पूर्वक सूक्त में बोले ।२३। अथवा अनुवाक का बोले ।२४। एक-एक को सूक्त आदि में बोले ।२५। "एषा आदि"—यह इच्छापूर्वक सूक्त के आदि मे आचार्य कहे ।२६। यह ऋषि स्वाध्याय मे व्याख्या करदी गयी है ।२७। समाप्त हो जाने पर कुश तरुणों को लाकर अनबुद् के द्वारा मूल में कुण्ड करके सूक्त के अनुसार कुशाओं में जल का निषिञ्चन करता है ।२८। अहःशेष—स्थान और उपवास है ।२९।

अपराह्णेऽक्षतधाना भिरक्षिवाऽऽज्याहुतिधर्म्मेणाऽग्नौ पाणिना जुहुयात् सदसस्पतिमद्भु तमिति प्रत्यृचं सूक्तशेषेण ।१। भक्षैराचार्य स्वस्तिवाच्य ।२।

अपराह्न में अर्थात् दोपहर के बाद समय में अक्षत धान वाला भिक्षा करके घृत की आहुति के धर्म से हाथ से " सद सस्पति मद्भुतम्" इस प्रत्येक ऋचा को सूक्त शेष से हवन करना चाहिए ।१। भक्षों से आचार्य को 'स्वस्ति' वाचन कराना चाहिए ।२।

।। अथ सन्ध्योपासनकर्म ।।

अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामास्ते नित्यं वाग्यत उत्तरापराभिमुखोऽन्वष्टमदेशमा नक्षत्राणां दर्शनात् ।१। अ-

तिक्रान्तायां महाव्याहृतीः सावित्रीं स्वस्त्ययनानि च जपित्वा ।२। एवं प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्ना मण्डलदर्शनात् ।३। उदिते प्राध्ययनम् ।४।

अरण्य में हाथ में समिधा ग्रहण करने वाला होता हुआ नित्य मौन होकर उत्तर की ओर मुख करता हुआ अन्वष्ट देश में नक्षत्रों के दर्शन से पूर्व में सन्ध्या करता है ।१। अतिक्रान्ता में महाव्याहृतियों को—सावित्री को और स्वस्त्ययनो का जाप करे ।२। इसी प्रकार से प्रातः काल में मण्डल के दर्शन से पूर्व ही पूर्व की ओर मुख करते हुए स्थित होकर करता है । सूर्य देव के समुदित हो जाने पर प्राध्ययन करना चाहिए ।३-४।

॥ अथ अग्निकार्यम् ॥

अहरहः सायं प्रातः ।१। अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य दक्षिणं जान्वाच्य ।२।
अग्नये समिधमहार्ष बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदा प्रयच्छतु स्वाहा ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहा ।
समिद्धो मां समर्धय प्रजया च धनेन च स्वाहा ॥
एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि स्वाहेति ।३।
अथ पर्युक्ष्य ।४।
अग्निः श्रद्धां च मेधां चाऽविनिपात स्मृतिं च मे ।
ईडितो जातवेदा अयं शुनघ्नः संप्र यच्छत्त्विति ॥
अग्निमुपतिष्ठते ।५। सौपर्णाव्रतभाषितं दृष्टं वृद्धसम्प्रदायानुष्ठितं त्र्यायुष पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्र ललाटे हृदये दक्षिणस्कन्धे वामे च ततः पृष्ठे च पञ्चसु भस्माना त्रिपुण्ड्रं

करोति ।६। स एतेषां वेदनामेकं द्वौ त्रीन् सर्वान् वाऽधीते य एव हुत्वाग्निमुपष्ठिते ।७।

प्रतिदिन नित्य ही सायङ्काल और प्रातःकाल दोनो समयो में अग्नि कर्म करना चाहिए ।१। अग्नि का उपसमाधान करे—परिसमूहन करे और प्रयुँक्षण करे दक्षिण में अन्वाचन करे ।२। "अग्नि के लिये जो बृहत और जात वेदा है समिधा लाया हूँ। वह जातवेदा मेरी श्रद्धा और मेघा को मुझे प्रदान करे, उसके लिये स्वाहा है। यह एध इसका वर्धन करता है। यह समिधा है तेज है। मुझमे तेज धारण करे। उसके लिये स्वाहा है। यह समिद्ध अग्नि मेरा समवर्धन करे प्रजा से और धन से मेरी वृद्धि करे। उसके लिये स्वाहा है। हे अग्ने ! यह समिधा से तुमको समवर्धित करे और तृप्त करे, हम बढ़ाते हैं और हम आशीष देते है। उसके लिये स्वाहा है।३। इसके अनन्तर पर्युँक्षण करे ।४। यह अग्नि श्रद्धा—मेधा—अविनिपात और स्मृति को ईड़ित उन्नत जात वेदा सम्प्रदान करे।" अग्नि का उपस्थान करता है ।५। सौपर्ण व्रत भाषित—दृष्ट—वृद्ध सम्प्रदायानुष्ठित—त्र्यायुष—इन पाँच मन्त्रों से प्रति मन्त्र से ललाट मे—हृदय में—दक्षिण स्कन्ध में और वाम स्कन्ध में और इसके पश्चात् पृष्ठ में इन पाँचों स्थानों में भस्म से त्रिपुण्ड करता है ।६। वह इन वेदों को—एक—दो—तीन अथवा सबको अधीन करता है जो इस प्रकार से हुवन करके उपस्थान किया करता है ।७।

॥ अथ शक्रियव्रतकर्म ॥

अथ व्रतादेशनम् ।१। तस्योपनयनेन कल्पो व्याख्यातः ।२। न सावित्रीमन्वाह ।३। दण्डप्रदानान्तमित्येके ।४। उदगयने शुक्लपक्षे ।५। अहोरात्र ब्रह्मचर्यमुपेत्याऽऽचार्यो-ऽमांसाशी ब्रह्मचारी।६। चतुर्दशीं परिहाप्याष्टमीं च ।७। आद्योत्तमे चैके ।८। यां वान्या मप्रशस्तां मन्येत तस्यां शुक्रिये ब्रह्मचर्यमादिशेत् ।९। त्रिरात्र ब्रह्मचर्य चरेद्द्वाद-

शरात्रं संवत्सरं वा यावद् वा गुरुर्मन्येत ।१०। शाक्वरं तु सवत्सरम् ।११। व्रातिकमौपनिषदं च ।१२। पूर्णे काले चरिते ब्रह्मचर्ये शयोर्बार्हस्पत्यान्ते वेदेऽनूक्ते रहस्यं श्रावयिष्यनकालनियमं चाऽऽदेशेन प्रतीयेत ।१३।

इसके अनन्तर व्रतादेशन है। आचार्य एक अहोरात्र ब्रह्मचर्य को प्राप्त करके मांस के प्राशन से रहित होवे। पूर्व दिन में और कर्म के दिन में एक दिन रात्रि में आचार्य को अमांसाशी होना चाहिए। वहाँ पर व्रतादेशन करता है। उसका उपनयन से कल्प की व्याख्या कर दी गयी है। सावित्री को नहीं कहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि खण्ड प्रदान के अन्त तक करे।१-४। उदयन में शुक्लपक्ष में।५। शुक्रिय शब्द यहाँ पर अध्ययन वाची है। उसके सम्बन्ध से यह व्रत भी शुक्रिय कहा जाता है। चतुर्दशी और अष्टमी को परिहापित कर देवे। कतिपय मनीषियों का कथन है कि आद्योत्तम में करे।६-८। जिसको अथवा अन्य प्रशस्ता को मानना चाहिए उसमें शुक्रिय मे ब्रह्मचर्य का आदेश करे।९। तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य का समाचरण करे अथवा बारह रात्रि तक या सम्वत्सर तक अथवा जितना भी गुरु माने करे।१०। शाक्वर तो सम्वत्सर है।११। और व्रातिक एवं औपनिषद है।१२। पूर्ण काल में ब्रह्मचर्या व्रत के सञ्चरण करने पर शंयो बार्हस्पत्यान्त में वेद के आनूक्त होने पर रहस्य का श्रावण कराते हुए और अकाल नियम की आदेश से प्रतीति करनी चाहिए।१३।

।। अथ उद्दीक्षणिका ।।

कृतप्रातराशस्याऽपराह्णेऽपराजितायां दिशि ।१। हुत्वाऽऽचार्योऽर्थेन यास्वेव देवतासु परीत्तो भवति तास्वेवैनं पृच्छति अग्नाविन्द्र आदित्ये विश्वेषु च देवेषु चरितं ते ब्रह्मचर्य्यम् ।२। चरितं भो ३ इति प्रयुक्ते ।३। पश्चादग्नेः पुरस्तादाचार्यस्य प्राङ्मुखे स्थितेऽहतेनवाससाऽऽचा-

र्य्यः प्रदक्षिणं मुखं त्रिः परिवेष्ट्य ।४। उपरिष्टाद्दशाः कृत्वा यथा न संस्रवेत ।५। त्रिरात्रं समिदाधानं भिक्षाचरणमधःशय्यां गुरुशुश्रूषां चाऽकुर्वन्वाग्यतो ऽप्रमत्तोऽरण्ये देवकुलेऽग्निहोत्रे वोपवसमस्वेति ।६। अत्र हैके तानेव नियमांस्तिष्ठतो रात्र्यामेवोदिशन्ति ।७। आचार्य्योऽमांसाची ब्रह्मचारी ।८। त्रिरात्रे निर्वृत्ते रात्र्यां वा ग्रामान्निष्क्रान्नेंतानीक्षेतानध्यायान् ।९। पिशितामं चण्डालं सूतिकां रजस्वलां तेदनिमपहृस्तकां श्मशानं सर्वाणि च शवरूपाणि यान्यास्ये न प्रविशेयुः स्वस्य वासान् निरसन् ।१०। प्रागुदीचीं दिशमुपनिष्क्रम्य शुचौ देशे ग्प्राङ्मुख आचार्य उपविशति ।११। उदित आदित्येऽनुवाचनधर्म्मेण वाग्यतायोष्णीषिणेऽन्वाह ।१२। महानाम्नीष्वेवैष नियमः ।१३। अथोत्तरेषु प्रकरणेषु स्वाध्ययमेव कुर्वत आचार्यस्येतरः श्रृणोति ।१४। उष्णीषं भाजनं दक्षिणां गा ददाति ।१५। त्वं तमिति उक्त्वा दिवीति च प्रणवेन वा सर्वम् ।१६। अत्र हैके वैश्वदेव चरुं कुर्वते सर्वेषु प्रकरणेषु ।१७। यथापरीत्ततिति माण्डूकेयः ।१८।

प्रातराशन किये हुये हुए का अपराह्नी अपराजित दिशा में स्थित होवे ।१। इसके अनन्तर आचार्य हवन करके इसको जिन देवो में निष्ठा वाला होता है उन्हीं में इससे पूछता है— 'अग्नि में–आदित्य में–इन्द्र में-विश्वों में देवताओं में आपका ब्रह्मचर्य चरित हुआ है ?" ।२। "भो ! चरित हो गया है"—ऐसा उसका प्रत्युत्तर होता है ।३। यह उत्तर प्राप्त हो जाने पर पीछे अग्नि के आगे आचार्य को पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित हो जाने पर अहत अर्थात् नूतन वस्त्र से आचार्य प्रदक्षिण मुख को तीन बार घोषित करे ।४। ऊपर से दशा करे । जिस से संस्रवन न होवे।५। तीन रात्रि तक समिधाओं का लाना—भिक्षा का समाचरण करना अधःभूमि पर शयन करना, गुरु की सेवा करना—इन कार्यों को न करता हुआ मौनवृत रखने

वाला—अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद से रहित होकर अरण्य में देवकुल में अथवा अग्निहोत्र मे उपवास करो " इति ।६। यहाँ पर कुछ विद्वानों का मत है कि उन्हीं नियमों मे स्थित रहते हुए को रात्रि में ही उपदेश देते हैं ।७। आचार्य को मांस का अशन करने वाला ब्रह्मचारी होना चाहिए ।८। त्रिरात्र के अर्थात् तीन रात्रियों के निवृ त्त होने पर अथवा रात्रि मे ग्राम से निकलता हुआ इन अनध्यायों को देखे ।९। पिशिनाम—चण्डाल—सूतिका—रजस्वला – तैदनिमय दृस्तका—श्मशान और शव रूपों को जो मुख में प्रवेश न करें । अपने श्वासो का निरसन करता हुआ ।१०। प्रागुदीची दिशा में उप निष्क्रमण करके किसी पवित्र देश में प्राङ्मुख होकर आचार्य उपविष्ट हो जाता है । ।११। सूर्य देव के उदित होने पर अनुवाचन धर्म से वाग्यत अर्थात् मौन उष्णीषी के लिये बोलता है ।१२। महा नाम्नियों में ही यह नियम है ।१३। इसके अनन्तर उत्तर प्रकरणों में स्वाध्याय करते हुए ही आचार्य को इतर अर्थात् ब्रह्मचारी श्रवण करता है ।१४। उष्णीष—भाजन और गौ दक्षिणा देता है ।१५। 'स्वंतामिति'—'उष्यादिविति और प्रणव के द्वारा ही सब देवे ।१६। यहाँ पर कुछ का मत है कि सब प्रकरणों में देवे ।१७। माण्डूकेय यह कहता है जैसा परीत्त हो ।१८।

।। अथ दण्डनियमाः ।।

अथातो दण्डनियमाः ।१। न अन्तरा गमनं कुर्यादात्मनो दण्डस्य ।२। अथ चेद्दण्डमेखलोपवीतानामन्यतमद्विशीर्येत छिद्येत वा तस्यतत्प्रायश्चित्तं यदुद्वाहे रथस्य ।३। मेखला चेदसन्धेया भवत्यन्यां कृत्वानुमन्त्रयते ।४।

मेध्यामेध्यविभागज्ञे देवि गोप्त्रि सरस्वति ।
मेखलेऽस्कन्नतच्छिन्नं संतनुष्व व्रत मम ।।
त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिरग्ने देवाँ इहाऽऽवह ।
उप यज्ञं हविश्च नः ।।

व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदाभ्यो भवा नो दूतो अजरः सुवीरः।
दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेद इति ।५।
उपवीतं च दण्डे बध्नाति ।६। तदप्येतत् ।७।
यज्ञोपवीत दण्ड च मेखलामजिन तथा ।
जुहुयादप्सु व्रते पूर्णे वारुण्यर्चा रसेन वा ।।८।।

इसके अनन्तर दण्ड के विषय में कुछ नियम बतलाये जाते हैं ।१। ब्रह्मचारी को दण्ड के बीच से कभी गमन नहीं करना चाहिए ।२। इस के अनन्तर यह बतलाया जाता है कि यदि ब्रह्मचारी के दण्ड मेखला और उपवीत इसमें से कोई भी एक विशीर्ण हो जावे अथवा छिन्न हो जावे तो उसका वह प्रायश्चित्त है जो उद्वाह में रथ का होता है ।३। यदि मेखला असन्धेय हो अर्थात् जो उनके योग्य न होवे तो अन्य मेखला बनाकर अनुमन्त्रित करता है ।४। वह मन्त्र यह है—"मेध्या मेध्य विभावर्यो देवि गोप्त्रि सरस्वति । मेखले ऽस्कन्नमच्छिन्नं संतनुष्व व्रतं मम । त्वमग्ने व्रतमुच्छु चिरग्ने देवां इहावह । उप यज्ञं हविश्च नः । व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदाभ्यो भवा नो दूतो अजरः सुवीरः दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेदः इति । अर्थात् पवित्र और अपवित्र के विभाग के जानने वाली हे देवि ! हे रक्षा करने वाली ! हे सरस्वति । हे मेखले ! मेरे इस व्रत को अस्कन्ध और आच्छिन्न पूर्ण करो । हे अग्ने ! आप अन्य व्रत धारण करने वाले एवं शुचि हो । सब देवों को इसमें आवह्न करो । इत्यादि ।५। और उपवीत को दण्ड मे बाँधता है ।६। वह भी यह है ।७। यज्ञोपवीत–दण्ड–मेखला-अजिन को व्रत के पूर्ण हो जाने पर हुवन कर देना चाहिए । अथवा वारुण में रस के द्वारा अर्चा करे ।८।

।। अथ वैश्वदेवकर्म ।।

अथ वैश्वदेवः ।१। व्याख्यातो होमकल्पः ।२। वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायंप्रातर्गृह्येऽग्नौ जुहुयात् ।३।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा विष्णवे स्वाहाभरद्वाजधन्वन्तरये स्वाहा विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा प्रजापतये स्वाहा अदितये स्वाहा अनुमतयेस्वाहा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति हुत्वैतासा देवतानाम् ।४। अथ वास्तुमध्ये बलिं हरेद् एताभ्यश्चैव देवताभ्यः नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मानिति वास्तुमध्ये वास्तोष्पतये च ।५। अथ दिशां प्रदक्षिणं यथारूपं बलिं हरति ।६।

नम इन्द्रायेन्द्रेभ्यश्च नमो यमाय याम्येभ्यश्च नमो वरुणाय वारुणेभ्यश्च नमः सोमाय सौम्येभ्यश्च नमो बृहस्पतये बार्हस्पत्येभ्यश्च ।७। अथाऽऽदित्यमण्डले नमोऽदितय आदित्येभ्यश्च नमो नक्षत्रेभ्य ऋतुभ्यो मासेभ्योऽर्द्धमासेभ्योऽहोरात्रेभ्यः सवत्सरेभ्यः ।८। पूष्णे पथिकृते धात्रे विधात्रे मरुद्भ्यश्चेति देहलीषु ।९। विष्णवे दृषदि ।१०। वनस्पतय इति उलूखले ।११। ओषधीभ्य इति ओषधीनां स्थाने ।१२। पर्ज्जन्यायाद्भ्य इति मणिके ।१३। नमः श्रियै शय्यायां शिरसि पादतः भद्रकाल्यै ।१४। अनुगुप्ते देशे नमः सर्वान्नभूतये ।१५। अथान्तरिक्षे नक्तञ्चरेभ्य इति सायम् अहश्चरेभ्य इति प्रातः ये देवास इति च ।१६। अविज्ञाताभ्यो देवताभ्य उत्तरतो धनपतये च ।१७। प्राचीनावीती दक्षिणतः शेषन्निनयति ये अग्निदग्धा इति ।१८। देवपितृनरेभ्यो दत्वा श्रोत्रियं भोजयेत् ।१९। ब्रह्मचारिणे वा भिक्षां दद्यात् ।२०। अनन्तर सौवासिनीं गर्भिणीं कुमारान् स्थविरांश्च भोजयेत् ।२१। श्वभ्यः श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चाऽऽवपेद् भूमौ ।२२। इति नाऽनवत्तमश्नीयात् ।२३। नैकः ।२४। न पूर्वम् ।२५। तदप्येद्दचोक्तम् मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता इति ।२६।

इसके अनन्तर वैश्वदेव कर्म के विषय मे वतलाया जाता है ।१। होम कल्प की व्याख्या करदी गयी है । ।२। सिद्ध वैश्वदेव का साय काल और प्रातःकाल मे गृह्य अग्नि मे हवन करना चाहिए ।३। आहुतियाँ इस निम्न क्रम से देनी चाहिए—अग्नि के लिये स्वाहा–सोमाय स्वाहा-इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा–विष्णवे स्वाहा-भरद्वाज धन्वन्तर ये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा-प्रजापतये स्वाहा-अदितये स्वाहा अनुमतयेस्वाहा अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इन मन्त्रों के द्वारा इस प्रकार से इन उ युँक्त देवों के लिये आहुतियाँ देकर हवन करे ।४। इसके उपरान्त वास्तु के मध्य में इन देवताओं के लिये बलि का हरण करे । नमो ब्रह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च वास्तोष्पते प्रतिजानी ह्यस्मान् इति" अर्थात् देवास्तोष्पते ।ब्रह्मा के लिये और मध्य में ब्राह्मणों के लिये नमस्कार है-हमको जानो । इस रीति से वास्तु के मध्य में और वास्तोष्पति के लिये करे।५।इसके अनन्तर दिशाओं के प्रदिक्षण में यथा रूप बलि का हरण करता है ।६। "नम इन्द्रायैन्द्रेभ्यश्च, नमो यमाय याम्येभ्यश्च नमो वरुणाय वारुणेभ्यश्च नमोः सोमाय सौम्येभ्यश्च, नमो वृहस्पतये बार्हस्पत्येभ्यश्च" अर्थात् इन्द्र के लिये और ऐन्द्रीयों के लिये नमस्कार है, यम के लिये और याम्यों के लिये नमस्कार है–वरुण के लिये और वारुणों के लिये नमस्कार है—सोम देवता के लिये और सौम्यो के लिये नमस्कार है–बृहस्पति के लिये बार्हस्पत्यों के लिये नमस्कार है ।७। इसके अनन्तर फिर आदित्य मण्डल में–अदित के लिये और आदित के पुत्र आदित्यों के लिये नमस्कार है—नक्षत्रों के लिये, ऋतुओं के लिये, मासों के लिये, अर्ध-मासों अर्थात् पक्षों के लिये, अहोरात्रों के लिये अर्थात् दिनों और रात्रियों के लिये तथा सम्वत्सरों के लिये नमस्कार है ।८। फिर देहलियों में पूषा के लिये, पथिकृत् के लिये, धाता के लिये, विधाता के लिये और मरुद्गणों के लिये नमस्कार है ।९। दृशद (पाषाण) पर विष्णु के लिये नमस्कार है ।१०। उलूखल में "वनस्पति के लिये" इस से नमस्कार है ।११। ओषधियों के स्थल में "ओषधीभ्यः" इस मन्त्र से नमस्कार है ।१२। मणिक पर "पर्ज्जन्यायम्द्भ्य" इस से

पर्जन्य के लिये नमस्कार है ।१३। "नमः श्रियै"—इत्यादि मन्त्र से शय्या में, शिर में "भद्रकाल्यै"—इस से पाद से करे ।१४। अनुगुप्त देश में नमः सर्वान्नभूतये—इत्यादि मन्त्र से करे ।१५। अथान्तरिक्षे इस मन्त्र के द्वारा सायं काल में अन्तरिक्ष में और प्रातः काल अहश्चरेभ्यः इस मन्त्र से रात्रिचरों और दिनचरों के लिये नमस्कार करे। ये देवास और इस मन्त्र से करना चाहिए ।१६। जो देवता अविज्ञाय हों उनके लिये और धनपति के लिये उत्तर में करे ।१७। ये अग्निदग्धा इनसे प्राचीनावीती होकर दक्षिण में शेष को निनयन करताहै ।१८। देवों—पितृगणों को तथा नरों को इस प्रकार से बलि देकर श्रोत्रिय ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए । ।१९। अथवा किसी ब्रह्मचारी के लिये भिक्षा दे देनी चाहिए ।२०। इसके उपरान्त सौवासिनी को जो विवाहित हो और पति के घर में पति के संयोग को प्राप्त न हुई हो उसे सौवासिनी कहते है। गर्भिणी को, कुमारों को और स्थविरों अर्थात् वृद्धों को भोजन करावे ।२१। कुत्तों के लिये श्वपचों के लिये और पदार्थों के लिये भूमि में आनयन करे ।२२। इस प्रकार से अनवक्त का अशन नहीं करना चाहिए ।२३। एक अर्थात् अकेला भी अशन न करे । ।२४। पहिले भी अशन नहीं करना चाहिए ।२५। तो भी इस ऋचा ने कहा है—मोघ मन्न विन्दते अप्रचेता इति ।२६।

।। अथ षडर्घणकर्म ।।

षण्णां चेदर्घ्याणामन्यतम आगच्छेग्गोपशुमजमन्नं वा यत् सामान्यतमं मन्येत तत्कुर्यात् ।१। नामांसोऽर्घः स्यात् ।२। अधियज्ञमधिविवाहं कुरुतेत्येव ब्रूयात् ।३। आचार्यायाऽऽग्नेयः ।४। ऋत्विजे बार्हस्पत्यः ।५। वैवाह्याय प्राजापत्यः ।६। राज्ञ ऐन्द्रः ।७। प्रियाय मैत्रः ।८। स्नातकायैन्द्राग्नः ।९। यद्यप्यसकृत् संवत्सरस्य सोमेन यजेत कृतार्घ्या एवैनं याजयेयुर्नाऽकृतार्घ्याः ।१०। तदपि भवति ।११।

छे अर्घ्यों में यदि अन्यतम आवे तो गौ, पशु, अज अथवा अन्न को सामान्यतम है ऐसा माने और उसे करना चाहिए।१। अमास अर्घ नही होना चाहिए।२। अधियज्ञ अधिविवाह करे,यही बोलना चाहिए।३।आचार्य के लिये आग्नेय होता है।४। ऋत्विक् के लिये बार्हस्पत्य है।५। वैवाह्य के लिये प्राजापत्य है।६। राजा के लिये ऐन्द्र होता है।७। प्रिय के लिये मैत्र है।८। स्नातक के लिये ऐन्द्राग्न होता है।९। यद्यपि कई बार सोम से सम्वत्सर का यजन करना चाहिए। कृत अर्घ्य वाले ही इसका याजन करें। और भो और कृतार्घ्य है उनको नही करना चाहिए।१०। वह भी होता है।११।

॥ अथ अतिथिकर्म ॥

तृणान्यप्युञ्छततो नित्यमग्निहोत्रं च जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥१॥
ओदपात्रात् दातव्यमा काष्ठाज्ज हुयादपि ।
आ सूक्तादाऽनुवाकाद्वा ब्रह्मयज्ञो विधीयते॥२॥
नोपवासः प्रवासे स्यात् पत्नी धारयते व्रतम् ।
पुत्रो भ्राताऽथवा पत्नी शिष्योवाऽस्य बलिं हरेत् ॥३॥
वैश्वदेवमिमं ये तु सायंप्रातः प्रकुर्वते ।
ते अर्थैरायुषा कीर्त्या प्रजाभिश्च समृघ्नुयुरिति ॥४॥

(एक ही ग्राम में निवास करने वाला कभी भी अतिथि नहीं होता है किन्तु एक ही ग्राम का निवासी भी अन्य देश में जाकर समागत हुआ हो तो वह भी अतिथि माना जाता है। आतिथेय वहाँ पर ही होता है जहाँ पर घर में भार्य्या होवे तथा जहाँ पर अग्नि होवे। ऐसे ही स्थल पर आतिथ्य का परिपालन किया जाता है। प्रवास आदि मे आतिथ्य का पालन नहीं किया जाता है। आतिथ्य की बड़ी महिमा है। अथति सत्कार का न करना बहुत अनिष्टकर हुआ करता है। आतिथ्य गृह में समागत का ही होता है। यदि कोई मार्ग में ही मिल जावे तो नहीं

किया जाता है। जो तृणों को भी उञ्छ से नित्य ही अग्निहोत्र करके आहुतियाँ देने वाला है उसका भी सम्पूर्ण सुकृत वह ब्राह्मण ले जाया करता है जो घर में तो रहे किन्तु उसका कुछ भी अभ्यर्चन न किया गया होवे ।१। उदक पात्र आरम्भ करके देना चाहिए और काष्ट से लेकर हवन भी करना चाहिए। सूक्त से अथवा अनुवाक से लेकर ब्रह्म यज्ञ किया जाता है ।२। प्रवास में उपवास नहीं करे। उस व्रत को पत्नी धारण किया करती है। पुत्र—भ्राता—अथवा पत्नी या शिष्य इसकी बलि का हरण करता है ।३। जो लोग इस बलि वैश्वदेव को सायङ्काल में तथा प्रातःकाल में किया करते हैं वे पुरुष धन से आयु से कीर्ति से और प्रजाओं से समृद्ध हुआ करते हैं ।४।

।। अथ प्रवत्स्यद्ब्रह्मचारिकर्म ।।

ब्रह्मचारी प्रवत्स्यन्नाचार्यमामन्त्रयते ।१। प्राणापान योरिति उपाशु। ओमह् वत्स्यामि भो३ इति उच्चैः ।२। प्राणापाना उरुव्यचास्त्वया प्रपद्ये देवाय त्वा गोप्त्रे परि ददामि देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं ते परि ददामि त गोपायस्व त मा मृधस्वेति । उपांशु ।३। ॐ स्वस्ती त्युच्चरचैराचार्य्यः-स्वस्तीत्युच्चैराचायः ।४।

प्रवास में निवास करने वाला ब्रह्मचारी आचार्य को आमन्त्रित करता है ।१। "प्राणापानयो" इत्यादि मन्त्र को उपाशु जाप करे "ओमह् वत्स्यामि भो३ इति" इसका उच्च स्वर से उच्चारण करे ।२। फिर "प्राणापाना उरुव्यचास्त्वया प्रपद्ये दे वाय त्वा गोप्त्रे परिददामि, देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त ते परिददामि, तं गोपायस्व तं मामृधस्वेति इसका उपाशु जाप करे ।३। ॐ स्वस्ति इति उच्च स्वर से स्वस्ती अर्घ्य आचार्य.—स्वस्ती त्युच्चैः आचार्यः कहे ।४।

इति शांखायनगृह्यसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः ।।

तीसरा अध्याय

।। अथ समावर्तनम् ।।

स्नानं समावर्त्स्यमानस्य ।१। आनडुहमित्युक्तं तस्मिन्नु-पवेश्य केशश्मश्रूणि वापयति लोमनखानि च ।२। व्रीहि-यवैस्तिलसर्षपैरपामार्गैः सदापुष्पीभिरित्युद्वाप्य ।३। आपोहिष्ठीयेनाऽभिषिच्य ।४। अलकृत्य ।५। युव वस्त्राणीति वाससी परिधाय ।६। अथाऽस्मै निष्क बध्नाति आयुष्यं वर्चस्यम् ।७। ममाग्रे वर्च इति वेष्टनम् ।८। गृहं गृहमहनेति छत्रम् ।९। आ रोहतेति उपानहौ ।१०। दीर्घ-स्ते अस्त्वङ्कुश इति वैष्णव दण्डमादत्ते ।११। प्रतिली-नस्तब्हरासीन ।१२। वनस्पते वीड्वङ्गः शास इत्येति रथमारोहेत् ।१३। यत्रैनं गवा वा पशुना वा अर्हयेयुस्त-त्पूर्वमुपतिष्ठेत ।१४। गोभ्यो व समावर्तेत फलवतो वा वृक्षात् ।१५। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि स्योनापृथिवि भवेति अवरोहति ।१६। ईप्सितमन्न तदहर्भुञ्जीत ।१७। आचार्याय वस्त्रयुगं दद्यादुष्णीषं मणिकुण्डलं दण्डोपानहं छत्रं च ।१८।

जिसका समापवर्त्तन किया जाने वाला हो अर्थात् जो ब्रह्मचर्यावस्था को समाप्त करके गार्हस्थ्य में प्रवेश करने वाला पुरुष हो उसका स्नान होता है अर्थात् सतापवर्त्तन काल में स्नान कराया जाना चाहिए ।१। आनडुहम्—यह पहिले कहा जा चुका है । उस पर बिठाकर ब्रह्मचारी अपने केशों को श्मश्रु को वपन कराता है और लोमों को तथा नखों को को भी कटवा देता है । तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य दशा में जो केश—

श्मश्रु—नख—लोम धारण किये हुए था उन सब को समापवर्त्तन काल मे कटवा देना चाहिए क्योंकि अब उसको दूसरे गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करना है ।२। व्रीहि–यव–तिल–सरसों–अपामार्ग–सदा पुष्पी–इन से उद्वयन कराकर ।३। "आपोहिष्ठा मयोभुवः"—इत्यादि से अभिषिञ्चन करे ।४। फिर अलङ्कारों से समलङ्कृत करना चाहिए ।५। "युवंवस्त्राणि" इति—इस मन्त्र के द्वारा वस्त्रों का परिधान करे ।६। "आयुष्यं वर्चस्यम्" इससे इसके उपरान्त इसके लिये निष्क बाँधता है ।७।"ममाग्रे वर्च"इत्यादि से वेष्टन करे ।८। "गृहं गृहमहतेति"इस मन्त्र से छत्र धारण करना चाहिए ।९। "आरोहतेति"—इस मन्त्र से उपानह (जूते) पहिने ।१०। "दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुश इति" इत्यादि ऋचा से वैष्णव दण्ड का ग्रहण करता है ।११। उस दिन प्रतिलीन रहे ।१२। 'वनस्पते वीड्वङ्ग शासद्दत्येति" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए रथ पर समारोहण करना चाहिए ।१३। जहाँ पर इसको गाय दें अथवा पशु से अर्हित करें उसके पूर्व में उपस्थित होना चाहिए ।१४। गायों से समापवर्त्तन करे अथवा फल वाले वृक्ष से करे ।१५। "इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानिधेहि" 'स्योना पृथिवी भवेति'–इन मन्त्रों से अवरोहण करता है ।१६। उस दिन ईप्सित अन्न का भोजन करना चाहिए ।१७। आचार्य के लिये दो वस्त्र देना चाहिए और वस्त्र के जोड़े के साथ उष्णीष—मणियों का कुण्डल—दण्डोपानह और छत्र भी देना चाहिए ।१८।

॥ अथ गृहकर्म ॥

अगारं कारयिष्यन् इहाऽश्राय विशः परिगृह्णामीति उदुम्बरशाखया त्रिः परिलिख्य मध्ये स्थण्डिले जुहोति ।१। कोऽसि कस्याऽसि काय ते ग्रामकामो जुहोमि स्वाहा, अम्यां देवानामति भागधेयमितः प्रजाताः पितरः परेताः, विराडजुह्वद् ग्रामकामो न देवानांकिञ्चानान्तरेण स्वाहेति।२।स्थूणागर्तान् खानयित्वा ।३।उदमन्थानासिच्य४।

इमां वि मिन्वे अमृतस्य शाखां मधोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम् ।
एनां शिशुः क्रन्दत्या कुमार एनां धेनु. क्रन्दतु नित्यवत्सेति ॥
उदुम्बरशाखां घृतेनाऽक्तां दक्षिणे द्वार्य्ये गत निदधाति ।५।
इमामुच्छ्रयामि भुवनस्यशाखा मधोर्धारा प्रतरणी वसूनाम्
एनां शिशुः क्रन्दत्या कुमार एना धेनुः क्रन्दतु पाकवत्सेति ॥
उत्तरत· ।६। एव द्वयो-र्द्वयोर्दक्षिणतः पश्चादुत्तरतश्च ।७।
इमामहमस्य वृक्षस्य शाखां घृतमुक्षन्तीममृते मिनोमि ।
एना शिशुःक्रन्दत्याकुमारआस्यन्दन्तान्धेनवोनित्यवत्सा इति ॥
स्थूणाराजमुच्छ्रयति ।८।
एन कुमारस्तरुण आ वत्सो भुवनस्परि ।
एन परिस्रुतः कुम्भ्या आ दध्नः कलशैरगमन् ।९।
इहैव स्थूणे प्रति तिष्ठ ध्रुवाऽश्वावती गोमती सीलमावती ।
क्षेमेतिष्ठघृतमुक्षणाणेहैवातिष्ठनिमितातिल्विलास्याजिरावती ॥
मध्य पाषस्य तृम्पता मा त्वा प्रापन्नघायवः ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः
अथो अन्नस्य की लाल उपहूतो गृहेषु नः ।
रथन्तरे प्रति तिष्ठ वामदेव्य श्रयस्व बृहति स्तभायेति ॥
स्थूणाराजमभिमृशति सामतस्य स्थूणाः समृशति । सत्य
च श्रद्धा चेति पूर्वे । यज्ञश्च दक्षिणा चेति दक्षिणे । बलं
चौजश्चेति अपरे । ब्रह्मचनक्षत्रञ्चेति उत्तरे । श्री स्तूपः
धमस्थूणाराजः । अहोरात्रे द्वारफलके। सवत्सरोऽपिधा-
नम् । उक्षा समुद्र इति अश्मयक्तमश्मान स्तूपस्याधस्तान्नि-
खनेत् ।१०।

अगार को कराने वाला होता हुआ "इहाभाद्याय विधाः परिगृह्णा मीति" उदुम्बर (गूलर वृक्ष) की शाखा से परिलेखन करके मध्य में स्थण्डिल में होम करना चाहिए ।"कोऽसि कस्यासि कायते ग्राम कामो जुहोमिस्वाहा, अस्यां देवनामासि भागधेयमितः प्रजाताः

पितरः परेताः विराडजुहुत् ग्राम कामो न देवानां किञ्चनान्तरेण स्वाहेति" इससे स्थूणागर्त्तों का खुदवा कर।३। उदमन्थान का आसेचन करे।४। "इमा वि मित्वे अमृतस्य शाखा माधोर्धारां प्रतरणी वसूनाम्। एना शिशुः क्रन्दन्त्या कुमार एनां धेनुः क्रन्दन्तु नित्य वत्सेति"—इस मन्त्र के द्वारा घृत से अक्त उदुम्बर की शाखा को दक्षिण द्वार में होने वाले गर्त्त मे रख देता है।५। "इमा मुच्छयामि भुवनस्य शाखां मधोर्धारां प्रतरणी वसूनाम्। एनां शिशुः क्रन्दत्या कुमार एनां धेनुः क्रन्दतु पाक वत्सेति इसस उत्तर की ओर से।६। इस प्रकार से दो-दो का दक्षिण से और पीछे उत्तर से "इमामह मस्य वृक्षस्य शाखां घृत मुक्षन्ती ममृते मिनोमि। एना शिशुः क्रन्दत्या कुमार आस्यन्दताम्धेनवो नित्य वत्सा इति इस मंत्र से स्थूणा राज को उच्छ्रित करता है। ।७-८। "एनं कुमार स्तरुण आ वत्सो भुवनस्परि। एनं परिस्रुतः कुम्भ्या आहृत्नः कलशै रंगत्।९। मध्ये पोषस्य तृम्पतां यात्वा प्रापन्न वायवः। उपहूतय इहगाव उपहूता अजावयः अथो अस्य की लारम उपहूतो गृहेषुनः। रथन्तरे प्रति तिष्ठ वाम देव्ये श्रमस्व बृहति स्तमायेति इससे स्थूणाराज को अभिमृष्ट करता है। सम्मिन के स्थूणाओं का सस्पर्श करता है। सत्यं च श्रद्धाचेति इससे पूर्व में यशश्च दक्षिणा चेति इससे दक्षिण मे। बल चौजश्चेति इससे अपर मे ब्रह्म च नक्षत्र श्चेति इससे उत्तर में श्री स्तूपः धर्म स्थूणाराजः। अहोरात्रे द्वार फलके। सम्वत्सरोऽपिधानम्। उक्षा समुद्र इति इससे अभ्यक्त अश्म (पाषाण) को स्तूप के नीचे के भाग में निखनन करना चाहिए।१०।

।। अथ गृहप्रवेशकर्म ।।

वास्तोष्पतीये कर्मणि।१। अग्नि दधामि
मनसा शिवेनाऽयमस्तु सगमनो वसूनाम्। मा नो
हिंसीः स्थविरंमाकुमारंशन्नोभव द्विपदेशचतुष्पदइति ।।

गृह्यमग्निं बाह्यात उपसमाधाय ।२। प्रागग्रेषु नवेषु कुशेषूदम्भ नव प्रतिष्ठाप्य ।३। अरष्टा अस्माक वीरा मा परा सेचि नो धनमिति अभिमन्त्र्य ।४। रथन्तरस्य स्तोत्रियेण पुनरादाय ककुप्कार विस्रः पूर्वाह्णे जुहोति ।५। वामदेव्यस्य मध्यन्दिने ।६। बृहतोऽपराह्णे ।७। महाव्याहृतयश्चतस्रः वास्तोष्पत इति तिस्रः अमीवहा वास्तोष्पते वास्तोष्पते ध्रुवास्थूणा सौविष्टकृतीदशमीस्थालीपाकस्य रात्रौ ।८। ज्येष्ठ पुत्रमादाय जायां च सहधान्यः प्रपद्येत ।९। इन्द्रस्य गृहाः शिवा वसुमन्तो वरूथिनस्तानह प्रपद्ये गह जायया सह प्रजया सह पशुभिः सह रायस्पोषेणसह यन्मे किञ्चास्ति तेन ।१०।

वास्तोष्पतीय गृह प्रवेश नाम वाले कर्म मे जो विधि है उसकी व्याख्या करते है ।१। अग्नि दधामि मनसा शिवेनायमस्तु संगमनो वसूनाम् । मानो हिंसीः स्थविर मा कुमार शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पद इति इस मन्त्र से गृह्य अग्नि को बाह्य से उपसमाहित करे ।२। प्राक्अग्र नवीन कुशाओं मे नूतन जल के कुम्भ को प्रतिष्ठापित करे। ।३। अरष्टा अस्माकं वीरा, मा परा सेनि नो धनमिति इससे अभिमन्त्रित करे ।४। रथन्तर के स्तोत्रिय के द्वारा पुनः ककुष्कार को आदान करके तीन आहुतियों का पूर्वाह्न में हवन करता है ।५। मध्य दिन में वामदेव्य का करना चाहिए ।६। अपराह्न में वृहत् का करे ।७। महाव्याहृतियाँ चार हैं अर्थात् महाव्याहृतियों की चार आहुतियाँ देता है। "वास्तोष्पते इति इसकी तीन आहुतियाँ देवे। "अमी बहावास्तोष्पते, वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा इससे सौविष्ट कृती दशमी स्थाली पाक की रात्रि मे देवे ।८। ज्येष्ठ पुत्र को लेकर और जाया को लेकर धान्य प्रपन्न हो जाना चाहिए ।९। मन्त्र यह है— इन्द्रस्य गृहाः शिवः वसुवरूथिनस्तानहं प्रमद्ये सह जायया प्रजया सह पशुभिः सह रायस्पोषेण सह येन्मे कि किंचास्ति तेन ।१०।

॥ गृह प्रवेशकर्म (२) ॥

शग्मं शग्मं शिवंशिवं क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये, अभयं नो अस्तु । ग्रामो महाऽरण्याय परि ददातु विश्व महाय मा परि देहीति ॥

ग्रामान्निष्कामन् ।१। "अरण्यं मा ग्रामाय परि ददातु, मह विश्वाय मा परि देहीति" ग्रामं प्रविशन्नरिक्तः ।२। "गृहान् भन्द्रान्सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नोवीरतरःसुवीरान् । इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणा अन्येष्वहं सुमनाः संविशेय-मिति ॥ सदा प्रवचनीयः ।३।

'शग्मं शग्मं शिवं शिवं क्षेमाय वःशान्त्यै प्रपद्ये अभये नो अस्तु । ग्रामो महारण्याय परिददातु विश्वमहाय मा परिदेहीति' इस मन्त्र से ग्राम से निष्क्रमण करता हुआ ।१। "अरण्यं मा ग्रामाय परिददातु मह विश्वाय मा परिदेहीति इस मन्त्र के द्वारा समित्पुष्प कुशादि के सहित ही ग्राम में प्रवेश करता हुआ होवे ।२। "गृहान् भन्द्रासुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नो वीरतरः सुवीरान् । इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणा अन्येष्वहं सुमनाः संवि-शेयमिति इसको सदा प्रवचन करना चाहिए ।३।

॥ अथ प्रवसद्यजनम् ॥

अनाहिताग्निः प्रवत्स्यन् गृहान् समीक्षते ।१। "इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवम् । अविनष्टानविह्रुतान् पूषैनानभि रक्षतु । आऽस्माकं पुनरागमात्" ।२। अपि पन्थामगन्महीति च जपति ।३।

जिसने अग्नि को आहित नहीं किया है वह प्रवास में रहने वाला होता हुआ गृहों की समीक्षा करता है ॥१॥ "इमान् मे मित्रावरुणौ (तुम दोनों) गृहान् गोपायतम् । अर्थात् मित्रावरुण दोनों मेरे इन गृहों की रक्षा करो । "अविनष्टानविह्रुतान् पूषैनानभि रक्षतु" अर्थात् अविह्रुत और

न विनष्ट हुए इनको (गृहों को) पूषा देवता अभिरक्षित करे। "आस्माक पुनरागमात्" अर्थात् हमारे पुनः गृह में आने के समय तक इनकी रक्षा करें। "अपिपन्था मगन्महीति"—इसका जाप करता है ॥२-३॥

॥ प्रवसद्यजनम् (२) ॥

अथ प्रोष्याऽऽयन् गृहान् समीक्षते ।१।
गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज विभ्रत एमसि ।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।२।
अय नो अग्निर्भगवानय नो भगवत्तरः ।
अस्योपसद्ये मा रिषामाऽयं श्रेष्ठये दधातु न इति ।
गृह्यमग्निमुपस्थाय ।३। कल्याणीं वाच प्रब्रूयात् ।४।
विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय ।
मयि पद्यायै विराजो दोह इति ॥ पाद्यप्रतिग्रहणः ।५।

इसके अनन्तर प्रवास मे रहकर आगमन करता हुआ गृहों को समीक्षित करता है ॥१॥ "गृहा मा विभीत मा वेपध्व मूर्जं विभ्रत एमसि ।" अर्थात् हे गृहो ! मत डरो, कम्पित मत होओ, ऊर्ज को भरण करो। "ऊर्जं विभ्रद्वः सुमनाः सुमेधाः गृहानेमि मनसा मोदमानः" अर्थात् ऊर्ज को धारणा करते हुए आप सब है। सुन्दर मन वाला, सुन्दर मेधावाला गृहों को आता हूँ, मन से मुदित होता हुआहूं । 'येषा मध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः । उपहूता इहगाव उपहूता अजानयः। अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥२॥ 'अयं नो अग्निर्भगवानयं नो भगवत्तरः । अस्योप सद्ये मा रिषामायं श्रेष्ठये दधातु न इति" इस मन्त्र से गृह्य

अग्नि का उपस्थान करे ॥३॥ कल्याणी वाणी को बोलना चाहिए ॥४॥ "विराजो दोहोऽसि विरजो दोहमशीय ! मयिपद्यायै विराजो दोह इति" इस मन्त्र के द्वारा पाद्य का प्रति ग्रहण करे ॥५॥

॥ अथ आग्रयणम् ॥

अनाहिताग्निर्नवं प्राशिष्यन्नाग्रयणदेवताभ्यः स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्य· स्वाहाकारेण गृह्येऽग्नौ जुहुयात् ।१।
प्रजापतये त्वा ग्रहं गृह्णामि मह्यं श्रियै मह्यं यशसे मह्यमन्नाद्यायेति प्राशनार्थीयमभिमन्त्र्य ।२।
भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वया ज्वसेन समशीमहि त्वा। स नो मयोभूः पितवा विशस्व शन्नो भवद्विपदे शंचतुष्पदइति अद्भिरभ्युत्विश्च त्रिः प्राश्नाति ।३।
अमोऽसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमोऽसि सर्वाङसि प्रविष्टः । स मेजरां रोगमपनुद्य शरीरादमा म एधि मृधा न इन्द्रेति ॥ हृदयदेशमभिमृशति ।४। नाभिरसि, मा विभीथाः, प्राणानां ग्रन्थिरसि, मा विस्रस इति नाभिम् ।५। भद्रं कर्णेभिरिति यथालिङ्गम् ।६। तच्चक्षुरिति आदित्यमुपस्थाय ।७।

जो आहिताग्नि न हो वह नवीन का प्राशन करता हुआ आग्रयण देवताओं के लिये स्विष्टकृत् चतुर्थियों के लिये स्वाहाकार के द्वारा ग्रह्य अग्नि में हवन करना चाहिए ॥१॥ "प्रजापत ये स्वाग्रहगृह्णामि मह्य श्रियै मह्यं यश से मह्यमन्नाद्यायेति इस मन्त्र से प्राशनार्थीय को अभिमन्त्रित करे ॥२॥ "तद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाज्वसेन समशीमहि त्वा। सनोमयोभूः पितवा विशस्वशन्नोभव द्विपदे शचतुष्पद इति" इस मन्त्र से जलों के द्वारा अभ्युत्क्षिञ्चन करते हुए तीन बार प्राशन करता है ॥३॥ "अमोऽसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमोऽसि सर्वाङसि प्रविष्टः समेजरां रोगमपनुद्य शरीरादमा मएधि मृधा न इन्द्रेति" इससे हृदय

देश को अभिमृष्ट करता है ॥४॥ "नाभिरसि मा विभीथाः प्राणानां ग्रन्थिरसि, मा विस्रस इति' इस मन्त्र से नाभि को अभिमृष्ट करता है ॥५॥ "भद्रं कर्णे भिरिति इससे यथा लिङ्ग को करे ॥६॥ "तच्चक्षुरिति" इस मन्त्र से आदित्य देव का उपस्थान करे ॥७॥

॥ अथ गोष्ठकर्म ॥

परि वः सन्याद्वघाद्धया वृञ्जन्नु घोषिण्यः । समानस्तस्य गोपतेर्गावो अंशो न वो रिषत् ॥ पूषा गा अन्वेतुनइति गाः प्रतिष्ठामाना अनुमन्त्रयेत ।१। परि पूषेति परिक्रान्तासु ।२। यासामूधश्चतुर्बिल मधोः पूर्णं घृतस्य च । ता नः सन्तु पयस्वतीर्बह्वीर्गोष्ठे घृताच्य इति ॥ आ गावो अग्मन्निति च प्रत्यागतासु ।३। उत्तमाममा कुर्वन् ।४। मयोभूर्वात इति सूक्तेन गताः ।५।

"परिवः सन्याद्वधाद्वया वृञ्जन्तु घोषिण्यः । समानस्तस्य गोपतेर्गावो अंशोनवोरिषत् । पूषा अन्वेतुन इति" इससे प्रतिष्ठमान गौओं को अनुमन्त्रित करना चाहिए । "परिपूषेति' इससे परिक्रमण करने वालियों में करे ॥१-२॥ "यासामधश्चतुर्बिल मधोः पूर्णं घृतस्य च । ता नः सन्तु पयस्वतीर्बह्वीर्गोष्ठे घृताच्य इति"—"आगावो अग्मन्निति" इन दोनों से अरण्य में परिक्रमणकर के जो प्रत्यागता हों उनमें करे अर्थात् अनुमन्त्रण करे ॥३॥ उत्तमा को अमा करते हुए ॥४॥ "मयोभूर्वात इति—इसके द्वारा गोष्ठ चली गयीं ॥५॥

॥ अथ गवामङ्कनकर्म ॥

या फाल्गुन्या उत्तराऽमावास्या सा रेवत्या सम्पद्यते तस्यामङ्कलक्षणानि कारयेत् ।१।
भुवनमसि सहस्रपोषमिन्द्राय त्वा श्रमो ददत् ।
अक्षतमस्यरिष्टमिडाऽन्नं गोपायनं यावतीनामिदं करिष्यामि भूयसीनामुत्तमां समां क्रियासमिति ।२।
या प्रथमा प्रयायेत तस्याः पोयूष जुहुयात् संवत्सरीणं

पय उस्रियाया इति एताभ्यामृग्भ्याम् ।३। यदि यमौ प्रजायेत महाव्याहृतिभिर्हुत्वा यमसूं दद्यात् ।४।

जो फाल्गुनी की उत्तरा अमावस्या हो और वह रेवती से सम्पन्न होती है तो उसमें अंकलक्षणों को करावे ।।१।। "भुवनमपि सहस्रपोष-मिन्द्रायत्वा श्रमोददत् । अक्षतमस्यरिष्टमिडाऽन्नं गोपायनं यावतीनामिदं करिष्यामि भूयसीनामुत्तमा समां क्रिया समिति" ।।२।। इस मन्त्र के द्वारा अंकलक्षणों को कराना चाहिए । जो प्रथमा प्रजनन करे उसका पीयूष का हवन करना चाहिए । "सम्वत्सरीण पय उस्रियाया इति— इन दो ऋचाओं से हवन करे ।।३।। यदि यमल (जोड़ ले) प्रजनन करे तो महाव्याहृतियों से हवन करके यमलों के प्रसूत करने वाली को देदेना चाहिए ।।४।।

।। अथ वृषोत्सर्गकर्म ।।

अथ वृषोत्सर्गः ।१। कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां रेवत्यां वाऽऽश्वयुज्यस्य ।२। गवां मध्ये सुसमिद्धमग्निं कृत्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति ।३। इह रतिरिह रमध्वं स्वाहा, इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा, उप सृजं धरुणं मात्रे, धरुणो मातरं धयन् रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ।४। पूषा गा अन्वेतु न इति पौष्णस्य जुहोति ।५। रुद्रान् जपित्वा ।६। एकवर्णं द्विवर्णं वा ।७। यो वा यूथं छादयति ।८। यो वा यूथेन छाद्यते ।९। रोहितो वैव स्यात् ।१०। सर्वाङ्गै रुपेतो यूथे वर्चस्वितमः स्यात् ।११। समलङ्कृत्य ।१२। यूथे मुख्याश्चतस्रो वत्सतर्यस्ताश्चाऽलङ्कृत्य ।१३। एतं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण । मावश्वात्र जनुषा सविदाना रायस्पोषेण समिषा मदेम स्वाहेति ।१४। नभ्यस्थेऽनुमन्त्रयते सयोभूरिति अनुवाकशेषेण ।१५। सर्वासां पयसि पायसं ब्राह्मणान् भोजयेत् ।१६।

इसके अनन्तर वृष के उत्सर्ग करने के कर्म के विषय मे बतलाया जाता है ॥१॥ यह कर्म कार्त्तिक मास की पूर्णमासी मे अथवा आश्विन मास की रेवती में करना चाहिए ॥२॥ गौओ के मध्य मे अग्नि को अच्छी तरह से समिद्ध करके वहां पर घृत की आहुतियो का हवन करता है ।३। "इह रतिरिह रमध्वं स्वाहा, इह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा उपसृज धरुणं मात्रे, धरुणो मातर धयन् रायस्पोष मस्मासु दीधरत् स्वाहा" ॥४॥ इन मन्त्रो के द्वारा आहुतियाँ देवे । "पूषा गा अन्वेतुन इति"—इससे पौष्णका हवन करता है ।५। फिर रुद्र मन्त्रों का जाप करे ।६। एक वर्ण वाला - दो वर्ण वाला अथवा तीन वर्ण वाला हो ।७। अथवा जो यूथ को छादन करता है ।८। अथवा जो यूथ के द्वारा छादन किया जाता है ।९। अथवा रोहित ही होवे ।१०। समस्त अङ्गों से युक्त यूथ में वर्चस्वियो में श्रेष्ठतम होवे ।११। उसी को समलङ्कृत करे ।१२। यूथ मे मुख्य चार वत्सतर्यरत हों उसको अलंकृत करना चाहिए ।१३। "एवं युवान पति वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण । मावश्वात्र जनुषा संविदाना रायस्पोषेण समिषा मदेम स्वाहेति" इस मन्त्र को पढ़कर ही करना चाहिए ।१४। नभ्यस्थ मे "मयो भूरिति" अनुवाक शेष के द्वारा अनुमन्त्रित करता है ।१५। सभी के दूध मे पायस बनाकर उससे ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥१६॥

॥ अथ अष्टकाः ॥

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोष्टका अपरपक्षेषु ।१। तासां प्रथमायां शाक जुहोति ।२।

इयमेव सा या प्रथमा व्युच्छदन्तरस्यां चरति प्रविष्ट ।
वधूर्जजाननवकुज्जनित्रीत्रयएनामहिमानः सचन्तास्वाहेति।३।
अथ स्विष्टकृतः ।४।
यस्यां वैवस्वतो यमः सर्वे देवाः समाहिताः ।
अष्टका सर्वतोमुखी सा मे कामनतीतृपत् ।
आहुस्ते ग्रावाणो दन्तानूधः पवमानः ।

मासाश्चार्धमासाश्च नमस्ते सुमनामुखि स्वाहेति ।५।

आग्रहायणी से ऊर्ध्व में तीन अष्टका है जो अपर पक्षों में हैं ।१। उनमे जो प्रथमा अष्टका है उसमें शाक का हवन करता है।२। मन्त्र यह है—"इययेवसा या प्रथमा व्युच्छदन्तरस्यां चरित प्रविष्ठा। वधूर्जजान नव कृञ्जनित्रीत्रय एनां महिमानः सचन्तां स्वाहेति" ।३। इसके अनन्तर स्विष्टकृत है ।४। स्विष्टकृत का मन्त्र निम्नाङ्कित है—"यस्यां वैवस्पतोयमः सर्वदेवाः समाहिताः। अष्ट का सर्वं तो मुखी सामे कामानतीतृपत्। आहुस्ते ग्रावाणो दन्तानूधः पवमानः। मासाश्चार्धमासाश्च नमस्ते सुमनामुखिस्वाहेति" ।।५।।

मध्यमायां मध्यावर्षे च ।१। महाव्याहृतयश्चतस्र- 'ये तातृषुरिति चतस्रोऽनुद्रुत्य वपां जुहुयात् ।२। वह वपां जातवेदः यनात्रैन् वेत्थ सुकृतस्य लोके। मेदसः कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्याः सन्तु यजमानस्य कामः स्वाहेति। वा ।३। महाव्याहृतयश्चतस्रः ये तातृषुरिति चतस्रोऽष्टाहुति स्थालीपाकोऽवदानमिश्रः ।४। "अन्तर्हिता गिरयोऽन्तर्हितापृथिवी महीमे।दिवा दिग्भिश्च सर्वाभिरन्यमन्तः पितुर्द्ध्ऽन्तर्हिता षेऽमुष्यै स्वाहा ।। अन्तर्हिता मऋतवोऽहोरात्राश्च सन्धिजाः। मासाश्चार्धमासाश्चान्यमन्तः पितुर्द्ध्षेऽमुष्यै स्वाहेति ।। यास्तिष्ठन्तियाःस्रवन्तियादभ्राः परिसस्र षीः। अद्भिः सर्वस्य भर्तृभिरन्यमन्तः पितुर्द्ध्षेऽमुष्यै स्वाहा ।। यन्मे माता प्रलुलुमे विचरन्त्यपतिव्रता। रेतस्तन्मे पिता वृङ्क्तां मातुरन्योऽव पद्यतामुष्यै स्वाहेति ।। वा महाव्याहृतीनां स्थाने चतस्रोऽन्यप्रकरणस्य ।५। पायसो वा चरुः ।६। श्वोऽन्वष्टक्यं पिण्डपितृयज्ञावृता ।७।

और मध्यमा में मध्यायवर्ष में करे ।१। महाव्याहृतियां चार होती है—यथा 'भूः-भुवः-स्वः-भूर्भुवः स्वः'' "येतातृषुरिति" इससे चारों महा-

व्याहृतियों को अनुद्रुत करके वर्या का हवन करना चाहिए।२। मन्त्र यह है—"वह वर्या जात वेदः पितृभ्यो यत्रं नान् वेत्थ सुकृतस्यलोके। भदसः कुल्या उप तान्स्रवन्तुसत्याः सन्तु यजमावस्य कामाः स्वाहेति"। अथवा।३। चार महाव्याहृतियाँ है "ये तातृषुरिति" चार अष्टाहुति स्थाली पाक अवदान मिश्र है।४। चार मन्त्र निम्न लिखित है—"अन्तर्हिता गिरयोऽन्तर्हिता पृथिवी महीमे। दिबादिग्भिश्च सर्वाभिरन्यमन्तः पितृद्वर्षेऽमुष्यै स्वाहा"। "अन्तर्हिताम ऋतवो अहोरात्रांश्च सन्धिजाः। मासाश्चार्धमासाश्चान्यमन्त' पितृदर्वेऽमुष्यै स्वाहेति"। 'यास्तिष्ठन्ति याः स्रवन्ति या दभ्राः परिसस्रुषीः अद्भिः सर्वस्य भर्तृभिरन्यमन्तः पितुर्दधेऽमुष्यै स्वाहा"॥ "यन्येमाता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता। रेतस्तन्मे पिता वृङ्क्तां मातुरन्योऽत्र पद्यतामुष्यै स्वाहेति"॥ अथवा महाव्याहृतियों के स्थान में अन्यत्र करण की चार है।५। अथवा पायस चरु होता है।६। श्वोऽन्वष्टक्यं पिण्ड पितृयज्ञावृत्ता है॥७॥

उत्तमायामपूपाञ्जुहोति।१। "उक्थ्यश्चाऽतिरात्रश्च सद्यः क्रीश्छन्दसा सह। अपूपकृदष्टके नमस्ते सुमनामुखि स्वाहेति"।२। गोपशुरजपशु स्थालीपाको वा।३। अपि वा गोग्रासमाहरेत्।४। अपि वाऽरण्ये कक्षमपादहेत् एषा मेऽष्टकेति।५। नत्वेव न कुर्वीत न त्वेव न कुर्वीत।६।

उत्तमा मे अपूषाओं का हवन करता है।१। उस का मन्त्र यह है—"उक्थ्यश्चाति रात्रश्चसद्यः क्रीश्छन्दसासह। अपूप कृदष्ट के नमस्ते सुमनामुखिस्वाहेति"।२। गो—पशुरज पशु अथवा स्थालीपाक।३। अथवा गो ग्रास का भी आहरण करना चाहिए।४। अथवा अरण्य मे भी कक्ष का आदहन करे। मन्त्र— "एषामेऽष्टकेति" इत्यादि है।५। नत्वेव नहीं करे—नत्वेव नही करना चाहिए॥६॥

———

चतुर्थोऽध्याय

अथ श्राद्धकर्म

मासि-मासि पितृभ्यो दद्यात् ।१। ब्राह्मणान् वेदविदोऽयुग्मांस्त्र्यवरार्धान् पितृवदुपवेश्य ।२। अयुग्मान्युदपात्राणि तिलैरवकीर्य ।३। असावेतत्त इत्यनुदिश्य ब्राह्मणानां पाणिषु निनयेत् ।४। अत ऊर्ध्वमलङ्कृतान् ।५। आमन्त्र्याऽग्नौकृत्वाऽन्न च ।६। असावेतत्त इत्यनुदिश्य भोजयेत् ।७। भुञ्जानेषुमहाव्याहृतीःसावित्रींमधुवतीयापितृदेवत्या. पावमानीश्च जपेत् ।८। भुक्तवत्सु पिण्डानुदद्यात् ।९। पुरस्तादेके ।१०। पिण्डान् पश्चिमेन तत्पत्नीनां किञ्चिदन्तर्धाय ।११। ब्राह्मणेभ्यः शेषं निवेदयेत् ।१२। अग्नौकरणादि पिण्डपितृयज्ञेन कल्पो व्याख्यातः ।१३।

मास—मास में अर्थात् प्रत्येक मास में पितृगण के लिये श्राद्ध देना चाहिए ।१। वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों को पितृगण के ही समान समझकर उपविष्ट कराना चाहिए । वे ब्राह्मण अयुग्म और त्र्यवरार्ध होने चाहिएँ ।२। अयुग्म उदक पात्रों को तिलों से अववीर्ण करे ।३। "असावेतत्त"—इस प्रकार से अनुदिष्ट करके ब्राह्मणों के हाथों में निनयन करना चाहिए ।४। इससे आगे उनको अलङ्कृत करे ।५। आमन्त्रण करके और अग्नि में अन्न की आहुति देवे ।६। "असावेतत्त" अर्थात् यह आपके लिये है—इस प्रकार से अनुदिष्ट करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।७। जिस समय में ब्राह्मण भोजन कर रहे हों उस अवसर पर महाव्याहृतियों को सावित्री को और मधुवातीय, पितृ जिनके देवता हैं उन पवमानी ऋचाओं का जाप करना चाहिए ।८। जब वे भुक्तवान् हो जावें उस समय पर पिण्डों को देवे ।९। कुछ विद्वानों का मत है—आगे पिण्डों को देवे ।१०। कुछ अन्तर्धान करके पश्चिम में उनकी पत्नियों को पिण्डों को

देवे ।११। शेष ब्राह्मणों के लिये निवेदन कर देना चाहिए । ।१२। अग्नि में करणादि पिण्ड पितृयज्ञ के द्वारा कल्प की व्याख्या करदी गयी है ।।१३।।

अथ एकोद्दिष्टश्राद्धकर्म

अथात एकोद्दिष्टम् ।१। एकपवित्रम् ।२। एकार्घ्यम् ।३। एकपिण्डम् ।४। नाऽऽवाहन नाऽग्नौकरणं नात्र विश्वेदेवा "स्वदितमिति" तृप्तिप्रश्ने "उप तिष्ठतामिति" अक्षय्य-स्थाने ।५। "अभि रम्यतामिति" विसर्गः ।६। संवत्सर-मेवं प्रेते ।७। चतुर्थविसर्गश्च ।८।

इसके अनन्तर इसी लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध बतलाया जाता है ।१। इसमें एक ही पवित्री होती ।२। एक ही अर्घ्य होता है ।३। एक ही पिण्ड हुआ करता है ।४। इसमें आवाहन नहीं होना है और इस एकोद्दिष्ट में विश्वेदेवा नहीं है ।"स्वदितमिति" यह तृप्ति के प्रश्न में बोला जाता है । "उपतिष्ठताम्" यह अक्षय्य स्थान में होता है ।५। "अभिरम्यताम्"— इससे विसर्ग (विदाई) होता है ।६। इसी प्रकार से प्रेत में सम्वत्सर तक करे ।७। और चतुर्थ विसर्ग करे ।।८।।

अथ सपिण्डीकरणम्

अथ सपिण्डीकरणम् ।१। संवत्सरे पूर्णे त्रिपक्षे वा ।२। यदहर्वा वृद्धिरापद्येत ।३। चत्वार्युदपात्राणि सतिलग-न्धोदकानि कृत्वा ।४। त्रीणि पितृणामेक प्रेतस्य ।५। प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति "ये समाना इति" द्वाभ्याम् ।६। एवं पिण्डमपि ।७। एतत्सपिण्डीकरणम् ।८।

इसके अनन्तर सपिण्डी करण कर्म के विषय में बतलाया जाता है ।१। एक वर्ष के पूर्ण हो जाने पर अथवा त्रिपक्ष में करना चाहिए ।२। जो दिन अथवा वृद्धि को प्राप्त होवे ।३। चार जलके पात्रों को तिल-गन्ध और जल से युक्त करना चाहिए ।४। तीन पात्र तो पितृगण

के लिये रक्खे और एक पात्र प्रेत के लिये रखना चाहिए ।५। प्रेत के पात्र को पितृगण के लिये रक्खे हुए पात्रों में आसिञ्चन करता है। और उस आसिञ्चन के समय में निम्न दो ऋचाओं को पढ़े—येसामाना इत्यादि ।६। इसी प्रकार से पिण्ड को भी करे ।७। यदि सपिण्डी करण कर्म्म होता है ।८।

अथ आभ्युदयिकश्राद्धकर्म

अथात आभ्युदयिकम् ।१। आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे ।२। मातृयागं कृत्वा ।३। युग्मान् वेदविदो ब्राह्मणानुपवेश्य ।४। पूर्वाह्णे ।५। प्रदक्षिणमुपचारः ।६। पितृमन्त्रवर्जं जप ।७। ऋजवो दर्भाः ।८। यवैस्तिलार्थः ।९। दधिबदराक्षतमिश्राः पिण्डाः ।१०। "नान्दीमुखान् पितृना वाहयिष्य इति" आवाहने ।११। "नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति" अक्षय्यस्थाने ।१२। "नान्दीमुखान् पितृन् वाचयिष्य इति" वाचने ।१३। "सपन्नमिति" तृप्तिप्रश्ने ।१४। समानमन्यदविरुद्धमिति ।१५।

इसके अनन्तर इसीलिये आभ्युदयिक श्राद्धकर्म बतलाया जाता है ।१। इसको आपूर्यमाण पक्ष में और पुण्य दिन में करना चाहिए। ।२। मातृ याग को करके इसे करे ।३। युग्म संख्या वाले वेदों पर ज्ञाता ब्राह्मणों को बिठाना चाहिए। ।४। पूर्वाह्ण में इसको करे ।५। प्रदक्षिण उपचार होता है ।६। पितृगण के मन्त्रों से वर्जित जाप होता है ।७। इसमें जो दर्भ होते है वे ऋजु ही होते है ।८। यवों के द्वारा तिलों का अर्थ निष्पन्न किया जाता है।९।पिण्ड दधि, बदर अक्षतों के होते हैं। आवाहन करने में नान्दी मुखान् पितृ ना वाहयिष्ये इत्यादि मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। ।१०-११। अक्षय स्थान में नान्दी मुखाःपितरः प्रीयन्ताम् इति—इस मन्त्र का प्रयोग करे। वाचन में–नान्दी मुखान् पितृन् वाचायिष्ये इति—इस मन्त्र को पढ़े ।१२-१३। सम्पन्नमिति इस को तृप्ति प्रश्न में करे ।१४। अन्य सब अविरुद्ध एवं समान है ।१५।

॥ अथ उपाकरणम् ॥

अथोपाकरणम् ।१। ओषधीनां प्रादुर्भावे हस्तेन श्रवणेन वा ।२। अक्षतसक्तूनां धानानां च दधिघृतमिश्राणां प्रत्यृच वेदेन जुहुयादिति हैक आहुः ।३। सूक्तानुवाका-द्याभिरिति वा॥४। अध्यायर्षेपाद्याभिरिति माण्डूकेयः।५। अथ ह स्माऽऽह कौषीतकिः ।६। "अग्निमीले पुरोहित-मिति" एका ।७। कुषुम्भकतदब्रवीत् आवदस्त्व शकुने भद्रमा वद, गृणाना जमदग्निना, धामन्ते विश्व भुवन-मधि श्रित, गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि यो नः स्वो अरणः, प्रति चक्ष्व वि चक्ष्व, आऽग्ने याहि मरुत्सखा, यत्त राजञ्छृतं हविरति" । द्वृचाः ।८। तच्छंयोरा वृणीमह इति एका ।९। हुतशेषाद्धविः प्राश्नन्ति दधिक्राव्णो अकारिषमिति एतया ।१०। आचम्यागविश्य ।११। महाव्याहृतीः सावित्रीं वेदादिप्रभृतीनि स्वस्त्ययनानि च जपित्वा ।१२। आचार्य स्वस्तिवाच्य ।१३। तदपि भवति ।१४। अयातयामता पूजां सारत्व छन्दसां तथा। इच्छन्त ऋषयोऽपश्यन्नुपाकर्मं तपोबलात् ।१५। तस्मात् षट्कर्म नित्योनाऽऽत्मनो मन्त्रसिद्धये । उपाकर्त-व्यमित्याहुः कर्मणां सिद्धिमिच्छता ।१६। उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं भवेत् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृ-त्वन्त्यासु च रात्रिषु ।।१७।।

इसके अनन्तर उपकरण बतलाया जाता है ।१। ओषधियों के प्रादुर्भाव में हस्त नक्षत्र अथवा श्रवण से करे ।२। अक्षत-सत्तू और धानों का जो दधि और घृत से मिले हुए हो प्रत्येक ऋचा में वेद से हवन करना चाहिए-ऐसा कुछ मनीषियों का मत है ।३। अथवा सूक्त–अनुवादि से करे ।४। माण्डूकेय कहता है—अध्यायर्षेयाद्यों

से करे ।५। इसके उपरान्त कौषीतकि ने कहा था ।६। अग्निमीले पुरोहितमिति—यह एक है ।७। कुषुम्भकतदब्रवीत आवदस्त्वं शकुने भद्रमा वद गृणाना जमदग्निना धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रित गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि, यो नः स्वो अरणः, प्रतिचक्ष्व विचक्ष्व, आग्ने याहि मरुत्सखा यत्ते राजन् छृत हविरिति द्वृचाः ।८। तच्छंयोए वृणीमहे इति एका ।९। दधि क्राव्णो अकारिषम्-इति इस ऋचा से हुत के शेष हवि का प्राशन करते है ।१०। आचमन करके और उपविष्ट होवे ।११। महा व्याहृती—सावित्री—वेदादि प्रभृतियों को और स्वस्त्ययनो को जप करे ।१२। आचार्य को स्वस्ति वाचन करना चाहिए । वह भी होता है । ।१३-१४। अयात यामता पूजा को तथा छन्दों के सारत्व की इच्छा रखते हुए ऋषिगण तप के बल से उपकर्म को देखते थे ।१५। इस कारण से अपने मन्त्र की सिद्धि के लिये नित्य ही षट् कर्म और कर्मों की सिद्धि को चाहने वाले के द्वारा उपाकर्म्म करना चाहिए—ऐसा कहते है ।१६। उपाकर्म में और उत्सर्ग में तीन रात्रि तक क्षपण हो जाना चाहिए । अष्टकाओं में और ऋत्वन्त्या रात्रियों में एक अहोरात्र तक होवे ।१७।

।। अथ उत्सर्गकर्म ।।

माघशुक्लप्रतिपदि ।१। अपराजितायां दिशि ।२। बह्वौषधिके देशे ।३। उदु त्यं जातवेदसम् चित्र देवानाम् नमो मित्रस्य सूर्यो नो दिवस्पात्विति सौर्याणि जपित्वा ।४। शास इत्था महाँ असीति प्रदक्षिणं प्रत्यृचं प्रतिदिशं प्रत्यस्य लोष्टान् ।५। ऋषींश्छन्दांसि देवताः श्रद्धामेधे च तर्पयित्वा प्रतिपुरुषं च पितॄन् ।६। छन्दांसि विश्रामयन्त्य र्धसप्तमान्मासान् ।७। अर्धषष्ठान् वा ।८। अधीयीरंश्चेदहोरात्रमुपरम्य प्राध्ययनम् ।९।

उत्सर्ग कर्म माघ शुक्ला प्रतिपदा में करे ।१। अपराजित दिशा में करे ।२। बहुत ओषधियो वाले देश मे करना चाहिए ।३। उदुत्यं जात वेदसम्, चित्रं देवानाम्, नमोमित्रस्य, सूर्य्यो नो दिवस्पतिवति' इन सौर्य्य मन्त्रों को जपे ।४। 'शास इत्था महां असीति' इस मन्त्र से प्रत्येक ऋचा-प्रत्येक दिशा और प्रत्येक इसके लोष्टों के प्रदक्षिण करे ।५। ऋषियों को छन्दों को—देवताओं को और श्रद्धा—मेधा को तृप्त करके और प्रति पुरुष तथा पितृगण को तृप्त करे ।६। छन्दों को अर्ध सप्तम मासों तक विश्राम देते है ।७। अथवा अर्धषष्ठ मासों को विश्रान्त करते है ।८। यदि अहोरात्र तक अध्ययन करें तो प्राध्ययन को उपराम देना चाहिए ।९।

॥ अथ उपरमकर्म ॥

अथोपरमम् ।१। उत्पातेष्वाकालम् ।२। अन्येष्वद्भ्रु तेषु च ।३। विद्युत्स्तनयित्नु-वर्षांषु त्रिसध्यम् ।४। एकाहं श्राद्धभोजने ।५। दशाहमघसूतकेषु च ।६। चतुर्दश्यमा-वास्ययोरष्टकासु च ।७। वासरेषु नस्येषु च ।८। आचार्ये चोपरते दशाहम् ।९। श्रुत्वा त्रिरात्रम् ।१०। तत्पूर्वाणां च ।११। प्रतिग्रहे श्राद्धवत् ।१२। सब्रह्मचारिणि ।१३। प्रेतमनु गत्वा ।१४। पितृभ्यश्च निधाय पिण्डान् ।१५। निशाम् ।१६। संध्याम् ।१७। पर्वसु ।१८। अस्तमिते ।१९। शूद्रसन्निकर्षे ।२०। सामशब्दे ।२१। श्मशाने ।२२। ग्रामा-रण्ये ।२३। अन्तःशवे ग्रामे ।२४। अदर्शनीयात् ।२५। अश्रवणीयात् ।२६। अनिष्टघ्राणे ।२७। अतिवाते ।२८। अभ्रे प्रावर्षिणि ।२९। रथ्यायाम् ।३०।वीणाशब्दे च।३१। रथस्थ· ।३२। शूद्रच्छुनि ।३३। वृक्षारोहणे ।३४। अवटारोहणे ।३५। अप्सु ।३६। क्रन्दति ।३७। आर्त्याम् ।३८। नग्ने ।३९। उच्छिष्टः ।४०। संक्रमे ।४१। केशश्मश्रूणि वापन आ स्नानात् ।४२। उत्पादने ।४३। स्नाने ।४४। सवेशने ।४५। अभ्यञ्जने ।४६। प्रेतस्पर्शिनि सूतिकोदक्य-

योश्च शूद्रवत् ।४७। अपिहितपाणिः ।४८। सेनायाम् ।४९।
अभुक्ताने ब्राह्मणे गोषु च ।५०। अतिक्रान्तेष्वधीयीरन्
।५१। एतेषां यदि किञ्चिदकामोत्पातो भवेत्प्राणानाय-
म्याऽऽदित्यमोक्षित्वाऽधीयीत ।५२। विद्युत्स्तनयित्नुवर्ष-
वर्जकल्पे वर्षवदर्धषष्ठेषु ।५३। तदप्येतत् ।५४।
अन्नमापो मूलफलं यच्चान्यच्छाद्धिकं भवेत् ।
प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो ब्राह्मणः स्मृतः इति ।।५५।।

इसके अनन्तर उपरम के विषय में बतलाया जाता है ।१। उत्पात धूलि वर्षण आदि जितने समय तक रहें तब तक अनध्याय होता है अर्थात् जिस समय से आरम्भ करे उस समय को अपरेद्यु कहते हैं ।२। अन्य अद्भुत कर्मों में भी अनध्याय होता है ।३। वियुत्स्तनयित्नु वर्षाओं में तीन सन्ध्याओं तक एक अहोरात्र तक अनध्याय होता है ।४। श्राद्ध के भोजन करने पर एक दिन का होता है ।५। त्र्याह मे और अघ सूतकों में में भी भोजन करने पर एकाह अनध्याय होता है ।६। चतुर्दशी में—अमाव-स्या मे और अष्टकाओं में भी अनध्याय होता है मध्य में रहने वाले दिनों में भी होता है ।७-८। आचार्य के उपरत हो जानेपर वण दिन पर्यन्त अनध्याय होना चाहिए ।९। श्रवण करके तीन रात्रि तक अनध्याय मानना चाहिए ।१०। उनके पूर्वों का भी तीन रात्रितक ही होता है।११। प्रतिग्रह लेने पर भी श्राद्ध के ही समान ही अनध्याय मानना चाहिए ।१२। साथी ब्रह्मचारी के उपरत होने पर भी इसी भाँति अनध्याय होना चाहिए ।१३। किसी पुत्र के पीछे जाने पर भी उस दिन अनध्याय होता है ।१४। अपने पितृगणों के लिये पिण्डों के देने पर भी अनध्याय मानना चाहिए ।१५। निशाकाल में—सन्ध्या के काल में—पर्वों में—सूर्य के अस्तमन वेला में—किसी शूद्र के सन्निकर्ष हो जाने पर अनध्याय होता है अर्थात् उपर्युक्त समयों में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।१६ २०। साम शब्द में—श्मशान में—ग्राम के अरण्य में—जिस ग्राम मे मध्य में शव हो उस समय में अनध्याय होना चाहिए ।२१-२४। जो श्रवण करने के और जो

दर्शन करने के अयोग्य हो उनके देखने और श्रवण करने से भी अनध्याय होना चाहिए।२५-२६। जो अभीष्ट न हो उसके घ्राण कर लेने पर भी अनध्याय होता है।२७। अत्यधिक वात के वहन करने पर भी स्वाध्याय का अभाव होता है।२८। अभ्र के प्रावर्षित होने पर अनध्याय होता है।२९। रथ्या में—वीणा शब्द के होने पर भी स्वाध्याय नहीं होना चाहिए।३०-३१। रथ में स्थित होकर स्वाध्याय न करे।३२। शूद्र के ही समान कुत्ते के सन्निकर्ष होने पर अनध्याय मानना चाहिए।३३। वृक्ष के आरोहण में—अवरारोहण में—जल के मध्य में क्रन्दन करने पर—आर्त्ति (पीड़ा) में—नग्न होने पर—उच्छिष्ट हो उस समय में और संक्राम काल में स्वाध्याय नहीं होता है।३४-४१। अपने केशों और श्मश्रु के वपन पर जब तक स्नान न करे अनध्याय मानना चाहिए।४२। उत्पादन में—स्नान के समय में—संवेशन में—अभ्यञ्जन में अनध्याय होता है।४३-४६। प्रेत के स्पर्श करने पर और सूतिका तथा उदकी (रजस्वला) के स्पर्श होने पर शूद्र के ही समान अनध्याय होता है।४७। अविहितपाणि—सेना में और ब्राह्मणों तथा गौओं के भुज्जान न होने पर भी अनध्याय होता है।४८-५०। अतिक्रान्त हो जाने पर अध्ययन करना चाहिए।५१। इनका यदि कुछ अकामोत्पात हो जावे तो प्राणायाम करके सूर्य देवका दर्शन करके अध्ययन करना चाहिए।५२। कल्प के अध्ययन करने में तथा सूत्र के अध्ययन में उपा कर्मकरण से ऊपर वर्षवत् सार्द्ध पञ्चमासों में अनध्याय होता है परन्तु विद्युत्स्तनयित्नु वर्ष से रहित ही होना चाहिए। वह भी यही है।५३ ५४। अन्न-जल्प—मूल फल और जो अन्य श्राद्धा आदि होवे—इनका प्रतिग्रहण करके भी अनध्याय होता है ब्राह्मण पाण्यास्य कहा गया है।५५।

॥ उपरमकर्म (२) ॥

न्यायोपेतेभ्यश्च वर्तयेत्।१।प्राङ्वोदङ् वाऽऽसीन आचार्यो दक्षिणत उदङ्मुख इतरः।२।द्वौ वा।३। भूयांसस्तु यथा-

वकाशम् ।४। नोऽच्छ्रितासनोपविष्टो गुरुसमीपे ।५। नैकासनस्थः ।६। न प्रसारितपादः ।७। न बाहुभ्यां जानूपसगृह्य ।८। नोपाश्रितशरीरः ।९। नोपस्थकृत्तपादः ।१०। न पाद कुठारिकां कृत्वा ।११। अधीहि भो३ इति उक्त्वाऽऽचार्य ॐ ङ्कारं प्रचोदयेत् ।१२। ॐ इतीतरः प्रतिपद्यते ।१३। तत्सन्ततमधीयीत ।१४। अधीत्योपसंगृह्य ।१५। विरताः स्म भो३ इति उक्त्वा यथार्थम् ।१६। विसृष्टं विरामस्तावदिति एके ।१७। नाऽधीयतामन्तरा गच्छेत् ।१८। नाऽऽत्मानं विपरिहरेदधीयानः ।१९। यदि चेद्दोषः स्यात्त्रिह्नात्रमुपोष्याऽहोरात्रं वा सावित्रीमभ्यावर्तयेद्यावच्छक्नुयाद् ब्राह्मणेभ्यः किञ्चिद्यादहोरात्रमुमरम्य प्राध्ययनम् ॥२०॥

जो न्याय से उपेत हों उनके साथ ही व्यवहार करना चाहिए।१। आचार्य पूर्व की अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर आसीन होवे। दक्षिण की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर इतर अर्थात् शिष्य आसीन होना चाहिए।२। अथवा दोनों ही ।३। अधिकतर तो अवकाश के अनुसार ही आसीन होते हैं ।४। अपने गुरु के समीप में उच्छ्रित (ऊंचे) आसन पर कभी भी उपविष्ट नहीं होना चाहिए।५। गुरु के बैठने वाले एक ही आसन पर भी कभी उपविष्ठ नहीं होना चाहिए।६। शिष्य (ब्रह्मचारी) को कभी आसन पर पैरों को फैलाकर नहीं बैठना चाहिए।७। अपनी बाहुओं से घुटनों का उपसंग्रह करके भी नहीं बैठना चाहिए।८। उप श्रित शरीर वाला अर्थात् किसी का सहारा को देने वाला होकर गुरु के समीप में नहीं बैठना चाहिए।९। उपस्थ पर चरण रख कर भी नहीं आसीन होवे।१०।पैर पर कुठारिका को करके भी न बैठे।११। "अधीहि भो३"—अर्थात् अध्ययन करो—यह कह कर आचार्य ॐकार को प्रेरित करें।१२। इतर अर्थात् शिष्य "ॐ इति"—इसका प्रतिपादन करे।१३। ऐसा होते हुए अध्ययन करना चाहिए।१४।

अध्ययन करके उपसंग्रह करे—"विरताः स्मथो३" इति—यह यथार्थ में कहकर ही विराम ग्रहण करना चाहिए ।१५-१६। "विसृष्टं विरमस्तावत्-इति" यह कहकर विराग ग्रहण करे—ऐसा कतिपय विद्वानों का कथन है ।१७। अध्ययन करने वाले के बीच से कभी गमन न करे ।१८। अध्ययन करता हुआ शिष्य अपने आपको विपरिहृत न करे अर्थात् शिष्य के द्वारा अध्ययन को अन्तरित नहीं करना चाहिए ।१६। यदि आचार्य और शिष्य के बीच में किसी समय मे मार्जार आदि के गमन का दोष हो जावे तो तीन रात्रि तक उपवास करके अथवा एक अहोरात्र सावित्री का अभ्यावर्त्तन करे और जितनी भी शक्ति होवे ब्राह्मणों को कुछ खिलावे फिर एक अहोरात्र पर्यन्त उपराम ग्रहण करके पुनः प्राध्ययन करे ॥२०॥

॥[२] अथ तर्पणम् ॥

स्नातः ।१। उपस्पर्शनकालेऽवगाह्य देवतास्तर्पयति ।२। अग्निस्तृप्यतु वायुस्तृप्यतु सूर्यस्तृप्यतु विष्णुस्तृप्यतु प्रजापतिस्तृप्यतु विरूपाक्षस्तृप्यतु सहस्राक्षस्तृप्यतु सोमः ब्रह्मा वेदाः देवाः ऋषयः सर्वाणि च छन्दांसि ॐकारः वषट्कारः महाव्याहृतयः सावित्री यज्ञाः द्यावापृथिवी नक्षत्राणि अन्तरिक्षम् अहोरात्राणि संख्याः संध्याः समुद्राः नद्यः गिरयः क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरसः नागाः वयांसि सिद्धाः साध्याः विप्राः यक्षाः रक्षांसि भूतान्येवमन्तानितृप्यन्तु श्रुतिं तर्पयामि स्मृतिं तर्पयामि रतिं तर्पयामि गतिं तर्पयामि मतिं तर्पयामि श्रद्धामेधे धारणां च गोब्राह्मणं स्थावरजङ्गमानि सर्वभूतानि तृप्यन्त्विति यज्ञोपवीती ।३।

सर्वं प्रथम स्नान करे ।।१।। उपस्पर्शन काल में अवगाहन करके देवों का तर्पण यज्ञोपवीती करता है ।।२।। तर्पण निम्न क्रम से करना चाहिए—"अग्नि तृप्त होवे–वायु तृप्त होवे–सूर्य तृप्त होवे–विष्णु तृप्त हों–प्रजापति तृप्त होवे–विरुपाक्ष प्रभु तृप्त होवें–सहस्राक्ष तृप्त हों–इसी प्रकार से सोम–ब्रह्मा–वेद–देव–ऋषिगण और समस्त छन्द–ॐकार–वषट्कार–महाव्याहृतियां–सावित्री–यज्ञ–द्यावा पृथिवी–नक्षत्र–अन्तरिक्ष–अहोरात्र–संख्या–सन्ध्या समुद्र–नदियाँ–पर्वत–क्षेत्र, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, गन्धर्व, अप्सराऐं, नाग, पक्षी, सिद्ध, साध्य–विप्र, यक्ष, राक्षस, भूत और इसी प्रकार से अन्य सब तृप्त होवें । मैं श्रुति को तृप्त करता हू, स्मृति को, धृति को, रति को, गति को, मति को श्रद्धा को, मेधा को, धारणा को, तृप्त करता हूं । गौ और ब्राह्मणों को, तृप्त करता हूं, स्थावर और जङ्गमों को समस्त भूतों को तृप्त करता हूं और ये सभी तृप्त होवें, इति ।३।

।। अथ तर्पणम (२) ।।

अथ प्राचीनावीती ।१। पित्र्यां दिशमीक्षमाणः ।२। शतर्चिनः माध्यमाः गृत्समदः विश्वामित्रः जमदग्नि वामदेवः अत्रिः भारद्वाजः वसिष्ठ; प्रगाथाः पावमाना क्षुद्रसूक्तमहासूक्ताः सुमन्तुः जैमिनि वैशम्पायन पैलसूत्र भाष्य गार्ग्य-बभ्रु-बाभ्रव्य-मण्डु-माण्डव्याः गार्गी वाचक्नवी वडवा प्रातिथेयी सुलभा मैत्रेयीकहोलं कौषीतकिं महाकौषीतकिं सुयज्ञं शाङ्खायनम् आश्वालयनम् ऐतरेयम् महैतरेयम् भारद्वाजम् जातूकर्ण्यम्,पैंग्यम् महापैङ्ग्यम् बाष्कलम् गार्ग्यम् शाकल्यम् मांडूकेयम् महादमत्रम्औदवाहिम् महौदवाहिम् शौनकिम् शाकपूणिम् गौतमिम् ये चाऽन्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यंत्विति ।३। प्रतिपुरुषंपितरः।४।पितृवंशस्तृप्यतु।५। मातृवंशस्तृप्यतु ।६।

इससे अनन्तर प्राचीनावीती हो जावे ।१। पित्र्य अर्थात् पितरों की दिशा की ओर देखता हुआ होवे ।२। शतर्चिन, माध्यमाः, गृत्समद, विश्वामित्र, जमदग्नि, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथा, पावमाना, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल,सूत्र, भाष्य,गार्ग्य, विभ्रु,बाभ्रव्य, मण्डु, माण्डव्य, गार्गी, वाचक्नवी, वड़वा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतकी, महाकौषीतकि, सुयज्ञ, शांखायन, आश्वलायन, ऐतरेय, महैतरेय, भारद्वाज, जातूकर्ण्य, पैंङ्ग्य, महापैङ्ग्य, बाष्कल, गार्ग्य, शाकल्य, माण्डूकेय, महादमत्र, औदवाहि, महौदवाहि, सौयामि शौनकि, शाकपूणि, गौतमि, और जो अन्य आचार्य हैं वे सब तृप्त होवे ।३। प्रति पुरुष पितर होवें ।४। पितृगण का वंश तृप्त होवे ।५। मातृ वंश तृप्त होवे ।६।

।। अथ स्नातकधर्माः ।।

न नग्नां स्त्रियमीक्षेताऽन्यत्र मैथुनाद् ।१। नाऽऽदित्यं सन्धिवेलयोः ।२। अनाप्तम् ।३। अकार्यकारिणम् । । प्रेत-स्पर्शिनम् ।५। सूतिकोदक्याभ्यां न संवदेत्।६।एतैश्च ।७। उद्धृततेजांसि न भुञ्जीत ।८। न यातयामैः कार्यं कुर्यात् ।९। न सह भुञ्जीत ।१०। न शेषम्।११। पितृदेवतातिथि-भृत्यानां शेषं भुञ्जीत ।१२। उच्छशिलमयाचितप्रतिग्रहः साधुभ्यो याचितो वा याजनं वृत्तिः ।१३। पूर्वं पूर्वं गरीयः ।१४। असंसिध्यमानायां वैश्यवृत्तिर्वा ।१५। अप्रमत्तः पितृदैवतकार्येषु ।१६। ऋतौ स्वदारगामी ।१७। न दिवा शयीत ।१८। न पूर्वापररात्रौ ।१९। न भूमावनन्तर्हिताया-मासीत ।२०। नित्योदकी ।२१। यज्ञोपवीती ।२२। न विगृह्यैदाचार्य्यम् ।२३। अन्यत्र नियोगात् ।२४। अनुज्ञातो वा ।२५।

स्नातक जो हो उसको चाहिए कि मैथुन के अतिरिक्त स्त्री को कभी भी दूसरे समय में नग्न नही देखना चाहिए ।१। जब सन्धि का

समय हो अर्थात् उदय काल और सूर्य का अस्तमन काल हो तो उस समय में आदित्य को नहीं देखना चाहिए ।२। जो अनाप्त हो, अकार्यकारी हो, प्रेत का स्पर्श करने वाला हो तथा सूतिका और उदकी से भाषण नहीं करना चाहिए ।३-६। और इनके साथ तथा उद्धृत तेजों को न खावे ।७-८। यातयामों के साथ कार्य नहीं करना चाहिए ।९। इनके साथ भोजन भी न करे ।१०। जो शेष रहे उसे भी न खावे ।११। पितृगण, देवता, अतिथि और भृत्यों को पहिले भोजन करके जो शेष रहे उसे ही खाना चाहिए ।१२। एक स्नातक की वृत्ति उञ्छशिला, प्रतिग्रह का ग्रहण न करते हुए साधु पुरुषों से याचित हो अथवा याजन वृत्ति होनी चाहिए ।१३। इन बतायी हुई वृत्तियों में जो-जो पूर्व में है वही वृत्ति विशेष गौरवपूर्ण होती है ।१४। यदि वृत्ति संसिध्य माना न हो तो उस अवसर में विकल्प में वैश्यों की वृत्ति को भी ग्रहण कर सकता है ।१५। एक स्नातक को चाहिए कि पितृगण, दैवत के कार्यों में कभी प्रमत्त नहीं होना चाहिए ।१६। ऋतु काल में ही अपनी दारा के साथ अभिगमन करना चाहिए।१७।दिन के समय में कभी शयन नहीं करे। ।१८। पूर्व रात्रि में और पिछली रात में भी सोना नहीं चाहिए ।१९। जो किसी आस्तरण से अन्तर्हित न हो ऐसी भूमि पर कभी नहीं बैठना चाहिए ।२०। नित्य ही उदकी होवे ।२१। नित्य यज्ञोपवीत के धारण करने वाला होना चाहिए ।२२। अपने आचार्य से कभी विरहित नहीं होना चाहिए ।२३। नियोग के अन्य मे ऐसा न करे। अथवा अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होवे तब करे ।२४।

।। अथ स्नातकधर्मः ।।

अहरहराचार्याया ऽभिवादयेत ।१। गुरुम्यश्च ।२। स-समेत्य श्रोत्रियस्या।३।प्रोष्य प्रत्येत्याऽश्रोत्रियस्य।४।"असा-वहं भो३,, इत्यात्मनो नामाऽऽदिश्य व्यत्यस्य पाणी ।५। असौ इत्यस्य पाणी संगृह्याऽऽशिषमाशास्ते ।६। नाऽवृत्तो

यज्ञं गच्छेत् ।७। अधर्माच्च जुगुप्सेत ।८। न जनसमवायं गच्छेत् ।९। नोपर्यु द्दिशेत्समेत्य ।१०। अनाक्रोशकोऽपिशुनः कुलंकुलो नेतिहेतिः स्यात् ।११। नैकश्चरेत् ।१२। न नग्नः ।१३। नाऽपिहितपाणिः ।१४। देवायतनानि प्रदक्षिणम् ।१५। न धावेत् ।१६। न निष्ठीवेत् ।१७। न कण्डूयेत ।१८। मूत्रपुरीषे नाऽवेक्षे त ।१९। अवगुण्ठयाऽऽसीत ।२०। नाऽन्तर्हितायाम् ।२१। यद्येकवस्त्रो यज्ञोपवीतं कर्णे धृत्वा ।२२। नाऽऽदित्यमभिमुखः ।२३। न जघनेन ।२४। अहरुदङ्-मुखो नक्तं दक्षिणामुखः ।२५। न चाऽप्सु श्लेष्म न च समीपे ।२६। न वृक्षमारोहेत् ।२७। न कूपमवेक्षे त ।२८। न श्रुवनं गच्छेत् ।२९। नत्वेव तु श्मशानम् ।३०। सवस्त्रोऽहरहराप्लवेत् ।३१। आप्लुत्याऽभ्युदकोऽन्यद्वस्त्रमाच्छादयेत् ।।३२।।

नित्य प्रति अपने आचार्य्यों को अभिवादन करना चाहिए ।१। अपने जो दीक्षा गुरुवर्ग हों उनके लिये भी अभिवादन करे ।२। भली भाँति आकर श्रोत्रिय को अभिवादन करे ।३। प्रवास मे रहकर वापिस आकर जो अश्रोत्रिय हो उसको भी करे ।४। अभिवादन करने का विधान यह है कि जिसको करे उसके आगे दोनों हाथ जोड़कर—भोः ! मैं यह हूं—इस तरह से अपना नाम आविष्ट करके ही अभिवादन करना चाहिए ।५। असौ इसका प्राणी हाथों को जोड़कर आशीष की आशा करता है ।६। अवृत यज्ञ में नहीं गमन करे ।७। और अधर्म की जुगुप्सा करे, अर्थात् अधर्म से दूर ही रहे ।८। जहाँ पर बहुत से जनों का समवाय हो वहाँ पर गमन न करे ।९। समेत हो कर ऊपर में उपदेश नहीं करना चाहिए ।१०। निन्दा न करने वाला अपिशुन होवे एवं घर घर में गमन करने वाला न होवे अथवा सकुल पुत्र कलत्रादि सहित या कुल नीड़ाश्रय जर्जरी सूत कुल में वृक्ष में गमन न करे । इस प्रकार से इस पुरुष या स्त्री की श्रेष्ठता है इसका व्यापक नहीं

होना चाहिए ।११। अकेला कभी विचरण न करे ।१२। नग्न होकर कभी न रहे ।१३। अपिहित पाणि न रहे ।१४। देवताओं के आयतनों को प्रदक्षिण करे ।१५। दौड़ न लगावे ।१६। थूकना नहीं चाहिए ।१७। खुजावे नहीं।१८।मूत्र और मल को न देखे।१९।अवगुण्ठन करके रहे ।२०। अन्तर्हित मे न रहे। अर्थात् मल मूत्र के त्याग करने के समय में अवगुण्ठन करे और इनका उत्सर्ग अन्तर्हित में न करे यदि एक वस्त्र वाला हो तो यज्ञोपवीत को कान पर रख कर ही मलादि का उत्सर्ग करना चाहिए ।२१-२२। आदित्य देव के सम्मुख मे त्याग न करना चाहिए। जघन के द्वारा न करे ।२३-२४। दिनमें उत्तर की ओर मुख-करके और रात्रि में दक्षिण मुख होकर ही मलादि का त्याग करना चाहिए ।२५। जल में और समीप में कफ न डाले । वृक्ष पर आरोहण नहीं करना चाहिए । कूए को झुक कर न देखे । सुवन में गमन न करे ।२६-२९। श्मशान में गमन नहीं करे । यदि जावे भी तो वस्त्र सहित प्रतिदिन स्नान करना चाहिए ।३०-३१। आप्लुत होकर अभ्युदक हो अन्य वस्त्र धारण करे ।३२।

।। अथ कृषिकर्म ।।

रोहिण्यां कृषिकर्माणि कारयेत् ।१। पुरस्तात्कर्मणां प्राच्यां क्षेत्रमर्यादायां द्यावापृथिवीबलि हरेत् ।२। द्यवा-पृथिवीययर्चा नमो द्यावापृथिवीभ्यामिति चोपस्थानम्ः ।३। प्रथमप्रयोगे सीरस्य ब्राह्मणः सीरंस्पृशेत् शुनं नः फाला इति एतामनुब्रुवन् ।४। क्षेत्रस्य पतिनेति प्रक्षिणं प्रत्यृचं प्रतिदिशमुपस्थानम् ।५।

रोहिणी में कृषि के कर्म्मों को कराना चाहिए । ।१। कर्म्मों के पहिले अर्थात् कृषि कर्मों के आरम्भ करने के पूर्व में पूर्व दिशा में क्षेत्र की मर्य्यादा में द्यावा पृथिवी की बलि का हरण करे ।२। द्यावा पृथिवी की अर्चा करे और नमो द्यावा पृथिवीभ्याम्—इस मन्त्र से उपस्थान करना चाहिए ।३। प्रथम प्रयोग में अर्थात् सीर(हल)के प्रथम

प्रयोग में ब्राह्मण सीर का स्पर्श करे और शुन न फाला इति इसको बोलते हुए करे।४। क्षेत्रस्य पति नेति इस के द्वारा प्रत्येक ऋचा के प्रदक्षिण और प्रत्येक दिशा मे उपस्थान करे।५।

।। अथ प्लवकर्म ।।

उदकं तरिष्यन् स्वस्त्ययन करोति ।१। उदकाञ्जलीस्त्रीनप्सु जुहोति। समुद्राय वैणवे नमः वरुथाय धर्मपतये नमः नमः सर्वाभ्यो नदीभ्यः ।२। सर्वासां पित्रे विश्वकर्मणे दत्त हविर्जुषतामिति जपित्व ।३। प्रतीपं स्रवन्तीभ्य उन्नेय स्थावराभ्यः ।४। तरं श्चेद्भय शङ्क्वेद्वाशिष्ठं सूक्तं जपेत् समुद्रज्येष्ठा इति एतत्प्लम् ।५।

उदक में तैरते हुए स्वस्त्ययन करता है ।१। तीन जल की अञ्जलियों का जल मे हवन करता है। समुद्राय वैष्णवे नमः, वरुणाय धर्म पतये नमः, नमः सर्वाभ्यो नदीभ्यः ।२। सर्वासां पित्रे विश्व कर्मणे दत्तं हविर्जुषताम् इति इसका जाप करे।३। स्रवण करती हुई स्थावराओं से प्रतीप को उन्नयन करे ।४। यदि तैरते हुए भय हो तो वासिष्ठ सूक्त का जाप करना चाहिए । समुद्र ज्येष्ठा इति यह प्लव है ।५।

।। अथ श्रवण कर्म ।।

श्रवणं श्रविष्ठीयायां पौर्णमास्यामक्षतसक्तूनां स्थालीपाकस्य वा जुहोति ।१। विष्णवे स्वाहा श्रवणाय स्वाहा श्रावर्ण्यै पौर्णमास्ते स्वाहा वर्षाभ्यः स्वाहेति ।२। गृह्यग्नि बाह्यत उपसमाधाय लाजानक्षतसक्तूँश्च सर्पिषा सम्निनीय जुहोति ।३। दिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा, दिव्येभ्यः हर्पेभ्यः स्वाहेति ।४। उत्तरेणाऽग्निं प्रागग्रेषु नवेषु कुशेषूदकुम्भं नवं प्रतिष्ठाप्य ।५। दिव्यानां सर्पाणामधिपतिरव नेनिक्तां दिव्याः सर्पा अव नेनिजतामिति अपो

निनयति ।६। दिव्यानां सर्पाणामधिपतिः प्र लिखताम् सर्पा प्र लिखन्तामिति फणेन चेष्टयति ।७। दिव्यानां सर्पाणामधिपतिः प्र लिम्पताम् दिव्याः सर्पाः प्रलिम्पन्तामिति वर्णकस्य मात्रा निनयति ।८। दिव्यानां सर्पाणामधिपतिरा बध्नीताम् दिव्याः सर्पा आ बध्नन्तामिति सुमनस उपहरति।९।दिव्यानां सर्पाणामधिपतरा च्छादयताम् दिव्यानां सर्पा आच्छादयन्तामिति सूत्रतन्तुमुपहरति ।१०।दिव्यानां सर्पाणामधिपतिच्छादयताम् दिव्याः सर्पा आऽञ्जतामिति कुशतरुणेनोपघातमा नस्य करोति ।११। दिव्यानां सर्पाणामधिपतिरीक्षताम् दिव्याः सर्पाईक्षन्तामिति आदर्शे -नेज्ञयति ।१२। दिव्यानां सर्पाणामधिपात एषते बलिः दिव्याः सर्पा एष वो बलिरिति बलिमुपहरति ।१३। एवम् आन्तरिक्षाणाम् ।१४। दिव्यानाम् ।१५। पार्थिवानामिति ।१६। त्रिस्त्रिरुच्चैस्तरामुच्चैस्तरांपूर्वम् ।१७। नीचैस्तरा न्नीचैस्तरामुत्तम् ।१८। एवमहरहरज्ञतसक्तूनां दर्वेणोपघातमा प्रत्यवरोहणात्प्रात्रौ वाग्यतः सोदक बलि हरेत् ।१९। वाग्यता चं मुपसादयेत् ।२०। य उपक्रमः सउत्सर्गः ।२१। सुत्रामाणमिति शय्यामारोहेत् ।।२२।।

श्रवण को श्रविष्ठीय पौर्णमासी में अक्षत सक्तुओं का अथवा स्थालीपाक का हवन करता है । ।१। विष्णवे स्वाहा, श्रवणाय स्वाहा, श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा, वर्षाभ्यः स्वाहा—इन मन्त्रों के द्वारा आहुतियां देवे ।२। गृह्य अग्नि को बाहिर से उपसमाधान करके लाजाओं को और अक्षत सक्तुओं को घृत के साथ सन्निनयन करके आहुतियाँ देता है ।३। दिव्यनां सर्पाणामधि पतये स्वाहा, दिव्येभ्यः सर्पेभ्यः स्वाहा—ये मन्त्र आहुतियाँ देने के हैं ।४। उत्तर में अग्नि को प्रागग्र नूतन कुशाओं में न वीन उदकुम्भ को प्रतिष्ठापित करे ।५। फिर दिव्यानां सर्पाणामधिपतिरव नेनिक्तां दिव्याः सर्पा अवने निज ताम् इति

इससे जलका निनयन करता है ।६। दिव्यानां सर्पायामधिपतिः प्रलिखताम्, दिव्याः सर्पा प्रलिखन्ता मिति फण के द्वारा चेष्टा करता है ।७। दिव्यानां सर्पाणमधिपतिः प्रनिम्यताम्, दिव्या सर्पाः प्रलिम्यन्ताम्–इति इससे वर्णक की मात्रा का निनयन करता है ।८। दिव्यानां सर्पाणामधिपति रावध्नीताम्, दिव्याः सर्पा आवध्नन्ता इति इस मन्त्र के द्वारा सुमनस (पुष्प) का उपहार देता है ।९। दिव्यानां सर्पाणामधिपति–राच्छादयताम्, दिव्याः सर्पा आच्छादयन्ताम् इससे सूत्र के तन्तु का उपहार देता है ।१०। दिव्यानां सर्पाणामधिपति राङ्क्ताम्, दिव्याः सर्पा आन्त्रताम्–इति इस मन्त्र से तरुण कुशा से अञ्जन का उपघात करता है । ।११। दिव्यानां सर्पाधिपति रीक्षताम्, दिव्याः सर्पा ईक्षन्ताम् इससे दर्पण के द्वारा ईक्षण करता है । ।१२। दिव्यानां सर्पाणामधिपति एषते बलिः, दिव्याः सर्पा एष वो बलिरति–इससे बलि का उपहरण करता है ।१३। इसी प्रकार से आन्तरिक्षों का—दिव्यों का—पार्थिवों का तीन-तीन उच्च और अधिक उच्च पूर्व में करे ।१४-१६। नीचैस्तर-नीचैस्तर उत्तर में करे ।१७-१८। इस प्रकार से दिन प्रति दिन अक्षत सक्तुओं का दर्भ से उपघात आप्रत्यवरोहण से रात्रि में वाग्यत होते हुए जल सहित बलि का आहरण करे ।१९। वाग्यता इसको उपसादित करे ।२०। जो उपक्रम है वह उत्सर्ग है ।२१। सुत्रामाणमिति—इससे शय्या पर आरोहण करे ।२२।

।। अथ आश्वयुजीकर्म ।।

आश्वयुज्यां पौर्णमास्यामैन्द्रः पायसः ।१। अश्विभ्यां स्वाहा अश्वयुग्म्यां स्वाहा आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा शारदे स्वाहा पशुपतये स्वाहा पिङ्गलाय स्वाहेति आज्यस्य हुत्वा ।२। अथ पृषातकस्य आ गावो अग्मन्निति एतेन सूक्तेन प्रत्यृचं जुहुयात् ।३। मातृभिर्वत्सां संसृजन्ति तां रात्रीम् ।४। अथ ब्राह्मणभोजनम् ।५।

आश्वियुजी पौर्णमासी में इन्द्र से सम्बन्ध रखने वाला "ऐन्द्र पायस होता है।१। निम्न लिखित मन्त्रों के द्वारा घृत का हवन करे, "आश्वि-भ्यां स्वाहा", "आश्वयुग्भ्या स्वाहा", आश्वयुज्यै पौणमास्यै स्वाहा" शरदे स्वाहा" "पाशुपतये स्वाहा", "पिङ्गलाय स्वाहा" ।२। इसके अनन्तर पृषातक के "आ गावो अग्मन्निति", इस सूक्त के द्वारा प्रत्येक ऋचा से हवन करना चाहिए।३। उस रात्रि में वत्सों का माताओं के साथ संसृजन कर देते हैं।४। इसके उपरान्त ब्राह्मणों का भोजन होता है।५।

॥ अथ आग्रहायणीकर्म ॥

आग्रहायण्यां प्रत्यवरोहेत् ।१। रोहिण्यां प्रोष्ठपदासु वा ।२। प्रातः शमीपलाशमधूकेषीकापामार्गाणां शिरीषोदुम्ब -रकुशतरुणबदरीणां च पूर्णमुष्टिमादाय सीतालोष्टं च ।३। उदपात्रे ऽवधाय ।४। महाव्याहृतीः सावित्रीं चोद्‌धृत्य अप नः शोशुचदघमिति एतेन सूक्तेन तस्मिन्निमज्जयनिम -ज्जय प्रदक्षिणं शरण्येभ्यः पाप्मानमपहृत्य उत्तरतो निनयेत् ।५। मधुपर्को दक्षिणा।६।

आग्रहायणी में प्रत्यव रोहण करना चाहिए।१। रोहिणी नक्षत्र में अथवा प्रोष्ठ पदाओं में करे।२। प्रातःकाल में शमी (छौकरा वृक्ष), पलाश (ढाक), मधूक, इषीका, अपामार्ग और शिरीष (सिरस),उदुम्बर (गूलर), कुशतरुण, बदरियों की पूर्ण मुष्टि लेकर और सीता लोष्ठ को ग्रहण करे।३। जल के पात्र में अवधारण करे ।४। महाव्याहृतियाँ और सावित्री को उद्‌धृत करके "अप नः शोशुच दघमिति" इस सूक्त से उसमें निमज्जन कर करके प्रदक्षिण शरण्यों के लिये पाप्मा को अपहृत करके उत्तर की ओर निनयन करना चाहिए।५। मधुपर्क दक्षिणा है।६।

॥ अथ सर्पबलिकर्म ॥

ग्रीष्मो हेमन्त उत वा वसन्तः शरद् वर्षा सुकृतन्नो अस्तु।
तेषामृतूनां शतशारदानांनिवात एषामभयेस्याम स्वाहा।।

अप श्वेत पदा जहि पूर्वेण चाऽपरेण च ।
सप्त च वारुणीरिमाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा ॥
श्वेताय वैदार्वाय स्वाहा विदर्वाय स्वाहा तक्षकाय वैशालेयाय स्वाहा विशालाय स्वाहेति आज्यस्य हुत्वा ।१। सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रति धीयताम् सुवर्षाः सन्तु नो वर्षाः शरदः शम्भवन्तु न इति ।२। शन्नो मित्र इति पलाशशाखया विमृज्य ।३। समुद्रादूर्मिरिमि अभ्युक्ष्य ।४। स्योना पृथिवी भवेति स्रस्तरमास्तीर्य ।५। ज्येष्ठदक्षिणाः पार्श्वैः संविशन्ति ।६। प्रति ब्रह्मन् प्रति तिष्ठामि क्षत्र इति दक्षिणैः ।७। प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोष्वित्ति सव्यैः ।८। प्रति पशुष प्रति तिष्ठामि पुष्टाविति दक्षिणैः ।९। प्रति प्रजायां प्रति तिष्ठाम्यन्न इति सव्यैः।१०। उदीर्ष्व जीव इति उत्थानम् ।११। स्रस्तरे तां रात्रीं शेरते ।१२। यथासुखमत ऊर्ध्वम् ।।१३।।

"ग्रीष्मो हेमन्त उतवा बसन्तः शरद् वर्षा सुकृतन्नो अस्तु । तेषां ऋतूनां शतशारदानां निवात एषामभये स्याम स्वाहा" अपश्वेत पदाजहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणी ह्विमाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा" "श्वेताय वैदार्वाय स्वाहा विदर्वाय स्वाहा तक्षकाय वै शालेयाय स्वाहा, विशालाय स्वाहा, इति" इन मन्त्रों के द्वारा घृत का हवन करे ।१। "सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिधीयताम्, सुवर्षाः सन्तु नो वर्षाः, शरदः शम्भयन्तु न इति" ।२। "शन्नो मित्र इति" पलाश की शाखा से इन मन्त्रो के द्वारा मिमार्जन करे ।३।"समुद्रादूर्मिरिति" इससे अभ्युक्षण करे ।४। "स्योना पृथिवी भवेति", इस मन्त्र से स्रस्तर का आस्तरण करे ।५। ज्येष्ठ दक्षिणा पार्श्वों के साथ संवेश करती है ।६। "प्रति ब्रह्मन् प्रतितिष्ठामि क्षत्र इति" दक्षिणों से करे ।७। "प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोष्विति"—इससे सव्यों से करे ।८। "प्रतिपशुषु प्रतितिष्ठामि पुष्टाविति" इससे दक्षिणों से करे ।९। प्रति प्रजायां प्रतितिष्ठाम्यन्न इति" इससे

सव्यों से करे।१०। "उदीर्ध्वं जीव इति"—इससे उत्थान करे।११। उस रात्रि में स्रस्तर पर शयन करते है।१२। यथा सुख इससे ऊर्ध्व करे।१३।

॥ अथ चैत्रीकर्म ॥

चैत्र्या पौर्णमास्याम् ।१। कर्कन्धुपर्णानि मिथुनानां च यथोपषाद पिष्टस्य कृत्वा ।२। ऐन्द्राग्नस्तुण्डिलः।३। रौद्रा गोलकाः।४। लोकतो नक्षत्राण्यन्वाकृतयश्च-लोकतो नक्षत्राण्यन्वाकृतयश्च ॥५॥

चैत्रमास की पौर्णमासी में करना चाहिए।१। कर्कन्धु के पर्णों को और मिथुनों का यथोपपाद प्रेषण करके।२। ऐन्द्राग्न तुण्डिल करे।३। रौद्र गोलक करे।४। लोक से नक्षत्रों को और अन्वाकृतिवाला करे—लोक से नक्षत्रों को और अन्वाकृतिक करे।५।

अथ पंचमोऽध्यायः (परिशिष्टम्)

॥ अथ समारोहणम् ॥

अथ प्रवत्स्यन्नात्मन्नरण्योः समिधि वाऽग्निं समारोहयति ।१। एहि मे प्राणान् रोहेति सकृत्सकृन्मन्त्रेण द्विर्द्विस्तूष्णीम् ।२। अयं ते योनरिति वाऽरणी प्रतितपति ।३। समिधं वा ।४। अनस्तमिते च मन्थनम् ।५। वैश्वदेवकाले च ।६। उपलिप्त उद्धतावोक्षिते लौकिकमग्निमाहृत्य उपावरोहेति उपावरोहणम् ।७। अनुगतेऽग्नौ सर्वप्रायश्चित्ताहुती हुत्वा पाहि नो अग्न एधसे स्वाहा पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा

यज्ञ पाहि विभावसो स्वाहा सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहेति ।८। व्रतहाना उपोष्याऽऽज्यस्य हुत्वा त्वमग्ने व्रतपा इति ।९।

इसके अनन्तर प्रवास में रहता हुआ आत्मन्नरण्यों में अथवा समिधा में अग्नि का समारोहण करता है ।१। एहि मे प्राणान्तरो हेति इससे एक-एक बार मन्त्र के द्वारा और दो-दो बार तूष्णी भाव से करे ।२। अयं ते योनि रिति इससे अथवा अरणी प्रतितप्त करता है ।३। अथवा समिधा को करता है ।४। अस्तमित न होने पर मन्थन होता है ।५। और वैश्वदेव काल मे होता है ।६। उपलिप्त में उद्धतावोक्षित में लौकिक अग्नि को आहुत करके 'उपावरोहेति' इससे उपावरोहण करे ।७।अग्नि के अनुगत हो जाने पर सब प्रायश्चित्तों की आहुतियों का हवन करके 'पाहि नो अग्न एषसे स्वाहा, पाहि नो विश्व वेद से स्वाहा, यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा, सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा—इति' इन मन्त्रों से आहुतियां देनी चाहिए ।८। व्रत हान उपवास करके घृत का होम करे । 'त्वमग्ने व्रतपा' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिए ।९।

॥ अथ उत्सर्गः ॥

अथ पुष्करिणीकूपतडागानाम् ।१। शुद्धपक्षे पुण्ये वा तिथौ ।२। पयसा यवमय चरुं श्रपयित्वा ।३। त्व नो अग्न इति द्वाभ्याम् अव ते हेलः इम मे वरुण उदुत्तमं वरुण इमां धिय शिक्षमाणस्य ।४। गृह्योऽप-गृह्यो मयोभूः आखरो निखरो निःसरो निकामः सपत्नदूषण इति वारुण्या दिक्प्रभृति प्रदक्षिणं जुहु-यात् ।५। मध्ये पयसा जुहोति विश्वतश्चक्षः इदं विष्णुरिति ।६। यत् किञ्चेदमिति मज्जयित्वा ।७। धेनुर्दक्षिणा वस्त्रयुग्मञ्च ।८। अतो ब्राह्मणभोजनम् ।९।

इसके अनन्तर पुष्करिणी—कूप और तड़ाग आदि जलाशयों का उत्सर्ग कर्म बतलाया जाता है ।१। इस उत्सर्ग कर्म को शुक्ल पक्ष में

अथवा किसी पुण्य तिथि में करना चाहिए।२। यव से यवों से परिपूर्ण चरु का हवन करे।३। 'त्व नो अग्ने इति' इन दो मन्त्रों से 'अव ते हेडः इमं मे वरुण, उदुत्तमं वरुण, इमां धियं शिक्षमाणस्य' ।४। गृह्योऽग्य गृह्यो भग्ने भूः आखमे मिखरो निःसरो निकामः सयत्न दूषण इति' इनसे वारुणी दिक् प्रभृति का प्रदक्षिण हवन करे।५। 'विश्वतश्चक्षुः' इससे मध्य में यव से होम करता है। 'इदं विष्णुरिति' ।६। 'यत् किञ्चेदा मिति' इनसे मज्जन करके।७। धेनुकी दक्षिणा और दो वस्त्र देवे।८। अतः ब्राह्मण भोजन करावे।९।

॥ अथ आरामप्रतिष्ठा कर्म ॥

अथाऽऽरामेऽग्निमुपसमाधाय ।१। स्थालीपाकं श्रपयित्वा ।२। विष्णवे स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा, विश्वकर्म्मणे स्वाहेति, यान् वो नर इति प्रत्यृच जुहुयात् ।३।वनस्पते शतवल्श इति अभिमन्त्र्य ।४। हिरण्यं दक्षिणा ।५।

इसके अनन्तर आराम में अग्नि का उप समाधान करे ।१। स्थाली पाक का हवन करे ।२। 'विष्णवे स्वाहा, इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा, विश्वकर्मणे स्वाहेति, यान् वो नर' इति–इन मन्त्रों से प्रत्येक ऋचा का हवन करे ।३। 'वनस्पते शतवल्श' इति इससे अभिमन्त्रण करे।४। सुवर्ण की दक्षिणा देवे ।५।

॥ अथ प्रायश्चित्तयः ॥

यदि पार्वणस्त्वकृतोऽन्यतरस्ततश्चरुः ।१। अग्नये वैश्वानराय स्वाहा अग्नयेतन्तुमते स्वाहेति।२। होमातिक्रमे।३। सायं दोषावस्तर्नमः स्वाहा।४।प्रातःवंस्तर्नमः स्वाहेति।५। यावन्तो होमास्तावतीर्हुत्वा पूर्ववद्धोमः ।६।

यदि पार्वण अकृत हो तो फिर अन्यतर चरु ग्रहण करे ।१। 'अग्नये वैश्वानराय स्वाहा अग्नये तन्तुमते स्वाहेति ।२। इन मन्त्रों से होम करे।

होम के अतिक्रम में ।३। सायंकाल में दोषा वस्तर्नमः स्वाहा—प्रात काल में प्रातर्वस्त नमः स्वाहेति—इन से आहुतियाँ देवे और पूर्व की ही भांति होम करना चाहिए ।४-६।

कपोतोलूकाभ्यामुपवेशने ।१। देवाः कपोत इति प्रत्यृचं जुहुयात् ।२। दुःस्वप्नदर्शने चाऽरिष्टदर्शने च ।३। निः त्या काकशब्दकान्ते च ।४. अन्येषु चाऽद्भुतेषु च ।५। पयसा चरुं श्रपयित्वा ।६। सरूपवत्साया गोः पयसि ।७। नत्वेव तु कृष्णायाः ।८। रात्रीसूक्तेन प्रत्यृच जुहुशेष ।९। हुतशेष महाव्याहृतिभिः प्राश्य ।१०। भद्रं कर्णेभि-रित कर्णौ ।११। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा इति आत्मानमभिमन्त्र्य ।१२। ब्राह्मणेभ्यः किञ्चिद्दद्यात् ।१३।

कपोत और उलूकों के लिए उपवेशन में करे ।१। देवाः कपोत इतिः इस प्रतिऋचा की आहुतिया देवे ।२। बुरे स्वप्नों के देखने में और किसी अरिष्ट के दर्शन करने में भी करना चाहिए । रात्रि के समय में कौए के शब्द के क्रान्त होने पर भी आहुतियाँ देवे ।३-४। और अन्य कोई अद्भुत बाते हो तो उनमें भी हवन करना चाहिए ।५। पय से चरु का हवन करे ।६। सरूप वत्सा गौ के दूध मे करे ।७। या दिन हो तो कृष्णा गौ के दूध में करे ।८। रात्री सूक्त में प्रत्येक ऋचा की आहुतियाँ देनी चाहिए ।९। जो हवन करने से शेष रहे उसको महा व्याहृतियो से प्राशन करे ।१०। भद्रं कर्णेभिरिति इस सकानों को ।११। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा इति इससे आत्मा को अर्थात् अपने आपको अभिमन्त्रित करे ।१२। ब्राह्मणों के लिये कुछ देना चाहिए ।१३।

व्याधौ समुत्थिते ।१। इमा रुद्राय तवसे कपर्दिन इति प्रत्यृच गावेधुकं चरुं जुहुयात् ।२।

व्याधि के समुत्थित होने पर ।१। "इमारुद्राय तव से कपर्दिने इति" इससे प्रतिऋचा के गावेधुक चरु का हवन करना चाहिए ।।२।।

अकृतसीमन्तोन्नयने चेत् प्रजायेत् ।१। अकृतजातकर्मा

ऽऽसीत् ।२। ततोऽतीते दशाह उत्सङ्गे मातुः कुमारक स्थापयित्वा ।३। महाव्याहृतिभिर्हुत्वा पूर्ववद्धोमः ।४।

यदि सोमन्तोन्नयन के न किये जाने पर प्रजनन हो जावे ।१। अकृत जात कर्म वाला था ।२। इसके उपरान्त दश दिन व्यतीत हो जाने पर माता के गोद में कुमार का स्थापित करना चाहिए ।३। फिर महा-व्याहृतियों से आहुतियाँ देकर पूर्व की ही भाँति होम करे ।।४।।

स्थूणारोहणे ।१। स्थालीपाक श्रपयित्वा अया विष्ठा जनयत् कर्वराणि पिशङ्गरूपःसुभरो वयोधा इति द्वाभ्यां चरुं जुहुयात् ।२। यदि प्रणीतावरुराज्यस्थाल्यन्यदपि मृन्मय भिन्नं स्रवेत् ।३। सर्व प्रायश्चित्ताहुतीर्हुत्वा "य ऋते चिदिति तृचेन भिन्नमन्त्रयते ।४। यदि असमाप्ते होमे पवित्रे नश्येते ।५। सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा अप्स्वग्न इति पुनरुत्पादयेत् ।६।

स्थूण के आरोहण में ।१। स्थालीपाक का हवन करके "अयाविष्ठा जनयन् कर्वराणि पिशङ्ग रूपः सुभरोवयोधा इति" इन दो से चरु का हवन करना चाहिए ।२। यदि प्रणीता चरु राज्य स्थाली अन्य भी मृन्मय भिन्न हुआ स्रवण करे ।३। तो सर्व प्रायश्चित्त आहुतियों से हवन करके "य ऋतेचिदिति" इस तृच से भिन्न मन्त्रित करता है ।४। यदि होम के असमाप्त होने पर पवित्रा नष्ट हो जाते है ।५। सर्व प्रायश्चित्त का हवन करके "अस्वग्न" इति—इससे पुन. उत्पादन करना चाहिए ।६।

।। अथ सपिण्डीकरणम् ।।

अथ सपिण्डीकरणम् ।१। चत्वार्युदपात्राणि पूरयित्वा पितुः प्रभृति ।२। तद्वत् पिण्डान् कल्पयित्वा ।३।
"ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेसु कल्पताम् ।।
ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतं समाः ।।"

समानो मन्त्र इति द्वाभ्यामाद्यं पिण्डं त्रिषु विभजेत् ।४। तथैवाऽर्घपात्राणि ।५। एवं मातुर्भ्रातुर्यायाः पूर्वमारिण्या एभिः पिण्डैः प्रक्षिप्य ।६।

इसके अनन्तर सपिण्डीकरण के विषय में बतलाया जाता है ।१। पिता प्रभृति के चार उदपात्रों को पूरित करे ।२। उसी भांति से पिण्डों की रचना करनी चाहिए ।३। "ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषा लोकः स्वधानमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।। ये समानाः समनतो जीवाजीवेषु मामकाः । तेषांश्रीर्मयि कल्पताय स्मिश्लोके शतंसमाः ।।" "समानो मन्त्र इति" इन दो ऋचाओं से पिण्ड को तीन में विभक्त करे ।४। उसी प्रकार से अर्घपात्रों को करे ।५। इसी प्रकार से माता के भाई के—भार्या के पूर्व आरिणी से इन पिण्डों से प्रक्षेप करे ।।६।।

।। अथ प्रायश्चित्तय: ।।

यदि गृहे मधूका मधु कुर्वन्ति।१।उपोष्यौदुम्बरीः समिधोऽष्टशत दधिमधुघृताक्ता मा नस्तोक इति द्वाभ्यां जुहुयात् ।२। शन्नं इन्द्राग्नी इति च सूक्तं जपेत् सर्वेषु च कर्मसु प्रतिश्रुतादिषु ।३। प्रादेशमात्रीः पालाशीः समिधः सप्तदश हुत्वा पश्चात्स्रुवग्रहणम् ।४। दशपूर्णमासयोः पञ्चदश ।५। मध्यावर्षेऽष्टके तिस्रो वा भवन्ति, पितृयज्ञवद्धोमः ।६।

यदि गृह मे मधूक मधु करते हैं ।१। उपवास करके उदुम्बर (गूलर) की समिधाऐं एक सौ आठ ग्रहण करे और उन्हें दधि-मधु और घृत से अक्त करे । "मा नस्तोक इति"—इन दो मन्त्रों से हवन करना चाहिए ।२। शन्नं इन्द्राग्नी इति—और इस सूक्त का जाप करे । सब प्रतिश्रुतादि कर्म्मों में जपना चाहिए ।३। प्रादेश मात्री पालाशी (ढाक की) समिधा सत्रह का हवन करे और इसके पीछे स्रुव का ग्रहण करे ।४। दर्श और पौर्ण मास में पन्द्रह लेवे ।५। मध्यावर्ष अष्टक में अथवा तीन ही समिधाऐं होती है । पितृ यज्ञ के ही समान होम करना चाहिए ।६।

यदि गृहे वल्मीकसम्भूतिगृ'होत्सर्गः ।१। अथ त्रिरात्रमु-
पोष्य महाशान्ति कुर्यात्, महाशान्ति कुर्यात् ।२।

यदि घर में वल्मीक की उत्पत्ति होवे तो गृह का उत्सर्ग कर देवे ।१। इसके अनन्तर तीन रात्रि तक उपवास करके महाशान्ति करनी चाहिए । महाशान्ति अवश्य ही करे ।।२।।

इति शांखायन गृह्यसूत्रे पंचमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

।। स्वाध्यायारण्यकनियमाः [१] ।।

अथाऽतो ब्रह्माणं ब्रह्मर्षि ब्रह्मयोनिमिन्द्रं प्रजापतिं वशिष्ठं वामदेवं कहोलं कौषीतकिं महाकौषीतकिं,सुयज्ञं शाङ्खायनम् आश्वलायनमैतरेयं महैतरेयं कात्यायनं शाटचायनं,शाकल्यं बभ्रुं बाभ्रव्यं मण्डुं माण्डव्यं सर्वानेव पूर्वाचार्यांस्तमस्य स्वाध्यायारण्यकस्य नियमानुदाहरिष्यामः ।१। अहोरात्रं ब्रह्मचर्य्यमुपेत्याऽऽचार्योऽमांसाशी ।२। आमपिशितं चण्डालं सूतिकां रजस्वलां तेदन्यपहस्तकदर्शनान्यनध्यायकानि ।३। शवरूपाणां च ।४। यान्यास्ये न प्रविशेयुः ।५। वान्तकृतश्मश्रु कर्म ।६। मांसाशनश्राद्धसूतकभोजनेषु ।७। ग्रामाऽध्ययनानन्तर्हितान्यहानि ।८। त्रिरात्रोऽनवक्लृप्तः ।९। पराभिमृष्टः ।१०। उपपर्वणामन्ह उत्तरार्धानि च ।११। अग्निविद्युत्स्तनयित्नुवर्षामहाभ्रप्रादुर्भावाच्च ।१२। वाते च शर्करार्कर्षिणि यावत्कालम् ।।१३।।

इसके अनन्तर अतएव ब्रह्माजी को—ब्रह्म ऋषि—ब्रह्मयोनि—इन्द्र—प्रजापति—वसिष्ठ—वामदेव— कहोल—कौषीतकि —महाकौषीतकि सुयज्ञ शाङ्खायन—आश्वलायन —ऐतरेय— महैतरेय—कात्यायन—शास्यायन—शाकल्य बभ्रु—बाभ्रव्य—मण्डुमाण्डव्य —इन सब पूर्वाचार्यों को नमस्कार करके स्वाध्यायारण्यक के नियमों को उदाहृत करेंगे ।१। एक अहोरात्र ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करके आचार्य को अमांमाशी होना चाहिए ।२। आमविशिन (कच्चा मांस)-चण्डाल—सूतिका-रजस्वला और तेदन्यय हस्तक के दर्शन अनध्याय करने वाले होते है । तात्पर्य यह है कि उपर्युक्तों के दर्शन करने से अनध्याय होता है ।३। शवरूपों के भी दर्शन से अनध्याय होता है ।४। जो मुख में प्रवेश न करें ।५। व्यन्तकृत श्मश्रुकर्म भी अनध्याय करने वाला होता है ।६। मांस का अशन करना—श्राद्ध भोजन और सूतक भोजन में भी अनध्याय होता है ।७।ग्रामाध्ययन के अनन्तर्हित दिन में भी अनध्याय होते हैं ।८। तीन रात्रि तक अनवक्लृप्त रहे ।९। पराभिमृष्ट होवे ।१०। जो उपपर्व है उनके दिन के उत्तरार्ध अनध्याय करने वाले होते है ।११। अग्नि-विद्युत् स्तनायित्नु वर्षा और महाभ्र के प्रादुर्भाव से भी अनध्याय होता है ।१२। शर्करा (धूलि) के आकर्षण करने वाले वात के वहन करने पर भी जब तक वह रहे अनध्याय माना जाता है ।१३।

॥ स्वाध्यायारण्यक नियमाः (२) ॥

ऊर्ध्वमाषाढ्याश्चतुरो मासान्नाऽधीयीत ।१। अत्यन्तं शक्वर्य इति नियमाः ।२। प्रागुज्योतिषमपराजितायां दिशि पुण्यमुपगम्य देशम् ।३। अनुदित उदकग्रहणम् ।४। मण्डलप्रवेशश्च आखनगन्धिमिति एतयर्चा ।५। मण्डलं तु प्राग्द्वारमुदग्द्वार वा जनाग्रीयमसम्प्रमाणमसंबाधम् ।६। आवामदेव्यमुत्तरशान्तिः ।७। पुनःप्राध्येषणं च ।८। बहिर्मण्डलस्याभिराचम्य ।९। प्राधीयीरन् कृतशान्तयः

।१। शान्तिपात्रोपधाने प्रोक्षणं प्रायश्चित्तिः ।११। प्रोक्षण तु हिरण्यवता पाणिना दर्भपिञ्जूलवता वा ।१३। इति भाषिकम् ।१३।

आषाढी पूर्णिमा से ऊपर चार मास तक अध्ययन अर्थात् वेदों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।१। अत्यन्त शक्वर्य है—ये नियम है। शक्वरादि पूर्वोक्त तीन व्रतों के विशेष विधान के लिये षष्ठाध्याय के करने की इच्छा रखता हुए आचार्य पुनः प्रारम्भ करते हैं ।२। अपराजित दिशा में पुण्य प्राग्ज्योतिष देश को प्राप्त होवे ।३। जब तक सूर्य उदित न हो, उसी समय में उदक का ग्रहण करे ।४। "आज्जनगन्धिमिति" इस ऋचा के द्वारा मण्डल प्रवेश करना चाहिए ।५। मण्डल तो प्राग्द्वार उदग्द्वार अथवा जनाप्रीव असम्प्रयाण और असम्बाध होता है ।६। यहाँ पर जनाप्रीय शब्द का अर्थ है जनो के द्वारा स्तुत्य । वामदेव्य कथा नमिचत्र उसको अभिव्याप्त करके उत्तराशान्ति होती है ।७। पुनः अर्थात् इन समयों के पश्चात् फिर प्रकर्ष रूप से अध्ययन करना चाहिए ।८। इसका अभिप्राय यह है कि पुनः प्रश्नोत्तर करे शरीर के वश होने से मूत्र पुरीषादि के उत्सर्ग करने पर मण्डल से बाहिर लौकिक जल से शुद्धि करके कर्म की शुद्धि के लिये शान्तिपात्र के जल से आचमन करे फिर शेष अध्ययन करना चाहिए ।९। शान्ति किये हुओं को प्रकृष्ट रूप से अध्ययन करना चाहिए ।१०। शान्ति पात्र के उपरान्त होने पर प्रोक्षण ही प्रायश्चित्ति है ।।११।। प्रोक्षण जब करे तो हाथ में सुवर्ण होना चाहिए अथवा दर्भों का पिञ्जूल हाथ में रखना चाहिए ।१२। यह पूर्वोक्त सब अनाध्याय के विषय के आरम्भ करके मण्डल आदि का प्रकरण परिभाषित है ।१३।

स्वाध्यायारण्यक नियमा [३] ।।

अथ प्रविश्य मण्डलम् ।१। प्राङ्मुख आचार्य उपविश त्युदङ्मुखा दक्षिणत इतरे यथाप्रधानम् ।२। असम्भवे

सर्वतोमुखाः ।३। प्रतीक्षेरन्नुदयमादित्यस्य ।४। विज्ञाय चैनं दीधितिमन्तम् ।५। अधीहि भो इति दक्षिणैर्दक्षिण सव्यैः सव्यं दक्षिणोत्तरैः पाणिभिरुपसगृह्य पादावाचार्यस्यनिर्णिक्तौ ।६। अथाऽऽधाय शान्तिपात्रे दूर्वाकाण्डवतीष्वप्स्वपिन्वमानैः पाणिभिः प्राधीयीरन् ।७।एष विधिर्यदि तु ग्लायेरन्नेक एषामशून्यं शान्तिभाजन कुर्यात् ।८। अध्यायाद्यन्तयोश्च सर्वे ।९। तत्सन्ततमव्यवच्छिन्नं भवति ।१०।

इसके उपरान्त मण्डल में प्रवेश करे ।१। जो आचार्य्य हों उनको पूर्व कीओर मुख करते बैठना है अर्थात् आचार्य प्राङ्मुख बैठते हैं । दूसरे उत्तर की ओर मुखों वाले दक्षिण से प्रधान के अनुसार बैठते हैं ।२। यदि स्थान की असुविधा आदि से ऐसा सम्भव न हो सके तो सभी ओर मुख किये हुए बैठ जावें ।३। आदित्य देव के उदित काल की सबको प्रतीक्षा करनी चाहिए ।४। सूर्य नारायण को जब पूर्ण किरणों से समुदित हुए जान लेना चाहिए ।५। अधीहिभोः ३ इति—यह कहकर दक्षिणों के द्वारा दक्षिणा को और सव्यों से सव्य को ऐसे दक्षिणोत्तरों हाथों से आचार्यदेव के चरणों को उपसंगृहीत करके निर्णिक्त करे । ।६। इसके अनन्तर शान्ति पात्र ये करके दूर्वा कण्डवती जल में अपिन्यमान प्राणियों से प्रकर्षतया अध्ययन करें ।७। यदि यह विधि पसन्द न करें तो इनमें से एक शान्ति पात्र को अशून्य कर देवे ।८। अध्ययन के आदि-अन्त मे सब करें ।९। बह सन्तत अव्यवच्छिन्न होता है ।१०।

॥ अथ शान्तिः ॥

अथ शान्तिः ।१। ॐकारो महाव्याहृतयः सावित्री रथन्तरं बृहद्वामदेव्यं, पुनरादायं कुकुष्कारमिति बृहद्रथ-

न्तरे ।२। दशैताः सम्पादिता भवन्ति ।३। दशदशिनी विरालिति एतद् ब्राह्मणम् ।४।

इसके अनन्तर शान्ति कर्म करे ।१। ॐकार-महा व्याहृतियाँ—रथन्तर वृहाद्वमदेव्य और बृहद्रथन्तर में पुनरादायं बहुधा यह है ।२। ये दश सम्पादित होती हैं ।३। 'दशदशिनी विराजिति'—यह ब्राह्मण है ।४।

॥ अथ शान्ति कर्म [१] ॥

अदब्ध मन इषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हिंसीरिति सवितारमीक्षन्ते ।१। युवं सुराममिति एका स्वस्ति नः पथ्यास्विति च तिस्र इति महाव्रतस्य ।२। शक्करीणां तु पूर्वम् ।३। प्रत्यस्मै पिपीषते, योरयिवो रयिन्तमः, त्यमु वो अप्रहणमिति त्रयस्तृचाः अस्मा अस्मा इदन्धस इति, एवा ह्यसि वीरयुरिति अभितः शक्करीणाम् ।४। अथोपनिषदाम् ।५। यैव महाव्रतस्य ।६। संहितानां तु पूर्वम् ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामीति विशेषः ।७। मन्थस्य तत्सवितुर्वृणीमहे, तत्सवितुर्वरेण्यमिति पूर्वं च ।८। अदब्धं मन इति अधिकारिकाः शान्तयस्ततः ।९। इत्याह्निकम् ।१०। अथोत्थानकालेऽप कृष्य पापम् ।११। नित्या शान्ति कृत्वा ।१२। उदितः शुक्रियं दध इति आदित्यमीक्षन्ते ।१३।

'अदब्धं मन इषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषं श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हिंसीरिति'—इससे सविता देव को ईक्षण करते है ।१। 'युवं सुराममिति यह एक है'स्वस्ति नः पथ्या स्विति ये तीन महाव्रत भी हैं ।२। शक्वरियों की पूर्व में कथित हैं ।३। प्रत्यस्मै पिपीष मे, योरयिवो रयिन्तम्, व्यमु वो अप्रहण मिति — ये तीन ऋचाऐं हैं । 'अस्मा-अस्मा इदन्धस इति एवा असि वीरयुरिति' ये दोनों ओर शक्वरियों के है ।४। इसके अनन्तर उप-

निषदों के हैं ।५। या एव महाव्रत की है ।६। संहिताओं का पूर्व मे कहा गया है 'ऋतं वदिष्यामि मन्य ब दिष्यामि इति यह विशेष है ।७। इसके उपरान्त मन्थ का 'तत्सवितुर्वृ णीमहे, तत्सवितुर्वरण्यमिति और यह पूर्व मे है ।८। अरब्ध मन इति' ये आधिकारिका शान्तियां है । इसके पश्चात् इत्याह्निका है ।६ १०। इसके अनन्तर उत्थान काल मे पाप का अपकर्षण करे ।११। फिर नित्या शान्ति करे ।१२। 'उदितः शु क्रयं दध इति ' इससे आदित्य देव को देखते है ।१३।

।। अथ कान्ति कर्म (२) ।।

तमहमात्मनी त्यात्मानमभिनिहित त्रिर्हितम् ।१। उप मा श्रीजु षतामुप यशोऽनु मा श्रीजु षतामनु यशः ।२। सेन्द्रः सगणः सबलः सयशाः सवीर्यं उत्तिष्ठानी-त्युत्तिष्ठति ।३। श्रीर्मा उत्तिष्ठतु यशो मा उत्तिष्ठत्विति उत्थाय ।४। इदम द्विषन्त भ्रातृव्य पाप्मानलक्ष्मीं चाऽप धनोमीति वस्त्रान्तमवधूय ।५। अप प्राच इति सूक्तम् इन्द्रश्च मृलयाति न इति द्वे यत् इन्द्र भयामह इति एका शास इत्था महाँ असीति प्राचीम् स्वस्तिदा इति दक्षिणां दक्षिणावृतोः वि रक्ष इति प्रतीचीम् वि न इन्द्रे ति उदीची सव्यावृतः अपेन्द्रे ति दक्षिणावृतो दिवमुदीक्षन्ते ।६।

तमहमात्मनीति-इससे अपने आप को अभिनिहित त्रिर्हित करे ।१। उपमा श्रीजु षता मंशोनमा श्रीजु षता मनु यशः ।२। सेन्द्रः सगणः सबल. सयशाः इससे उत्थित होता है ।३। श्रीर्मा उत्तिष्ठ सवीर्य्यं उत्तिष्ठानि-इति नु यशो मा उत्तिष्ठ तु इति-इससे उठकर ।४। इदमह द्विषन्त भ्रातृव्यं पाप्मानं अलक्ष्मी चतुय धुनोमीति इससे वस्त्र के छोर को अवधूनित करे।५। अपप्रस्य. इति यह, सूक्त है । इन्द्रश्च मृलयाति न इति ये दो है-यत इन्द्र भयामह इति यह एका है-शास इत्था महाँ असीति इससे प्राची को-स्वस्तिदा इति-इससे दक्षिण को दक्षिणा वृत हो-विरक्ष इति

इससे प्रतीची को–वि न इन्द्रेति इससे सव्यावृत होकर उदीची को· अपैन्द्रेति इससे दक्षिणावृत होकर दिव को देखते हैं।६।

सविता पश्चात्तात् तच्चक्षुरिति आदित्यमुपस्थाय ।१। व्यावर्तमानश्च प्रत्यायन्त्युपविशन्ति ।२। यथाऽऽपः शान्ता इति शान्तिपात्रादप आदाय।३। पृथिव्यामवनिनीय ।४। यथा पृथवीति अस्याऽभिकर्षन्ति ।५।एवमयिशाम्यत्विति दणिर्णेऽशे निलिम्पति ।६। एवं द्वितीयम् ।७। एवं तृतोयम् ।८। काण्डात्–क.ण्डात्सम्भवसि काण्डात्-काण्डात्प्र रोहसि शिवा नः शाले भवेति दूर्वाकाण्डमादाय मूर्धनि कृत्वा ।९। अग्निस्तृप्यतु। वायुस्तृप्यतु। सूर्यस्तृप्यतु। विष्णुस्तृप्यतु। प्रजापतिस्तृप्यतु। विरूपाक्षस्तृप्यतु। सहस्राक्षस्तृप्यतु। सर्वभूतानि तृप्यन्त्वि ति ।१०। सुमन्तु जैमिनि वैशम्पायन पैलाद्याचार्या ।११।पितृन्प्रत्यात्मिकान् ।१२। समुद्रं व इति अपो निनीय।१३। वामदेव्य जपित्वा ।१४। यथाकाम विप्रतिष्ठन्ते ।१५।

यथाऽऽगमप्रज्ञाश्रुतिस्मृतिविभवादनुक्रान्तमानाद् अविवादप्रतिष्ठादमयं शंभवे नो अस्तु नमोऽस्तु देव ऋषिपितृमनुष्येभ्यः शिवमायुर्वपुरनामयं शान्तिमरिष्टिमक्षितिमोजस्तेजो यशो बल ब्रह्मवर्चस कीर्तिमायुः प्रजां पशून्नमो नमस्कृता वर्धयन्तु ॥दुष्टुताद् दुरुपयुक्तान्न्यूनाधिकाच्च सर्वस्मात्स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च ब्रह्म सत्य च पातु मामिति ब्रह्म सत्यं च पातु मामीति।१६।

"सविता पश्चात्तात तच्चक्षुरिति" इससे आदित्य देव का उपस्थान करे।१। और व्यावर्तमान होकर प्रत्यागमन करते हैं और उपविष्ट हो जाते हैं।२। "यथाऽऽपः शान्ता इति" इसको पढ़कर शान्ति पात्र से जल ग्रहण करे।३। फिर उसे पृथिवी मे अवनिनयन करे ।४। "यथा पृथिवीति" इससे इसका अभिकर्षण करते हैं।५। "एवं मयिशाम्यत्विति"

—इस से दक्षिण अंश में निक्षिप्पन करता है।६। इसी प्रकार से द्वितीय को करे और इसी रीति से तृतीय को करना चाहिए।७-८। "काण्डात् काण्डात् सम्भवसि"—"काण्डात् काण्डात् प्ररोहसि"—"शिवानः शालं भवेति" इनसे पूर्वा के काण्ड को लेकर मूर्धा में करे।६। और दूर्वा काण्ड से मस्तक पर मार्जन करते हुए निम्न पदों का उच्चारण करे—"अग्निस्तृप्यतु" अर्थात् अग्निदेव तृप्त होवें। "वायु स्तृप्यतु"—"सूर्य्यस्तृप्यतु"—"विष्णुस्तृप्यतु"—"प्रजापति स्तृप्यतु"—"विरूपाक्षस्तृप्यतु" "सहस्राक्षस्तृप्यतु"—"सर्वभूतानितृप्यन्तु—इति।१०। सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल आदि आचार्य हैं।११। प्रत्यारिभक पितृगणों को भी कहे।१२। "समुद्र व इति" इसको पढ़कर जल का निनयन करे।१३। फिर वामदेव्य का जाप करना चाहिए।१४। इच्छा के अनुसार विशेष रूप से प्रतिष्ठित होते हैं।१५।

जिस प्रकार से आगम, प्रज्ञा, श्रुति, स्मृति के विभव से जो कि अनुक्रान्तमान है और अविवाद प्रतिष्ठा से अभयश हमारा भव में होवे। सब देव, ऋषि, पितृ और मनुष्यों के लिये नमस्कार है। शिव, आयु, आमयरहित वपु, शान्ति, अरिष्ठि, अक्षिति, ओज, तेज, यश, बल, ब्रह्म-वर्चस्, कीर्त्ति, आयु, प्रजा, और पशुओं को नमस्कार है। ये सब नमस्कृत होते हुए वर्धित होवें। दुष्टुत, दुरुपयुक्त, न्यून, अधिक सबसे स्वस्ति होवे। देव ऋषियों से ब्रह्म और सत्य मेरी रक्षा करें, ब्रह्म और सत्य मेरा परित्राण करें।१६।

इति शाङ्खायनगृह्यसूत्रे षष्ठोऽध्यायः

समाप्तञ्चेदं शांखायन गृह्यसूत्रम्



अथ गोभिल गृह्यसूत्रम्

अथातो गृह्याकर्म्माण्युपदेक्ष्यामः । यज्ञोपवीतिनाऽऽचान्तोदकेनकृत्यम् । उदगयने पूर्वपक्षे पुण्येऽह्नि. प्रागावर्त्तनादन्हः कालंविद्यात् । यथादेशञ्च ।१-४। सर्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्ति । अपवर्गेऽभिरूपभोजनयथाशक्ति । ब्रह्मचारी वेदमधीत्यान्त्यां समिधमभ्याधास्यन् । जायाया वा पाणि जिघृक्षन् अनुगुप्ता अपआहृत्य प्रागुदक्प्रवणं देशं समं वा परिसमूह्योपलिप्य मध्यतः प्राचीं लेखामुल्लिख्योदीचीञ्चस हृतां पश्चात् मध्ये प्राचीस्तिस्रउल्लिख्याभ्युक्षेत् । लक्षणावृदेषा सर्वत्र ।५-१०।

अथ—यह ग्रन्थ के आरम्भ करने को प्रकट करने वाला निपात है। अतः--यह शब्द उस ग्रन्थारम्भ काल में होने वाले आचार्यों की वाचनावली की विचित्रता के लिये ही प्रयुक्त किया गया है इसका अन्य कोई विशेष तात्पर्य नही है। गृह के लिये हित कर होने से योगरूढ़ि से गृह्य अग्नि का बोधक है। उस अग्नि से सम्बन्धित अग्निहोत्र आदि नित्य कर्त्तव्य कर्म और उसके अङ्ग स्वरूप अग्नि के आधान आदि कर्मों का उपदेश करेंगे। गृह्य में दीर्घ आकार का प्रयोग छान्दस है। सभी इसमें बतलाये जाने वाले कर्त्तव्य कर्मों का यज्ञोपवीत धारी ! पुरुष को ही आंचमन करके करना चाहिए। जो भी कर्म इसमें कहे जांयगे उनका कोई समय निर्दिष्ट नहीं भी किया।

गया हो तो उन सबको सूर्यदेव के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष में किसी भी पुण्यमय दिन में जबकि मेघावरण आदि कोई दोष न हो दोपहर के पूर्व ही करना चाहिए क्योंकि मध्याह्न के पूर्व ही प्रशस्त काल माना गया है। जिस किसी कर्म में विशेष रूप से समय का निर्देश किया जाता है उसको उसी समय में करना आवश्यक है। उसमे साधारणतया पूर्वाह्न काल ग्रहण नही करना चाहिए।१-४।

सभी गृह्य कर्मों मे कुशा आदि उपकरणो की आवश्यकता अनिवार्य रूप से हुआ करती है अतः सम्पूर्ण सामग्री को सञ्चित कर लेना चाहिए। कर्म की समाप्ति होजाने पर चाहे कोई भी किसी प्रकार का कर्म हो सभी में शास्त्र के अनुसार और अपनी शक्ति के अनुरूप एक-दो या अधिक विप्रो को भोजन कराना चाहिए यह सर्व कर्मों का साधारण विषय है। गृह कर्म जो कहा गया है उसमें यह प्रश्न होता है वह गृहय अग्नि कौन सी है—इसी को स्पष्ट किया जाता है—ब्रह्मचारी गुरुकुल में वेदाध्ययन को समाप्त कर ब्रह्मचर्य की समापिका समिधा को लेने के लिये प्रवृत्त होकर अग्नि का समाधान करे और अपहरण आदि के साथ अग्नि का प्रणयन करे फिर उस अपनी अग्नि मे उस अन्तिम समिधा को देवे। यदि उस समय में अग्नि का ग्रहण न किया गया हो तो गुरु की अग्नि मे ही उस अन्तिम समिधा का आधान करना चाहिए। फिर तो जाया के पाणि ग्रहण करने के पूर्व विवाह के समय मे अग्नि का समाधान करना चाहिए। अग्नि के प्रणयन के लिये मलमूत्रादि के प्रक्षेप मे रहित तैलाभ्यक्त मे वर्जित पूर्णतया सुरक्षित एवं पवित्र किसी जलाशय से जल लाकर उससे परिसहनम् (लीप) कर पूर्व या उत्तर दिशामें समतल भूमि के मध्य में पूर्वाग्र एक रेखा कर उसके नीचे उत्तराग्र रेखा कर मिला देनी चाहिए और मध्य में तीन रेखाऐं बनाकर फिर जलसे छिड़क देवे। यह स्थान स्थण्डिल कहा जाता है। इस क्रिया का जो अपहरणादिका है उसे लक्षणावृत् कहा जाता है इससे सभी जगह अग्नि के प्रणयन में व्यवहृत करना चाहिए।५-१०।

भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रणयन्ति । प्रेते वा गृहपतौ परमेष्ठीकरणम् । तथा तिथिनक्षत्रपर्वसमवाये । दर्शे वा पौर्णमासे वाऽग्निसमाधान कुर्वीत । वैश्यकुलाद्वाऽम्बरीषाद्वाऽग्निमाहृत्याभ्यादध्यात् । अपिवा बहुयाजिनएवागारादब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा । अपिवाऽन्यम्मथित्वाऽभ्यादध्यात् । पुण्यस्त्वेवा नर्द्धुको भवतीति । यथा कामयेत् तथा कुर्य्यात्॥११-१६।

इसके अनन्तर भूर्भुवःस्वः—इस मन्त्र से अपने सामने अग्नि का प्रणयन करे । सभी कर्मों मे इसी भांति अग्नि-स्थापन करने का विधान है । पाणि ग्रहण के समय मे पितादि के जीवित रहने पर वह अग्नि ग्रहण न करे तो जब गृह स्वामी की मृत्यु हो जावे उसी समय में अग्नि ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार से अग्नि ग्रहण के मुख्य तीन काल है—ब्रह्मचर्य के अवसान में—पाणिग्रहण के पूर्व और गृह स्वामी के मरने पर ये ही तीन समय है । जिस तरह से अन्य सन्निधान के लिये काल की अपेक्षा होती है वैसेही तिथि—नक्षत्र-पर्वों के शुभ समवाय वाला समय अपेक्षित होता है । अग्नि स्थापन मे शुभ समय आवश्यक है । यदि तिथि आदि के समवाय का समय शीघ्र घटित न हो तो अमावस्या पूर्णिमा मे अग्नि का सम्यक् रीति से आधान—धारण—और पोषण करे । वैश्य कुल के घर से—अम्बरीष से अथवा भार भूँजने वाले से अग्नि लाकर स्थापित करनी चाहिए । अथवा जो बहुयाजी हो उसके यहाँ से अग्नि लाकर आधान करे चाहे वह बहुयाजी ब्राह्मण हो—क्षत्रिय हो अथवा वैश्य हो कोई भी क्यों न हो— इसमें कोई आपत्ति नहीं होती है । अथवा अरनी का मन्थन न करे अग्नि उत्पादन कर नवीन अग्नि का ग्रहण करना चाहिए अरणि वृक्ष की लकडी के मन्थन द्वारा जो अग्नि प्राप्त होती है उससे आगे कहे जाने वाले अनुष्ठानों में परम पुण्य होता है किन्तु अन्य कामनाओ की पूर्ति इससे नही होती है क्योंकि यह केवल पुण्य का ही जनक है । अतएव जैसी कामना हो उसी के अनुसार अग्नि का आधान करना चाहिए ।।११-१६।

स यदेवान्त्यां समिधमभ्यादधाति जायाया वा पाणि जिघृक्षन् जुहोति तमभिसयच्छेत् । स एवास्यगृह्योग्नि-र्भवति । तेन चैवास्य प्रातराहुतिर्हुता भवतीति । सायमाहुत्युपक्रम एवात ऊर्ध्वं गृह्योऽग्नौ होमो विधीयते। पुरा प्रादुष्करणवेलायाः सायप्रातरनुगुप्ता अपआ-हरेत् परिचरणीयाः । अपि वा सायम् । अपि वा कुम्भा-द्वा मणिकाद्वा गृह्णीयात् । पुरास्तमयादग्नि प्रादुष्कृ-त्यास्तमिते सायमाहुतिं जुहुयात् । पुरोदयात् प्रातः प्रादुष्कृत्योदितेऽनुदिते वा प्रातराहुतिं जुहुयात् ।२०-२८।

इस रीति से अग्नि का आहरण करके जिसमें अन्तिम समिधा का तथा विवाह में खीलों का होम करे उस अग्नि को बड़े ही यत्न से सुरक्षित रखना चाहिए ।२०। वही अग्नि इस ग्रहण करने वाले की गृह्य अग्नि होती है । जो गृह के लिये हितकर है और गृह कर्मों के लिये परम उपयोगी है—इसीलिये यह 'गृह्य'—इस नाम से प्रसिद्ध होती है ।२१। अन्त्य समिधा के होम से या लाज (खील) आदि के होम से ही प्रातःकाल की सिद्ध होजाती है फिर उस दिन अन्य आहुति की आवश्यकता नहीं होती है । क्योंकि यही प्रातःकालिक आहुति सिद्धाहुति मानी जाती है ।२२।

उसदिन की प्रातःकाल की उसी से सिद्ध है किन्तु उसी दिन में सायंकाल की आहुति का उपदेश करना चाहिए । इसीलिये गृह्य अग्नि में प्रातः और सायं के होम के प्रकार का उपदेश दिया जाता है ।२३।

सूर्य के अस्त होने के पूर्व ही सायङ्काल में अग्नि को भली भाँति दीप्त करके सूर्यास्त के समय आहुति देनी चाहिए । उदय के पूर्व ही जब तक सूर्य उदित न हो तभी तक अग्नि जलाकर प्रातः कालीन आहुति देनी चाहिए । ये दोनों प्रातः सायं की आहुतियों का समय ही केवल बतलाया

गया है। यहाँ बोध की आसानी के लिये ही पहिले २७ और २८ वें सूत्र की व्याख्या की जाती है।२७-२८।। अब ।२४-२५। और २६ वें सूत्रों की व्याख्या की जाती है—सायंकाल और प्रातःकाल दो बार अग्नि जलाने के पहिले ही आचमन आदि के सम्पादन करने के लिये सुनिर्मल एवं सुरक्षित जल लाना चाहिए ।२४। अथवा सायंकाल में एक ही बार अग्नि के सन्दीपन के काल से पूर्व ही आचमन आदि की परिचर्या के उपयुक्त जलले आवे। उसीसे प्रातः कालीन क्रिया करनी चाहिए। ।२५। या एक दिन में सुबह तथा शाम को अग्नि के जलाने से पेश्तर इस जल को लाकर कलश में रख देवे। फिर आवश्यकता के अनुसार दोनों समय में उसमें से ले लिया करे ।।२६।।

———

अथ उपवीत विधि:

यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वस्त्रं वाऽपि वा कुशरज्जुमेव। दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय सव्येंऽसे प्रतिष्ठापयति दक्षिण कक्षमन्ववलम्बं भवत्येवं यज्ञोपवीती भवति। सव्यं बाहुमुद्धृत्य शिरोऽवधाय दक्षिणेंऽसे प्रतिष्ठापयति सव्यं कक्षमन्ववलम्वं भवत्येवं प्राचीनावीती भवति। पितृयज्ञे त्वेव प्राचीनावीती भवति। उदङ्ग्नेरुत्सृप्य प्रक्षाल्य पाणी पादौ चोपविश्य त्रिराचामेद् द्विः परिमृजीत। पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत्। इन्द्रियाण्यद्भिः संस्पृशेत्। अक्षिणीनासिके कर्णाविति। यद्यन्मीमा स्यं स्यात्तत्तदद्भिः स स्पृशेत् ।१६।

सूत्र-वस्त्र अथवा कुशरज्जु जिस समय में जो भी सुविधा से सुलभ हो उस समय मे उसी के यज्ञोपवीत से काम लेना चाहिए ।१। उस यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर धारणकर-मस्तक में वेष्टित करके और बायें कन्धे से दाहिने कक्ष के नीचे तक लटकता

हुआ धारण करना—इन तीनों रीतियों में से किसी भी एक विधि से जनेऊ धारण करने वाले को "यज्ञोपवीती" कहा जाता है ॥२॥

इसी भाँति से वाम कन्धे पर जनेऊ रखकर-शिर में लपेटकर और दक्षिण स्कन्ध से वाम कक्ष के नीचे तक लटकने वाला जनऊ पहिनना—इन तीनो रीतियो मे से किसी भी एक रीति से जनेऊ पहिनने वाले को 'प्राचीनावीती" कहा जाया करता है ।३।

केवल पितृयज्ञ मे जब कि पितरो के लिये श्राद्ध आदि करे तभी प्राचीनावीती होना चाहिए । इस प्रकार से देवपितृ कार्यों से अन्य कर्मों मे निवीती होकर ही स्थित रहना चाहिए–यह स्वतः ही प्राप्त हो गया करता है। इसके अनन्तर और उपस्पर्शन विधि बताते हैं ॥४॥

ऐसा कहागया है कि उदक से आचान्त होकर ही कृत्य करना चाहिए । इस समय में उसकी इति कर्त्तव्यता का उपदेश दिया जाता है । अग्नि के उत्तर दिशा की ओर उदसर्पण करके–हाथ पैर धोकर तीनवार आचमन करना चाहिए । दो बार ओष्ठ पर लगे हुए जलका मार्जन करे इसके पश्चात् दोनों पैरों पर और मस्तक पर जल छिड़क देवे । इसके उपरान्त आँख–नाक और कान इनके दोनो–दोनो छिद्रों को जोकि छै इन्द्रियाँ है जलका स्पर्श करावे । पीछे दूसरे अङ्गों को भी जो अब बोधित करने के लिये अभीष्ट हों जलका स्पर्श करे ।५-९।

तत्रैनदाहुः । नोपस्पृशेद् व्रजन् । न तिष्ठन् । न हसन् । न विलोकयन् । नाप्रणतः । नाङ्गुलीभिः । नातीर्थेन । न सशब्दम् । नानवेक्षितम् । नवाह्या ँस. । नान्तरीयेक-देशस्य कल्पयित्वोत्तरीयताम् । १०-२१ ।

इस आचमन के विषय मे कुछ आचार्यों का मत है—।१०। इधर-उधर भ्रमण करते हुए जल का उपस्पर्शन नहीं करना चाहिए। स्थित होकर भी कभी आचमन नही करे ।११-१२। हास्य करते हुए भी आचमन करने का निषेध है ।१३। किसी अन्य वस्तु को देखते हुए भी आचमन नहीं करना चाहिए ।१४। क्रोध आदि के मनोवेगो से उग्रमूर्ति होते

हुए भी उपस्पर्शन नहीं करे ।१५। अग्राह्य बुद्धि से अंगुलियों के अग्रभागों में जल ग्रहण करके भी आचमन नहीं करना चाहिए ।।१६।।

मनु आदि ने ब्राह्मादिक को तीर्थ कहा है । उस के अतिरिक्त मार्ग अर्थात् धातुमात्र में मुख से या कण्ठ से जल ग्रहण करके आचमन न करे ।१७। खेल के अभिप्राय से शब्द करता हुआ आचमन न करे ।१८। हाथ में जल को लेकर उसे न देखते हुए आचमन नहीं करना चाहिए ।१६। दोनों घुटनों के बाहर स्कन्धों को रखकर आचमन न करे ।२०। एक ही वस्त्र को पहिनकर तथा उसी को ओढ़कर कभी भी आचमन नहीं करना चाहिए ।।२१।।

नोष्णाभिः । न सफेनाभिः । न च सोपानत्कः क्वचित् । कासक्तिकः ।गले बद्धः । चरणौ न प्रसार्य च । अन्ततः प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति । हृदयस्पृशस्त्वेवाप आचामेत् । उच्छिष्टोहैवातोऽन्यथा भवतीति । अथ प्रत्युपस्पर्शनानि । सुप्त्वाभुक्त्वाक्षुत्वा स्नात्वापीत्वा विपरिधाय च रथ्यामाक्रम्य श्मशानञ्चा चान्तः पुनराचामेत् ।२२-३२।

उष्ण जल से उपस्पर्शन न करे । फेनो वाले जल से आचमन का निषेध किया गया है ।२२-२३। किसी अनुचित एवं अनावश्यक स्थान पर जूते पहिने हुए आचमन नहीं करना चाहिए ।२४। माथे या कण्ठ में दृढ़ वस्त्रादिका बन्धन रहते हुए या दोनों पैरों को फैलाकर आचमन न करे । पगड़ी दुपट्टा होतो उसे हटाकर ही उपस्पर्शन करे ।२५-२७।

चाहे किसी कर्म का आरम्भ किया जाने अथवा न किया जावे शयन से उठकर उस समय मे आचमन करने से मनुष्य पवित्र हो जाया करता है ।२८। आचमन जल का प्रमाण यह है कि जितने जल के पीने से हृदय तक सिक्त हो जावे उतने जल से आचमन करना चाहिए ।२६। जो विधि आचमन की कही गई है उसके विपरीत करने से आचमन करने वाले का मुख उच्छिष्ट (झूठा) ही रहता है ।३०। किस स्थल पर किया

हुआ आचमन प्रत्युपस्पर्शन नाम वाला कहा जाता है — यह बतलाते हैं— सोकर उठने के पीछे-भोजन के पश्चात्-जँभाई तथा हिचकी आने के अनन्तर-स्नान करने के पश्चात्—रस आदि पेय पदार्थ के पीने के अन्त में—वस्त्रभूषन आदि के परिधानों करने के उपरान्त श्रम के शमन के के लिये जो आचमन किया जाता है वह 'प्रत्युपस्पर्शन'—इस नाम से कहा जाया करता है। तात्पर्य यह है कि निन्द्रा के अन्त में आचमन करे और देवानुष्ठान के कार्य में निद्राक्तन्द्रा या आलस्य होवे तो उस समय भी आचमन करना चाहिए। विहार करके तथा हिचकी आदि के आने पर भी आचमन करे। एक बार करने पर भी दुबारा करना आवश्यक है ॥३१-३२॥



अथ ब्रह्मयज्ञ प्रकरणम्

अग्निमुपसमाधाय परिसमूह्य दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलिं प्रसिञ्चेत् । अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात्। सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरतः। देवसवितः प्रसुवेतिप्रदक्षिणमग्निं पर्य्युक्षेत् सकृद्वात्रिर्वा । पर्य्युक्षणान्तान् व्यतिहरन्नभिपर्य्युक्षन् होमीयम् । अथ हविष्यस्यान्नस्याग्नौ जुहुयात् कृतस्य वाऽकृतस्य वा । अकृतश्चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात् प्रोदकं कृत्वा । अथ यदि दधिपयोयवागू वा, कंसेन वा चरुस्थाल्या वा स्रुवेण वै वा । अग्नये स्वाहेति पूर्वा तूष्णीमेवोत्तरां मध्ये चैवापराजितायाञ्चैव दिशीति सायम् ।१-९।

पूर्व में वर्णित रीति से अग्नि का उपसमाधान करके परिसमूहन करे और फिर अपना दाहिना घुटना को भूमि पर टेककर प्रार्थना करे—हे अदिते ! मुझे इस कर्म को करने की अनुमति दो'—इस मन्त्र से अग्नि

के दाहिने भाग में जलकी अञ्जलि से सिञ्चन करे ।१। 'हे अनुमते ! इस कर्म के करने की मुझे अनुमति प्रदान करो'—इस मन्त्र के द्वारा अग्नि के उत्तर भाग मे दूसरी जलकी अञ्जलि देनी चाहिए ।२। इसके अनन्तर एक ही बार या तीन बार "देव सवित: प्रसव" इत्यादि मन्त्र से प्रदक्षिणा के अनुसार अग्नि के चारों ओर जल की धारा गिरावे—इसी का नाम पर्युक्षण कहा जाता है । ' सरस्वत्यनुमण्यस्व" अर्थात् हे सरस्वती देवि ! मुझे आप इस कर्म के करने की अनुमति देवें—इस मन्त्र से उत्तर में तीसरी जल की अञ्जलि देवे ।३-४।

इस रीति से पर्युक्षण की समाप्ति तक के अङ्ग भागों का पूर्ण करके फिर होम के उपयोगी जो अन्नादि पदार्थ है उनका जल की बूँदो से सिञ्चन करना चाहिए ।५। इसके उपरान्त अग्नि मे पका हुआ या अपक्व यवादि अन्न हविष्य का हवन करना चाहिए ।६। यदि भात आदि आग में पका हुआ हविष्य होम करने के लायक न प्राप्त हो तो तण्डुल तथा फल आदि जोभी हवनीय उपलब्ध हों उनको जल से धोकर भीगी हुई दशा में ही हवन करे ।७। दधि—दुग्ध और यवागू से हवन करे तो उनको धोने की आवश्यकता नही है उनको कांसे के पात्र में या चरुस्थाली मे रखकर अथवा स्रुवा से हवन करना चाहिए । हाथ से हवन न करे।८।अग्नि के मध्य में 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से प्रथम आहुति देवे और दूसरी आहुति बिना ही मन्त्र के ईशान दिशा में देवे । इसी प्रकार से सायङ्काल के होम का विधान है ।।९।।

अथ प्रातः,—सूर्य्याय स्वाहेतिपूर्व्वा, तूष्णीमेवोत्तरां मध्ये चैवापराजिताया श्चैव दिशि । समिधमाधानु-पय क्ष्य तथैवोदकाञ्जलीन् प्रसिञ्चेदन्वमँस्था इति न्त्रविशेष: । प्रदक्षिणमग्नि परिक्रम्यापां शेष निनीय पूरयित्वा चमसं प्रतिष्ठाप्य यथार्थम् । एव मत ऊर्द्ध्वं गृह्येऽग्नौ जुहुयाद्वा हावयेद्वाऽऽजी वितावभृथात् । अथाप्युदाहरन्ति । कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होमौ पत्नी गृह्यएषोऽग्निर्भवतीति । निष्ठिते साय-

माशप्रातराशे भूतमिति प्रवाचयेत् । ऋते भगया वाचा शुचिभं त्वा— । प्रतिजपत्योमित्युच्च स्तस्मैनमस्त-न्माक्षा इत्युपांशु ।१०-१८।

प्रातःकाल में होम करने की विधि भी ऐसी ही है केवल 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र के स्थान में 'सूर्याय स्वाहा', इस मन्त्र से आहुति देवे, इतनी ही विशेषता है ।१०। दोनों कालों में होम के पश्चात् अग्नि में एक समिधा बिना किसी मन्त्र का उच्चारण किये डाल देवे, और पहिले के समान ही पर्युक्षण करके उदक की अञ्जलि देवे । इसको 'अनुपर्युक्षण, —इस नाम से कहते हैं। अनुपर्युक्षण मे 'हे अदिते ! तूने मेरे कर्म के करने की अनुमति प्रदान की थी मैंने उसी के अनुसार कर्म सम्पन्न किया है'—इस मन्त्र का व्यवहार करे, यही इसमें विशेषता है ।११। अनुपर्युक्षण के पश्चात् अग्नि की परिक्रमा करे और जल के अवशिष्ट भाग को चमस में रखकर आवश्यक कार्य के लिये रख लेवे ।१२। अग्नि को ग्रहण करके प्रथम बार जैसा हवन करे वैसा ही पूरे जीवन में करता रहे । अश्वमेध आदि महा भाग में अवभृथ स्नान करने तक नित्य ही दोनों समयों में होम करना चाहिए । स्वयं न कर सके तो फिर प्रति-निधि से करावे किन्तु इसका त्याग न करे ।१३।

इस प्रतिनिधि के विषय में कुछ लोगों का ऐसा कथन है कि—यह गृह्य है जो कि गृह के हित के लिये ही होता है । पत्नी को भी गृह कहा जाता है इसलिये इस गृह्य अग्नि में यदि पत्नी चाहे तो साय प्रातः के होमों का दोनों ही किया करे ।१४-१५। सायं काल और प्रातःकाल में भोजन प्रस्तुत होने पर छात्रों को अध्ययन करावे । इसी को "ब्रह्म-यज्ञ" कहा जाता है ।१६। ब्रह्म यज्ञ के समय में जिन वेद के वाक्यों से कल्याण होता है उमका त्याग कर अन्य वाक्यों के प्रयोग से अशुचिता होती है । अपवित्र वचनों के उच्चारण से अशुचिता होती है उसका प्रायश्चित्त ऊँचे स्वर से 'ओ३म्' और मन मे "तस्मै नमः" बोले ।१७-१८।

अथ वाग्यतो वलोम् हरेत् । भाषेतान्नसंसिद्धिमतिथिभिः कामं सम्भाषेत । अथ हविष्यस्यान्नस्योद्धृत्य हविष्यंव्यंञ्जनैरुपसिच्याग्नौ जुहुयात्तूष्णीं पाणिनैव । प्राजापत्या पूर्वाहुतिर्भवति सौविष्टकृत्युत्तरा। अथ बलीन् हरेत्, वाह्यतोवान्तर्वा सुभूमिं कृत्वा। सकृदपो निनीय चतुर्धा बलिं निदध्यात्, सकृदन्ततः परिषिञ्चेत् । एकैकं वानुविधानमुभयतः परिषिञ्चेत् । स यत् प्रथमं निदधाति स पार्थिवो बलिर्भवत्यथ यद्द्वितीयं स वायव्यो यत् तृतीयं स वैश्वदेवो यच्चतुर्थं स प्राजापत्यः। अथापरान् बलीन् हरेदुदधानस्य मध्यमस्य द्वारस्याब्दैवतः प्रथमोबलिर्भवत्योषधिवनस्पतिभ्योद्वितीय आकाशायतृतीयः। अथापर बलिं हरेच्छयनं वाधिवर्च्चं वा स कामाय वा बलिर्भवति मन्यवे वा ।१-१०।

इसके अनन्तर वाग्यत होकर हास्य और कौतुक में भी अनृत भाषण आदि अभिपत भाषण का परित्याग करके बली के लिये पाकादि का जो प्रथम कर्त्तव्य है उसका सम्पादन करे।१। अन्न से सम्बन्ध रखने वाली संसिद्धि विकतृप्ति आदि विषय वाली होती है उसमें भाषण का निषेध नहीं है और समागत अतिथियों से नम्रता के भाषण का भी निषेध नहीं है।२। पाक के तयार हो जाने पर उसमें से कुछ हविस्यान्न ग्रहण कर बिना ही मन्त्र के पद व्यञ्जन के साथ हाथ से ही एक आहुति दे देवे। स्रुवा की वहाँ आवश्यकता नहीं है।३। प्रथम आहुति प्रजापति देवता की होती है। अर्थात् मन में प्रजाओं के स्वामी सृष्टि आदि के करने वाले परम देव का चिन्तन कर 'प्रजापतये स्वाहा'—इसका अस्पष्ट उच्चारण कर देना चाहिए। दूसरी आहुति सौविष्ट कृती होती है अर्थात् जो शोभन अभिलाष को करता है उसी सर्वान्तर्यामी का चिन्तन कर 'स्विष्टकृते स्वाहा' इससे आहुति देवे। इसी को देवयज्ञ—नित्य होम और वैश्वदेव कहा जाता है।४।

देवयज्ञ नाम वाले उक्त होम के पश्चात् अग्नि चाहे जहाँ भी हो घर या बाहिर, झाड़ू से भूमि को साफ करके उस-उस स्थान में पशु-पक्षी-पिपीलिका आदि को आहार देकर बलि का कर्म पूर्ण करना चाहिए ।५। स्वच्छ की हुई भूमि में पहिले एक बार वहाँ पर जल के छींटे लगा कर उस बलि के चार भाग करे और उनपर जल के छींटे देवे ।६। अथवा एक-एक भाग करके ही बलि रक्खे और हर एक के पहिले तथा पीछे एक बार जल छिड़के ।७। इन बलि के चारों भागों में प्रथम भाग पृथ्वी की दूसरी वायुदेव की और तीसरी विश्वदेवा एवं चौथी प्रजापति देव की होती है ।८। इन बलियों के रखने वाले गृह मे जहाँपर जल रक्खा हो जोकि परिचरणीय हो उसी गृह के मध्य द्वारमें अन्य तीनों बलियों को रख देवे । उसमें प्रथम जल देव का-दूसरी औषधि वनस्पति की और तीसरी आकाश की होती है ।९। तीनों बलियों के रखने के पीछे शयन के घर में या शयन करने के स्थान में अथवा मल मूत्र त्याग करने की जगह में एक ओर बलि रक्खे । शयन-स्थल की बलि काम देव की होती है और दूसरी बलि मन्यु देवता की है ।।१०।।

अथ सस्तूपँ स रक्षोजनेभ्याः।११। अथैतद्बलिशेषमद्भिरभ्या सिच्यापसलवि दक्षिणानिनयेत् पितृभ्यो भवति ।१२। आसीन एवाग्नौ जुहुयात् ।१३। आसीनःपितृभ्यो दद्यात् यथोपपादमितरान् ।१४। स्वयन्त्वेवैतान् यावद्वसेद् बलीन् हरेत् ।१५। अपि वाऽन्यो ब्राह्मणः ।१६। दम्पती एव ।१७। इति गृहमेधिव्रतम् ।१८। स्त्री ह सायं प्रातः पुमानिति ।१९। सर्वस्य त्वेवान्नस्यैतान् बलीन् हरेत् पित्र्यस्य वा स्वस्त्ययनस्य वाऽर्थार्थस्य वा ।२०।

जहाँ पर कूड़ा डाला जावे वहाँ पर एक बलि राक्षसों के लिये देनी चाहिए ।११। पात्र में शेष अन्नको जल मे घोकर अपसव्य पितृ तीर्थ से दक्षिण दिशामें प्रकीर्ण कर देवे यह बलि पितृगण की होती है ।१२। बैठकर ही अग्नि में हवन करे पितृगण को बलि भी बैठकर ही देवे और शयन गृह आदि की पूर्व कथित बलि जैसे भी हो सके बठे—

निहुर कर देवे। सुभीते के अनुसार ही करना चाहिए।१३-१४। इन बलियों को अपने समान पर स्वयं ही देना चाहिए। असमर्थता होने पर किसी अन्य ब्राह्मण के द्वारा भी दी जा सकती है। इसमें स्त्री पुरुष दोनों ही समान रूप से अधिकारी है ये कर्म जो इस खण्ड में वर्णित है गृहस्थों के लिये ही है।१५-१८। किसी आचार्य का मत है कि प्रातः घर का स्वामी और सायं कालमे उसकी पत्नी ही बलिका हरण करे।१९। पितृगण के कर्म को हो–ब्राह्मण भोजन आदि के लिये हो अथवा अपने भोजन को हो सब बलि कर्म अन्न से ही करना चाहिए।२०।

यज्ञादेव निवर्त्तते।२१। यद्येकस्मिन् काले व्रीहियवौ प्रक्रियेतान्यतरस्य कृत्वा कृतं मन्येत।२२। यद्येकस्मिन् काले पुनः पुनरन्नं पच्येत सकृदेवैतद् बलितन्त्रं कुर्व्वीत।२३। यद्येकस्मिन् कुले बहुधाऽन्नं पच्येत गृहपतिमहानसादेवैतद्बलितन्त्रं कुर्व्वीत।२४। यस्यत्वेषामग्रतः सिध्येन्नियुक्तनग्नौ कृत्वाऽग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीत।२५। यस्यो जघन्यं भुञ्जी तैवेति।२६। अथाप्युदाहरन्ति।२७। एतस्यैवबलिहरणस्यान्तेकामप्रब्रुवीतभवतिहैवास्य।२८। स्वयन्त्वेवाशस्यबलिं हरेत् यवभ्योऽध्याव्रीहिभ्यो व्रीहिभ्योऽध्यायवेभ्यः सत्वाशस्यो नाम बलिर्भवति।२९। दीर्घायुर्हैव भवति।३०। विश्राणिते फलीकरणानामाचामस्यापामिति बलिं हरेत् स रौद्रो भवति स रौद्रो भवति॥३१॥

ज्योतिष्टोम आदि के अनुष्ठान आरम्भ कर देने पर फिर बलि के कर्म का करना उचित नहीं है।।२१। एक ही काल में यदि तण्डुल और यव दोनों अन्न उपस्थित हों तो दोनों से बलिकर्म नही करना चाहिए क्योंकि दोनों मे से किसी भी एक से बलिकर्म सम्पन्न हो सकता है।२२। एक ही काल मे दो-तीन या इससे भी ज्यादा बार अन्न का

पाक हो तो भी केवल एक ही बार बलिकर्म करना चाहिए ।२३। यदि एक ही मकान एक ही वंश के बहुत से व्यक्ति रहते हों और वे सब भिन्न२ अन्न का पाक करते हों तोभी जोभी उन सबमें प्रधान हो उसी की पाकशाला से इस बलि के कर्म को करना चाहिए । प्रत्येक की पाक शाला से नहीं करना चाहिए ।२४।

यदि एक ही मकान मे पाक करने वाले बहुत से हों तो उनमें सबसे प्रथम जिसका पाक तयार हो जावे वही थोडा सा अन्न अग्नि में डालकर उस पक्व अन्न में से अतिथि–सत्कार के पीछे आप भोजन करे । अगर पाकादि के दोष से वह अन्न अग्राह्य हो जावे तो तो उससे आतिथ्य न करके स्वयं भोजन करे और दुबारा पाक करके अतिथि-रीक करनी चाहिए ।२५-२६। आचार्य गण दूसरी भी कुछ बात कहते है । पूर्वाचार्य इस बलि हरण के विषय में कुछ विशेषता बतलाते है । इस बलि हरण के अन्न मे अपने अभीष्ट की प्रार्थना करनी चाहिए । तो इस प्रार्थी की प्रार्थित सिद्धि निश्चय ही हो जाती है ।२७-२८। यदि कथित प्रार्थना करे तो स्वयं ही आशस्य–इस नाम वाली बलि को प्रदान करे किसी प्रतिनिधि के द्वारा इसे नहो करावे । उस आशस्य बलि को बतलाते हैं—हेमन्त का धान्य जो खेत में ही है और तयार नहीं हुआ है तब तक और जौ के अन्न के पूर्व जब तक यवशस्य तयार न हुआ हो उस धान्य की उत्पत्ति के समीप में जो बलि दी जाती है उसी को आशस्य बलि कहा जाता है । इस बलि से अवश्य ही दीर्घायु का लाभ होता है ।२९-३०। तुषा से रहित किये हुए धान्य अथवा यव के पाक के सिद्ध होने पर उसके मंडि से यह आशस्य बलि रुद्राय नमः–इस मन्त्र के द्वारा करनी चाहिए वह बलि रुद्र देवता वाली होती है ।३१।

अथ दर्शपौर्णमासयोः । सन्ध्यां पौर्णमासीमुपवसेदु-त्तरामित्येके रुद्र अथ यदहश्चन्द्रमा न दृश्येत साममावा-स्याम्।पक्षान्ताउपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याः। आमा-

वास्येनहविषापूर्वपक्षमभियजतेपौर्णमास्येनापर पक्षम् ।१-६।

इसके अनन्तर दर्श और पौर्णमास यागों के विषय में बतलाया जाता है ।१। दर्श पौर्णमास यागों के करने के पूर्व दिन मे उपवास करना चाहिए । जिस दिन में प्रातः काल से ही पौर्ण मासी का आरम्भ हो और सन्ध्या तक रहे तभी उपवास करे । अथवा उत्तरा अर्थात् अस्तमि तो दया तथा उच्चैरुदया में करे । ।२-३। जिस दिन में चन्द्र दर्शन सम्भवित न हो और सूर्योदय काल में अम वस्या हो या पीछे प्रतिपत् हो उसी दिन में अमावस्या का उपवास करना चाहिए । जिस दिन चतुर्दशी के पीछे अमावस्या हो उसमें उपवास का निषेध है । इन दोनों ही उपवासों में उदय व्यापिनी तिथियाँ ही ग्राह्य होती है ।४। जब तक जीवित रहे प्रति मास में पक्षों के अन्त मे उपवास करना चाहिए और कृष्ण-शुक्ल दोनों प्रतिपत् तिथियों में यजन करना चाहिए ।५। अमावस्या में उपवास करके शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा मे ज्यों हवि के द्वारा यजन किया जाता है वह सम्पूर्ण शुक्ल पक्ष का याग मानना चाहिए इसी प्रकार से पूर्णिमा में भी सम्पूर्ण कृष्ण पक्ष का याग मानना चाहिए ।६।

यः परमो विकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी यःपरम. सन्निकर्षः सामावास्या । यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताम-मावास्या कुर्वीत दृश्यमानेऽप्येकदा गताध्वा भवतीति । त्रयःपौर्णमासीकालाभवन्तिसन्ध्यावास्तमिलोदितावोच्चै-र्वाऽथ यदहः पूर्णोभवति पृथगेवेतस्य ज्ञानस्याध्यायो भवत्यधीयीत वा तद्विद्भ्यो वा पर्वावगमयेत् ।।७-१२।

जिस तिथि में सूर्य और चन्द्र इन दोनों ग्रहों का अत्यधिक विप्रकर्ष अर्थात् दूर में अवस्थान होता है उसी को पूर्णिमा तिथि कहा जाता है और जिस दिन दोनों ग्रहों का अत्यन्त समीप मे अवस्थान होता है उसे ही अमावास्या तिथि कहा जाता है ।७। जिस दिन मे चन्द्र दर्शन न हो उसको अमावस्या कहते है । कुछ क्षण के लिये चन्द्रदर्शन की सम्भावना में यदि अमावस्या मानी जाय तो वह "गताध्वा" कही जाती

है। इस प्रकार से दो प्रकार की अमावस्या होती है ।९। पूर्णिमा तीन प्रकार की होती है—जिस दिन पूर्णचन्द्र होता है वह पूर्णिमा कही जाती है । एक सन्ध्या पूर्णिमा होती है इसमें प्रातः कालीन सन्ध्या के पूर्व रात्रि में पूर्णिमा या प्रतिपदा होती है। दूसरी अस्तमितोदया है। इसमें सूर्यास्त समय में चतुर्दशी और इसके पीछे रात्रि में पूर्णिमा होती है । तीसरी "ऊर्ध्वे पूर्णिमा" है । इसमे सूर्यास्त के पश्चात् चतुर्दशी को छोड़कर पूर्णिमा बहुत रात्रि तक रहती है।१०-११। इसके ज्ञान के लिये ग्रहों और नक्षत्रो की स्थिति तथा गति आदि के ज्ञान की आवश्यकता है इसके लिये ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान करना चाहिए।१२।

अथयदहरुपवसथो भवति तदहः पूर्वाह्ण एव प्रातराहुतिं हुत्वैतदग्नेः स्थण्डिल गोमयेन समन्तम्पर्युपलिम्पत्यथे-ध्मानुपकल्पयते खादिरान् वा पालाशान् वा खादिर-पालाशालाभे बिभीतकतिल्वकबाधकनीवनिम्बराजवृक्ष-शाल्मल्यरलुदधित्थकोविदारश्लेष्मातकवर्जं सर्ववनस्प-तीनामिध्मोयथा स्याद्विशाखानि प्रति लूनाः कुशा-बर्हिरुपमूललूनाः पितृभ्यस्तेषामलाभेशूकतृणशरशीर्य्य-बल्वजमुतवनबशुण्ठवर्जं सर्वतृणान्याज्यं स्थाली-पाकीयान् व्रीहीन् वा यवान् वा चरुस्थालीं मेक्षणं स्रुव मनुगुप्ता अप इति यानि चानुकल्पमुदाहरिष्यामो न तदहः प्रसृज्येत दूरादपि गृहानभ्येयादन्यतस्तुधन क्रीणी यान्न विक्रीणीताबहुवादी स्यात् सत्य विवदिषेदथापरा-ह्ण एवाप्लुत्यौपवसथिक दम्पती भुञ्जीयाता यदेनयोः काम्यं स्यात् सर्पिमिश्रं स्यात् कुशलेन ॥ १३-२६॥५ ॥

अब काल के निर्णय के उपरान्त उपवास के दिन में जो कुछ भी कर्त्तव्य है उसको बतलाया जाता है—उपवास के दिन में सूर्योदय के समय पूर्णिमा होनी चाहिए। जिसदिन सूर्योदय के समय में अमावस्या

हो उसदिन में पूर्वाह्न में अग्निहोत्र और प्रातः काल की आहुति आदि सब कार्य करने चाहिए। सर्व प्रथम गोमय से अग्नि गृह का लेपन करे फिर खैर या ढाक की लकड़ी सञ्चित करे। यदि इन लकड़ियों के एकत्रित करने में असुविधा हो तो बहेड़ा—लोध—बाधक—कदम्ब—निम्ब—राजवृक्ष—सेमर—श्लु—दधित्थ—इन ग्यारह को छोड़कर अन्य कोई भी लकड़ी यज्ञ कर्म मे लाई जा सकती है। देवकार्य के लिये स्कन्ध से छिन्न कुछ कुशाऐं लेवे—पित्र्टकार्य में मूल से छिन्न कई कुशाऐं ग्रहण करे। कुशा प्राप्त करने में असुविधा हो तो शुक—तृण—शर—शीर्य-बल्वज और मुनव इन सात तृणों को त्यागकर अन्य कोई भी तृण यज्ञ कर्म में ग्राह्य होता है। घृत पाक के उपयुक्त कतिपय धान्य अथवा यव। चरुस्थाली मेक्षण—स्रुव—सुरक्षित जल—इन सब को लाकर अग्निगृह में एकत्रित करना चाहिए। उसदिन में पालने के योग्य नियमो का ध्यान रक्खे। अपने घर का त्याग न करे—दूर में भी होतो उस अवसर पर घर लौट आवे—वस्तुऐं खरीद लेवे किन्तु कोई वस्तु बेचे नहीं—अधिक भाषण न करे—सत्य बोले और स्त्री-पुरुष दोनों ही दुपहर के बाद स्नान करे और उपवास के नियमों के अनुसार इच्छा हो वह घृत मिश्रत कर तृप्ति पूर्वक भोजन करे।२२।

मानतन्तव्यो होवा चाहुता वा एतस्य मानुष्याहुतिर्भवति य औहवसथिकं नाश्नात्यनीश्वरो ह क्षोधुकोभवत्यकाम्यो जनानाम्पापवसीयसी ह्यस्य प्रजा भवति य औपवसथिक भुङ्क्त ईश्वरो ह भवत्यक्षोधुकः काम्यो जनानां वसीयसी ह्यस्य प्रजा भवति तस्माद्यत् कामयेतौपवसथिक भुञ्जीयातामथ एवैतां रात्रिं शयीय्यता-न्तौ खलु जाग्रन्मिश्रवेवैतां रात्रिं विहरेयातामितिहासमिश्रेण वा केनचिद्वा जुगुसेयातान्त्वेवाव्रत्येभ्यः कर्म्मभयो न प्रवसन्नुपवसेदित्याहुः पत्न्या व्रतं भवतीति। यथा कामयेत तथा कुर्य्यात्॥ १-१०॥

मान तन्तव्य आचार्य का मत है कि उपवास के दिन में यदि कोई नियमानुकूल भोजन नही करता है तो उसकी मनुष्यों के भलाई के लिये की हुई सवयाग की क्रियाऐं निष्फल हो जाया करती है। प्रथम दिन मे उपवास करने के कारण दूसरे दिन क्षुधा से व्याकुल और चञ्चल होकर याग क्रियाओ के सुसम्पादन मे असमर्था होगी—सबको अप्रिय लगेगा तथा पुत्रादिक भी पाप बुद्धि के वशीभूत होगे अतएव यथेच्छ भोजन करके ही याग कर्म करें। उपवास के दिन खाट पर शयन करे तथा वह रात्रि वैदिक इतिहास की आलोचना आदि में व्यतीत करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करे। प्रवास मे उपवास न करे। उपवास पत्नी के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है। १ से ६ पर्य्यन्त। उपवास के दिन मे भोजन का फल और भोजन न करने का फल दोनों ही बताये गये है—इन दोनो मे जो भी अभीष्ट हो उसी को करना चाहिए।१०।

एवमेवाहिताग्नेरप्युपवसथो भवति यच्चाम्नायो विदध्यात्। अथपूर्वाह्ण एव प्रातराहुतिं हुत्वात्र णाग्निम्परिक्रम्य दक्षिणतोऽग्नेः प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य्य तेषा पुरस्तात् प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन् सव्यस्य पाणेरङ्गुष्ठेनोपकानिष्ठिकया चाङ्गुल्या ब्रह्माऽऽसनात् तृणमभिसङ्गृह्य दक्षिणापरमष्टम देश निरस्यति निरस्तः परावसुरिति ॥ ११-१४ ॥

इस रीति से जो नित्य ही अग्निहोत्र करने वाला आहिताग्नि है उसके लिये भी उपवास करने के समस्त नियम आदि है—यही वेद की विधि है उसे जान लेना चाहिए।११ १२। उसके पर दिन में प्रतिपदा में दुपहर के पूर्व ही नियमानुसार प्रातःकालीन आहुति होम को समाप्त करके अग्नि को अपने सामने रखना चाहिए। प्रदक्षिण करके उस सम्मुख स्थित अग्नि के दक्षिण में कुछ कुशाऐं गिराये और उन सब कुशाओं के अग्रभागो को पूर्व दिशा में करे। उस कुशासन पर सामने

पश्चिम की ओर अभिमुख होकर बांये हाथ के अँगूठे और अनामिका अँगुलि से जो ब्रह्मा के लिये कुशाओं को आसन बनाया गया था उस में से एक तृण ग्रहण कर "निरस्त परावसु"—इत्यादि मन्त्र से नैर्ऋत्य कोण मे प्रक्षिप्त कर देवे । इसी क्रिया को तृण निरसन कहा जाता है ।१३-१४।

अपउपस्पृष्टश्याथ ब्रह्माऽऽसनउपविशत्यावसोः सदने सीदामीत्यग्निमुभिमुखो वाग्यतः प्राञ्जलिरास्तेआकर्मणः पर्यवसानाद्ब्राह्मणेत यज्ञे सिद्धिक्षायज्ञीया वाच वदेद्यज्ञीया वाच वदेद्वैष्णवीमृच यजुर्वा जपेदपि वा नमोविष्णवइत्येवं ब्रूयात् । यद्युवा उभय चिकोर्पेद्धोत्रञ्चैवेतेनैवकल्पेन छत्र वोत्तरासङ्ग वोदकमण्डलु दर्भवटु वा ब्रह्मासने निधायतेनैवप्रत्याव्रज्याथान्यच्चेष्टेत ॥१२१॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण कार्यों के निरीक्षण करने वाले ब्रह्मा नाम वाला एक याग का प्रधान पुरुष अपने हाथ पैरों को जल से धोकर उसी कुशाओं के आसन पर जो बिछाया गया था अपना मुख उत्तर की ओर करके उस अग्नि के सामने दोनों हाथ जोड़कर "आवसोः सदने सीदामि" इस मन्त्र को पढ़ता हुआ नियमित वचनों को ही बोलने का मन में दृढ़ प्रतिज्ञा करके जब तक कार्य समाप्त हो वहां पर बैठे । ब्रह्मा को केवल यज्ञ से सम्बन्धित वचन ही बोलने चाहिए अन्य कुछ भी भाषण न करे । यदि आवश्यक ही हो तो विष्णु भगवान् का स्मरण दिलाने वाली किसी ऋचा का अथवा यजुर्वेद के मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए । अथवा "नमो विष्णवे"—इतना कहने से भी निर्वाह हो सकता है ।१५-१८। यदि जनाभाव में होता का कर्म और ब्रह्मा की क्रिया इनको एक ही व्यक्ति को करनी पड़े तो उसका कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा के लिये बनाये गये उस कुशाओं के आसन पर छत्र अथवा उत्तरीय तथा जल से भरा हुआ कमण्डलु किम्वा कुशाओं के द्वारा बनाया हुआ ब्रह्मा वहा पर स्थापित

कर देना चाहिए और पूर्व की ही भांति प्रदक्षिण आदि पूर्वक सब कुछ करके फिर होता के आसन पर फिर लौटकर स्थित होवे। इसके अनन्तर ही अग्निहोत्र एवं जप आदि समस्त कार्य करना चाहिए। चरु का पाक आदि विशेष कर्म करना है उसकी विशेष विधि पीछे बताई जायगी।१६-२१।

अथोलूखलमुसले प्रक्षाल्य शूर्पञ्च पश्चादग्नेः प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्योपसादयति।अथहविर्निर्वपतिव्रीहीन्वायवान् वाकंसेन वा चरुस्थाल्या वामुष्मै त्वा जुष्टं निवपामीति देवतानामादेशंसकृद् द्विस्तूष्णीम् अथ पश्चात् प्राङ्मुखो ऽवहन्तुमुपक्रमतेदक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यान्त्रिः फलीकृता स्तुण्डुलाँस्त्रिर्देवेभ्य प्रक्षालयेदित्याहुर्द्विर्मनुष्येभ्यः सकृत्यितृयइति ॥ १-५ ॥

इसके उपरान्त पूर्व की ओर अग्रभाग वाली कुशाओं पर उलूखल-मुसल और सूर्प—इनको भली भाँति जल से प्रक्षालित करके अग्नि के पीछे की ओर रक्खे।१। इसके पश्चात् हवि पाक के लायक बनाने के के लिये धान्य हों या यव हो उनको किसी काँसे के पात्र से अथवा चरुस्थाली से प्रक्षिप्त करे। किन्तु जितना भी धान्य हवि के योग्य बनाना हो उसे तीन बार में डाल देना चाहिए। प्रथम बार "अमुष्मै" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके प्रक्षेप करे और दो बार बिना मन्त्र पढ़े ही देवे।२-३। फिर पूर्व दिशा की ओर अपना मुख करके उलूखल के पीछे खड़े होकर दोनों हाथों से मूसल को थाम कर उसे करे। तुषों से रहित उस धान्य या यवों को तीन बार साफ करे जोकि देवो के कार्य के लिये है। ब्राह्मण भोजन प्रभृति मनुष्यो के कार्य सम्पादित करने के वास्ते दो बार और पितृगण के कार्य के लिये एक ही बार जल से धोना चाहिए—ऐसी परम प्राचीन प्रथा चली आरही है।४-५।

पवित्रान्तर्हिता स्तण्डुलानावपेत्कुशलश्रृ तमिव स्थाली

पाकं श्रपयेत्प्रदक्षिणमुदायुवञ्छृतमभिघार्य्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत् ॥ ६-८ ॥

फिर कुशाओं के बनाये हुए पवित्र एवं बहुत छिद्र युक्त के मध्य में साफ किये हुए तण्डुलों को उस में ग्रहण कर स्थाली मे डाल देवे। पात्र के अवसर पर "मेक्षण" से मिलाकर नीचे-ऊपर पाक करे। यह पाक परम कुशल पाक के करने वाले के हाथों से बने हुए के समान ही होना चाहिए—यह परमावश्यक है। पाक के सम्पन्न होने पर घृत का ढारा देना चाहिए। अग्नि के उत्तर में उतार कर पुनः भाग के अनुरूप घृत का मिश्रण करना चाहिए ॥६-८॥

अग्निमुपसमाधाय कुशैः समन्तं परिस्तृणुयात् पुरस्ताद्दक्षिणउत्तरतः पश्चादिति सर्वतस्त्रिवृतम्पञ्चवृतं वा बहुल मयुष्मसं हृतम्प्रागग्रं मूँलानिच्छादयन्नपश्चाद्वास्तीर्य्य दक्षिणतः प्राञ्चम्प्रकर्षति तथोत्तरेण दक्षिणोत्तराण्यग्राणि कुर्य्यादेष परिस्तरणन्यायः सर्वेस्वाहुतिमत्सु ॥ ६-१५ ॥

आगे उन्नीसवें सूत्र में स्थाली पाक को उतारने के पश्चात् आज्य (घृत)का संस्कार बताया जायगा अतएव स्थाली पाक के उतारने से पहिले ही परिस्तरण करना चाहिए। जिस तरह से बताया जाता है कि समिधाओं को प्रक्षिप्त करके अग्नि को प्रज्वलित करके उसके चारों ओर उसे कुशाओं से ढक देवे। उसमें दिशाओं का क्रम है उसी तरह पहिले पूर्व दिशा में फिर दक्षिण से—इसके पश्चात् उत्तर दिशा में और सबसे अन्त मे पश्चिम दिशा में तीन अथवा पाँच बार कुशाओं से ढकना चाहिए। वह समाच्छादन युक्ति से करे जिससे दो-तीन या अधिक कुशा एक ही जगह में न मिल सकें। सब कुशाओं का अगला भाग पूर्व दिशा में रहे और उन्ही के द्वारा उनका मूल भी समाच्छादित हो जावे। कुशा थोड़ी हों तो पश्चिम को छोड़कर दक्षिणाग्र कुशा से और इसी भाँति उत्तराग्र कुशा से पूर्व की ओर आकर्षित होगा। तात्पर्य यह है

कि चतुष्कोण न कर त्रिकोण ही करना चाहिए। इसको परिस्तरण कहा जाता है। इसी तरह से जो भी आहुतियाँ विशिष्ट अनुष्ठान होते हैं उन सब में व्यवहार में लाया जायगा ॥१३-१५॥

परिधीनप्येके कुर्वन्ति शामीमान् पार्णान् वा उत्तरतो-ऽपाम्पूर्णः स्रुवः प्रणीता भावेन वास्यादित्येके । बर्हिषि स्थालीपाकमासाद्येध्ममस्याधायाज्यं सं स्कुरुते सर्पि-स्तैलन्दधि पयो यवागूं वा ।१६-२०।

कोई २ आचार्य शमी (छोंकर) अथवा पलाशर (ढाक) से भी सीमा स्थापन भी किया करते हैं। अग्नि की उत्तर दिया में जल से पूर्ण स्रुव की रक्षा करनी चाहिए। उसी को प्रणीता पात्र नाम से कहा जाता है। किसी २ आचार्य का यह भी मत है कि पूर्व में कहे हुए चमस पात्र में जल के सुरक्षित रहने से स्रुवा में जल न रखने से भी कोई हानि नही होती है।१६-१८। उन प्रक्षिप्त किये हुए कुशाओं पर स्थाली पाक को स्थापित करके फिर ईंधन जलकर अग्नि को प्रज्वलित करे और फिर घृत का संस्कार करे। आज्य शब्द से घृत—तैल—दधि दुग्ध और यवागू—इन पाँचों मे से जो भी कोई एक सुलभ एवं उपलब्ध हो उसी से यह किया जा सकता है ॥१६-२०॥

तत एव बर्हिषः प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते ओषधिमन्तर्धाय च्छिनत्ति न नखेन पवित्रेस्थो वैष्णव्यावित्यनेन अद्भि-रनुमार्ष्टि विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति । सम्पूयोत् पुनात्यु-दगग्राभ्याम्पवित्राभ्यामङ्गुष्ठाभ्यांचोपकाभ्याञ्चाङ्गु-लिभ्यामभिसगृह्य प्राक्शस्त्रिरुत्पुनाति देवस्त्वासवितो-त्पुनात्वच्छिद्रेणपवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिरिति सकृद्यजुषा द्विजस्तूष्णीम् । अथैनेअद्भिरभ्युक्ष्याग्नावध्यु-त्सृजेदथैतदाज्यमधिश्रित्योदगुद्वासयेदेवमाज्यस्यसं स्क-रणकल्पोभवतीति ।२१-२८।

इसके अनन्तर उन्हीं पहिले संगृहीत कुशाओं के मध्य में से एक बालिश्त भर प्रमाण वाली दो कुशा लेकर 'तुम विष्णु देवता के हो अतएव स्वतः ही पवित्र हो'—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए ओषधि के बीचों बीच में छेदन करना चाहिए। फिर "पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ"—इस मन्त्र को पढ़ते हुए जल से धोवे।२१-२३। पूर्व में कथित रीति से उन दोनों पवित्रों को शोध कर उत्तराग्र करे और फिर उसके द्वारा आज्योत्पवन करना चाहिए अर्थात् घृत में गिरे हुए तृण आदि को बाहिर पूर्व दिशा की ओर प्रक्षिप्त कर देवे। आज्योत्पवन मे दोनों पवित्रों को अँगूठे और अनामिक से पकड़ना चाहिए और प्रथम बार "देवस्त्वा" इत्यादि 'यजु' रूप मन्त्र को पढ़े फिर दो बार बिना मन्त्र पढ़े ही उत्पवन करना चाहिए।२४-२५। आज्योत्पवन के पश्चात् इन दोनो पवित्रों को जल से धोकर अग्नि में डाल देवे। फिर उत्तर दिशा में प्रज्वलित अंगारों पर 'घृत आज्य पात्र' रखना चाहिए। यह आज्य के संस्कार का कल्प है।२६-२८।

पूर्वामाज्यमपरः स्थालीपाकः । पर्युक्ष्य स्थालीपाक आज्यमानीय मेक्षणेनोपघातं होतुमेवोपक्रमते । यद्यु वा उपस्तीर्णाभिघारितं जुहुयेदाज्यभागावेव प्रथमौ जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पश्चावत्तन्तु भृगूणामग्नये स्वाहेत्युत्तरतः सोमाय स्वाहेति दक्षिणतः प्राक्शोजुहुयात् ।।१-४।।

चरुस्थाली और आज्यपात्र दोनों ही अग्नि पर रखने की व्यवस्था है। इनमे पहिले आज्य पात्र को और उसके पीछे चरुस्थाली को रखना चाहिए अग्नि के सभी कार्यों मे अनुष्ठेय पूर्व मे उक्त "अदितेऽनुमन्यस्व" आदि पर्युक्षण' के अन्त में समस्त कार्य पूर्ण हो जाने पर स्थाली पात्र में में घृत को डालकर 'उपघात' होम सम्पन्न करने के वास्ते उपक्रम करना चाहिए।१-२। जब भी कभी "उपस्तीर्णाभिघारित" नाम वाला होम करने का विचार हो उस समय मे इसके पहिले दो 'उपघात होम' करने

चाहिए। इस उपघात होम के करने के समय में स्रुच् के मध्य में प्रत्येक बार स्रुवा की धारा से चार बार घृत करना होगा। इस प्रकार से चार बार ग्रहण किये हुए आज्य को सर्व प्रथम "अग्नये स्वाहा"—इस मन्त्र से अग्निकुण्ड के मध्य में होम करे फिर उत्तर में 'सोमाय स्वाहा'—इस मन्त्र से अग्निकुण्ड के दक्षिण दिग्भाग में पूर्व दिग्गत करके होम करना चाहिए। इसमें यह विशेषता है कि भृगुगोत्रोत्पन्न गण के प्रति होम मे पांच बार घृत को ग्रहण करना आवश्यक होता है।३-४।

अथ हविषउपस्तीर्य्यावद्यतिमध्यात्पूर्वार्द्धाच्चितुरवत्ती चेद्भवति मध्यात्पूर्वार्द्धात्पश्चार्द्धादितिपञ्चावत्तीचेद्भूवत्य भिघारयत्यवदानानिप्रत्यनक्तयवदानस्थानान्ययात-यामता या अग्नयेस्वाहेतिमध्येजुहुयात्सकृद्वात्रिर्वेतेन-कल्पेन।५-१०।

उपघात होम के पीछे उसी स्रुव से एक बार घृत लेकर उसके पश्चात् मेक्षण से चरु को लेना चाहिए। इसकी कुछ विशेषता है कि यदि भृगु गोत्र का हो तो चरुस्थाली के मध्य भाग में पांच बार चरु का पश्चार्द्ध से ग्रहण करना आवश्यक है और किसी दूसरे हो गोत्र का हो तो चरुस्थाली के मध्य में पूर्वार्द्ध से केवल चार बार ही चरु को लेवे। इसके पश्चात् मेक्षण से जहां-जहां से चरु निकाले उसी स्थान को आज्य लिप्त कर देना चाहिए। जिससे याग के योग्य चरु बना रहे और शुष्क न हो सके। इसके उपरान्त स्रुव ग्रहण किये हुए चरु के ऊपर घृत डालकर उसी घृत विशिष्ट चरु से 'अग्नये स्वाहा'—इस मन्त्र को पढ़ कर मध्य मे होम करे इसीको उपस्तीर्णाव धारित होम कहते हैं। ऐसे एक या तीन बार करे।५-१०।

अथस्विष्टकृत उपस्तीर्य्यावद्यत्युत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धात्सकृदेवभूयिष्ठं द्विरभिघारयेद्यद्युतञ्चावत्ती स्याद्द्विरुपस्तीर्यावदायद्विरभिघारयेत् न प्रत्यनक्तयवदानस्थानयातया

मतायाअग्नयेस्विष्टकृते स्वाहेत्युत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहुयात् ।११-१४।

ऊपरि वर्णित होम के अनन्तर प्रकृत होम शेष होने पर स्विष्टकृत हवन करने को पूर्व की ही भाँति स्रुवा से घृत लेने पर चरुस्थाली में चरु के उत्तरार्द्ध के पूर्वार्द्ध से केवल एक बार कुछ ज्यादा परिमाण में चरु का ग्रहण करना चाहिए उसके ऊपर घृत का सिञ्चन करे भृगु गोत्र में सम्भूत्पन्न को दो बार उपस्तरण करना चाहिए। पीछे दो बार चरु ग्रहण करके अभिघारण करे। इसके पश्चात् चरु की आवश्यकता नहीं रहा करती है। स्विष्टकृत् हवन के वास्ते चरु को लेकर फिर उस पर घृत का सिञ्चन आवश्यक नहीं होता है। फिर इससे 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि के उत्तरार्ध के पूर्वार्द्ध में होम करना चाहिए। इसी को स्विष्टकृत् होम कहा जाता है।११-१४।

महाव्याहृतिभिराज्येनाभिजुहुयात् । प्राक् स्विष्टकृत आवापः । गणेष्वेकम्परिसमूहनमिध्मोबर्हिपर्युक्षणमाज्यभागौ च सर्वेभ्यः समवदायसकृदेवसौविष्टकृतं जुहोति । हुत्वैतन्मेक्षणमनुप्रहरेत्प्रक्षाल्य वैतेनोद्धृत्य भुञ्जीत । न स्रुवमनुप्रहरेदित्येकआहुः ।१५-२१।

भूर्भुवःस्वः स्वाहा इस मन्त्र से घृत से होम करे—इसको महा व्याहृति होम कहते हैं।१५। स्विष्ट कृत् होम के पूर्व में ही आवाय अर्थात् दर्श पौर्ण मास का किम्वा विवाह आदि का प्रवृत होम करना चाहिए।१६।

जहाँ पर अधिक आचार करने हों वहाँ पर आवापों के अधिक होने से इधर के ग्रहण करने आदि के कर्म्म अनेक बार नहीं किये जाते हैं और समस्त आवायों के लिये पूर्व की भाँति चरुके ग्रहण पूर्वक होम आदि शेष पीछे सबके अवसान में केवल एक बार स्विष्ट कृत होम करे।१७-१८। किसी-किसी आचार्य का मत है कि कार्य के अन्त में स्रुवा को धोकर रखना चाहिए फिर उसे अग्नि में न देवे तोभी

कोई हानि नहीं होती है। इस स्विष्टकृत् होम के पश्चात् मेक्षण की आवश्यकता न रहे तो उसे अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए अथवा ऐसा निश्चय होवे कि भोजन के लिये इसकी आवश्यकता है तो उसको धोकर रख लेवे और जब समय हो उसमे भोजन करे।१६-२१।

आग्नेय एवानाहिताग्नेरुभयोर्दर्शपौर्णमासयोः स्थाली-पाकस्यादाग्नेयो वाग्नीषोमीयो वाऽऽहिताग्नेः पौर्णमा-स्यायामैन्द्रो वैन्द्राग्नो वा माहेन्द्रो वा अमावास्यामपि वाऽऽहिताग्ने रप्युभयो दर्शपौणमासयोराग्नेय एवस्यात् ।२२-२५।

अब दर्शपौर्ण मास के आवाप मन्त्रों को बतलाते हैं यदि यजमान अग्नि होत्र करने वाला हो तो दर्श और पौर्णमास इन दोनों ही यागों में अग्नये स्वाहा- इसी मन्त्र के द्वारा उपस्तीर्णाभधारित चरु का होम करना चाहिए । यदि वह आहिताग्नि हो तो पौर्णमास याग के आवाय होम में अग्नये स्वाहा या अग्नी षोमाभ्यां स्वाहा इन मन्त्रों को प्रयोग में लावे। अमावस्या याग में इन्द्राय स्वाहा या इन्द्राग्नीभ्या स्वाहा—इन मन्त्रों को व्यवहार मे लाना चाहिए। अथवा आहिताग्नि न हो वह भी दर्श और पौर्णमास इन दोनो ही यागों में अग्निहोत्री के ही समान अग्नये स्वाहा—इस मन्त्र के द्वारा ही आहुति देवे ।२२-२५।

समिधमाधायानुपर्युक्ष्ययज्ञवास्तु करोति तत एव बर्हिषः कुशमुष्टिमादायाज्ये वा हविषि वा त्रिरवदध्या-दग्राणि मध्यानि मूलानीत्यक्तँ रिहाणा व्यन्तु वय इत्य-थैनमद्भिरभ्युक्ष्या नावप्यर्जयेद्यः पशूनामधिपतीरुद्रस्त-न्ति चरोवृषापशूनस्माकं माहिँ सी रेतदस्तु हुतन्तव स्वाहेत्येतद्यज्ञवास्त्वित्याचक्षते ।२६-२६।

दर्श पौर्णमास यागों में यह एक कार्य करना आवश्यक है और उस को यज्ञ वास्तु कहा जाता है। यह पूर्व मे उक्त समिधादान और पर्यु-

क्षण आदि के कर्मों के पीछे होता है। इस का विधान यह है कि आस्तृत कुशाओं में के समुदाय से एक मुट्ठी कुशा लेकर आज्य या चरु में अक्तरिह्राणा—इस मन्त्र का उच्चारण करके अग्र—मध्य—मूल के क्रम से तीन वार जल का सिञ्चन करे। उसके पीछे उसे जल स्वच्छ करके या पशूनामधिपति—इस मन्त्र के द्वारा उसे अग्नि में छोड़ देना चाहिए—इसी को यज्ञ वास्तु कहते हैं।२६।

इति गोभिलगृह्यसूत्र समाप्त



पारस्करगृह्यसूत्रम् ।

प्रथम काण्ड

अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म । परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत्प्रोक्ष्य निरुप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्नि कुर्यात् । स्रुवं प्रतप्य संमृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात् । आज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनान्कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात् । एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः ॥१॥

गृह्यस्थालीपाक – अब गृह्यस्थाली पाकों का कर्म बतलाया जाता है । परिसमूहन करके उपलेपन करे और उल्लेखन करके उद्धरण करे तथा अभ्युक्षण करके अग्नि का उपसमाधान करना चाहिए । दक्षिण भाग में ब्रह्मासन को आस्तरण करके प्रणय करे और परिस्तरण करना चाहिये । अर्थात् पवित्री बनावे और प्रोक्षणी का संस्कार करे । अर्थवत् से प्रोक्षण करके निरुपया करे और घृत को अधिश्रित करके पर्यग्नि करना चाहिये । स्रुव को प्रतप्त करके निदध्याय करना चाहिये । आज्य को उद्वासित करके उत्पूयन और अवेक्षण करे और प्रोक्षणी को भी करे पूर्व की ही भाँति उपयमन कुशाओं को लाकर समिधाओं का अभ्याधान करें । तथा पर्युक्षण करके आहुतियाँ देनी चाहिये । यह ही विधि होती है जहाँ कहीं पर भी होम होता है ॥१॥

आवसथ्याधानं दारकाले । दायाद्यकाल एकेषाम् । वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम् । अरणिप्रदानमेके । पञ्चमहायज्ञा इति श्रुतेः । अग्न्याधेयदेवताभ्यः स्थाली पाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । त्वन्नो अग्ने, स त्वन्नो अग्ने, इमं मे वरुण, तत्त्वायामि, ये ते शतमया श्चाग्ने, उदुत्तमे, भवतन्न इत्यष्टौ पुरस्तात् । एवमुपरिष्टात्स्थालीपाकस्याग्न्याधेयदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति । स्विष्टकृते च । आयास्याग्नेवषट्कृत यत्कर्मणाऽत्यरीरिचं देवा गातुविद इति । बर्हिर्हुत्वा प्राश्नाति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥२॥

द्वितीय कण्डिका में दारकाल मे आवसथ्याधान होता है । एकों के मत में दायाद्य काल है । बहुत पशुओं वाले वैश्य के गृह से अग्नि का आहरण करके सब चातुष्प्राश्य पचनवत् है । एक लोग कहते हैं कि अरणि का प्रदान होता है । पञ्च महायज्ञ है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है । अग्नि आधेय देवताओं के लिये स्थाली पाक का श्रपन करके आज्य भाग को आविष्ट करके आज्य (घृत) की आहुतियों का हवन करता है । "त्वन्नो अग्ने, सत्वन्नो अग्ने" इन मन्त्रों से इस प्रकार ऊपर से स्थाली पाक का अग्न्याधेय देवताओ के लिये हवन करके आहुतियाँ देता है । और स्विष्टकृत में ऐसा ही करे । 'अथास्याग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणात्यरीरिचं देवा गातुविद' इस मन्त्र से वर्हि का हवन करके प्राशन करता है इसके अनन्तर ब्राह्मण भोजन होता है ॥२॥

षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति । प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुः । यक्ष्यमाणास्त्वृत्विजः । आसनमाहार्याह साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तमिति । आहरन्ति । विष्टरं पाद्यं पादार्थमुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन

अन्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि । विष्टरं प्रतिगृह्णाति । वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इम तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥ इत्येनमभ्युपविशति । पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय । सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति । ब्राह्मणश्चेद्दक्षिण प्रथमम् । विराजो दोह्योऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोह इति । अर्घं प्रतिगृह्णाति आपः स्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानीति । निनयन्नभिमन्त्रयते, समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः इति । आचामत्यामागन्यशसा सꣳसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनामिति मित्रस्य त्वेति मधुपर्कं प्रतीक्षते । देवस्य त्वेति प्रतिगृह्णाति । सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रिः प्रयौति नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामीति । अनामिकाङ्गुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति । तस्य त्रिः प्राश्नाति । यन्मधुनो मधव्यं परमं रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥इति॥ मधुमतीभिर्वा प्रत्यृचम् । पुत्रायान्तेवासिने वोत्तरत आसीनायोच्छिष्टं दद्यात् । सर्वं वा प्राश्नीयात् । प्राग्वाऽसंचरे निनयेत । आचम्य प्राणान्त्समृशति । वाङ्म आस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजोऽरिष्टानि मेऽङ्गानितनूस्तन्वा मे सह।इति।आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राह । प्रत्याह । माता रुद्राणां दुहितावसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः । चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ट । मम चामुष्य च पाप्मानं हनोमीति यद्यालभेत । अथ यद्युत्सिसृक्षेन्मम चामुष्य च पाप्माहत ओमुत्सजत तृणान्यत्त्विति

ब्रूयात् । न त्वेवामांसोऽर्घः स्यात् । अधियज्ञमधिविवाहं कुरुतेत्येवं ब्रूयात् । यद्यप्यसकृत्संवत्सरस्य सोमेन यजेत कृतार्घ्या एवैनं याजयेयुर्नाकृतार्घ्या इति श्रुतेः ॥३॥

तृतीय काण्डिका में मधुपर्क पूजा है—ये छै व्यक्ति अर्घ देने के योग्य होते हैं उनमें आचार्य—ऋत्विक्—वैवाह्य अर्थात् विवाह करने के योग्य प्रस्तुत वर—राजा—प्रिय—स्नातक प्रति सम्वत्सर ये पूजा के योग्य होते है। यज्ञादि में जो यजन करने वाले होते हैं वे ऋत्विक् होते हैं। आसन का आहरण करके कहे—साधु, आप ठहरिये। हम आपका अभ्यर्चन करेंगे। विष्टर—पाद्य—चरण धोने के लिये उदक—अर्घ—आचमनीय—मधुपर्क—दधि और आपिहित मधु घृत को कांस्य पात्र से कांस्य पात्र में आहरण करते हैं। अन्य तीन-तीन बार विष्टरादि को बोलता है। विष्टर का प्रतिग्रहण करता है। उद्यत समानों को सूर्य की तरह मैं वर्ष्म हूं। उस इसको मैं अभिस्थित करता हूं, जो कोई मुझको अभिदास करता है। इससे इसको अभ्युपविष्ट करता है। पादों में अन्य विष्टर आसीन के लिये देवे। सव्य चरण का प्रक्षालन करके दक्षिण चरण का प्रक्षालन करता है। यदि ब्राह्मण होतो प्रथम दक्षिण चरण को प्रक्षालित करना चाहिये। "विराजो दोहोऽसि" इस मन्त्र से प्रक्षालन करे। अर्घ का प्रतिग्रहण करता है। आप स्थित हैं आपके द्वारा अर्थात् जलों से सब कामों को प्राप्त करूं—इस रीति निनयन करता हुआ अभिमन्त्रण करता है। आपको समुद्र में प्रेरित करता हूं। अपनी योनि को अभिगमन करें। "अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः" इति—"आचामस्या मागन्यशसा सं सृज वर्चसा। तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् इति" "मित्रस्य त्वेति" इससे मधुपर्क की प्रतीक्षा करता है। "देवस्य त्वा" इति—इससे प्रतिग्रहण करता है। सव्य पाणि (हाथ) में करके दाहिने हाथ की अनामिका से तीन बार नमस्कार प्रयुक्त करता है। 'श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामीति'

इससे अनामिका और अंगुष्ठ से तीन बार निरुक्षण करता है। उसको तीन बार प्राशन करवा हैं। जो मधु का मधव्य परम रूप अन्नाद्य हैं। उससे मैं मधु के मधव्य से परम रूप से अन्नाद्य से परम मधव्य अन्नाद होऊँ। इति। अथवा मधुमतियों से प्रत्येक ऋचा में करे। अपने पुत्र के लिये अथवा अन्तेवासी (छात्र-शिष्य) के लिये जो उत्तर की ओर आसीन है उच्छिष्ट देना चाहिये। अथवा सबका प्राशन करे। अथवा पहिले असंचर में निनयन करना चाहिये। आचमन करके प्राणों को संमृष्ट करता है। "वाङ्म आस्ये नसोः प्राणोऽक्ष्णोश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाह्वोर्बलमूर्वोरोजोऽरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह" इति इससे आचान्तोदक के लिये शास को लेकर गौरिति तीन बार बोलता है। प्रति कथन करता है। *माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्या नाममृतस्य नाभिः।* प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय *मागामनागामदितिं वधिष्ट।* मेरा और इसके पाप्मा का हनन करता हूं ऐसा कहे। इसके अनन्तर यदि उत्सिसृक्षा करे मेरा और इसका पाप्मा अहत है तो ओमुत्सृजत तृणानि यत्त्विति—यह बोलना चाहिए। नत्वेवा मा ँ सोऽर्घः स्यात्। अधियज्ञं और अधि विवाहं कुरुत—इससे इस प्रकार से बोलना चाहिये। यद्यपि कई बार सम्वत्सर के सोम के द्वारा यजन करे। अर्घ्य किये हुए ही इसका यजन करावे। जो कृतार्घ्य नहीं हैं वे नहीं करे—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥३॥

चत्वारः पाकयज्ञा हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशित इति पञ्चसु बहिःशालायां विवाहे चूडाकरण उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयन इति। उपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय। निर्मन्थ्यमेके विवाहे। उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्। त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा। तिस्रो ब्राह्मणस्य वर्णानुपूर्व्येण। द्वे राजन्यस्य। एका वैश्यस्य। सर्वेषाँ शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जम्। अथैनां वासः परिधापयति।

जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वास ॥ इति ॥ अथोत्तरीयम्। या अकृन्तन्नवयन्या अतवन्त। याश्चदेवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे सव्ययस्वायुष्मतीदं परिणत्स्व वासः॥ इति ॥ अथैनौ समञ्जयति समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सम्मातरिश्वा सधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥ इति ॥ पित्रा प्रत्तामादाय गृहीत्वा निष्क्रामति। यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनु पवमानो वा हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोत्वित्यसाविति। अथैनौ समीक्षयति। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवकामा स्योनाशन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे॥ सोमः प्रथमो विविदे गधर्वो विविद उत्तरः। तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः। सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽदददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्। सा नः पूषा शिवतमामेरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेप यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्या इति ॥ ४ ॥

चार प्रकार के पाक यज्ञ होते हैं—एक हुत होता है, दूसरा अहुत होता है, तीसरा प्रहुत होता है और चौथा प्राशित है। पाँचों में बाहिर शाला मे—विवाह मे, चूड़ाकरण में, उपनयन मे, केशान्त मे और सीमान्तोन्नयन मे होता है। उपलेपन किए हुए में उद्धता बोक्षित में अग्नि का उप समाधान करे। कतिपय मनीषियों का मत है कि विवाह में निर्मन्थ्य होता है। उदगमन मे उत्तरायण सूर्य के होने पर आपूर्यमाण पक्ष में किसी पुण्यमय दिन में कुमारी का पाणिग्रहण करना चाहिए। पाणिग्रहण करने के लिए कतिपय नक्षत्र निश्चित किये हुए

हैं-तीनों उत्तराओं में अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी-उत्तराषाढ़ा और उत्तरा भाद्रपदा- इन तीनों नक्षत्रों में--स्वाती--मृगशिरा अथवा रोहिणी में पाणिग्रहण करना चाहिए। वर्णों की आनुपूर्वी से ब्राह्मण को तीनों का ग्रहण करना चाहिए—क्षत्रिय को केवल दो ही वर्णों वाली का विधान है—वैश्य केवल अपने ही वर्ण वाली एक कुमारी का पाणिग्रहण करने का अधिकार रखता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मन्त्रों से रहित सभी वर्णों वाले शूद्र का भी पाणिग्रहण कर सकते हैं। इसके अनन्तर इसको "जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीना मभि शस्ति पावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयि च पुत्राननु सव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः" इससे वसन का परिधायन करता है। इसके उपरान्त उत्तरीय वस्त्र अर्थात् शारिका के ऊपर ओढ़न वाला दूसरा वस्त्र का परिधायन करे। उत्तरीय वस्त्र के परिधायन का मन्त्र यह है—"या अकृन्तन्नव यन्या अतन्वत। याश्च देवी स्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जर से सव्ययस्वायुष्मतीद परिधत्स्व वासः" यह है। इसके अनन्तर इन दोनों का समञ्जन करे। इसका मन्त्र यह है—"समञ्जन्तु विश्वे-देवाः समापो हृदयानि नौ। सम्मातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥ इति। पिता से प्रत्ता को लेकर ग्रहण करके निष्क्रमण करता है। निष्क्रमण का मन्त्र यह है—"यदैदि मनसा दूरं दिशोऽनु प वमानो वा हिरण्य पर्णो वैकर्मः स त्वा मन्मनसा करोत्विरय मावित्ति"। इसके अनन्तर इन दोनों का समीक्षण करता है--मन्त्र निम्नलिखित हैं--"अघोर चक्षुर-पतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्या सुमनाः सुवर्चा। वीरसूर्देव कामा स्योना शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे। सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वोऽददग्नये। रयि च पुत्रा ॅश्चादादग्नि मंह्यमथो इमाम्। सा नः पूषा शिवतमा मेरय स्तन ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेष यस्यामु कामा बहवो निविष्टया इति। ४।

प्रदक्षिणमग्नि पर्याणीयैके। पश्चादग्नेस्तेजनीं कट वा दक्षिणपादेन प्रहृत्योपविशति। अन्वारब्ध

आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तं प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च । एतन्नित्यं सर्वत्र । प्राङ् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः । सर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यन्तरमेतदावापस्थानं विवाहे राष्ट्रभृत इच्छञ्जयाभ्याताानांश्च जानन् । येन कर्मणेर्त्सेदिति वचनानात् । चित्तं च चित्तिश्चाकूत चाकूतिश्चविज्ञातंच विज्ञातिश्च मनश्चशवरीश्चदर्शश्च पौर्णमास च बृहच्च रथन्तर च । प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु । तस्मै विशःसमनमन्तस र्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहेति । अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्विन्द्रो ज्येष्ठानां यमः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षस्य सूर्यो दिवश्चन्द्रमा नक्षत्राणां बृहस्पतिर्ब्रह्मणो मित्रः सत्यानां वरुणोऽपां समुद्रः स्रोत्यानामन्नं साम्राज्यानामधिपति तन्मावतु सोम ओषधीनां सविता प्रसवानां रुद्रः पशूनां त्वष्टा रूपाणां विष्णुः पर्वतानां मरुतो गमानामधिपतयस्ते मावन्तु पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः । इह मावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहेति सर्वत्रानुषजति । अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं नरोदात्स्वा हा ।। इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्मै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियं स्वाहा ।। स्वस्ति नो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा ।। सुगन्नः पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृत न आगाद्वैवस्वतो नो अभय कृणोतु स्वाहेति । परं मृत्यविति चैके प्राशनान्ते ।। १ ।।

कुछ विद्वानों का मत है कि प्रदक्षिणा अग्नि का पर्याणयन करे। पीछे अग्नि के तेजनी अथवा कर को दाहिने पैर से प्रहृत करके उपविष्ट होता है। अन्वारब्ध आधार और दो आज्यभाग-महात्याहुतियाँ सर्व प्रायश्चित्त प्राजापत्य और स्विष्टकृत है। यह नित्य सर्वत्र है। पहिले महासाहुतियों से यदि अन्य स्विष्ट कृत हो तो आज्य (घृत) से हवि होनी चाहिए। सर्व प्रायश्चित्त प्राजापत्यान्तर यह है आवाय स्थान है कि बाद में राष्ट्रभृत की इच्छा करता हुआ और जयाभ्यातार्थों को जानता हुआ करे। 'येन कर्मणा र्छे दिति' मन्त्र से ऐसा न करे। चित्त और चित्ति—आकूत और आकूति—विज्ञान और विज्ञप्ति—और मन—और शक्वरी—और दर्श—और पौर्ण मास—बृहद् और बन्तर है, "प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः वृतनाजमेषु। तस्मै विशः समनमन्त सर्वा सव्रःस इहव्यो बभूव स्वाहेति" यह मन्त्र है। अग्निदेव भूतों के अधिपति हैं वह मेरी रक्षा करें। इन्द्र ज्येष्ठों का अधिपति है—यम पृथिवी का अधिपति है—वायु अन्तरिक्ष का अधिपति है। सूर्य दिव का है—चन्द्रमा नक्षत्रों का अधिपति है—बृहस्पति ब्रह्म का अधिपति है। मित्र सत्यों का अधिपति है—वरुण जलों का अधिपति है—समुद्र स्रोत्यों का अधिपति है—अन्न साम्राज्यों का अधिपति है वह मेरी रक्षा करें। औषधियों का सोम अधिपति है—सविता प्रसवों का अधिपति है—त्वष्टा पशुओं का अधिपति है। रूपों का अधिपति विष्णु है। मरुत पर्वतों का अधिपति हैं और गणों के अधिपति गण है वे सब मेरी रक्षा करें। पितर-पितामह—पर—अवर—ततास्तता यह सब मेरी रक्षा करें।" "इह मावन्त्व स्मिन्ब्रह्मणि अस्मिन क्षत्रेऽस्या माशिष्यां पुरोधाया यस्मिन् कर्मण्यस्या देवहूत्यां स्वाहा-इति—यह मन्त्र है। सर्वत्र अनुपजन करता है। देवताओं में प्रथम अग्नि आवे। वह इसके लिये प्रजा का मोचन करे और मृत्युपाश से छुड़ावे। यह मन्त्र है—"तक्ष्यं राजा वरुणोऽनुमन्यातां यथेयं स्त्री पौत्रमघं नरोदास्वाहा" अर्थात् यह राजा वरुण ऐसी अनुमति प्रदान करें जिससे यह स्त्री पौत्र देवे। "इमामग्नि स्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजा मस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवता मस्तु माता

पौत्रानन्दमभि विबुध्यतामियं स्वाहा "अर्थात् यह गार्हपत्य अग्नि इस स्त्री की रक्षा करें और इसको दीर्घ आयु देवें। यह अशून्योपस्था माता जीवित रहे और यह पौत्रानन्द को प्राप्त करे। "स्वस्ति नो अग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि देह्ययथा यजत्र। यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा" अर्थात् हे अग्निदेव! हमको सर्वत्र स्वस्ति अर्थात् कल्याण प्रदान करो जिससे यहाँ यजन करें। इस पृथिवी आदि में सब प्रशस्त हुआ है अब आप हमको द्रविण प्रदान करो। "सुगन्नः पन्थां प्रदिश एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्यु रमृत न आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाः "इति—अर्थात् हमको सुगम मार्ग दिखलाते हुए आइये। ज्योतियों के मध्य में आयु की वृद्धि हो और मृत्यु दूर जावे। जो वस्वन (यम) अमृत को प्राप्त करावें और हमको अभय प्रदान करें। कतिपय मनीषियों का मत है प्रारावान्त मे "परमृत्यविति" ऐसा होना चाहिए। ५।

कुमार्या भ्राता शमीपलाशमिश्राँल्लाजानञ्ज-लिनाऽञ्जलावावपति। ता जुहोतिसं हतेन तिष्ठती अर्यमणं देव कन्या अग्निमयक्षत। सनो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा। इय नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च सवननं तदग्निरनुमन्यतामियं स्वाहेति॥ अथास्यै दक्षिणं हस्तं गृह्णाति साङ्गुष्ठं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः। अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमो अहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्। तावहि विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान्विन्दावहै बहून् ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ

रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतमिति ॥ ६ ॥

कुमारी का भाई शमी (छोंकर) और पलाश से मिश्रित लाजाओं (खीलों) को अञ्जलि से अञ्जलि में आवयन करता है। "ताजुह्वोति—हुतेन तिष्ठती अर्यमण देवं कन्या अग्नि मयक्षत । सनो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु या पतेः स्वाहा" अर्थात् वह स्थित होती हुई कन्या उसका हवन करती है और अर्यमा देव एव अग्नि का यजन करती है कि वह अर्यमा देव मेरे पति का मोचन कर देवे। "इयंनार्युप ब्रूते ला जाना वपन्ति का आयुष्मानस्तु मे पति रेधन्ता ज्ञातयो मम स्वाहा"। अर्थात् लाजाओं का आवयन करती हुई नारी—कहती है कि मेरा पति आयुष्मान होवे और मेरे जाति के लोग वृद्धि को प्राप्त होवें। "इमा लाजाना वपाम्यग्नौ समृद्धि करणं तव। मय तुभ्यंच सवनम तदाग्नि रनुमन्यता मियँस्वाहेति" अर्थात् इन लाजाओ को अग्नि में आवयन करती हूं जो कि तुम्हारी समृद्धि का करने वाला है। यह अग्नि देव अनुमति देवे कि मेरा तुम्हारे लिये संवनम होवे। इसके अनन्तर इसके दाहिने हाथ का अंगुष्ठ के सहित ग्रहण करता है और कहता है कि तेरे सौभगत्व के लिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हू। मेरे पति के द्वारा वह हाथ जरदृष्टि के ही समान है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से वृद्ध का सहारा यष्टि होती है उसी भांति वह है। भग—अर्यमा—सविता पुरन्धि मेरे वास्ते दुर्गार्हपत्य के लिये देव है। मै अम हूँ वह तू है मैं अभ हूं। वह कह्मनी है मै अभा हूं, तुम ऋक् हो, मैं द्यौ हू, तुम पृथ्वी हो। य इन दोनो विवाह करें साथ में रेत धारण करें। प्रजा को जन्म देवें और बहुत पुत्रों को प्राप्त करें। वे बुढापे ी यष्टि होगे। इस प्रकार से दोनों संप्रिय, रोचिष्णु और सुमनस्यमान होवें। हम सौ वर्ष तक नेत्रो से देखें—सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहें और सौ वर्ष तक श्रवण करे। प्रार्थना का तात्पर्य यह है कि सौ वर्ष के जीवन मे हमारे चक्षु और कर्ण सवल सक्षम रहें। जिससे भली भाँति देख व सुन सकें।६।

अथैनामश्मानमारोहयत्युत्तरतोऽग्नेर्दक्षिणपादेन ।
आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव ।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ इति ॥
अथ गाथां गायति । सरस्वति प्रेदमव सुभगे
वाजिनीवती । यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः ॥ यस्यां भूतꣳसमभवद्यस्यां विश्वमिदं
जगत् । तामद्य गाथा गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं
यशः ॥ इति ॥ अथ परिक्रामतः—तुभ्यमग्रे
पर्यवहन्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो
जायां दाग्ने प्रजया सह ॥ इति ॥ एवं द्विरपरं
चतुर्थꣳ शूपकुष्ठया सर्वाँल्लाजानावपति भगाय
स्वाहेति । त्रिः परिणीतां प्राजापत्यꣳ हुत्वा ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर अग्नि के उत्तर भाग में इस कुमारी को दाहिने पैर से पाषाण पर आरोहण कराता है। हम इस पाषाण पर आरोहण कराते है इसी अश्म (पाषाण) के समान तुम स्थिरा हो जाओ। पृतन्य से अभिस्थित हो जाओ और पृतनायत को अववाधित करो। इति। इसके उपरान्त गाथा का गान करता है। हे सरस्वति! हे सुभगे! इसको रक्षित करो यह वाजिनीवती है। जिसको तुम इस विश्व भूत की प्रजा में आगे रखने हो। जिसमें भूत समुत्पन्न हुआ और जिसमे यह विश्व जगत् है। आज उस गाथा को गाऊँगा जो स्त्रियों मे उत्तम यश है। इति। इसके अनन्तर परिक्रमण करते हैं। तेरे लिये वहतु के साथ आगे सूर्या को पर्यवहन करे। पुनः प्रजा के साथ पतियों से जाया को आगे करे। इस प्रकार से अपर द्वि करे चतुर्थ को शूर्प कुष्ठा से सम्पूर्ण खीलों को भग के लिये आवपन करता है, स्वाहेति। तीन बार परिणीता को प्राजापत्य का हवन करे ॥७॥

अथैनामुदीचीꣳ सप्त पदानि प्रक्रामयति।
एकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि रायस्पोषाय चत्वारि मायोभवाय पञ्च पशुभ्यः षड् ऋतुभ्यः सखे सप्तपदा

भव सा मामनुव्रता भव ॥ विष्णुस्त्वानयत्विति सर्वत्रानुषजति । निष्क्रमणप्रभृत्युदकुम्भं स्कन्धे कृत्वा दक्षिणतोऽग्नेर्वाग्यतः स्थितो भवति । उत्तरत एकेषाम् । तत एनां मूर्धन्यभिषिञ्चति । आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ इति ॥ आपोहिष्ठेति च तिसृभिः । अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति । अथास्यै दक्षिणांसमधि हृदयमालभते मम । व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ इति ॥ अथैनामभिमन्त्रयते । सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतनेति । तां दृढपुरुष उन्मथ्य प्राग्वोदग्वाऽनुगुप्तागार आनडुहेरोहिते चर्मण्युपवेशयति ॥ इह गावो निषिदन्त्विहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ इह पूषा निषीदतु ॥ इति ॥ ग्रामवचनं च कुर्युः । विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्रविशतादिति वचनात् । तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणमिति श्रुतेः । आचार्याय वरं ददाति । गौर्ब्राह्मणस्य वरः । ग्रामो राजन्यस्य । अश्वो वैश्यस्य । अधिरथशतं दुहितृमते । अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति । ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सजीव शरदः शतम् ॥ इति ॥ सा यदि न पश्येत्पश्यामीत्येव ब्रूयात् । त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयातां संवत्सरं न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर इसको उत्तर दिशा में सात पदों को युक्रामण कराता है। एक इष में—दो ऊर्ज में—तीन रायस्पोष के लिये—चार

मायोभव के लिये –पांच पशुओं के लिये—छै ऋतुओं के लिये करे। हे सखे! सप्त पदों वाली हो जाओ। वह मेरे अनुव्रता हो जावे। विष्णु तुझको लावे—इससे सर्वत्र अनुषजन करता है। निष्क्रमण प्रभृति उद'कुम्भ को कन्धे पर करके अग्नि की दक्षिण की ओर मौनव्रती होकर स्थित होता है। कुछ के मत में उत्तर की ओर स्थित होवे ऐसा है। इसके अनन्तर इसके मूर्धा में अभिषिञ्चन करता है—मन्त्र यह है जिसके द्वारा अभिषिञ्चन किया जाता है—"आप: शिवा: शिवतमा: शान्ता: शान्ततमा स्तास्ते कृण्वन्तु भेषषम्" इति अर्थात् ये जल शिव हैं और अधिक मङ्गलमय हैं, ये शान्त हैं और अधिक शान्त हैं वे जल तेरे भेषज का कृण्वन करें। फिर "आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षु से ।१। यो व: शिवतमोऽरसस्तस्य भाजयते ह्व:। उशतीरिव मातर: ।२। तस्माऽ अरङ्ग मामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपोजन यथाचन:" ।३। इन तीनों मन्त्रों से अभिषिञ्चन करना चाहिए। इसके उपरान्त इसका "तच्चक्षुरिति" इस मन्त्र से सूर्य्य देव को दिखाता है। इसके अनन्तर इसके लिये दक्षिण की ओर मेरे हृदय के मध्य में आलभन करता है। तेरे व्रत में हृदय को धारण करता हूँ, मेरा चित्त तेरे अनुचित्त होवे। मेरे वचन को एक मन वाली होकर सेवन करो, प्रजापति तुझको मेरे लिये नियुक्त करे। इति। इसके उपरान्त इसको अभिमन्त्रित करता है—यह वधू सुमङ्गली है। इसको सब एकत्रित होकर देखिये। इस वधू को सौभाग्य प्रदान कीजिए फिर जैसे आये थे जाइए। दृढ़ पुरुष उस वधू को उन्मथित करके पूर्व या उत्तर में किसी अनगुप्त आगार में अनड्वान् के रोहित चर्म्म पर उपविष्ट कराता है। यहाँ पर गोऐं बैठें और यहां पर अश्व तथा यहां पर पुरुष निषण्ण (उपविष्ट) होवें। यहाँ पर सहस्र दक्षिण वाला यज्ञ हो और यहां पर पूषा बैठें। इति" "विवाह श्मशानयो ग्रमि प्रविशतात्"—इस वचन से ग्राम वचन नहीं करना चाहिए। इससे उन दोनों का ग्राम प्रमाण है—यह श्रुति है। आचार्य्य के लिये वर देता है। ब्राह्मण का गौ वर होता है। क्षत्रिय का वर ग्राम होता है। वैश्य का वर अश्व होता है।

दुहितृमान के लिये व्रत अधिरथ है। अस्तमित होने पर ध्रुव को दिखाता है। मंत्र यह है—"ध्रुवमसि ध्रुवंत्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोठये मयि मह्यं त्वा ह्राद् वृहस्पति मैया पत्या प्रजावती संजीव शरदःशतम्" इति। अर्थात् आप ध्रुव हैं, ध्रुव आपको देखता हूं, ध्रुव के द्वारा अधिपोष्य मुझमें मेरे लिये बृहस्पति ने दिया था, मुझ पति के द्वारा प्रजावती सौ वर्ष तक जीवित रहो। यदि वह न देखे तो देखती हैं यह ही बोलना चाहिए। तीन रात्रि तक अक्षार लवणाशी दोनों होवें। नीचे भूमि पर शयन करें। एक सम्वत्सर पर्यन्त मिथुनी भाव को प्राप्त न होवें अर्थात् मैथुन न करें। अन्ततः बारह रात्रि तक—छः रात्रि तक और तीन रात्रि तक इस नियम का परिपालन करना चाहिए।८।

उपयमनप्रभृत्यौपासनस्य परिचरणम् । अस्तमितानुदितयोर्दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा । अग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायम् । सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रातः । पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसाश्विवनावुभौ । पुमानिन्द्रश्चसूर्यश्च पुमांसवर्ततां मयि पुनः स्वाहेति पूर्वां गर्भकामा ॥ ९ ॥

उपयमन प्रभृति औपासन का परिचरण सूर्य के अस्तमित और उदित होने पर दोनों समयों में दधि से— तण्डुलों से अथवा अक्षतों के द्वारा करे। सायङ्काल में "अग्नये स्वाहा—प्रजापतये स्वाहा" इनसे करे प्रातः काल में "सूर्याय स्वाहा—प्रजापतये स्वाहा"—इनसे करना चाहिए। "पुमान् सौ मित्रावरुणौ पुमां सावश्विना बुभौ। पुमा निन्द्रश्च सूर्यश्च पुमां संवर्त्तयां मयि" पुनः स्वाहेति पूर्वा गर्भ कामा। अर्थात् मित्रावरुण पुमान् हैं—दोनों अश्विनीकुमार भी पुमान् हैं—इन्द्र और सूर्य्य भी पुमान् हैं, ये सब मुझमें संवर्त्तन करें। पूर्वा गर्भ की कामना रखने वाली 'स्वाहा'—यह कहे।९।

राज्ञोऽक्षभेदे नद्धविमोक्षे यानविपर्यासेऽन्यस्यां वा व्यापत्तौ स्त्रियाश्चोद्वहने तमेवाग्निमुपसमाधायाज्यसंस्कृत्येहरतिरिति जुहोति नानामन्त्राभ्याम् । अन्य-

ध्यानमुपकल्प्य तत्रोपवेशयेद्राजानं स्त्रियं वा प्रतिक्षत्र इति यज्ञान्तेनात्वाहार्षमिति चैतया । धुर्यौ दक्षिणा । प्रायश्चित्तिः । ततो ब्राह्मणभोजनम् ।। १० ।।

राजा ने अश्वमेद में–रद्ध विमोक्ष में–यान के विपर्यास में अथवा अन्य व्यापत्ति में और स्त्री के उद्वहन में उसी अग्नि का उप समाधान करके आज्य (घृत) को संस्कार करके इह रति रिति—इससे हवन करता है और नाना मन्त्रों से करता है । अन्य स्थान की उप कल्पना करके उस पर राजा को बिठाना चाहिए अथवा स्त्री को प्रतिक्षेत्र में बिठावे । इति 'यज्ञान्तेना त्वाहार्षम्'' इस ऋचा से करे । । दो धुर्य दक्षिणा हैं । प्रायश्चित्ति करे और इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे । १० ।

चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्राह्मणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा । गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहेति । स्थालीपाकस्य जुहोति प्रजापतये स्वाहेति । हुत्वा हुत्वैतासामाहुतीनामुदपात्रे

संस्रवान्समवनीय तत एनां मूर्द्धन्यभिषिञ्चति । या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं तत एनां करोमि सा जीर्य त्वं मया सहासाविति । अथैनां स्थालीपाकं प्राशयति प्राणैस्ते प्राणान्संदधाम्यस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचमिति । तस्मादेवविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति । तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम् । यथा कामी वा काममाविजनितोः संभवामेति वचनात् । अथास्यै दक्षिणांसमधिहृदयमालभते । यत्ते सुसीमेहृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतमिति । एवमत ऊर्ध्वम् ॥११॥

चतुर्थी में अपरात्रि मे अभ्यन्तर मे अग्नि का उपसमाधान करके दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ट कराकर उत्तर की ओर जल के पात्र को प्रतिष्ठापित करे। स्थाली पाक का हवन कर के आज्य भागों को यजन करके आज्य की आहुतियों से हवन करता है। मन्त्र यह है—"अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मण स्त्वानाथ काम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा" अर्थात् हे अग्ने। प्रायश्चित्ति में तुम देवों के प्रायश्चित्ति हो, नाथ काम ब्राह्मण तुमको उपधावन करता हूँ, जो इसमें पति के हनन करने वाली तनू है इसके उसको नष्ट कर दो स्वाहा। "हे वायो। प्रायश्चित्ति में आप दोनों के प्रायश्चित्त हो नाथ काम ब्राह्मण आपका उप धावन करता हूं, जो इसकी प्रजा के हनन करने वाली तनू है इसके उसको विनष्ट कर दो स्वाहा"। "हे सूर्य! प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नी तनू स्तामस्यै नाशय स्वाहा" इन दोनों मन्त्रों का अर्थ समान ही पूर्ववत् है केवल प्रजा और पशु के हनन की बात विशेष है। "हे चन्द्र! प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी अर्थात्

गृह के हनन करने वाली । तनूस्ता मस्यै नाशाय स्वाहा"—अर्थ पूर्ववत् ही है । "गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी (अर्थात् यश के हनन करने वाली) तनू स्तामस्यै नाशाय स्वाहा" अर्थ पूर्वोक्तवत् ही है । 'प्रजापतये स्वाहा" इसमे स्थाली पाक का हवन करता है । हवन करके इन आहुतियों का उदक पात्र में स्रुवों का का समव नयन करके फिर इसके पश्चात् इसके मूर्धा में अभिषिञ्चन करता है जो तेरी पति के हनन करने वाली—पतिघ्नी—प्रजाघ्नी—पशुघ्नी—यशोघ्नी और निन्दिता तनू है जार का हनन करने वाली इसके पश्चात् इसको करता हूं वह जीर्ण होकर तू मेरे साथ यह है इति । इसके अनन्तर इसको स्थाली पाक का प्राशन कराता है तेरे प्राणों से प्राणों को, अस्थियों से अस्थियों को, मांसों से मांसों को और त्वचा से त्वचा को भली भाँति धारण करता हूँ । इससे इस प्रकार का ज्ञाता श्रोत्रिय की दारा के साथ उपहास करने की कभी इच्छा नहीं करनी चाहिये अथवा इस प्रकार का वेत्ता पर होता है । उसके साथ उद्वाह करके जो ऋतु काल हो उसी के अनुसार प्रवेशन करे। "यथा कामी वा काम मा विजनितोः संभवाम" इस वचन से ऐसा ही करे । इसके अनन्तर इसके लिये दक्षिण हृदय के मध्य का आलभन करता है । जो तेरा सुसीम में हृदय दिव लोक मे चन्द्रमा में श्रित है । मैं उसको जानता हूं वह मुझको जाने, सौ वर्ष तक हम देखें अर्थात् हमारे नेत्रों में देखने की ज्योति बनी रहे—सौ वर्ष तक जीवित रहें—सौ वर्ष तक श्रवण करें अर्थात् कानों मे श्रवण करने की शक्ति बनी रहे । इस प्रकार इससे ऊर्ध्व में है । ११ ।

पक्षादिषु स्थालीपाकं श्रपयित्वा दर्शपूर्णमासदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति ब्रह्मणे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो द्यावापृथिवीभ्यामिति । विश्वेभ्यो देवेभ्योबलिहरणं भूतगृह्येभ्य आकाशाय च वैश्वदेवस्याग्नौ जुहोत्यग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा अग्नये स्विष्ट ते स्वाहेति प्राशनान्ते । बाह्यतः स्त्रीबलि हरति

नमः स्त्रियै नमः पुंसे वयसेऽवयसे नमः शुक्लाय कृष्ण-दन्ताय पापिनां पतये नमः। ये मे प्रजामुपलोभयन्ति ग्रामे वसन्त उत वाऽरण्ये तेभ्यो नमोऽस्तु बलिमेभ्यो हरामि स्वस्ति मेऽस्तु प्रजा मे ददत्विति। शेषमद्भिः प्रप्लाव्य ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥१२॥

पक्ष आदि में स्थाली पाक का श्रवण कराकर और दर्श पौर्ण मास देवताओं के लिए हवन करके आहुतियाँ देता है। वे आहुतियाँ—ब्राह्मणे स्वाहा—प्रजापतये स्वाहा—विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा—द्यावा पृथिव्यौ स्वाहा इस प्रकार से होती है। विश्वेदेवो के लिए बलिकाहरण भूतगृह्येभ्य और आकाश के लिये गैरव देवकी अग्नि में हवन करता है—वे आहुतियाँ—अग्नये स्वाहा—प्रजा पतये स्वाहा—विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ये हैं जो प्राशन के अन्त में होती हैं। बाहर से स्त्री बलि को हरण करता है—स्त्रियै नमः—नमः पुँसे—वय से ऽवयसे नमः। शुक्लाय कृष्णदन्ताय पापिनां पतये नमः। जो मेरी प्रजा को उपलोभित करते है ग्राम में निवास करते हुए अथवा अरण्य में रहते हुए उनके लिये नमस्कार होवे। उनके लिए बलिका हरण करते हैं। मेरा कल्याण हो, मुझको प्रजा देवे—इति। शेष को जलों से प्रप्लावित करके इसके अनन्तर ब्राह्मणो का भोजन होता है। १२।

अथ गर्भाधानं स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वं स्नात्वा विरजायास्तस्मिन्नेवदिवा आदित्य गर्भमित्यादित्यमवेक्षते गृहे वा स्नापयित्वा तामभिगच्छेदिति श्रुतेस्तस्मिन्प्रजायाः सम्भवकाले निशायां कुर्याद्यदि दिवा मैथुनं व्रजेत्क्लीबा अल्पवीर्या अल्पायुषश्च प्रसूयन्तेतस्मादेतद्वर्ज-येत्प्रजाकामो हि श्रुतिस्मृतिविरोधाभ्यां दक्षिणेन पाणिना उभावूरू प्रसार्य प्रजास्थानमभिमृशति पूषा भगं सविता मे ददातु रुद्रः कल्पयति ललामगुं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धा-

ता गर्भं दधातु ते । गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं त अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजाविति स॑ मृजेथास्तेजोवै॑श्वानरोदद्याद्‍ब्रह्माणमामन्त्रयतेब्रह्मागर्भं दधात्विति प्राङ्‌मुख उदङ्‌मुखो वोपविष्टो मन्थेद्रेतो मूत्रमिति चैके स्रावणं कु ।ति ।।१३।।

इसके अनन्तर गर्भाधान संस्कार होता है । पुष्पवती अर्थात् मासिक धर्मवाली स्त्री के जब चार दिन रजस्वला होने के निकल जावे इससे ऊपर जब वह शुचि स्नान कर लेवे और विरजा हो जावे उसी दिन में 'आदित्य' गर्भम् "इत्यादि से आदित्य का अवेक्षण करती है अथवा गृह में स्नपन कराकर उस स्त्री के साथ अभिगमन करना चाहिये—यह श्रुति के द्वारा प्रतिपादित है । उसमें प्रजा के सम्भव काल निशा में ही अभिगमन करना चाहिये । यदि दिनों में मैथुन करे तो जो सन्तति होगी वे क्लीव-अल्प वीर्य वाले—अल्प आयु वाले प्रसूत होते हैं । इस कारण से दिवा मैथुन को वर्जित कर देना चाहिये । जो प्रजा के जनन की कामना वाला श्रुति और स्मृति के विरोधो से दूर रहे तथा दक्षिण हाथ से दोनों ऊरुओं को फैला कर प्रजा के स्थान को अभिमृष्ट करता है । मन्त्र ये हैं—पूषा-भाग सविता मुझे देवें । कल्पलामगु को कल्पित करते हैं—विष्णु योनि को कल्पित करें—त्वष्टा रूपों पिंशित करे । प्रजा विधाता आसिञ्चन करें । तुम्हें गर्भ धारण करावें । हे सिनीवालि ! गर्भ धारण करो, हे पृथुष्टुके गर्भधारण कराओ । तुम्हें अश्विनी दोनों देव गर्भ धारण करावे जो पुष्कर स्रज है, तेज का ससृजन करें, वैश्वानर देवें । फिर ब्रह्मा जी को आमन्त्रित करता है—ब्रह्मा गर्भ धारण करावें इस प्रकार से प्राङ्‌मुख अथवा उत्तर की ओर मुख वाला होकर उपविष्ट होते हुए रेत मूत्रका मन्थन करे—ऐसा कुछ विद्वानों का मत है कि स्रावण करना चाहिये । १३ ।

अथर्तु॑मतीं जायामधिगच्छेत्पिण्डपितृयज्ञ॑नयजेत मध्यमपिण्डं पत्नी प्राश्नाति पुत्रकामा तत एतामाहुतिं जुहोत्याधत्त पितर इत्यलकारमवजिघ्रत्यायन्तुन इति

जात्येवमथर्त्तुमतीजायात्हृदयमालभ्य पूर्ववत्सव्येन पाणिनोपस्थमभिमृशति भगप्रणेत्तरिति प्रागुतेदानीमिति रेतो मूत्रमिति संधत्ते गायत्रेणेति प्रतिमन्त्र मन्थयति पुत्रकामोऽभिगच्छेन्नित्यम् ॥१४॥

इसके अनन्तर यह है कि भार्या जब ऋतुमती हो तभी अभिगमन करना चाहिए और पिण्ड पितृ यज्ञ के द्वारा यजन करना चाहिये। मध्यम पिण्ड को पत्नी प्राशन करती है जो पत्नी पुत्र की कामना रखने वाली होती है। इसके पश्चात् इस आहुति को देता है। 'आधत्त पितर' इससे अलङ्कार का अवघ्राण करता है—'आयन्तु न' इसका जप करता है। इस प्रकार से जो ऋतुमती जाया हो उसके हृदय का आलभन करके पूर्व की ही भाँति सव्य कर से उपस्थ (जननेन्द्रिय) को अभिमर्शित करता है। 'भगप्रणे तरिति' 'प्रागुते दानी मिति' इससे 'रेतो मूत्रमू इति' इससे संधान करता है 'गायत्रेणेति' इससे प्रति मन्त्र मन्थन करता है। पुत्र की कामना वाला पुरुष नित्य अभिगमन करता है ॥१४॥

सा यदि गर्भं न दधीत सिं.ह्याः श्वेतपुष्प्या उपोष्य पुष्येण मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां निशायामुदपेष पिष्ट्वा दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चति । इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती । अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभमिति ॥१५॥

वह पत्नी यदि गर्भ को धारण न करे तो श्वेत पुष्पी सिंही को उपोषित होकर पुष्य नक्षत्र में मूल उठाकर चतुर्थ दिन में शुद्धि स्नान की हुई रात्रि में जल से पेषण कर दक्षिण नासिका में आसिञ्चन करता है। मन्त्र यह है—'इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् इति' अर्थात् यह ओषधि त्रायमाणा और सहमाना सरस्वती है। मैं इस बृहती का नाम पुत्र पिता की तरह ग्रहण करता हूँ ॥१५॥

अथ पुंसवनम् । पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा । यदहः पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युज्येत तदहरुपवास्याप्लाव्याहते वाससी परिधाप्य न्यग्रोधावरोहाञ्छुङ्गांश्च निशायामुदपेष पिष्ट्वा पूर्ववदासेचनं हिरण्यगर्भोऽद्भ्यः सभृत इत्येताभ्याम् । कुशण्टकं सोमांशुं चैके । कूर्मपित्तं चोपस्थे कृत्वा स यदि कामयते वीर्यवान्स्यामिति विकृत्यैनमभिमन्त्रयतेसुपर्णोऽसीतिप्राग्विष्णुक्रमेभ्यः।१६।

इसके अनन्तर पुंसवन संस्कार होता है । 'पुरा स्पन्दते' इससे दूसरे अथवा तीसरे मास में करना चाहिये । जो दिन ऐसा हो जिसमें चन्द्रमा पुरुष जाति के नक्षत्र से युक्त हो उसी दिन में उपवास करके अप्लावन करे और अहत वस्त्रों को परिधापित कर न्यग्रोध (वट वृक्ष) के अवरोहों को और शुङ्गों को निशा में जल से पीसकर पूर्व की भाँति 'हिरण्यगर्भोऽद्भ्यः सभृत' इन दो मन्त्रों से आसेचन करे । कतिपय विद्वानों का मत है कि कुशकण्टक और सामांशु का ग्रहण करे । कूर्म के पित्त को उपस्थ में करे । वह यदि कामना करता है तो 'वीर्यवान् स्याम् इति' इससे विकृत कर इसका 'सुपर्णोऽसीति' इसे पहिले विष्णु क्रमों से अभिमन्त्रण करता है ॥१६॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ।। पुंसवनवत् । प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकं श्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चादग्नेभद्रपीठ उपविष्टायां युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्र्येण्या शलल्या वीरतरशङ्कुना पूर्णचात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति भूर्भुवः स्वरिति । प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा । त्रिवृतमाबध्नाति । अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भवेति । अथाह वीणागाथिनो राजानं संगायेतां यो वाप्यन्यो वीरतर इति । नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति । सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्तचक्र असीरस्तीरे

तुभ्यमसाविति यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर सीमन्तोन्नयन संस्कार होता है । यह भी पुंसवन के ही समान होता है । प्रथम गर्भ में छटे अथवा अष्टम मास में होता है । तिलों और मूँगो से मिश्रित स्थाली पाक का हवन करके प्रजापते का हवन करके पीछे अग्नि के भद्रपीठ मे उपविष्ट में युग्म से सरालुग्रस्मे नौदुम्बरसे और तीन दर्भ के पिञ्जूलों से—त्रेणी शलल्या से—वीरतर शंकु से और पूर्ण पात्र से सीमन्त को ऊपर की ओर "भूर्भुवः स्वः" इससे करता है । अथवा प्रति महा व्याहृतियों से करे । त्रिवृत आवन्धन करता है । मन्त्र निम्नलिखित है—'अयमूर्ज्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनीभव' इति 'अथाब्र वीणा गाथिनो राजान ँ संगायेता यो वाप्यन्यो वीरतर' इति । कुछ विद्वानो का मत है कि नियुक्ता गाथा को भी उपोदाहृत करते है । 'सोम ही हमारा राजा है और ये मानुषी प्रजा है । अविमुक्त चक्र तीर पर यह तुम्हारे लिए है, इससे जिस नदी का उपवासिता होता है उसका नाम ग्रहण करता है । इसके उपरान्त ब्राह्मण भोजन होता है ।।१७।।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति । एजतुदशमास्य इति प्राग्यस्यैत इति । अथावरावपतनम् । अवैतु पृश्निशेवलँ शुने जरायत्तवे । नैव माँसेन पीवरीं न कस्मिश्चनायतनमवजरायुपद्यतामिति । जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्या मेधाजननायुष्ये करोति । अनामिकया सुवर्णान्तर्हितया मधुघृते प्राशयति घृतं वा भूस्त्वयि दधामि भुवस्त्वयि दधामि स्वस्त्वयि दधामि भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामीति । अथास्यायुष्यं करोति । नाभ्यां दक्षिणे वा कर्णे जपति अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मास्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि । सोम आयुष्मान्त्सओषधीभिरायुष्मांस्तेनत्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तकरोमि । ब्रह्मायु-

ष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। यज्ञआयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेनत्वायुषायुष्मन्तं करोमि। समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमीति। त्रिस्त्रिस्त्र्यायुषमिति च। स यदि कामयेत सर्वमायुरियादिति वात्सप्रेणैनमभिमृशेत्। दिवस्परीत्येतस्यानुवाकस्योत्तमामृचं परिशिनष्टि प्रतिदिशं पञ्च ब्राह्मणानवस्थाप्य ब्रूयादिममनुप्राणितेति। पूर्वो ब्रूयात्प्राणेति। व्यानेति दक्षिणः। अपानेत्य परः। उदानेत्युत्तरः। समानेति पञ्चम उपरिष्टादवेक्षमाणो ब्रूयात्। स्वयं वा कुर्यादनुपरिक्राममविद्यमानेषु। स यस्मिन्देशेजातोभवति तमभिमन्त्रयते वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतमिति। अथैनमभिमृशत्यश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतमिति। अथास्य मातरमभिमन्त्रयते। इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरदिति। अथास्यं दक्षिणं स्तनं प्रक्षाल्य प्रयच्छतीमं स्तनमिति। यस्ते स्तन इत्युत्तरमेताभ्याम्। उदपात्रं शिरस्तोनिदधाति। आपोदेवेषुजाग्रथयथादेवेषुजाग्रथ। एवमस्यां सूतिकायां सपुत्रिकायाजाग्रथइति। द्वारदेशेसूतिकाग्निमुपसमाधायोत्थानात्सन्धिवेलयोः फलीकरणमिश्रान् सर्षपानग्नावावपति शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः

स्वाहा । आलिखन्ननिमिषः किं वदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्ष-कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहेति । यदि कुमार उपद्रवेज्जालेन प्रच्छाद्योत्तरीयेण वा पिताऽङ्क आधाय जपति कूर्कुरः सुकूर्कुरः कूर्कुरो बालबन्धनः । चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरा लपेतापह्वरतत्सत्यम् यत्ते । देवा वरमददु स त्वं कुमारमेव वा वृणी थाः । चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरा लपेतापह्वर तत्सत्यम् । यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ चेच्चेच्छुनक सृज नमस्ते अस्तु सीसरो लपेतापह्वरेति । अभिमृशति न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र वयं वदामो यत्र चाभिमृशामसीति ।।१८।।

सोष्यमान जलों से अभ्युक्षण करता है । 'एजतु दशमास्य' इत्यादि से और 'प्रायस्यैत' इति इन मन्त्रों से अभ्युक्षण करना चाहिए । इसके अनन्तर अवैतु पृश्नि शेवल शुने जराय्वत्तवे । नैव मांसेन पीवरी न कस्मिश्चनायतनमवजरायु पद्यताम्' इति इस मन्त्र से अवगवयतन करे । जन्म ग्रहण कर लेने वाले कुमार की अविच्छिन्न नाड़ी में मेधाजनन और आयुष्य करता है । सुवर्णान्तर्हिता अनमिका अंगुलि से मधु और घृत का प्राशन कराता है अथवा घृत का कराता है । निम्न प्रकार से महा व्याहृतियों से प्राशन कराना चाहिए— भूस्त्वयि दधामि—भुवस्त्वयि दधामि, स्वस्त्वयि दधामि—भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि' इति । इसके अनन्तर आयुष्य करता है । नाभि में अथवा दक्षिण काल में यह निम्न-लिखित का जाप करता है—'अग्निरायुष्मान्स वनस्पतिभि रायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुष्मन्तं करोमि'—'सोम आयुष्मान्स ओषधीभि रायुष्मां स्तेन त्वायुषाऽऽयुष्यमन्तं करोमि 'देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतनायुष्मस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि'— ऋषयआयुष्मन्तस्तेव्रतै रायुष्मन्त स्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि' । 'पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्त स्तेन त्वाऽऽ-

ऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि' 'यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभि रायुष्मां स्तेन त्वा-ऽऽयुष्मन्तं करोमि' । समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषा-ऽऽयुष्मन्तं करोमि' इति अर्थात् अग्नि आयुष्मान् है और वह वनस्पतियों से ही आयुष्मान् है उससे तुमको आयु से आयुष्मान् करता हूँ । उपर्युक्त सभी मन्त्रों का अर्थ समान-सा ही होता है केवल सोम ओषधियों से आयुष्मान् है-देव अमृत से आयुष्मान् है—पितर स्वधाओं से आयुष्मान् है-ऋषिगण व्रतों से आयुष्मान् हैं । यज्ञ दक्षिणाओं से आयुष्मान् हैं । समुद्र स्रवन्तीयों से आयुष्मान् है यही सबमें भिन्नता है । तीन-तीन बार 'आयुषम् इति' इसको कहे । वह यदि कामना करे तो 'सर्वमायुरियात्' इससे वात्सप्रेण इसको अभिमृष्ट करे । 'दिवस्परीति'—इस अनुवाक के उत्तमाऋचा को परिशिष्ट करता है । प्रत्येक दिशा में ब्राह्मणों को अव-स्थापित करके 'इसको अनुप्राणित करो'-यह बोलना चाहिए । पूर्व वाले को प्राण यह बोलना चाहिये । दक्षिण दिशा में जो ब्राह्मण अव स्थापित है उसको व्यानमह बोलना चाहिए । दूसरे को अपान-यह कहना चाहिए उत्तर में स्थित को 'उदान'-कहना चाहिये । समान-यह पाँचवां ऊपर से अवक्षमाण होता हुआ बोले । अथवा अविद्यमान होने पर स्वयं परि-क्राम को करना चाहिए । वह जिस देश में समुत्पन्न हुआ होता है उसको अभिमन्त्रित करता है—वेद तेरी भूमि है । हृदय दिन में है जो चन्द्रमा में स्थित है । वेदाहं तन्मां तद्विद्या त्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत शृणुयाम शरदः शतम्' यह अभिमन्त्रण का मन्त्र है । इसका अर्थ स्पष्ट है और पहिले भी बताया जा चुका है । इसके अनन्तर इसको अभिमृष्ट करता है—'अश्मा भव, परशुर्भव, अस्तृतं हिरण्यमं भव' अर्थात् अश्म-स्पाषाण हो जाओ, परशु हो जाओ और हिरण्य हो जाओ । आत्मा ही पुत्र नाम वाला है वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहे । इसके अनन्तर इसकी माता को अभिमन्त्रित करता है । अभिमन्त्रण का मन्त्र यह है—'इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः । सा त्वं वीरमती भव याऽस्मान् वीरवतोऽकरदिति' तुम इडा हो मैत्रावरुणी हो वीर में वीर को समुत्पन्न करो । वह तुम वीरमती होओ जिसने हमको वीरवान्

किया है इति' । इसके उपरान्त इसके दाहिने स्तन को प्रक्षालित करके इस स्तन को देती है इति । जो तुम्हारा स्तन है–यह इन दोनों से उत्तर दैवे । जल के पात्र को शिर पर रखता है । मन्त्र इस प्रकार से है— 'आप अर्थात् जल देवों में जगते है जैसे देवों में जाग्रत होते है । इसी प्रकार से इस सपुत्रा सूतिका में जाग्रत होते हैं । इति' । द्वार देश में सूतिकाग्नि का उपसमाधान कर उत्थान से संन्धि की दोनों वेलाओं में फली करण मिश्रित सर्षपों को अग्नि में आवपन करता है । मन्त्र यह है जिससे आवपन किया जाता है–'शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः । मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहाः' । 'आलिखन्ननिमिषः किं वदन्त उपश्रु तिर्हर्यक्षः कुम्भी शत्रुः पात्र पाणि नृमणिर्हन्त्री मुखः सर्षपारुणश्चयवनो नश्यादितः स्वाहा इति' । यदि कुमार उपद्रव करे तो जाल से प्रच्छादन करके अथवा उत्तरीय वस्त्र से प्रच्छादन करे फिर पिता अपनी गोद मे उसको रखकर निम्न मन्त्रों का जाप करता है–'कूर्कु रः सुकूर्कु रः'······· यत्र चाभिमृशामसीति ॥१८॥

अथातो यमलजनने प्रायश्चित्तं व्याख्यास्यामो यस्य भार्या गौर्दासी महिषी वडवा वा विकृतं प्रसवेत्प्रायश्चित्ती भवेत्पूर्णे दशाहे चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां काषायमुपसं हरेत् प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थशमीदेवदारुगौरसर्षपास्तेषामपो हिरण्यदूर्वाङ्कुपाम्रपल्लवैरष्टौ कलशान्प्रपूर्य सर्वौषधीभिर्दम्पती स्नापयित्वा आपो हिष्ठेति तृसृभिः कयानश्चित्र इति द्वाभ्यां पञ्चेन्द्रेण पञ्च वारुणेनेदमापः प्रवहतेत्यपाघमिति स्नापयित्वाऽलंकृत्य तौ दर्भपुञ्चेश्य तत्र मारुतं स्थालापाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति पूर्वोक्तैःस्नपनमन्त्रैःस्थालीपाकस्यजुहोत्यग्नयेस्वाहा सोमायस्वाहा पवमानायस्वाहा पावकायस्वाहामरुतायस्वाहामारुतायस्वाहा यमायस्वाहा मरुद्भ्यऽन्तकायस्वाहा मृत्यवेस्वाहा ब्रह्मणेस्वाहाऽग्नये

स्विष्टकृते स्वाहेत्येतदेव गृहोत्पातेषूलूककपोतगृध्राः श्येनो वा गृहं प्रविशेत्स्तम्भे प्ररोहेद्वल्मीक मधुजालं वा भवेदुद-कुम्भप्रज्वलनासनशयनयानभङ्गे षुगृहगोधिकाकृकलास-शरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्व-न्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसंगमप्रेक्षणा-दिष्वेतदेव प्रायश्चित्त ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वा-ऽऽचार्याय वर दत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्ति वाच्या-शिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति शान्तिर्भवति ॥१९॥

इसके अनन्तर इसलिये यमल (जोड़ला) के जनन करने में प्रायश्चित की व्याख्या करेंगे । जिसकी भार्या गौ—दासी—महिषी अथवा वड़वा विकृत का प्रसव करे तो वह प्रायश्चित्ती होती है । जब दस दिन पूर्ण हो जावें तो चार और वृक्षों के अर्थात् ऐसे वृक्षों के जिनमें दूध विद्यमान रहता है, काषाय का उपसंहार करना चाहिए । प्लक्ष (पाखर)—वट (बड़)—औदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—शमी (छौंकर)—देवदारु और गौर सर्षप हैं उनका अल हिरण्य—दूर्वांकुर—आम्र पल्लवों से आठ कलशों को पूरित करके और सर्वोषधियों से दम्पती (पति-पत्नी) को स्नपन कराकर "आपोहिष्ठामयो भुवः" इत्यादि तीन मन्त्रों से "कयानश्चित्र" इन दो से, पाँच ऐन्द्र से—पाँच वारुण से यह आपः (जल) प्रवहन करे इति—इससे और अपाद्यम्—इससे स्नपन कराकर तथा अलंकृत करके उन दोनों को दर्भों पर उपविष्ट करावे । वहाँ पर मारुत स्थाली पाक का हवन करके आज्य के दोनों भागों का इष्ट करके घृत की आहुतियों को हवन करता है । पूर्वोक्त स्नपन के मंत्रो के द्वारा स्थाली पाक का हवन करता है । निम्न वचन बोलते हुए हवन करे—"अग्नये स्वाहा—सोमाय स्वाहा—पावमानाय स्वाहा—पावकाय स्वाहा—मरुताय स्वाहा—मरुताय स्वाहा—मरुद्भ्यः स्वाहा—यमाय स्वाहाऽन्त काय स्वाहा—मृत्यवे स्वाहा—ब्रह्मणे स्वाहा—अग्नये स्वाहा—स्विष्ट कृते स्वाहा—ये ही आहुतियाँ गृहों में उत्पातों के होने पर उल्लू,

कपोत गृध्र अथवा श्येन घर में प्रवेश करे तब देवे। उसका कुम्भ, प्रज्वलन, आसन, शयन, मान आदि के भङ्ग हो जाने पर—गृह गाधिका, कृकलास शरीर सर्पण मे—छत्र और ध्वज के विनाश में—सार्प में नैर्ऋतयों—गण्डयोगों मे और अन्य अभ्युत्पातों में—भूकम्प, उल्कापात, काक और सर्प के सङ्गम के देखने आदि मे यही प्रायश्चित्त गृहशान्ति में उक्त विधि से करके आचार्य को वर देवे और ब्राह्मणो को भोजन कराकर स्वस्ति वाचन करना चाहिए। आशीष वचन का प्रतिग्रहण करके शान्तिर्भवति अर्थात् शान्ति होती है ॥१६॥

अथ यमलचरुं मारुत व्याख्यास्यामो यस्य च यमलौ पुत्रौ दारिका वा प्रजायेत पूर्ण दशाहे चतुर्णांक्षीरवृक्षाणां काषायमाहृत्याश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधोदुम्बराश्चत्वारोऽविधवाः स्नापयति ब्रह्मचारिणोवा शुक्लवासस ऐन्द्रीं दिशमुदीचीं वा मङ्गल पूववादृगायन्त्यो यमिलिनी स्नापयन्त्याचार्य स्नापयति वसोःपवित्रेण शतधारेण चाष्टभिःकलशैः स्नात्वाऽप्रतिरथ जपेदिदमापः प्रवहतेति तौ स्नापितौ वरं प्रयच्छत्यानडुहसातृभ्यश्च हिरण्यं वस्त्रमेव परीतोषण वाजेवाजेऽवतेति जपत्याघार मारुतं चरुं जुहोति मरुताय स्वाहा मारुताय स्वाहा मरुद्भ्यो विष्णवे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति प्राशनान्ते शेषं चरुं गृहीत्वाऽश्वत्थ प्रदक्षिणीकृत्योपविशेत्तदेव तन्त्र समाप्य ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥२०॥

इसके अनन्तर यमल चरु मारुत की व्याख्या करेंगे। जिसके यमल दो पुत्र अथवा दारिका समुत्पन्न होवे तो दश दिन के परिपूर्ण हो जाने पर चार दूध वाले वृक्षों के काषाय को लाकर अश्वत्थ—प्लक्ष—न्यग्रोध और औदुम्बर के वृक्षों चारों को अविधवा अर्थात् सौभाग्यवती नारियाँ होवे स्नपन कराती हैं अथवा ब्रह्मचारी शुक्ल वस्त्रधारी कराते हैं। ऐन्द्री दिशा अथवा उदीची दिशा मे मङ्गल गायन करती हुई

यमलिनी को स्नपन कराती हैं—आचार्य स्नपन कराता है। वसु के पवित्र शतधार से और आठ कलशों के द्वारा स्नान करके अप्रतिरथ का जाप करे। "इदमापः प्रवहत" इति—इससे वे दोनों स्नापित होवें वर का प्रदान करता है। और आनडुह मातृगण के लिये हिरण्य वस्त्र ही परीतोषण देवे। "वाजे वाजेऽवतेत" इति—इसका जप करता है। अगर मारुत चरु का हवन करता है। आहुतियां देने के मन्त्र निम्न है—"मरुताय स्वाहा—मारुताय स्वाहा—मरुद्भ्यः स्वाहा—विष्णवे—प्रजापतये—विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्ट कृते स्वाहा—इति। प्राशन के अन्त में शेष चरु को ग्रहण करके पीपल के वृक्ष की परिक्रमा करके उपविष्ट हो जावे। उसी तन्त्र को समाप्त करके इसके अनन्तर ब्राह्मणों भोजन कराना चाहिए।२०।

अथातो मूलविधिं व्याख्यास्यामो मूलांशे प्रथमे पितुर्नेष्टो द्वितीये मातुस्तृतीये धनधान्यस्य चतुर्थे कुलशोकावहः स्वयं पुण्यभागी स्यान्मूलनक्षत्रे मूलविधानं कुर्यात्सर्वौषध्या सर्वगन्धैश्च संयुक्तं तत्रोदकुम्भं कृत्वा वस्त्रगन्धपुष्परत्नसहितं श्वेतसिद्धार्थकुसुमादियुक्तं कुर्यात्तस्मिन्रुद्रं जपित्वाऽप्रतिरथं राक्षोघ्नं सूक्तं द्वितीयोदकुम्भं कृत्वा चतुष्प्रस्रवणसंयुक्तं तस्मिन्नुपरिष्टान्मूलानि धारयेद् शपात्रैकृत्वा वस्त्रैबद्धा तस्मिन्प्रधानानि मूलानिवक्ष्याम्यष्टादशमासे हिरण्मयमूलं सप्त धान्यानि प्रथमाकाश्मर्या सहदेव्यपराजिता बाला पाठा शङ्खपुष्पी अधोपुष्पी मधुयष्टिका चक्राङ्किता मयूरशिखा काकजङ्घा कुमारीद्वयं जीवन्त्यपामार्गभृङ्गराजलक्ष्मणाः सुलक्ष्मणा जाती व्याघ्रपत्रचक्रमर्दकसहदेश्वरा अश्वत्थोदुम्बरपलाशप्लक्षवटाकर्दं वंरोहितकशमीशतावर्या इत्येवमादिमूलं पूरयित्वा तस्मिंस्त्रिषिद्धानि मूलानि वक्ष्यामि बैल्वधवनिम्बकदम्बराजवृक्षशालप्रियालुदधिकपित्थकोविदार-

श्लेष्मातकबिभीतकशाल्मल्यरलुसर्वकण्टकीवर्जंतश्राभिषे-
ककुर्यात्पितुः शिशोर्जनन्या देवस्य त्वेत्यौदुम्बर्यासन्दी-
मुदगग्रामास्तृणाति । तत्रासीनान्त्सपातेनैकेनाभिषिञ्चति
शिरसोऽभ्यनुलोम शिरो मे श्रीयश इति यथालिङ्गम-
ङ्गानि संमृशति । स्नात्वा तदूर्ध्वं नैऋतं पायसं श्रप-
यित्वा काश्मर्यमयं कुस्त्रुवं प्रतप्य संमृज्या-
धारस्य आघारावज्यभागौ हुत्वाऽसुन्वन्तमिति
चतस्रः स्थालीपाकेन जुहुयात्पश्चादाज्याहुती-
श्चतुर्गृहीतेन जुहोति कृणुष्व पाज इति पञ्च
मा नस्तोक इति द्वे या ते रुद्र शिवा तनूरिति
षडग्नीं रक्षांसि सेधति शुक्रज्योतिरमर्त्यः शुचिः
पावक इड्य इति त्वम्नः सोम विश्वतो रक्षा
राजन्नघायतो न रिष्ये त्वावतः सखेति स्विष्टकृदादि
प्राशनान्ते कृष्णा गौः कृष्णाश्च तिला हेम-
मयमूलं सप्तधान्यसंयुक्तमाचार्याय वरं दद्यात्कृष्णो-
ऽनड्वान्ब्रह्मणे दद्यान्नक्षत्रसूचकेभ्यो वा वासो
दद्यादन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णं दद्यात्पायसेन
ब्राह्मणान्भोजयेत्सार्पदं क्षते गण्डजातानामेष एव
विधिः कात्यायनेनोक्तः । कृते शान्तिर्भ-
वतीति ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर इससे मूलविधि की व्याख्या करेंगे । मूलांश में प्रथम में पिता को नेष्ट होता है-दूसरे, मे माता का नेष्ट है—तीसरे अंश में धन—धान्य को नेष्ट होता है—चौथे अंश में कुल को शोक का देने वाला होता है । स्वयं पुण्यभागी होता है । मूल नक्षत्र मे मूल का विधान करना चाहिए । सर्वौषधि से और सर्व गन्धों से संयुक्त वहाँ पर जल के कुम्भ को करके फिर उसको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, रत्न से सहित तथा श्वेत सिद्धार्थ, कुसुम प्रभृति से युक्त करके उसमें "हरिःॐ नमस्ते रुद्र मन्य

ब्उतोतरषवे नमः'' इत्यादि रुद्र का जाप करे। अप्रतिरथ रक्षोघ्न सूक्त को जपे द्वितीय उपकुम्भ को करके चार व्रतवर्णों से संयुक्त करे। उस पर ऊपर मूलों को धारण करना चाहिए। वंश पात्र में करके वस्त्र में बाँधकर उसमें प्रधान मूलों को बतलाते है। अष्टादश मास हिरण्मय मूल को, सात धान्य प्रथम काश्मर्या-सहदेवी-अपराजिता, शाला, पाठा, शङ्खपुष्पी, अधोपुष्पी, मधुमक्षिका, चक्राङ्कुता, मयूर, शिखा, काकजङ्घा, दोनों कुमारी, जीवन्ती, अपामार्ग, भृङ्गराज, लक्ष्मणा, सुलक्ष्मणा, जाती, व्याघ्रपत्र, चक्रमर्द, कसद्वेश्वर, अश्वत्थ, उदुम्बर, पलाश, प्लक्ष, वट, अर्क, दूर्वा, रोहितक, शमी, शतावरी-इत्येवं आदिमूल को पूरित करके रखे। उसमें जो मूल निषिद्ध हैं उनको बतलायेंगे। वे निषिद्ध ये हैं—विल्व-धव-निम्ब-कदम्ब-राजवृक्ष-शाल—प्रियालु—दधि—कपित्थ—कोविदार—श्लेष्मातक—विभीतक—शाल्मलि—अरलु और सर्वकण्टकी इनको वर्जित कर देवे। वहाँ पर अभिषेक करना चाहिए। शिशु के पिता और जननी को वेद के समीप में आकर औदुम्बर्या सन्दी को मुवग ग्रामा आस्तरण करता है। वहाँ पर बैठे हुए इनको एक सम्पात के द्वारा अभिषिञ्चन करता है।"शिरसोऽध्यनु लोम" शिरो मे श्रीर्यशः इति "इससे यथालिङ्ग अङ्गों को संमृष्ट करता है। स्नान करके उसके आगे नऋृत पायस का हवन करे। काश्मर्यमय स्रुक्-स्रुक को प्राप्त करे और संमृष्ट करे। अन्वारब्ध आघारावा ज्यके दोनों भागों का हवन करके "असुन्वन्तम्-इति" इससे चार स्थालीपाक के द्वारा हवन करना चाहिए। पन्द्रह घृत की आहुतियाँ चतुर्गृहीत के द्वारा हवन करता है। "कृणुष्व पाज" इति—ये पाँच "मानस्तोक इति" ये दो "भाले रुद्र शिवा तनूरिति" ये छै। "अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रज्योतिरमर्त्यः शुचिः पावक ईडय इति" "त्वन्नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्न घायतो नरिष्ये त्वावतः सखा" इति-इससे स्विष्ट कृद आदि का हवन करे। प्राशन के अन्त में कृष्णा गौ और काले तिल, हेममय मूल, सात धान्यों संयुत करने अपने आचार्य के लिये वर (दान) देना चाहिए। कृष्णवर्ण वाला अनड्वान किसी ब्राह्मण के लिये दान में देना चाहिए। जो नक्षत्र सूत्र

अर्थात् राशि-गृहादिदेवता ने वाले हों उनके लिये अथवा वस्त्र देना चाहिए। अन्य ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण का दान देना चाहिए। पायस (खीर) के द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। सार्प दैवत में गण्डजातों की यह ही विधि होती है और इसको कात्यायन ऋषि ने कहा है। इसके करने पर मूल की शान्ति हो जाती है।२१।

दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति। द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तः स्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्। अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्। शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य। चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका। सूर्य दीक्षयति तच्चक्षुरिति॥ २२॥

दशमी में उठाकर ब्राह्मणों को भोजन करवा कर पिता नाम करण करता है। दो अक्षरों वाला अथवा चार अक्षरों वाला आदि अन्त और मध्य से घोष प्रयत्नवाला दीर्घाभिनिष्ठान किया हुआ करना चाहिये तद्धित नहीं है। अयुजाक्षरों वाला और आकार जिस के अन्त में हो ऐसा नाम स्त्री के लिए हितकर होता है। ब्राह्मण के नाम के आगे "शर्मा" क्षत्रिय के नाम के आगे "वर्मा" और "गुप्त"—यह वैश्य के नाम के आगे होना चाहिए शिशु के जन्म के चौथे मास मे घर से बाहिर निष्क्रमणिका अर्थात् निकालने का कार्य करना चाहिए। "तच्चक्षुः" इत्यादि मन्त्र के द्वारा सूर्य देव को दिखलाया जाता है। २२।

प्रोष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पूर्ववत्। पुत्रं दृष्ट्वा जपति। अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे। आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतमिति। अथास्य मूर्द्धानमवजिघ्रति। प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतमिति। गवां त्वा हिंकारेणेति

च त्रिर्दक्षिणेऽस्य कर्णे जपति । अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीरान्छश्वत इन्द्रशिप्रिन्निति । इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वात्मानं वाचः सुदिनं त्वमह्नामिति सव्ये स्त्रियै । तु मूर्द्धानमेवावजिघ्रति तूष्णीम् ॥ २३ ॥

बाहिर से जाकर पुनः गृहों में आकर पूर्व की ही भाँति उपस्थित होता है। अपने पुत्र को देखकर "अङ्गा दङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे। आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्" अर्थात् अङ्ग-अङ्ग से सम्भूत होता है और हृदय से अभिजात होता है। आत्मा ही पुत्र नाम वाला है वह सौ वर्ष तक जीवित रहे—इस मन्त्र का जाप करता है। इसके अनन्तर इस नवजात शिशु के मूर्द्धा का अवघ्राण करता है अर्थात् सूंघता है। "प्रजापति का यजन करके हिंकार से अवघ्राण करता हूँ। सहस्रायु से मह जीवित रहे और सौ वर्ष पर्यन्त जीवे" इस मन्त्र को जपे। और गवां त्वा हिंकारेण"—इति–इस मन्त्र से तीन बार इसके दाहिने कान मे जप करता है। मन्त्र यह है—' अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजी षिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीरान्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्निति–"इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्व मस्मे। पौष रयीणामरिष्टि तनूनं स्वात्मान वाचः सुदिनं त्वमह्नामिति" इन मन्त्रों को सव्यकाल में जपता है। स्त्री के लिये तो केवल मूर्धा का ही मौन रहते हुए अवघ्रण करता है। २३।

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् । स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति देवीं वाच मजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो

वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वाग-स्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहेति । वाजो नो अद्येति च द्वितीयाम् । स्थालीपाकस्य जुहोति प्राणेनान्न-मशीय स्वाहाऽपानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण-यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहेतिप्राशनान्ते सर्वान्रसान्सर्वमन्नमेकत उद्धृत्याथैनं प्राशयेत् । तूष्णीं हन्तेति वा हन्तकार मनुष्या इति श्रुतेः । भारद्वाज्या माँसेन वाक्प्रसारकामस्य ।कपिञ्जलमाँसेनान्नाद्यकाम-स्य । मत्स्यैर्जवनकामस्य । कृकषाया । आयुष्यकामस्य । आटचा ब्रह्मवर्चसकामस्य । सर्वैः सर्वकामस्य । अन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मणभोजनमन्नपर्याय वा ततो ब्राह्मण-भोजनम् ॥ २४ ॥

नवजात शिशु के छटवे मास में अन्न प्राशन संस्कार कराना चाहिए चाहिए अर्थात् आरम्भ मे अन्न खिलावे । स्थाली पाक का श्रवण (हवन) करके आज्य भागों को इष्ट करके आज्य (घृत) की आहुतियों से हवन करता है । मन्त्र यह है—"देवी वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सानोमंन्द्रेषपूर्ण दुहाना धेनुर्वाग स्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा:" इति । वा जो नो अद्य "इति—इससे द्वितीय आहुति देवे । स्थालीपाक का हवन करता है—"प्राणेनाञ्ज मशीय स्वाहा–अपानेन गन्धानशीय स्वाहा–चक्षषा रूपाण्यशीय स्वाहा–श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा" इन मन्त्रों को बोलकर प्राशन के अन्त मे सब रसों सम्पूर्ण अन्न को एक बार उठाकर इसको खिला देना चाहिए ! अथवा "तूष्णीं हन्ता" इति–इससे "हन्तकार मनुष्या" इति —श्रुति से करे । थ्याक् के प्रसार की कामना का भारद्वाज्य मांस के द्वारा—अन्नाद्य कामना का कपिञ्जल मांस के द्वारा—जवन कामना का मत्स्यों के द्वारा—आयुष्कामना का कृकषाय के लिए अथवा अन्त पर्याय के लिये । इसके अनन्तर अन्नपर्याय के लिये ब्राह्मणों को भोजन करावे ।२४।

द्वितीय काण्ड

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम् । तृतीये वाऽप्रतिहते । षोडशवर्षस्य केशान्तः । यथामङ्गलं वा सर्वेषाम् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा माता कुमारमादायाप्लाव्याहते वाससी परिधाप्याङ्क आधाय पश्चादग्नेरुपविशति । अन्वारब्ध आज्याहुत्वा प्राशनान्ते शीतास्वप्सूष्णा आसिञ्चत्युष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशान्वपेति । केशश्मश्रिति च केशान्ते । अथात्र नवीनीतपिण्डं घृतपिण्डं दध्नो वा प्रास्यति । तत आदाय दक्षिणं गोदानमुन्दति । सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चस इति । त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणि कुशतरुणान्यन्तर्दधात्योषध इति । शिवो नामेति लोहक्षुरमादाय निवर्तयामीति प्रवपति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्य जरदष्टिर्यथासदिति । सकेशानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिण्डे प्रास्यत्युत्तरतो ध्रियमाणे । एवं द्विरपरं तूष्णीम् । इतरयोश्चोन्दनादि । अथ पश्चात्त्र्यायुषमिति । अथोत्तरतो येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तय इति । त्रिः क्षुरेण शिरः प्रदक्षिणं परिहरति समुखं केशान्ते । यत्क्षुरेण मज्जयिता सुपेशसा वप्त्वा वा वपति केशाश्छिन्धि शिरो माऽस्यायुः प्रमोषीः । मुखमिति च केशान्ते । ताभिरद्भिः शिरः समुद्य नापिताय क्षुरं प्रयच्छति । अक्षण्वन्परिवपेति । यथामङ्गलं केशशेषकरणम् । अनुगुप्तमेतं सकेशं गोमयपिण्डं निधाय गोष्ठे पल्वल उदकान्ते वाऽऽचार्याय वरं ददाति । गां

केशान्ते । संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केशान्ते द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥ १ ॥

एक सम्वत्सर का जब बालक हो जावे तो उस समय में चूड़ाकरण संस्कार करना चाहिए अथवा अप्रतिहत तीसरे वर्ष में करे। सोलह वर्ष का केशान्त होता है। अथवा जिस रीति से मङ्गल होता हो सब का करे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर बच्चे की माता कुमार को लेकर आप्लावन करे और नूतन वस्त्र का धारण कर गोद में बालक को लेकर पीछे अग्नि के उपविष्ट होती है। अन्वारब्ध आहुतियो का हवन करके प्राशन के अन्त में शीतल जलों में उष्णों का आसिञ्चन करती है अथवा उष्ण उदक से यहाँ पर उदित होने पर केशों का वपन करती है। इति। "केशश्मश्रुच" इससे केशान्त में करे। इसके अनन्तर नवनीत (मक्खन) का पिण्ड—घृत का पिण्ड अथवा दधि का पिण्ड का प्राशन कराती है। इसके अनन्तर लेकर दक्षिण गो दान देता है। "सविता प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वचसे" इति अर्थात् सविता के द्वारा समुत्पन्न देवी जल उन्दन करें। तेरा तनू दीर्घायुत्व और वर्चस्व के लिये हो—इस मन्त्र से करे। त्रेण्या शलल्या से निनयन कर "तीन तरुण कुशों का ओषध में अन्तर्धान करता है" इति। "शिवोनाम" इससे लौह के क्षुर (उस्तरा) को लेकर "निवर्तयामि"—इससे प्रवपन करता है। जिसके द्वारा अर्थात् क्षुर के द्वारा सविता ने सोम राजा के और विद्वान् ने वरुण का वपन किया था। उससे ब्रह्मा का वपन करे। यह इसका जिससे आयुष्य और जरदष्टि हो जावे। केशों के सहितों का प्रच्छादित करके आनडुह गोमय पिण्ड पर उत्तर की ओर ध्रियमाण पर बैठता है। इस प्रकार से दो बार चुपचाप अपर करे। इतरों का उन्दनादि करे। इसके अनन्तर पीछे "त्र्यायुषम् इति" करे। इसके अनन्तर उत्तर की ओर "येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये" इति इस मन्त्र से वपन करे। तीन बार क्षुर के द्वारा शिर को प्रदक्षिण में परिहरण करता है। संमुख में केशान्ते सेशस मर्जन करने वाले जिस क्षुर से वपन

करके अथवा वपन करता है। 'केशों को काटो, शिर को मत छेदन करो। इसको आयु का प्रमोषी मुख है'—इससे केशान्त मे करे। उन जलों से शिर को समुद करके नापित के लिये क्षुर देता है। "अक्षण्वन्य रिवयेति" इस मन्त्र मे देवे। फिर मङ्गल के अनुसार केशों का शेष करण होता है। इस अनुगुप्त से केश गोमय पिण्ड को रखकर गोष्ठ में—पल्वल में अथवा उदकान्त में आचार्य के लिये वर होता है। केशान्त में गौ देवे। एक सम्वत्सर तक ब्रह्मचर्य रखे—अवपन केशान्त मे करे। बारह रात्रि तक–छै रात्रि पर्यन्त और अत मे तीन रात्रि पर्यन्तरक्खे ।१।

अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतासु पूर्वाह्णे कुमारस्य मधुरं दत्त्वा प्राङ्मुखापविष्टस्य दक्षिणं कर्णमभिमन्त्रयते भद्रं कर्णेभिरिति सव्यं वक्ष्यन्तीवेदिति चाथ भिन्द्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ २ ॥

इसके अनन्तर कर्ण वेध सस्कार तीसरे वर्ष मे अथवा पाँचवे वर्ष में पुष्येन्दु चित्राहरि रेवती नक्षत्रो मे दिन के पूर्व भाग मे कुमार को कुछ मधुर पदार्थ देकर पूर्व की ओर मुख करके उपविष्ट के दाहिने कर्ण को 'भद्रं कर्णेभिः' इससे अभिमन्त्रित करता है और 'सव्य वक्ष्यन्ती वेदिति' इससे इसके उपरान्त भेदन करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥२॥

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा। एकादशवर्षं राजन्यम्। द्वादशवर्षं वैश्यम्। यथामङ्गलं वा सर्वेषाम्। ब्राह्मणान्भोजयेत्त च पर्युप्तशिरसमलङ्कृतमानयन्ति। पश्चादग्नेरवस्थाप्य ब्रह्मचर्यमागामिति वाचयति ब्रह्मचार्यसानीति च। अथैनं वासः परिधापयति येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चस इति। मेखलां बध्नीते। इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म

आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयमिति । युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति वा । तूष्णीं वा । अत्र यज्ञोपवीतपरिधानं (यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्य-मग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनो-पनह्यामीत्यथाजिनं प्रयच्छति मित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्विस्थविरं समिद्धम् । अनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिन दधेऽहमिति) दण्ड प्रयच्छति । तं प्रतिगृह्णाति । यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधि भूम्याम् । तमहं पुन-रादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति । दीक्षावदेके दीर्घसत्रर्पतीति वचनात् । अथास्याद्भिरञ्जलिना-ऽञ्जलिं पूरयति आपो हिष्ठेति तिसृभिः। अथैनं-सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति । अथास्य दक्षिणां-समधिहृदयमालभते । मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यमिति । अथास्य दक्षिणं हस्त गृहीत्वा आह को नामासीति ।असावहं भो इति प्रत्याह । अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसीति । भवत इत्युच्यमान इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्य-स्तवाहमाचार्यस्तवासाविति ।अथैनं भूतेभ्यः परिददाति प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामिद्यावापृथि-वीभ्यां त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्यः परिद दामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्या इति॥२॥

आठ वर्ष का जब ब्राह्मण का कुमार हो उस समय में उसका उपनयन संस्कार करा देना चाहिये अथवा गर्भ से आठवें वर्ष में करा देवे। ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का तथा द्वादश वर्ष में वैश्य का उपनयन करा देना चाहिए। अथवा जैसा भी मङ्गल हो सब वर्णों का करा देवे। ब्राह्मणों का भोजन करना चाहिये और उस कुमार को पर्युप्त शिर वाले को अलंकृत करके आनयन करते हैं। पीछे अग्नि के अवस्थापित करके 'ब्रह्मचर्यं मागामिति' इसका वाचन करता है और 'ब्रह्मचार्यं सानिति' इसका वाचन करता है। इसके अनन्तर इसको 'येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे' इस मन्त्र के द्वारा वस्त्र का परिधापन करता है। मेखला को बाँधता है। मेखल बन्धन का मन्त्र यह है—'इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभागा मेखलेयमिति' अथवा 'युवा सुवासा. परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। त धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त इति' इस मन्त्र से करे। अथवा कोई मन्त्र का वाचन न कर मौन ही होकर करे। यहां पर यज्ञोपवीत का परिधान करे। यज्ञोपवीत के परिधान का मन्त्र यह है—'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्य मग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः'। यज्ञोपवीत हो, यज्ञ का तुमको यज्ञोपवीत के द्वारा उपनयन करता हूं—इससे इसके उपरान्त अजिन होता है। 'मित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविरं समिद्धम्। सनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम् इति' इससे दण्ड देता है। उसको प्रतिग्रहण करता है। 'योमे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधि भूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति' मन्त्र यह है। कतिपय विद्वानों का मत है दीक्षा के समान दीर्घसत्रमुपैती—इस वचन से करे। इसके पश्चात् इसकी अञ्जलि को जलों से अञ्जलि के द्वारा पूरित करता है। 'आपो हिष्ठा मयोभुवः। इत्यादि तीन मन्त्रों के द्वारा इसके उपरान्त 'तच्चक्षुः' इस मन्त्र से इसको सूर्य का उद्वीक्षण कराता है। इसके अनन्तर 'मम व्रते ते हृदयं दधामि

मम चित्तमनु चित्त ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्' इस मन्त्र से इसके दक्षिणा ॅ समाधि हृदय का आलभन करता है। इसके अनन्तर इसके दाहिने हाथ को ग्रहण करके 'को नामासि' अर्थात् किस नाम वाला है—यह कहता है । 'असावह भो' अर्थात् मै यह हू—यह प्रत्युत्तर देता है। इसके उपरान्त इससे कहे किसके ब्रह्मचारी हो। मै आपका हूं ब्रह्मचारी हूँ—ऐसा प्रत्युत्तर देने पर इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारा आचार्य है और तुम्हारा मैं आचार्य हूँ, तुम्हारा यह है इति। इसके उपरान्त इसको भूतो के लिये परिदान करता है। मन्त्र ये है—'प्रजापतये त्वा परिददामि, देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यद्भ्य स्त्वोषधीभ्यः परिददामि, द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि, विश्वेभ्यस्त्वा, देवेभ्य. परिददामि, सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टचा' इति ॥३॥

प्रदक्षिणमग्निं परीत्योपविशति । अन्वारब्ध आज्याहुँत्वा प्राशनान्तेऽथैनं संशास्ति ब्रह्मचार्यस्यपोऽशान कर्म कुरु मा दिवा सुषुप्था वाचं यच्छ सामवमाधेह्यपोऽशानेति । अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायापसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय । दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैक । पच्छोऽर्द्धचशः सर्वां च तृतीयेन सहानुवर्तयन् सवत्सरे षाण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा । सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो व ब्राह्मण इति श्रुतेः । त्रिष्टुभं राजन्यस्य । जगतीं वैश्यस्य । सर्वेषा वा गायत्रीम् ॥ ४ ॥

अग्नि की प्रदक्षिण करके उपविष्ट होता है। अन्वारब्ध आज्य की आहुतियों का हवन करके प्राशन के अन्त मे इसके अनन्तर इसका भलीभाँति शासन करता है—अब तुम ब्रह्मचारी हो अतएव अपोशान कर्म करो—दिन मे कभी शयन मत करो। वाणी का यमन करो 'अपोशानेति'

इससे समिधा लाओ। इसके अनन्तर इस कुमार ब्रह्मचारी के लिए अग्नि के उत्तर में सावित्री का अनुकथन करे। प्रत्यङ्मुख होकर उपविष्ट के लिए—उपसन्त, समीक्षमाणे, समीहित के लिए सावित्री देवे। कतिपय मनीषीगण यह कहते हैं कि दक्षिण की ओर स्थित समासीन को देना चाहिए। पच्छ अर्द्ध ऋचा का अंश और सर्वा को तृतीय के द्वारा अनुवर्तन करता हुआ करे। सम्वत्सर में—षाण्मास्य में, चौबीस दिन में, बारह दिन में, छै दिन में, तीन दिन में, अथवा तुरन्त ही गायत्री को ब्राह्मण के लिये 'आग्नेयो वै ब्राह्मणः' इस श्रुति के वचन से बोल देना चाहिए। क्षत्रिय को गायत्री छन्द न बोलकर त्रिष्टुभ छन्द वाला मन्त्र देना चाहिए और वैश्य वर्ण वाले ब्रह्मचारी को जगती छन्द वाला मन्त्र बोले। अथवा सब वर्णों वालों को ब्रह्मगायत्री ही बोल देना चाहिए।४।

अत्र समिदाधानम्। पाणिनाऽग्नि परिसमूहति अग्ने सुश्रवः सुश्रवस मा कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येव मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्यनिधिपा अस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासमिति। प्रदक्षिणमग्नि पर्युक्ष्योत्तिष्ठन्त्समिधमादधाति। अग्नये समिधमाहार्ष बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्य न्नादो भूयासं स्वाहेति। एव द्वितीयां तथा तृतीयाम्। एषां त इति वा समुच्चयो वा। पूर्ववत्परिसमूहनपर्युक्षणे। पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे तनूपा अग्नेऽसि तन्व मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊन तन्म आपृण। मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजाविति। (अङ्गान्यालभ्य जपत्यङ्गानि

च म आप्यायन्तां वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलमिति त्र्यायुषाणि करोति भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेऽंसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्) ।। ५ ।।

इसके अनन्तर समिधाओं का आधान होता है। 'अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मा ँ सुश्रवः सौश्रवस कुरु। यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा अस्येयमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्' इस मन्त्र को बोलकर हाथ से अग्नि का परिसमूहन करता है। प्रदक्षिण अग्नि का प्रयुंक्षण करके उठते हुए समिधा का आधान करता है। इसका मन्त्र यह है—'अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जात वेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिधा से एवमहमायुषा-मेधया-वर्चसा-प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य निराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्कस्यन्नादो भूयास ँ स्वाहा' इति। इसी प्रकार से द्वितीया तथा तृतीया समिधा को देवे। अथवा 'एषा ते' इससे अथवा समुच्चय देवे। पूर्व की भाँति ही परिसमूहन और और पर्युक्षण करना चाहिए। दोनों हाथों को प्रतप्त करके मुख को विमृष्ट करे। हे अग्ने! आप तनूपा हैं अतएव मेरे तनू की रक्षा करो। हे अग्ने! आप आयुंष अर्थात् आयु के प्रदान करने वाले हैं अतः मुझको आयु को प्रदान कीजिये। हे अग्ने! आप वर्चस के दाता है इसलिये मुझे वर्चस प्रदान करिये। हे अग्ने! आप ऐसा करिये कि जो भी मेरे शरीर में न्यूनता हो उस कमी को आप परिपूर्ण कर दीजिये। देव सविता मुझे मेधा को प्रदान करें—देवी सरस्वती मेरी मेधा को देवें—दोनों अश्विनी कुमार देव मेरी मेधा का आधान करें। जो पुष्कर स्रज वाले हैं। यह मन्त्र बोलते हुए प्रार्थना करे। अपने शरीर के सब अङ्गों का आलभन करके इस मन्त्र का जप करता है—मेरे सम्पूर्ण अङ्ग आप्यायित होवें वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, यश, बल—इसमे त्र्यायुष सब अङ्गों को भस्म से करता है। भस्म से ललाट में—ग्रीवा में—दाहिने कन्धे में और हृदय में प्रति मन्त्र त्र्यायुष करे—इति ।।५।।

अत्र भिक्षाचर्यचरणम् । भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत । भवन्मध्यां राजन्यः । भवदन्त्यां वैश्यः । तिस्रोऽप्रत्याख्यायिन्यः । षड् द्वादशापरिमिता वा । मातरं प्रथमामेके । आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतोऽहः शेषं तिष्ठेदित्येके । अहिंसन्नरण्यात्समिधमाहृत्य तस्मिन्नग्नौ पूर्ववदाधाय वाच विसृजते अधः शाय्यक्षारालवणाशी स्यात् । दण्डधारणमग्निपरिचरणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या । मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानिवर्जयेत् । अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् । द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम् । यावद्ग्रहणं वा । वासांसि शाणक्षौमाविकानि । ऐणेयमजिनमुत्तरीय ब्राह्मणस्य । रौरवं राजन्यस्य । आजं गव्यं वा वैश्यस्य । सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात् । मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य । धनुर्ज्या राजन्यस्य । मौर्वी वैश्यस्य । मुञ्जाभावे कुशाश्मन्तकबल्वजानाम् पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः । बैल्वो राजन्यस्य । औदुम्बरो वैश्यस्य । सर्वे वा सर्वेषाम् । (केशसंमितो ब्राह्मणस्य दण्डो ललाटसंमितः क्षत्रियस्य घ्राणसंमितो वैश्यस्य) आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिशृणुयात् । शयान चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठस्तिष्ठन्तं, चेदभिक्रामन्नभिक्रामन्त चेदभिधावन् । स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्य वसत्यमुत्राद्य वसतीति तस्य स्नातकस्यकीर्त्तिर्भवति । त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति । समाप्य वेदमसमाप्य व्रत यः समावर्तते स विद्यास्नातकः । समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातकः । उभयंसमाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातक इति । आषोडशाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालोभवति । आद्वाविंशाद्र जन्यस्य । आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्ध्व पतित-

सावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः। कालातिक्रमे नियतवत्। त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणामपत्ये संस्कारो नाध्यापनं च। तेषां संस्कारेप्सुर्व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन्व्यवहार्या भवन्तीति वचनात्॥ ६

इसके अनन्तर भिक्षाचरण के विषय में बतलाया जाता है। ब्राह्मण वर्ण का ब्रह्मचारी जब भिक्षाचरण करने जावे तो भवत् शब्द का पूर्व में प्रयोग करे अर्थात् 'भवति ! भिक्षां देहि' ऐसा कहे और भिक्षाचरण करे। जो क्षत्रिय वर्ण का ब्रह्मचारी होवे तो उसको भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यदि वैश्य वर्ण का ब्रह्मचारी होतो उसको भवत् शब्द का प्रयोग अन्त में करना चाहिए। इस प्रयोग से ही यह प्रतीत हो जाता है कि किस वर्ण का ब्रह्मचारी भिक्षाचरण कर रहा है। तीनों ही वर्णों के ब्रह्मचारी भिक्षा देने के योग्य हैं। इनमें किसी का भी प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिए। षट् अथवा द्वादश परिमिता होवें। कुछ विद्वानों का मत है प्रथमा भिक्षा माता को लाकर देनी चाहिए। अपने आचार्य के लिये भिक्षा का निवेदन कर देवें और मौन होकर दिन के शेष तक स्थित रहे--ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। आदि होता हुआ अरण्य से समिधा का आहरण करके उस अग्नि में पूर्व की ही भाँति आधान करके वाणी का विसृजन करता है—भूमि पर नीचे शयन करने वाला और अक्षराल वर्ण का अशन करने वाला होना चाहिये। ब्रह्मचारी को दण्ड को धारण करना--अग्नि का नित्य नियम से परिचरण करना--अपने गुरुदेव की सेवा—सुश्रूषा करना और भिक्षाचरण करना चाहिये। उपवीती ब्रह्मचारी को मधु—मांस—मज्जन--ऊपर (ऊँचा) आसन--स्त्री गमन--अनृत--अदत्तादान इन सबको वर्जित कर देना चाहिये। अड़तालीस वर्ष पर्यन्त वेद ब्रह्मचर्य का समाचरण करे। अथवा बारह-बारह वर्ष प्रत्येक वेद में लगावे। अथवा जितने समय में भी वेदों का ग्रहण होवे तब तक करना चाहिए। ब्रह्मचारी के धारण करने के लिये सबके वस्त्र और

क्षौम वस्त्र तथा आविक वस्त्र होने चाहिये । ब्राह्मण वर्ण के ब्रह्मचारी का उत्तरीय वस्त्र ऐणेय अजिन होना चाहिए । क्षत्रिय का उत्तरीय रौरव अजिन अर्थात् रुरु का चर्म होना चाहिए । वैश्य का उत्तरीय वस्त्र अर्थात् शरीर पर ऊपर ओढ़ने का वस्त्र बकरी का अथवा गौ का चर्म होना चाहिये । अथवा न होने पर सभी का उत्तरीय वस्त्र गौ का अजिन ही होवे क्योंकि यह प्रधान होता है ।

ब्राह्मण की मेखला मूँज की होनी चाहिए । यदि मूँज का अभाव होतो कुशाश्मन्तक बल्वजों की बनावे । धनुष की प्रत्यन्चा की मेखला क्षत्रिय की होनी चाहिये और वैश्य की मौर्वी मेखलावन्त होनी चाहिए । ब्राह्मण के लिये दण्ड पलाश (ढाक) वृक्ष का रक्खे—राजन्य (क्षत्रिय) का दण्ड बिल्व वृक्ष का होना चाहिये । अथवा सभी उपर्युक्त वृक्षों का दण्ड सभी वर्ण वालों के लिये हो सकता है । ब्राह्मण के दण्ड की ऊँचाई केशों के बराबर होनी चाहिये । क्षत्रिय का दण्ड ललाट के समान ऊँचा होना चाहिये । नासिका के बराबर वैश्य वर्ण वाले ब्रह्मचारी का दण्ड होना चाहिये । आचार्य के द्वारा जिस समय में बुलाया गया हो उसी समय में उठकर प्रतिश्रवण करना चाहिए । यदि गुरुदेव शयन कर रहे हों तो बैठा रहे और यदि आचार्य वर बैठे हों तो खड़ा रहे—यदि गुरुदेव खड़े हो तो स्वयं अभिक्रमण करे और यदि वे अभिक्रमणकारी हों तो अभिधावन करे । वह इस प्रकार से वर्तमान होता हुआ यहाँ पर अंत वास करता है और यहाँ पर आज रहता है—इति अर्थात् यह उस स्नातक की कीर्त्ति होती है । स्नातक भी तीन प्रकार के हुआ करते है—एक विद्यास्नातक होता है—दूसरा व्रतस्नातक होता है और तीसरा विद्या व्रतस्नातक हुआ करता है । इति ॥

वेद को समाप्त करके और व्रत को समाप्त न करके जो समावर्त्तन किया करता है वह विद्या स्नातक कहा जाता है । व्रत को तो समाप्त कर देवे और वेद को समाप्त न करे और समावर्तन किया करता है वह व्रतस्नातक नाम से पुकारा जाया करता है । जो वेद और व्रत दोनों को

समाप्त करके समावर्तन करता है वही विद्या व्रतस्नातक होता है। इति सोलह वर्ष तक उपनयन संस्कार का ब्राह्मण का काल अनतीत होता है अर्थात् सोलह वर्ष की उम्र तक ब्राह्मण के उपनयन संस्कार काल व्यतीत हुआ नहीं माना जाता है। अधिक से अधिक सोलह वर्ष तक उपनयन करा ही देना ब्राह्मण के लिए आवश्यक है। बाईस वर्ष की अवस्था तक क्षत्रिय काल अनतीत माना जाता है। चौबीस वर्ष की आयु तक वैश्य का उपनयन संस्कार करा देने का काल अनतीत होता है। इन तीनों वर्णों के लिए बताने वालों के निकल जाने पर ये सब पतित सावित्रीक हो जाया करते हैं अर्थात् फिर इनको सावित्री के ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं रहता है और पतित हो जाया करते हैं। उपर्युक्त आयु के समाप्त हो जाने पर फिर इनको नहीं पढ़ाना चाहिये—न याजन ही कराना चाहिए और फिर इनके साथ कोई भी अभिव्यहार ही करना चाहिए। काल के अतिक्रम हो जाने पर नियतवत् होवे। तीन पुरुष (पुश्त-पीढ़ी) तक जो सावित्री पाने के अधिकार से पतित हो गये हों उनके अपत्य (सन्तति) में भी संस्कार नहीं होता है और न अध्याय नहीं होता है। उनके संस्कार की इच्छा रखने वाला पुरुष व्रात्यस्तोम के द्वारा यजन करके स्वेच्छया अध्ययन करें और फिर वे व्यवहार के योग्य ही हो जाया करते हैं–ऐसा वचन है ॥६॥

अथोपनीतो ब्राह्मणस्त्रिशिखःशिखी जटिलो मुण्डो वाऽक्षारालवणाशी स्यात्सावित्रं षड्रात्रं त्रिरात्रं सद्य:काल वा चरेत्तदेव व्रतमुदीक्ष्य दण्डमपो निधाय मेखलां यज्ञोपवीतं चाप्स्वन्तरिति प्रत्यृच नमो वरुणायेति त्रिमधुरं दत्वा ततोऽस्याग्नेय प्रथम वेदव्रतमादिशेद्ब्राह्मणक्षत्रियविशां पञ्चसांवत्सरिकाणि वेदव्रतानि भवन्त्याग्नेयं शुक्रियमौपनिषदं शौलभ गोदानमिति पञ्चसांवत्सरिकाणि वेदव्रतानि चरित्वा स्नात्वोपव्रतं चरेत्त्रिष्ववगुण्ठनं शुक्रियादिषु शुक्रियं शुक्रभिः श्रावयेदौपनि-

षड्भिः शौलभँशौलभिनीभिरत्रत्रा विद्यमान आब्रह्मन्नुदीरतामानो भद्रा आशुः शिशान इमानुकमिति च वेदशिरसाऽवगुण्ठयेदवगुण्ठनीं त्रिवालिपञ्चवालिं वा नाभिदेशात्प्रच्छाद्य वाग्यतोऽरण्येऽधःशयीत ग्रामे गोष्ठेदेवतायतने वा व्युष्टायामवगुण्ठनीमरण्ये विसृजेदहृश्रमस्योदुत्यं चित्रं देमित्युदिवानातेऽर्के जपति वर्षति द्यौः शान्तिरिति शान्ति करोति शान्तिभाजनं गुरवे दद्यादेवमेवावगुण्ठनीं च गोदाने गोमिथुन तस्माद्गोदानमिति तस्माद्गोदानमिति ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर उपनयन संस्कार किया हुआ ब्राह्मण तीन शिखाओं वाला—शिखी—जटित अर्थात् जटाधारी अथवा मुण्डित अक्षारालवणाशी होना चाहिए। सावित्री छै रात्रि तक—तीन रात्रि तक अथवा सद्यः काल वरण करे। उसी व्रत का उद्धीक्षण करके दण्ड को अपने रखकर मेखला और यज्ञोपवीत को जल में अन्दर रक्खे। प्रत्येक ऋचा में "नमो वरुणाय" इससे शिमधुर देकर इसके अन्तर इसको आग्नेय प्रथम वेद व्रत का आदेश करना चाहिए। ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों के वेद व्रत पाँच वर्ष में होने वाले होते हैं। आग्नेय, शुक्रिय, औपनिषद, शौलभ और गोदान–इन पञ्च साम्वत्सरिक वेद व्रतों का समाचरण करे। फिर स्नान करके उपव्रत का समाचरण करना चाहिए। तीनों में अवगुण्ठन होता है। शुक्रयादि में शुक्रमिः शुक्रिय का श्रवण करावे। औपनिषदों के द्वारा औपनिषद का करे, शौलभिनियों से शौलभ का करे। अथवा "विद्यमान आब्रह्मन्नुदीरितामनो भद्रा आशुः शिशान इमानुकम्" इति। इस मंत्र से वेदशिर से अनगुण्ठनी–त्रिवति अथवा पञ्च बालिका अनगुण्ठन करे। नाभिदेश से प्रच्छाद्य करके वाग्यत (मौन) होकर अरण्य में नीचे शयन करना चाहिए। ग्राम में–गोष्ठ में अथवा देवता यतन में व्युष्टा में अवगुण्ठनी को अरण्य में विसृष्ट करना चाहिए। "अहृश्रम स्यो दुत्यं चित्रं

देवानाम्" इसका सूर्य देव के उदित होने पर जपता है। "वर्षति द्यौ शान्तिः" इति–इससे शान्ति को करता है। शांति भाजन को गुरुदेव के लिये देना चाहिए। इसी प्रकार से अवगुण्ठनी को और गोदान में गौ मिथुन को "तस्माद्गोदानम्" इससे देना चाहिए, तस्मान्गोदानम्"–यह मंत्र है।७।

वेदँसमाप्य स्नायात् । ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्कारिँशकम् । द्वादशकेऽप्येके । गुरुणाऽनुज्ञातः । विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः । षडङ्गमेके । न कल्पमात्रे । कामं तु याज्ञिकस्य । उपसंगृह्य गुरुँ समिधोऽभ्याधाय परिश्रितस्योत्तरतः कुशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात्स्थित्वाऽष्टानामुदकुम्भानां ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येकस्मादपो गृहीत्वा तेनाभिषिञ्चते । तेनमामभिषिञ्चामि श्रियँ यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति । येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताँ सुराम् । येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वा तदश्विना यश इति । आपो हिष्ठेति च प्रत्यृचम् । त्रिभिस्तूष्णीमितरैः । उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य दण्डँ निधाय वासोऽन्यत्परिधायादित्यमुपतिष्ठते । उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायं यावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमयेति । दधितिलान्वा प्राश्य जटालोमनखानि सँहृत्यौदुम्बरेण दन्तान्धावेत् ।। अन्नाद्याय व्यूहध्वँ सोमो राजाऽयमागमत् । स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते

यशसा च भगेन चेति। उत्साद्य पुनः स्नात्वाऽनुलेपनं नासिकयोर्मुखस्य चोपगृह्णीते प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पयेतिः। पितरः शुन्धध्वमिति पाण्योरवनेजनं दक्षिणानुषिच्यानुलिप्य जपेत्। सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन। सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति। अहृत वासो धौत वाऽभौत्रेणाच्छादयीत। परिधास्यै यशो धास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसव्ययिष्य इति। अथोत्तरीयम्। यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यतामिति। एकं चेत् पूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत। सुमनसः प्रतिगृह्णाति। या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन चेति। अथावबध्नीते यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु तेन मग्रथिता. सुमनस आबध्नामि यशो मयीति। उष्णीषेण शिरो वेष्टयते। युवा सुवासा इति। अलंकरणमसि भूयोऽलंकरणं भूयादिति कर्णवेष्टकौ। वृत्रस्येत्थङ्क्तेऽक्षिणी। रोचिष्णुरसीत्यात्मानमादर्शे प्रेक्षते। छत्रं प्रतिगृह्णाति। बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्द्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्द्धेहीति। प्रति ष्ठेस्थो विश्वतो मा पातमित्युपानहौ प्रतिमुञ्चते। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वत इति वैणवं दण्डमादत्ते। दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि वासश्छत्रोपानहश्चापूर्वाणि चेन्मन्त्रः॥ ८॥

वेद का अध्ययन पूर्णतया करके स्नान करना चाहिए। अथवा ब्रह्मचर्य व्रत अड़तालीस वर्ष तक रक्खे। कतिपय मनीषियों का मत है बारह वर्ष तक ही ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन करना चाहिए गुरुदेव

के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके विधि को करना चाहिए और तर्क वेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि षडङ्ग (छै अङ्ग शास्त्रों के सहित) वेद का अध्ययन करना चाहिए। केवल कल्पों को ही नहीं पढ़ावें। याज्ञिक के इच्छानुरूप अध्ययन करे। गुरुदेव को उपसंगृहीत करके समिधाओं का अभ्याधान करे। परिश्रित के उत्तर की ओर प्रागग्र कुशाओं पर आगे स्थित होकर जल कुम्भों में जो "अपूवन्तराम्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्त नूदषुरिन्द्रियहा तान्विजमि योरोचन स्तमिह गृह्णामि" इति—इनसे एक से जल ग्रहण करके उस जल से अभिषिञ्चन करता है। उनसे मुझको अभिषिञ्चन करता हूं और यह अभिषिञ्चन श्री के लिये-यश की प्राप्ति के लिये-ब्रह्म के लिये और ब्रह्म वर्चस के लिये करता हूँ—इति। मंत्र यह है-"येनाक्ष्यावश्य षिञ्चिता यद्वा तदश्विनः यशः" इति। "आपो हिष्ठा मयोभुवः" इससे प्रतिऋचा में अभिषिञ्चन करे। इतर तीनों के द्वारा तूष्णी भाव से करना चाहिए। "उदुत्तमम्" इस मंत्र से मेखला का उन्मोचन करे। दण्ड को रख देवे। अन्य वस्त्र को परिधान करके आदित्य देव का उपस्थान करता है। उपस्थान करने के समय में निम्न मंत्र बोले-"उद्यन्भ्राज भृष्णु रिन्द्रो मरुद्भिरस्था त्प्रातर्यावभि रस्थादद शसनि दसि दशसनि माकुर्वाविदन्मा गमय उद्यन्भ्राज भृष्णु रिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवायं यावभि रस्थात्सहस्र सविरासि सहस्रनि मा कुर्वाविदन्मा गमय" इति। अथवा दधि तिलों का प्राशन करके जटा-लोम- नखों को संहृत करके गूलर की दांतुन से दन्तों को धावन करे। मंत्र यह है—"अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजायमागमत्। स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च" इति। उत्सादन करके पुनः स्नान करें। दोनों नासिकाओं में और मुख का अनुलेपन उपग्रहण करता है। "प्राणापानो मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय" अर्थात् मेरे प्राण और अपान को तृप्त करो-मेरे नेत्र को तृप्त करो-मेरे श्रोत्र को तृप्त करो-इस मन्त्र से करे। "पितरः शुन्ध ध्वम्" इससे दोनों हाथों अवनेजन दक्षिणानुषिञ्चिन कर अनुलेपन करके जाप करना चाहिए। मंत्र यह है-"सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयास

सुवर्चा भुसेन । सुश्रुत कर्णाभ्यां भूयासम्" इति ।

अहृत अर्थात् नूतन अथवा धौत धुला हुआ वस्त्र अभीष्ट के द्वारा आच्छादन करे । "परिधास्ये यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये" इति–इस मन्त्र से आच्छादन करना चाहिए । इसके अनन्तर उत्तरीय वस्त्र ग्रहण करे । इसका मन्त्र यह है—"यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पति । यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्" इति । यदि एक ही हो पूर्व के उत्तर वर्ग से प्रच्छादन करना चाहिए । सुमनसों .। प्रतिग्रहण करता हूँ । जिनका जमदग्नि ने आहरण किया था श्रद्धा के लिये - मेधा के लिये–काम के लिये–इन्द्रिय के लिये उनको मैं प्रतिग्रहण करता हूं यश से और भग से । इसके अनन्तर "यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन संग्रथिताः सुमनस आवध्नामि यशो मयि" इस मन्त्र के द्वारा आवध्नन करता है । उष्णीष (पाग या कोई शिरो वेष्टन) से शिर का वेष्टन करता है अर्थात् मस्तक को ढाकता है । इसका मन्त्र —"युवा सुवासापरिवीत आगात्" इत्यादि है । "अलङ्करणमसि भूयो अलङ्करण भूयात्" इससे कर्णों का वेष्टन करे । "वृत्रस्य" इत्यादि के द्वारा नेत्रों को अक्त करता है । "रोचिष्णुरसि" इस मन्त्र के द्वारा अपने आपको आदर्श (दर्पण) में प्रेक्षण करता है । छत्र का प्रतिग्रहण कर करता है । छत्र धारण का मन्त्र यह है—"बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्द्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्द्धेहि" इति—उपानहो (जूतों को) "प्रतिष्ठितो विश्वतो मा पातम्"—इत्यादि मंत्र के द्वारा प्रति मोचन करता है । "विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः" इति–इस मंत्र से वणव दण्ड का आदान करता है । दन्त प्रक्षालनादीनि अर्थात् दांतों को धोना आदि कर्म नियमी होता है । वस्त्र–छत्र और उपानह यदि अपूर्व हों तो मंत्र का प्रयोग करना चाहिए ।२।

स्नातस्य यमान्वक्ष्यामः । कामादितरः । नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यान्न च गच्छेत् । कामं तु गीतं गायति

वैव गीते वा रमत इति श्रुतेर्ह्य परम् । क्षेमे ग्रामान्तरं न गच्छेन्नच धावेत् । उदपानावेक्षणवृक्षारोहणफलप्रपतनसंधिसर्पणविवृतस्नानविमलङ्घन शुष्कवदनसंध्यादित्यप्रेणक्षमैक्षणानि न कुर्यान् । न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षा जयतीति श्रुतेः । वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् अय मे वज्रः पाप्मानमपहनदिति । अप्स्वात्मानं नावेक्षेत । अजातलोम्नीं विपुंसीं षण्ढ च नोपहसेत् । गर्भिणीं विजन्येति ब्रूयात् । स कुलमिति नकुलम् । भगालमिति कपालम् । मणिधनुरितीन्द्रधनुः । गांधयन्तींपरस्मैनाचक्षीत । उर्वरायामनन्तर्हितायां भूमावूत्सर्पस्तिष्ठन्न मूत्रपुरीषे कुर्यात् । स्वयं प्रशोर्णेन काष्ठेन गुदं प्रमृजीत । विकृत वासो नाच्छादयीत । दृढव्रतो वधत्रः स्यात्सर्वत आत्मान गोपायेत् सर्वेषां मित्रमिव (शुक्रियमध्येष्यमाणः) ॥ ६ ॥

स्नान किये हुए पुरुष के यमों को बतलाया जाता है । काम से इतर रहे । नृत्य (नाच) गीत (गाना) और वादित्र (बाजे) आदि को नहीं करना चाहिये और जहाँ पर ये उपयुक्त इत्यादि होते हैं वहाँ पर पर गमन भी नहीं करना चाहिए । "काम पूर्वक तो गीत को गाता है अथवा वैव गीत में रमण करता है"—इस श्रुति के वचन से अपर है । कुशल क्षेत्र के समय में रात्रि में अन्य ग्राम में गमन नहीं करना चाहिए और दौड़ भी नहीं लगाना चाहिए । तात्पर्य यह है कि यदि कोई आपत्ति काल उपस्थित न हो तो रात्रि में दूसरे ग्राम में न जावे और धावन भी न करे । तथा निम्नलिखित निषिद्ध कर्मों को कभी नहीं करना चाहिये—यथा—उपानहों का अवेक्षण, वृक्ष पर समारोहण, फलों का गिराना, सन्धि काल में सर्पण करना खुले स्थान में स्नपन करना, विषम स्थल का लङ्घन करना, शुष्क वदन वाला रहना, सन्धि कालों में अर्थात् उदयास्त मन वेला में आदित्य का दर्शन करना और भैक्षण करना अर्थात् भीख माँगना आदि कर्मों को नहीं करना

चाहिए। "न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षां जयति—इति" यह श्रुति का वचन है। "अय मे वज्रः पाप्मानम पहन् विति" इस मन्त्र से वर्षते हुए मे अप्रावृत्त गमन करना चाहिए। जल मे अपने आपकी परछाई को नहीं देखना चाहिए। अजात लोगों के वपु वाली स्त्री की ओर षण्ढ (नपुंसक) पुरुष को देखकर कभी उपहास (मजाक) नहीं करना चाहिए। गर्भिणी गर्भ धारण करने वाली को विजन्या— यह बोलना चाहिए। न कुल है—इति न कुल होता है। भगालम्—यह कपालम् होता है। मणिधनु—यह इन्द्र धनुष है। जो गौ धयन कर रही है अर्थात् अपने वत्स को दूध पिला रही हो उसका वत्स का दूध पिलाने की बात कभी दूसरे से नहीं कहना चाहिए। उर्वरा अर्थात् उपजाऊ और अनन्तर्हिता भूमि में उत्सर्पण करता हुआ तथा स्थित रहता हुआ मूत्र का तथा मल का त्याग नही करना चाहिए। स्वयं प्रशीर्ण काष्ठ से गुदा द्वार को प्रमृष्ट करना चाहिए। कभी भी विकृत वस्त्र को आच्छादित नहीं करना चाहिए। दृढव्रत वाला बनन होना चाहिए। सभी ओर से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिए और सबके साथ मित्र की तरह व्यवहार करना चाहिए और शुक्रिय का अवेष्यमण रहना चाहिए। ६।

तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्। अमांसाश्यमृण्मयपायी। स्त्रीशूद्रशवकृष्णशकुनिशुनां च दर्शननमसंभाषा च तैः। शवशूद्रसूतकान्नानि चनाद्यात्। मूत्रपुरीषे ष्ठीवनं चातपे न कुर्यात्सूर्याच्चात्मान नान्तर्दधीत। तप्तेनोदकार्थान्कुर्वीत। अवज्योत्य रात्रौ भोजनम्। सत्यवदनमेव वा। दीक्षितोऽप्या तपादीनि कुर्यात्प्रवर्ग्यवांश्चेत्॥ १०॥

तीन रात्रि पर्यन्त व्रत का समाचरण करे। अमांसाशी और अमृण्मय पायी रहना चाहिए। स्त्री–शूद्र—शव (मृतदेह) कृष्ण पक्षी और कुत्तों का दर्शन करना और उनके साथ सम्भाषण नही करना चाहिए शव-शूद्र और सूतक का अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। मूत्र त्याग—

मल त्याग और थूकना ये कभी भी आतप में न करे और सूर्यदेव से आत्मा का अन्तर्धान नहीं करना चाहिए। नग्न होकर उदकार्थों को करे। अवाजोत्य रात्रि में भोजन करे। अथवा सर्वदा सत्य भाषण करना चाहिए यदि प्रवर्ग्यवान् हो तो दीक्षित होता हुआ भी आतपादिकों को करे। १०।

अथातः पञ्चमहायज्ञाः। वैश्वदेवादन्नात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयाद्ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतय इति। भूतगृह्येभ्यो मणिके त्रीन् पर्जन्यायाद्भ्यः पृथिव्यै। धात्रे विधात्रे च द्वार्ययोः प्रतिदिशं वायवे दिशां च। मध्ये त्रीन्ब्रह्मणेऽन्तरिक्षाय सूर्याय। विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यश्च भूतेभ्यस्तेषामुत्तरतः। उषसे भूतानां च पतये परम्। पितृभ्यः स्वधा नम इति दक्षिणतः। पात्रं निर्णिज्योत्तमपरस्यां दिशि निनयेद्यक्ष्मैतत्त इति। उद्धृत्याग्रं ब्राह्मणायावनेज्य दद्याद्धन्तत इति। यथार्हं भिक्षुकानातिथींश्च संभजेरन्। बालज्येष्ठा गृह्या यथार्हमश्नीयु:। पश्चाद्गृहपतिः पत्नी च। पूर्वो वा गृहपतिः तस्मादु स्वादिष्ठं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः। अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाष्ठाद्देवेभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रात्॥ ११॥

इसके अनन्तर पाँच महायज्ञों के विषय मे बतलाया जाता है। वैश्वदेव अन्न से पर्युक्षण करके स्वाहाकारों के द्वारा हवन करना चाहिये। आहुतियाँ ब्रह्मा के लिये—प्रजापति के लिये—गृह्यों के लिए—कश्यप के लिये और अनुमति के लिये होनी चाहिए। इति। भूतगृह्यों के लिये मणिक में तीन को पर्जन्य के लिए जलों के लिए और पृथिवी के लिये देवे। धाता और विधाता के लिये दोनों को द्वार पर देना चाहिये। प्रति दिशा में वायु के लिए और दिशाओंको देवे। मध्य में तीन ब्रह्मा के लिये—अन्तरिक्ष के लिए और सूर्य के लिए देना चाहिये।

उनके उत्तर की ओर विश्व देवों के लिए और विश्व भूतों के लिये देवे। उसके लिये और भूतों के पति के लिए पर देवे। दक्षिण की ओर "पितृभ्य: स्वधा नम:" इससे देना चाहिए। "यक्ष्मै तस्ते" इससे पात्र का निर्णेजन करके उत्तरापरा दिशा में निनयन करे। अग्र को उद्धृत करके "हन्त इति" इससे ब्राह्मण के लिए अवनेज्य देवे। यथार्ह भिक्षुकों को और अतिथियों की भली भाँति सेवा करनी चाहिये। बालक और ज्येष्ठ गृह्य यथार्ह आशन करें इन सब के पीछे गृह का पति और पत्नी दोनों भोजन करें। "पूर्वौवा गृहपति तस्माद् स्वादिष्ट गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयात्" इति–इस श्रुति का वचन है। दिन प्रतिदिन स्वाहा करनी चाहिए। अन्न के अभाव में किसी के द्वारा आकाश्स देवों के लिये – पितृगण के लिए और मनुष्यों के लिये उदकपात्र से करे। ११।

अथातो धर्मजिज्ञासा। केशान्तादूर्ध्वमपत्नीक उत्सन्ना-ग्निरनग्निको वा प्रवासी ब्रह्मचारी चान्वग्निरिति ग्रामाग्निमाहृत्य पृष्ठोदिवीत्यधिष्ठाप्य त्रिभिश्च सावित्रैः प्रज्वाल्य ता ँ सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानि देवसवितरिति पूर्ववदक्षतैर्हुत्वा पाकं पचेत्तत्र वैश्वदेवं ब्रह्मणे प्रजापतये गृह्याभ्यः कश्यपायानुमतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽग्नये स्विष्टकृत इत्युपस्पृश्य पूर्ववद्बलिकर्मैव कृते न वृथा पाको भवति न वृथा पाकं पचेन्न वृथा पाकमश्नीयादत्र पिण्डपितृयज्ञः पश्चादाग्रहायणानि कुर्यात् ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर इसलिए धर्म के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है। केशान्त से ऊर्ध्व में अपत्नीक—उत्सन्नाग्नि अथवा अनग्निक, प्रवासी और ब्रह्मचारी "अनाग्नि: "इति–इससे ग्राम की अग्नि का आहरण करके "पृष्ठोदिवि" इति–इससे अधिष्ठापित करके और तीन सावित्र मन्त्रों से प्रज्वलित करके "ता ँ स वितुस्तत्सवितु विश्वानि देव सवितरित" इस मन्त्र से पूर्व की भाँति अक्षतों के द्वारा हवन करके

पाक का पाचन करे। वहाँ पर वैश्वदेव को ब्रह्मा के लिये—प्रजापति के लिये—गृह्याओं के लिये—कश्यप के लिये—अनुमति के लिए—विश्वेदेवाओं के लिये अग्नि के लिये और स्विष्ट के लिए उपस्पर्शन करके पूर्व की भाँति इस प्रकार से बलिकर्म्म के करने पर पाक वृथा नहीं होता है और वृथा पाक का पाचन भी नहीं करना चाहिए और वृथा पाक का अशन भी नहीं करे। यहाँ पर पितृ पिण्ड यज्ञ होता है। इसके पीछे आग्रहायणी को करना चाहिए। १२।

अथातोऽध्यायोपाकर्म। ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणस्य पञ्चमीं हस्तेन वा। आज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति। पृथिव्या अग्नय इत्यृग्वेदे। अन्तरिक्षाय वायव इति यजुर्वेदे। दिवे सूर्ययेति सामवदे। दिग्भ्यश्चन्द्रमस इत्यथर्ववेदे। ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति सर्वत्र। प्रजापतये देवेभ्य ऋषिभ्यः श्रद्धायै मेधायै सदसस्पतयेऽनुमतय इति च। एतदेव व्रतादेशनविसर्गेषु। सदसस्पतिमित्यक्षतधानाभिः। सर्वेऽनुपठेयुः। हुत्वाहुत्वौदुम्बर्यं स्यिस्रस्तिस्रः समिध आदध्युरार्द्राः सपलाशा घृताक्ताः सावित्र्या। ब्रह्मचारिणश्च पूर्वकल्पेन। शन्नोभवन्त्वित्यक्षतधाना अखादन्तः प्राश्नीयुः। दधिक्राव्ण इति दधि भक्षयेयुः। स यावन्तं गणमिच्छेत्तावतस्तिलानाकर्णफलकेन जुहुयात्सावित्र्या शुक्रज्योतिरित्यनुवाकेन वा। प्राशनान्ते प्रत्यङ् मुखेभ्य उपविष्टेभ्य ॐकारमुक्त्वा त्रिश्च सावित्रीमध्यायादीन्प्रब्रूयात्। ऋषिमुखानि बह्वृचानाम् पर्वाणि चन्दोगानाम्। सूक्तान्याथर्वणानाम्। सर्वे जपन्ति सह नोऽस्तु सह नोऽवतु सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामह इति। त्रिरात्रं नाधीयीरन्। लोमनखानामनिकृन्तनम्। एके प्रागुत्सर्गात् ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर अध्यायोपा कर्म होता है। औषधियों के प्रादुर्भाव हो जाने पर श्रवण नक्षत्र के द्वारा श्रावणी पौर्ण मासीमें अथवा हस्त नक्षत्र में श्रावण मास की पञ्चमी तिथि में करे। आज्य (घृत) के भागों का यजन करके आज्य की आहुतियों से हवन करता है। "पृथिव्या अग्नये" इति—यह ऋग्वेद में है। "अन्तरिक्षाय वायवे"—यह यजुर्वेद में है। "दिवे सूर्याय" इति—यह साम वेद मे है। "दिग्भ्यश्चन्द्रमसे" इति—यह अथर्व वेद में है। "ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्च" इति—यह सर्वत्र होता है। "प्रजापतये देवेभ्य ऋषिभ्यः श्रद्धायै मेधायै सदसस्पतयेऽनुमतये च" इति—और यह भी है। यह ही व्रतादेशन विसर्गों में होता है। "सदसस्पतिम्" इति—इसको अक्षत धान वाले तीन बार पढ़ें। और जो वहां पर हों वे सब पीछे पढ़ें। हवन करकरके तीन-तीन गूलर की समिधायें आदधान करनी चाहिए। आर्द्र से भीजे हुए सपलाश घृत से अक्त सावित्री के द्वारा करना चाहिए। और जो ब्रह्मचारी हों वे पूर्व कल्प से करें। "शन्नोभवन्तु"—इससे अक्षत धान वाले न खाते हुए प्राशन करें। "दधि क्राव्णो" इति—इससे दही का भक्षण करना चाहिए। वह जितने गण को इच्छा करता है उतने ही तिलों को आकर्ष फलक के द्वारा हवन करना चाहिए। सावित्री के द्वारा अथवा "शुक्रज्योति रिति" इस अनुवाक के द्वारा हवन करना चाहिए। प्राशन करने के अन्त में पश्चिम की ओर मुख वाले उपविष्टों के लिये "ॐकारम्" को कहकर तीन बार सावित्री को अध्यायादि को बोलना चाहिए। जो बाह्वृच हों उनको ऋषि मुखानि बोलना चाहिए। जो छन्दोग हों उनको पर्वों को बोलना चाहिए। आथर्वणों को सूक्त बोलने चाहियें। सब लोग "सह नोऽस्तु सह नोऽवतु सह न इदं वीर्यं वीर्यं वदस्तु ब्रह्म। इन्द्रस्तद्वे द येन यथा न विद्विषामहे" इति—इसका जाप करते है। तीन रात्रि तक अध्ययन नहीं करना चाहिए। लोम और नखों को भी कृन्तन नहीं करना चाहिए। कुछ विद्वानों का यह मत है कि उत्सर्ग से पहिले करें। १२।

वातेऽमावास्याया ँ सर्वानध्यायः । श्राद्धाशने चोल्का-वस्फूर्जद्भू मिचलनाग्न्युत्पातेष्वृतुसधिषु चाकालम् । उत्सृष्टेष्वभ्रदर्शने सर्वरूपे च त्रिरात्र त्रिसन्ध्य वा । भुक्त्वार्द्रपाणिरुदके निशाया ँ संधिवेलयोरन्तःशवे ग्रामे ग्रामान्तर्दिवाकीर्त्ये । धावतोऽभिशस्तपतितदर्शनाश्चर्याभ्युदयेषु च तत्कालम् । नीहारे वादित्रशब्द आर्त्तस्वने ग्रामान्तेश्मशाने श्वगर्दभोलूकशगालसामशब्देषु शिष्टाचरिते च तत्कालम् । गुरौ प्रेतेऽपोम्यवयाहृशरात्र चोपरमेत् । सतानूनप्त्रिणि सब्रह्मचारिणिच त्रिरात्रम् । एराकत्रमसब्रह्मचारिणि । अर्द्ध षष्ठान्मासानधीत्योत्सृजेयुः । अर्द्धसप्तमान्वा । अथेमामृच जपन्ति उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत् । परिसख्यस्य धर्मिणो विसख्यानि विसृजामह इति । त्रिरात्र ँ सह्योष्य विप्रतिष्ठ रन् ॥१४॥

वात के वहन होने पर अमावस्या तिथि मे सबका अनध्याय होता है। श्राद्ध के भोजन करने मे–और उल्कावस्फूर्जद् होने पर–भूमि के चलने अर्थात् भूकम्प होने पर—अग्नि के–उत्पातो में–ऋतु की संधियों में अकाल होता है। उत्सृष्टों में–अभ्रदर्शन मे और सर्व रूप मे तीन रात्रि तक अथवा तीन सन्ध्याओं तक अनध्याय होता है। भोजन करके आर्द्र करों वाला उदक में–निशा में–संधियों की वेला मे—शव मे—ग्राम में ग्रामान्तर दिवा कीर्त्य मे—धावन करते हुए–अभिशस्त और पतित के दर्शन मे—आश्रयाभ्युदयों में तत्काल ही अनध्याय होता है। नी हार में–वादित्र के शब्द मे–आर्त्त व्यक्ति की ध्वनि मे–ग्रामान्त में—श्मशान में—कुत्ता, उल्लू, गधा, गीदड़, साम शब्दों के होने पर और शिष्ट चरित में तत्काल अर्थात् जितने समय तक में रहते हैं उतने ही समय तक अनध्याय होता है। अपने श्री गुरुदेव के मृत हो जाने पर अपोम्यवेयं से दश रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय से उपराम रखना चाहिए। सतानून प्त्रिणि स ब्रह्मचारी अर्थात् सदाध्यायी साथी ब्रह्मचारी के प्रेत हो जाने पर तीन रात्रि पर्यन्त अनध्याय रखना चाहिए। जो ब्रह्मचारी सदाध्यायी साथी

न हो उसके मृत ही आने पर एक रात्रि ही अनध्याय मनाना चाहिए। साढ़े छै मास तक अध्ययन करके उत्सर्जन कर देना चाहिये। अथवा साढ़े सात मास तक अध्ययन करके उत्सर्ग करे। इसके उपरान्त 'उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत्। परिसक्ष्यस्य धर्मिणो विसक्ष्याणि विमुचा महे' इति—इस ऋचा का जाप करते है। तीन रात्रि तक साथ रह कर विप्रस्थित हो जाना चाहिए॥१४॥

पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायां वाष्टकायामध्यायानुत्सृजेयुः। उदकान्तं गत्वाद्भिर्देवाँश्छन्दाँसि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान् गन्धर्वानितराचार्यान्संवत्सरं च सावयवं पितृनाचार्यान्स्वांश्च तर्पयेयुः। सावित्रीं चतुरनुद्रुत्य विरताः स्म इति प्रब्रूयुः। क्षपणं प्रवचनं च पूर्ववत्॥ १५॥

पौष मास की रोहिणी में अथवा मध्यमा अष्टका में अध्यायों का उत्सर्ग करना चाहिए। जलाशय के अन्त तक गमन करके जलों के द्वारा देवों को—छन्दों को—वेदों को—ऋषियों को पुराणाचार्यों को—गन्धर्वों को—इतर आचार्यों को और अवयवों सहित सम्वत्सर को—पितृगणों को और अपने आचार्यों को तृप्त करे अर्थात् इन सबका तर्पण करना चाहिये। सावित्री को चार बार अनुद्रुत करके विरता हो गये है—यह बोलना चाहिये। क्षपण और प्रवचन पूर्व की ही भाँति करे॥१५॥

पुष्याहे लाङ्गलयोजनं ज्येष्ठया वेन्द्रदैवत्यम्। इन्द्रं पर्जन्यमश्विनौ मरुत उदलाकाश्यपं स्वातिकारीं सीतामनुमतिं च दध्ना तण्डुलैर्गन्धैरक्षतैरिष्ट्वाऽनडुहोमधुघृते प्राशयेत्। सीरायुञ्जन्तीति योजयेत्। शुनं सुफाला इति कृषेत् फालं वा लभेत॥ न वाऽन्यपदेशाद्वपनानुषङ्गाच्च। अग्रयमिषिच्याकृष्टे दता कृषेयुः। स्थालीपाकस्य पूर्ववद्देवता यजेदुभयोर्व्रीहियवयोः प्रवपन्सीतायज्ञेच। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥ १६॥

किसी परम पुण्य (पवित्र) दिन में लाङ्गल का योजन अथवा ज्येष्ठा से इन्द्र दैवत्य करे। इन्द्र को-पर्जन्य को-अश्विनी कुमारों को-मरुत—उदलाकाश्यप को—स्वातिकारी को-सीता को और अनुमति को दही से, तण्डुलों से, गन्धों से और अक्षतों से अभ्यर्चन करके अनडुहों को मधु और घृत का प्राशन कराना चाहिए। "सीरा युञ्जन्ति" इति-इससे योजित करे। "शुनं ँ सुफाला" इति—इससे कर्षण करे अथवा फल को लब्ध करे। अग्नि-उपदेश से और वयमानुषङ्ग से नहीं करना चाहिए। अग्र भाग में होने वाले का अभिषिञ्चन करके उस समय में जो अकृष्ट हो उसका कर्षण करना चाहिए। स्थाली पाक के देवताओं का पूर्व की ही भाँति यजन करे। दोनों व्रीहि और यवों को सीता और यज्ञ में प्रवसन करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए ॥१६॥

"अथातो वापीकूपतडागारामदेवतायतनानाम् (पुष्करिण्याम्) प्रतिष्ठापनं व्याख्यास्यामः । तत्रोदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे तिथिवारकरणे नक्षत्रे च गुणान्विते तत्र वारुणं यवमयं चरुँ श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति त्वन्नो अग्न स त्वं नो अग्ने इमम्मे वरुण तत्त्वा यामि येते शतमयाश्चाग्न उदुत्तममुरुँहि राजा वरुणस्योत्तम्भनमग्नेरनीकमिति । दशाद्यँ हुत्वा स्थालीपाकस्य जुहोत्यग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा यज्ञाय स्वाहोग्राय स्वाहा भीमाय स्वाहा शतक्रतवे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहेति । यथोक्तं स्विष्टकृत्प्राशनान्ते जलचराणि क्षिप्त्वाऽलंकृत्य गां तारयित्वा पुरुषसूक्तं जपन्नाचार्याय वरं दत्त्वा कर्णवेष्टकौ वासाँसि धेनुर्दक्षिणा । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १७ ॥"

इसके अनन्तर बावड़ी-कूआ-तालाब—बाग-देवायतन आदि का (पुष्करिणी में) प्रतिष्ठा करने के विषय में व्याख्या करेंगे। वहाँ पर उत्त-

रायण सूर्य के होने पर आपूर्यमाण पक्ष में किसीभी पवि नदत्रि में और तिथि, बार, नक्षत्र के गुणान्वित होने पर वहाँ पर वारुण यवमय चरु का अपण (हवन) कराकर आज्य भागों का यजन कर आज्य की आहुतियों से हवन किया जाता है। मन्त्र यह है– 'त्वन्नो अग्न स त्वं नो अग्ने इमम्मे वरुण तत्त्वा यामि येते शतमयाश्चग्ने उदूत्तममुरु ँ हि राजा वरुणस्योत्तम्भन अग्ने रत्नीकम्' इति। चार ऋचाओं का हवन करके स्थाली पाक का हवन करता है। निम्न मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिए— 'अग्नये स्वाहा'—सोमाय स्वाहा—वरुणाय स्वाहा—यज्ञाय स्वाहा—उग्राय स्वाहा भीमाय स्वाहा—शतक्रतवे स्वाहा—व्युष्ट्यै स्वाहा—स्वर्गाय स्वाहा" इति यथोक्त स्विष्टकृत् प्राशन के अन्त में जलचरों को भिन्न करके अलंकृत करके गौ को तारित करे और पुरुष सूक्त का जाप करता हुआ अपने आचार्य को वर देकर कर्णवेष्टकों को—वस्त्रों को देवे तथा धेनु को दक्षिणा में देनी चाहिये। इस सब कृत्य के समाप्त हो जाने पर फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१७॥

अथातः श्रवणाकर्म । श्रावण्यां पौर्णमास्याम् । स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽक्षतधानाश्चैककपालं पुरोडाशं धानानां भूयसीः पिष्ट्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति। अप श्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा। न वै श्वेतस्याभ्याचारेऽहिर्ददर्श कचन। श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति विष्णवे श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्चेति। धानावन्तमिति धानानाम्। स्मृतास्कान्सक्तून्सर्पेभ्यो जुहोति। आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपतये स्वाहाऽभिभूः सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहेति। सर्वहुतमेककपालं ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति। प्राशनान्ते सक्तूनामेकदेशं शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रम्य बहिः शालायाः स्थण्डिलमुपलि-

ष्योल्कायां ध्रियमाणायां माऽन्तरागमतेत्युक्त्वा वाग्यतः सर्पानवनेजयति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वाभिभूः सौर्य दिव्यानां सर्पाणामधिपतेऽवनेनिक्ष्वेति । यथाऽवनिक्तं दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपत एष ते बलिः श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपत एष ते बलिरभिभूः सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपत एष ते बलिरिति । अवनेज्य पूर्ववत्कङ्कतैः प्रलिखति । आग्नेयपाण्डुपार्थिवानां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्व श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वाभिभूः सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वेति । अञ्जनानुलेपनं स्रजश्चाञ्जस्वानुलिम्पस्व स्रजोऽपि नह्यस्वेति । सक्तुशेषं स्थण्डिले न्युप्योदपात्रेणोपनिनीयोपतिष्ठते नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तिसृभिः । स यावत्कामयेत न सर्पा अभ्युपेयुरिति तावत्सन्ततयोदधारया निवेशनं त्रिः परिषिञ्चन्परीयाद पश्वेतपदा जहीति द्वाभ्याम् । दर्वीं शूर्पं प्रक्षाल्य प्रतप्य प्रयच्छति । द्वारदेशे मार्जयन्त आपो हिष्ठेति तिसृभिः । अनुगुप्तमेतं सक्तुशेषं निधाय ततोऽस्तमितेऽस्तमितेऽग्निं परिचर्य दर्व्योपघातं सक्तून्सर्पेभ्यो बलिं हरेदाग्रहायण्याः । तं हरन्तं नान्तरेण गच्छेयुः । दर्व्याचमन प्रक्षाल्य निदधाति । धानाः प्राश्नन्त्यसं स्यूताः । ततो ब्राह्मणभाजनम् ॥ १० ॥

इसके अनन्तर श्रवणाकर्म के विषय में वर्णन किया जाता है। यह श्रावणी पौर्ण मासी में होता है। स्थालीपाक का हवन करके और अक्षत धाना एक कपाल धानों की बहुत सी पुरोडाश को पीसकर आज्य भागों का यजन करके आज्य की आहुतियों का हवन करता है। मन्त्र

यह है—"अप श्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च । सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबान्धवैः स्वाहा" । "न वै श्वेतस्याभ्याचारेऽहिर्ददंशं कंचन । श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहा" इति । स्थालीपाक का विष्णु के लिये—श्रवण के लिये—श्रावणी के लिये पौर्णमासी के लिये और वर्षाओं के लिये हवन करता है । "धानावन्तम्"—इति—इससे धानों को हवन करता है । घृत से अक्त (मिश्रित) सत्तुआओं का सर्पों के लिये हवन करता है—हवन की आहुतियाँ निम्न लिखित मन्त्रों को पढ़कर देनी चाहिए— "आग्नेय पाण्डु पार्थिवानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा"—"श्वेतवायवान्तरिक्षाणां सर्पाणामधिपतये स्वाहा"—"अभिभूःसौर्य दिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा—इति"—"सर्वहुतमेककपालं ध्रुवाय भौमाय स्वाहा"—इति । प्राशन के अन्त में सक्तुओं के एक देश को सूर्प में रखकर उपनिष्क्रमण करके शाला के बाहिर स्थण्डिल का उपलेपन करके उल्का के ध्रियमाण होने पर "माऽन्तरागमत"—यह कहकर वाग्यत (मौन) होकर सर्पों का अवनेजन करता है आग्नेय पाण्डु पार्थिव सर्पों के अधिपति का अपने जन करके—श्वेत वायवान्तरिक्ष सर्पों के अधिपति का अवनेजन करके—अभिभूः सौर्य दिव्य सर्पों का। अवनेजन करके यथावनिक्त दर्व्योपधात सक्तुओं को सर्पों के लिये बलि का आहरण करता है । हे आग्नेय पाण्डुपार्थिव सर्पो के अधिपते ! यह आपकी बलि है—हे श्वायवान्तरिक्ष सर्पों के अधिपति ! यह आपकी बलि है—हे अभिभूः सौर्य दिव्य सर्पों के अधिपते ! यह तुम्हारी बलि है । अवनेजन करके पूर्व की ही भाँति कङ्कतों से प्रलिखिता है । हे आग्नेय पाण्डु पार्थिव सर्पों के अधिपते ! प्रलिखन करिए । हे श्वेतवायवान्तरिक्षों सर्पों के अधिपति ! प्रलिखन करो । हे अभिभूः सौर्य्य दिव्य सर्पों के अधिपते ! प्रलिखन करो । अञ्जन अनुलेपन और स्रजों का अञ्जन करो—अनुलेपन करो और स्रजों को बद्ध करो । इति । "नमोऽस्तु सर्पेभ्य"इति—इन तीनों से स्थण्डिल में निउपयन करके जल के पात्र से उपनिनयन करके उपस्थित होता है । वह जब तक कामना करता है सर्प नहीं आवेंगे—इति। तब तक निरन्तर रहने वाली जल की धार के द्वारा तीन बार निवेशन का परिषिञ्चन करते हुए "अपश्वेत पदाजहि"

इति—इस दो से परियान करे। दर्वी की और शूर्प का प्रक्षालन करके प्रतप्त करके प्रदान करता है। द्वार देश में "आपोहिष्ठा मयोभुवः" इन तीन मन्त्रों से मार्जन करें अनुगुप्त इस सक्तु के शेष को रखकर इसके अनन्तर अस्तमन वेला में प्रतिदिन अग्नि का परिचरण करके दर्व्युपघात को सक्तुओं को सर्पों के लिये आग्रहायण्य बलि क हरण करे उस आहरण करते हुए के बीच से गमन नहीं करे। दर्व्या चमन का प्रक्षालन करके रख देता है। असंस्यूत धाना प्राशन करते है। इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।१८।

प्रौष्ठपद्यामिन्द्रयज्ञः। पायसमैन्द्रं श्रपयित्वाऽपूपांश्चापूपैः स्तीर्त्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या अजायैकपदेऽहिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्यश्चेति। (स्थालीपाकस्य जुहोतीन्द्राय स्वाहेति) प्राशनान्ते मरुद्भ्यो बलिं हरत्यहुतादो मरुत इति श्रुतेः। आश्वत्थेषु पलाशेषु मरुतोऽश्वत्थे तस्थुरिति वचनात्। शुक्रज्योतिरिति प्रतिमन्त्रम्। विमुखेन च। मनसा। नामान्येषामेतानीति श्रुतेः। इन्द्रं दैवीरिति जपति। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १९ ॥

प्रौष्ठपदी पौर्णमासी में इन्द्र यज्ञ होता है। ऐन्द्र पायस का श्रवण करके अपूपों से अपूपों का स्तरण करके आज्यभागों का यजन कर आज्य (घृत) की आहुतियों से हवन करता है। मन्त्र हवन करने का यह है—"इन्द्रायेइन्द्राण्या अजायैकपदेऽहिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्यश्च" इति। स्थालीपाक का "इन्द्राय स्वाहा" इनसे हवन करता है। "अहुता हो मरुत"—इस श्रुति के वचन से प्राशन के अन्त में मरुतों के लिये बलिका हरण करता है। "आश्वत्थों में पलाशों में मरुत अश्वत्थ मे स्थित रहते है—इस वचन से ऐसा मानना चाहिये। "शुक्रज्योतिः" इति- यह प्रति मन्त्र है। और विमुख से करे। मन से करे। इनके ये नाम हैं"—इति यह श्रुति वचन है। "इन्द्रं दैवीः" इति— इसका जाप करता है। इस समस्त कृत्य के समाप्त हो जाने के पश्चात् फिर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।१९।

आश्वयुज्यां पृषातकाः । पायसमैन्द्रं श्रपयित्वा दधिमधुघृतमिश्रं जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या आश्विभ्यामाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे चेति । प्राशनान्ते दधिपृषातकमञ्जलिना जुहोति । ऊनं मे पूर्यतां पूर्णं मे मा व्यगात्स्वाहेति । दधिमधुघृतमिश्रममात्या अवेक्षन्ते आयात्विन्द्र इत्यनुवाकेन । मातृभिर्वत्सान्सं सृजति रात्रिमाग्रहायणी च । ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ २० ॥

पृषातक इस इन्द्र यज्ञ को आश्वयुगी पौर्णमासी में करते हैं । ऐन्द्र पायस का हवन करके दही—घृत से मिश्रित का हवन करना है । मन्त्र यह है—"इन्द्रायेन्द्राण्या आश्विभ्यामाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे च" इति प्राशन के अन्त में अञ्जलि से दधि पृषातक का हवन करता है । ऊनं मे पूर्णतां पूर्णं मे मा व्यगात्स्वाहा' इससे हवन करना चाहिये । दधि—घृत से मिश्रित को अमात्य अवेक्षण करते हैं । "आयात्विन्द्र" इस अनुवाक के द्वारा करे । उस रात्रि मे और आग्राह्लायणी में वत्सों को माताओं के साथ संसृष्ट कर देना चाहिये । इसके उपरान्त ब्राह्मणों का भोजन करावे ॥२०॥

अथ सीतायज्ञः । व्राहियवानां यत्र यत्र यजेत तन्मयं स्थालीपाकं श्रपयेत् । कामादीजानोऽन्यत्रापि व्रिहियवयोरेवान्यतरं स्थालीपाकं श्रपयेत् । न पूर्वचोदितत्वात्सन्देहः । असम्भवाद्विनिवृत्तिः । क्षेत्रस्य पुरस्तादुत्तरतो वा शुचौ देशे कृष्टे फलानुपरोधेन । ग्रामे वोभयसप्रयोगादविरोधात् । यत्र श्रपयिष्यन्नुपलिप्त उद्धतावोक्षितेऽग्निमुपसमाधाय तन्मिश्रैर्दर्भैः स्तीर्त्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः । तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा । यन्मे किञ्चिदुपेप्सितमस्मिन्कर्मणि वृत्रहन् । तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं

स्वाहा। संपत्तिभूतिर्भूमिवृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्रीःप्रजामिहावतु स्वाहा। यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा। अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन्कर्मण्युपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात्स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति सीतायै यजायै शमायै भूत्या इति। मन्त्रवत्प्रदानमेकेषाम्। स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेर्विनिवृत्तिः। स्तरणशेषकुशेषु सीतागोप्तृभ्यो बलिं हरति पुरस्ताद्ये त आसते सुधन्वानो मिषङ्गिणः। ते त्वा पुरस्ताद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति। अथ दक्षिणतोऽनिमिषा वर्मिण आसते। ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति। अथ पश्चादाभुवः प्रभुवो भूतिर्भूमिः पार्ष्णिः शुनंकुरिः। ते त्वा पश्चाद्गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति। अथोत्तरतो भीमा वायुसमाजवे। ते त्वोत्तरतःक्षेत्रे खले गृहेऽध्वनि गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति। प्रकृतादन्यस्मादाज्यशेषेणच पूर्ववद्बलिकर्म। स्त्रियश्चोपयजेरन्नाचरितत्वात्। संस्थिते कर्मणि ब्राह्मणान्भोजयेत् संस्थिते कर्मणि ब्रह्मणान्भोजयेत् ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर सीतायज्ञ होता है। जहाँ-जहाँ पर व्रीहियवों का यजन करे तन्मय स्थाली पाक का श्रपण करना चाहिए। कामादीजान्यत्र स्थाली पाक का श्रपण करे। पूर्व में प्रेरित होने के कारण से सन्देह नहीं करे। असम्भव होने से विनिवृत्ति हो जाती है। क्षेत्र के

आगे अथवा उत्तर की ओर किसी पवित्र देश में जो फलानुरोध से कृष्ट हो वहां पर करे। अथवा ग्राम में उभय का सम्प्रयोग होने से कोई विरोध नही है। जहां पर श्रपण करने वाला होता हुआ उपलिप्त–उद्धत–अवोक्षित मे अग्नि का उपसमाधान करके उससे मिश्रित दर्भों के द्वारा फैला कर आज्य विभागों का यजन कर आज्य की आहुतियो से हवन करता है। हवन करने का मन्त्र यह है—"पृथिवी द्यौ प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिदेन्द्रमुयह्वये शिवा नः सन्तु हेतयःस्वाहा"–यन्मे किंचिदुपेप्सित मस्मिनकर्मणि वृत्रहन्। तन्मे मर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं स्वाहा" "सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्य श्रैष्ठ्य श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा" "यस्या भावे वैदिक लौकिकानां भूतिर्भवति कर्म्मणाम्। इन्द्र पत्नी मुपह्वये सीता सा मे त्वन्नपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा"। "अश्वावतं गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनी मुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवा सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा"। स्थाली पाक का सीता के लिये—यजा के लिये–शमा के लिये और भूति के लिए हवन करता है। कतिपय मनीषियों का मत है कि मन्त्र के समान ही प्रदान करे। 'स्वाहाकार प्रदाना"—इस श्रुति की विनिवृत्ति है। स्तरण से शेष कुशों पर सीतागोप्ताओं के लिये बलि का हरण करता है। मन्त्र यह है—"पुरस्तात् ये त आसते धुधन्वानो निषङ्गिणः। ते त्वा पुरस्तादगो पायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनो नमं एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति"। अर्थात् आगे जो ये सुन्दरवारी निषङ्ग वाले स्थित है वे आगे तुम्हारी रक्षा करें और अनपायी तथा अप्रमत्त है। इनको नमस्कार है। इनकी मैं बलि करता हूं और इनके लिए इसका हरण करता हूँ। इसके अनन्तर दक्षिण की ओर अनिमिष वर्मों स्थित हैं। वे तुमको दक्षिण में रक्षित रखें। इनको नमस्कार है। मै इनकी बलि करता हूं और इनके लिए बलि का इसको हरण करता हूं। इति ॥ इसके अनन्तर पश्चात् अभुवः प्रभुवो भूतिर्भूमिः पार्ष्णिः शुनंकरिः। वे पश्चिम में तुम्हारी रक्षा करे और अप्रमत्त तथा अनपायी रहें। इनको नमस्कार है। मैं इनकी बलि करता हूं। मै इनके लिये

इसको बलि का हरण करता हूं। इति। इनके उपरान्त उत्तर की ओर क्षेत्र में —गृह में— खल मे–मार्ग में अप्रमत्त और अनपायी होकर रक्षा करें। इनके लिये नमस्कार है। मैं इनकी बलि करता हूं मैं इसको इनके लिए बलिकाहरण करता हूं" इति॥ प्रकृत अन्य से आज्य के शेष के द्वारा पूर्व की ही भांति बलिकर्म करना चाहिए। अपरिसत्व होने से स्त्रियाँ उपयजन न करें कर्म्म के संस्थित होने पर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। संस्थित कर्म में ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए। २१।

तृतीय काण्ड

अनाहिताग्नेर्नव प्राशनम्। नवं स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति। शतायुधाय शतवीर्याय शतोतये अभिमातिषाहे। शतं यो नः शरदोऽजीजानिन्द्रो नेषदतिदुरितानि विश्वा स्वाहा। ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां योऽज्यानिमजीजिमावहात्तस्मै नो देवाः परिधत्तेह सर्वे स्वाहेति। स्थालीपाकस्याग्रयणदेवताभ्यो हुत्वा जुहोति स्विष्टकृते च स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणीहि विश्वाश्च देवः पृतना अविष्यत्। सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मदध्येह्यजरन्न आयुः स्वाहेति। अथ प्राश्नाति। अग्निः प्रथमः प्राश्नातु स हि वेद यथा हविः। शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः। भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि त्वा। स नो मयोभूः पितोआविशस्व शं तोकाय तनुवे स्योन इति। अन्नपतीयया वा। अथ यवानामेतमुत्यं मधुनासंयुतंयवं सरस्वत्या अधि वनाय चक्रुपुः

इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतः सुदानव इति। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ १ ॥

अनाहित अग्नि वाले का नव प्राशन होता है। नवीन स्थाली पाक का श्रयण करके आज्य भागों का यजन कर आज्य की आहुतियों से हवन करता है। मन्त्र यह है—"शतायुधाय" दूसरा मन्त्र है—'ये चत्वार पथयो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी वियन्ति। तेषां योऽज्या निमजी जिमा वहस्तस्मै नो देवाः परिधत्तेह सर्वे स्वाहा" ॥ इति ॥ तीसरा मन्त्र यह है—"स्थाली पाकस्याग्र" इसके अनन्तर प्राशन करता है। प्रथम अग्नि प्राशन करे। वह जैसा हवि है जानते हैं। औषधियां हमारे लिये शिव है। विश्वचर्षणि कृणान करे। मन्त्र ये हैं—"भद्रान्नः श्रेयः" अथवा अन्नपतीया से करे। "अथ यवानामेतमुत्यं मधुना" इसके अनन्तर सभी कृत्य को साङ्ग सम्पन्न कराने वाला सुयोग्य ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए। १।

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यामाग्रहायणीकर्म। स्थालीपाकं श्रपयित्वा श्रवणवदाज्याहुतीर्हुत्वाऽपरा जुहोति। यांजनाः प्रतिनन्दन्ति रात्रीं धेनुमिवायतीम्। संवत्सरस्ययापत्नीसा नो अस्तु सुमङ्गलीः स्वाहा। संवत्सरस्य प्रतिमा या तां रात्रिमुपास्महे। प्रजां सुवीर्यां कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा। संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायेद्वत्सराय वत्सराय कृणुते बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहताः स्याम स्वाहा। ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शिवा वर्षा अभया शरन्नः। तेषामृतूनां शतशारदानां निवात एषामभये वसेम स्वाहेति। स्थालीपाकस्य जुहोति। सोमाय मृगशिरसे मार्गशीर्ष्यै पौर्णमास्यै हेमन्ताय चेति। प्राशनान्ते सक्तुशेषं शूर्पे न्युप्योपनिष्क्रमणप्रभृत्यामार्जनात्। मार्ज-

नान्त उत्सृष्टो बलिरित्याह । पश्चादग्नेः । स्रस्तरमास्तीर्याहृतं च वास अष्लुता अहतवाससः प्रत्यवरोहन्ति दक्षिणतः स्वामी जायोत्तरा यथाकनिष्ठमुत्तरतः । दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं शमीशाखासीतालोष्ठाश्मनो निधायाग्निमीक्षमाणो जपति । अयमग्निर्वीरतमोऽयं भगवत्तमः सहस्रसातमः । सुवीर्योऽयं श्रैष्ठ्ये दधातु नाविति । पश्चादग्नेः प्राञ्चमञ्जलि करोति । दैवीं नावमिति तिसृभिः स्रस्तरमारोहन्ति । ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्प्रत्यवरोहामेति । ब्रह्मानुज्ञाताः प्रत्यवरोहन्ति । आयुः कीर्तिर्यशो बलमन्नाद्य प्रजामिति । उपेता जपन्ति । सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिधीयतान्नःशिवा नो वर्षाःशरदः सन्तु नः शिवा इति। स्योना पृथवि नो भवेति दक्षिणपार्श्वैः प्राक्शिरसः संविशन्ति । उपोदुतिष्ठन्ति । उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्ट्या पृथिव्याःसप्तधामभिरति । एवं द्विरपरं ब्रह्मानुज्ञाताः । अधः शयीरंश्चतुरो मासान्यथेष्टं वा ॥ २ ॥

मार्गशीर्षा पौर्णमासी में आग्रहायणी कर्म्म होता है। स्थालीपाक का हवन करके श्रपण के ही साथ आज्य की आहुतियों का हवन करके अपरा का हवन करता है। मन्त्र ये हैं "यां जनाः प्रतिनन्दन्ति मिवायतीम् । सम्वत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सु मङ्गलीः स्वाहा" । अर्थात् जिस रात्रि को आती हुई धेनु की तरह जन अभिनन्दन करते है और जो सम्वत्सर की पत्नी है वह हमको सुमङ्गल करने वाली होवे । "सम्वत्सरस्य प्रतिमा या ता ँ रात्रियुपास्महे । प्रजां सुवीर्य्यां कृत्वा दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा" । "सम्वत्सराय परिवत्सरा येदा वत्सरा येद्वत्सराय वत्सराय कृणुते बृहन्नमः तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहृताः स्याम स्वाहा"—"ग्रीष्मो हेमन्त उतमो वसन्तः शिवा वर्षा

अभया शरदः । तेषामृतूनां शत शारदानां निवात एषामभये वसम स्वाहा" इति । स्थाली पाक का हवन करता है। सोम के लिए–मृगशिरा के लिए–मार्ग शीर्ष के लिए–पौर्णमासी के लिए और हेमन्त के लिये हवन करता है । प्राशन के अन्त में जो सक्त, शेष रहे उसे शूर्प में रखकर मार्जन पर्यन्त उपनिष्क्रमण प्रभृति में करे । मार्जन के अन्त में बलि उत्सृष्ट होता है–यह कहा है । अग्नि के पीछे । स्रस्तर को फैलाकर और वस्त्र अहत होता है । अहत वस्त्र वाले आप्लुत होते हुए दक्षिण की ओर प्रत्यवरोहण करते हैं स्वामी जाया उत्तरा कनिष्ठ के अनुसार उत्तर की ओर से करे । दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ट कराकर उत्तर में जल पात्र को शमी शाखा सीता लोष्टाश्म को रखकर अग्नि को समीक्षण करता हुआ जाप करता है । मन्त्र यह है–"अयमग्निर्वीरतमोऽयं भगवत्तयः सहस्रसातमः । सुवीर्योऽयं श्रेष्ठघे दधातु नो–इति" पीछे अग्नि के प्राञ्च अञ्जलि को करता है । "दवी नावम्" इति इससे तीनों के स्रस्तर पर आरोहण करते हैं । ब्रह्मा का आमन्त्रण करता है–हे ब्रह्मन् ! "प्रत्यवरोहण करते हैं" इति । ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके प्रत्यवरोहण करते है । "आयुः—कीर्तिः—यशः—बलम्–अन्नाद्यं और प्रजाम्" इति । उपत होते हुए जप करते हैं । सुहेमन्त–सुवसन्त और सुग्रीष्म प्रतिक्षीय शाल हो । वर्षा हमको शिवा हो, शरद हमको शिवा होवें । हे पृथिवी । हमको स्योना होवे–इति । दक्षिण पार्श्वों से प्राक्शिर वाले संवेश करते हैं । मन्त्र यह है—"उपोदुतिष्ठन्ति उगायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य वृष्टघा पृथिव्याः सप्तधामभिः—इति इसी प्रकार से दो बार अपर ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञात होने हैं । नीचे भूमि पर शयन करें अथवा चार मास पर्यन्त यथेष्ट शयन करें ।२।

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्त्रोऽष्टकाः । ऐन्द्री वैश्वदेवी प्राजापत्या पित्र्येति । अपूपमांसशाकैर्यथासङ्ख्यम् । प्रथमाऽष्टका पक्षाष्टम्याम् । स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽऽज्यभागाविष्ट्वाऽऽज्याहुतीर्जुहोति । त्रिं शत्स्वसार उपयन्ति

निष्कृतं समानं केतु प्रतिमुञ्चमानाः । ऋतूं स्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्येछन्दसः परियन्ति भास्वतीः स्वाहा । ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि । विपश्यन्ति पशवोजायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा । एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् । तेन दस्यून्व्यसहन्तदेवा हन्तासुराणामभवच्छचीभिः स्वाहा । अनानुजामनुजां मामकर्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत् । भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वा अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा । अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम् । भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा । पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गा ह्वञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च । पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः समानमूर्ध्नीरधिलोकमेकं स्वाहा । ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषिष्यपामेकामहिमानं बिभर्ति । सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकान्नियच्छतु स्वाहा । या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्यमे । सा नः पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तरां समां स्वाहा । शुक्रऋषभा नभसा ज्योतिषाऽऽगाद्विश्वरूपा शबली अग्निकेतुः । समानमर्थं स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगाः स्वाहा । ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां जनेत्री जनित्री प्रजानाम् । एका सती बहुधोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्वं जरयसि सवमन्यत्स्वाहेति । स्थालीपाकस्य जुहोति । शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं शन्नो द्यौरभयं कृणोतु । शं नो दिशः प्रदिश आदिशो नोऽऽहोरात्रे कृणुतं दीर्घमायुर्व्यश्नवं स्वाहा । आपो मरीचीः परिपान्तु सर्वतो धाता समुद्रो अपहन्तु पापम् । भूतं भविष्यदकृन्तद्विश्वमस्तु मे ब्रह्माभिगुप्तः सुरक्षितः स्यां स्वाहा । विश्वे

आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु। ऊर्ज प्रजाममृत दीर्घमायु प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु न स्वाहेति। अष्टकाय स्वाहेति। मध्यमा गवा। तस्यै वपा जुहोति वह वपा जातवेदः पितृभ्य इति। इतरोऽन्वष्टकासु सर्वासा पाश्वमक्थिसव्याभ्या परिवृते पिण्डपितृयज्ञवत्। स्त्रीभ्यश्चोपसेचन च कर्पूषु सुरया तर्पणेन चाञ्जनानुलेपन स्रजश्च। आचार्यान्तेवासिभ्यश्चानपत्येभ्य इच्छन्। म या वर्षे च तुरीया शाकाष्टका ॥ ३ ॥

आग्रहायणी के आगे तीन अष्टकाएं होती हैं। ऐन्द्री वैश्वदेवी—प्राजापत्या और पित्र्या—इति। ये तीन अष्टकाओं के नाम हैं। अपूप—मांस—शाका में सबया के अनुसार ही करना चाहिए। प्रथमा अष्टका पक्ष की अष्टमी में होती है। स्थालीपाक का श्रपण करके आज्य के भागों का यजन करे। और आज्य की आहुतियां का हवन करता है। मन्त्र ये हैं—'त्रिंशत्स्वसारं उपयन्ति निष्कृत समान केतु प्रतिमुञ्चमाना। ऋतून् स्तन्वत कवय प्रजानती मध्येछन्दस परियन्ति भास्वती स्वाहा"। 'ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि। विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे स्वाहा"। 'एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भ महिमानमिन्द्रम्। तेन दस्यून्व्यसहन्त देवा हन्ता सुराणामभवच्छचीभि स्वाहा"—'अनानुजामनुजा मामकर्त्त सत्य वदन्त्यन्वैच्छ एतत्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त स्वाहा"। 'अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम्। भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयम या वो अन्यामतिमा प्रयुक्त स्वाहा"। पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गा पञ्च नाम्नी मृतवोऽनु पञ्च। पञ्च दिश पञ्चदशेन क्लृप्ता समान मूर्ध्नीरभि लोक मेक स्वाहा"। ऋतस्य गर्भ प्रथमा व्यूषिष्यपामेकामहिमान बिभर्ति। सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु धर्मस्यैका सवितैकां नियच्छतु स्वाहा"। 'या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभ

वद्यमे। सानः पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तरां समां स्वाहा"। "शुक्रऋषभा नभसा ज्योतिषाऽऽगा द्विश्वरूपा शबली अग्नि केतुः। समानमर्थं स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगाः स्वाहा"। "ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानाम्। एका सती बहुधोषो व्यौच्छत्साऽजीर्णा त्वं जरयसि सर्वमन्य स्वाहा" इति। स्थालीपाक का हवन करता है। अन्य मन्त्र है—"शान्ता पृथिवी शिव मन्तरिक्षं शन्नो द्युर्भयं कृणोतु। शं नो दिशः प्रदिशः आदिशो नोऽहोरात्रे कृणुतं दीर्घमायुर्व्यश्नवै स्वाहा"। "आपो मरीचीः परिपान्तु सर्वतोधाता समुद्रो अपहन्तु पापम्। भूतं भविष्यदकृन्त द्विश्वमस्तु मे ब्रह्माभिगुप्तः सुरक्षितः स्यां स्वाहा"। अर्थात् जल मरीची सब ओर से रक्षा करें—धाता समुद्र पाप का अपहनन करें। भूत—भविष्यत् का अकृन्तन करने वाला विश्व मेरा होवे और ब्रह्मा के द्वारा अभिगुप्त होता हुआ मैं सुरक्षित होऊँ। "विश्वे आदित्या वंसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतश्च सन्तु। ऊर्जं प्रजानाममृतं दीर्घमायुः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातुनः स्वाहा" इति। अष्टका के लिये स्वाहा है। मध्यमा गवा है। उसके लिये वपा का हवन करता है। जात वेद पितृगण के लिये वपा का वहन करो। इति। श्वः अन्वष्टकाओं में सबका पार्श्व—सक्थि सव्यों से परिवृत में पिण्ड पितृ यज्ञ के समान है। और स्त्रियों के लिये उपलेपन कपुंओं में सुरा के द्वारा तर्पण से और अञ्जन का अनुलेपन और स्रज देवे। आचार्य और अपत्यहीन अन्ते वासियों के लिये इच्छा करता हुआ करे। और वर्ष में मध्यात्तुरीया शाकाष्टका होती है।३।

अथातः शालाकर्म। पुण्याहे शालां कारयेत्। तस्या अवटमभिजुहोत्यच्युताय भौमाय स्वाहेति। स्तम्भमुच्छ्रयति इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्। इहैव ध्रुवां निमिनोमि। शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुक्षमाणा अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। आ त्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः। आ त्वा कुमारस्तरुण आ

वत्सो जगदैः सह । आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् । अश्वावद्गोमदूर्जस्वत्पर्णं वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसान इति चतुर प्रपद्यते । अभ्यन्तरतोऽग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्योत्तरत उदपात्रं प्रतिष्ठाप्य स्थालीपाकं श्रपयित्वा निष्क्रम्य द्वारसमीपे स्थित्वा ब्रह्माणमामन्त्रयते ब्रह्मन्प्रविशामीति । ब्रह्मानुज्ञातः प्रविशत्यृतं प्रपद्ये शिवं प्रपद्य इति । आज्यं संस्कृत्येह रतिरित्याज्याहुतीर्हुत्वाऽवाऽपरा जुहोति । वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे श चतष्पदे स्वाहा । वास्तोष्पते प्रतरणो न एधिगयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे स्वाहा । वास्तोष्पते शन्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा । अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहेति । स्थालीपाकस्य जुहोति । अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान्देवानुपह्वये । सरस्वतीं च वाजीं च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा । सर्पदेवजनान्सर्वान्हिमवन्तं सुदर्शनम् । वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा । पूर्वाह्णमपराह्णञ्चोभौ मध्यन्दिना सह । प्रदोषमर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा । कर्तारं च विकर्तारंविश्वकर्माणमोषधीश्चवनस्पतीन् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनःस्वाहा । धातारञ्चविधातार निधीनांच पतिं सह ।

एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा। स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताः स्वाहेति। प्राशनान्ते कांस्ये संभारानोप्योदुम्बरपलाशानि ससुराणि शाड्वलं गोमयं दधि मधु घृतं कुशान्यवांश्चासनोपस्थानेषु प्रोक्षेत्। पूर्वे संधावभिमृशति। श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेतामिति। दक्षिणे संधावभिमृशति। यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेतामिति। पश्चिमे सन्धावभिमृशति। अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेतामिति। उत्तरे सन्धावभिमृशति। ऊर्क्च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेतामिति। निष्क्रम्य दिश उपतिष्ठते। केता च मा सुकेता च पुरस्ताद्गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्य सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद्गोपायेतामिति। अथ दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानं रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेतामिति। अथ पश्चाद्दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद्गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद्गोपायेतामिति। अथोत्तरतोऽस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति। निष्ठितां प्रपद्यते धर्मस्थूणा राजं श्रीस्तूपमहोरात्रे द्वारफलके। इन्द्रस्य गृहा वसुमन्तो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिः सह। यन्मे किंचिदस्त्युपहूतः सर्वगणसखायसाधुसंवृतः। तां त्वा शालेऽरिष्टवीरा गृहान्नः सन्तु सर्वत इति। ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर इसलिये शालाकर्म होता है किसी पवित्र दिन में शाला को कराना चाहिए। उसका "अच्युत के लिये भौम के लिये स्वाहा है"—इससे अवरक का हवन करता है। स्तम्भ को उच्छ्रित करता है—इस भुवन की नाभि वसुओं की प्रधरणी वसोधारा को उच्छ्रित करता हूं। यहाँ ध्रुवा का निमनन करता हूं।—शाला को क्षेम पूर्वक स्थित रहे—घृत का उक्षमाणा—अश्वावती—गोमती—सूनृतावती शाला को महान् सौभग के लिए उच्छ्रित करो। ये चार मन्त्र कहे जाते हैं—"आत्वा शिशुराक्रन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमाना—"आत्वा कुमारस्तरुण आवत्सो जगदं सह'। आत्वा परिश्रुत कुम्भ आदध्न कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासा रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्। अश्वावद्गोमदूर्जस्वत्पर्ण वनस्पतेरिव। अभि पूर्वतां रयिरिदमनु श्रेयो वसान"। अभ्यन्तर से अग्नि का उपसमाधान करके दक्षिण की ओर ब्रह्मा को उपविष्ट कराकर उत्तर की ओर उदपात्र को प्रतिष्ठापित करे और स्थालीपाक का श्रवण करके निष्क्रमण कर—द्वार के समीप में स्थित होकर "ब्रह्मन्प्रविशामि" इस मन्त्र से ब्रह्मा का आमन्त्रण करता है। ब्रह्मा के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करता हुआ प्रवेश करता है। मन्त्र यह है—"ऋतं प्रपद्ये—शिवं प्रपद्ये" इति। आज्य का संस्कार करके यहाँ "रतिरिति" इससे आज्य की आहुतियों का हवन करके अपरा का हवन करता है। मन्त्र यह है—"वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मा स्वावेशो अनमीवो भवान। यत्त्वमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा"—'वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा'। "वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरन्नो यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा। 'अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा" । इति।

स्थालीपाक का हवन करता है। मन्त्र यह है—"अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वान्देवानुपह्वये। सरस्वतीं च वाजीं च वास्तु मे दत्त

वाजिनः स्वाहा" । "सर्पदेवजनान् सर्वान् हिमवन्तं सुदर्शनम् । वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा" । पूर्वाह्णमपराह्णञ्चोभौ मध्यन्दिना सह । प्रदोष मर्द्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा" । "कर्त्तारं च विकर्त्तारं विश्वकर्माण मोषधींश्च वनस्पतीन् । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा" अर्थात् कर्त्ता को—विकर्त्ता को—विश्वकर्मा को—ओषधियों को—वनस्पतियों को—इन सबकी शरणागति में मैं जाता हूँ—वाजिगण मुझे वस्तु देवें—स्वाहा है । "धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह । एतान्सर्वान्प्रपद्येऽहं वास्तु मे दत्त वाजिन । स्वाहा" । स्योनं शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताः स्वाहा—इति" प्राशन के अन्त में कांसे के पात्र में सम्भारों को रखकर औदुम्बर पलाशों को सपुर—शाड्वल—गोमय—दधि—मधुर घृत—कुशों—और यवों को आसनोप स्थानों में प्रोक्षण करे । पूर्व में सन्धि में अभिमृष्ट करता है । मंत्र यह है—"श्रीश्चत्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम्" इति । दक्षिण संधि में "यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इस मंत्र से दक्षिण संधि में अभिमृष्ट करता है । पश्चिम संधि में—"अन्नं च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इस मंत्र से अभिमृष्ट करता है । इसके अनन्तर उत्तर संधि में—"ऊर्ज्जं त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम्" इति—इससे अभिमृष्ट करता है । निष्क्रमण करके दिशाओं का उपस्थान करता है । मंत्र यह है—"केता च मा सुकेता च पुरस्ता द्गोपायेताम्" इसमें अग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता इन दोनों की प्राप्ति ग्रहण करता हूं । उन दोनों के लिये नमस्कार है वे दोनों आगे रक्षा करें । इति ।

इसके अनन्तर दक्षिण की ओर गोपायमान मेरी रक्षा करती हुई दक्षिण की ओर रक्षा करें—इससे दिन गोपायमान है और रात्री रक्षमाणा है—उन दोनों की सन्निधि में मैं प्रपन्न होता हूं । उन दोनों को मेरा नमस्कार है । वे दोनों मेरी दक्षिण की ओर से रक्षा करें—इति ।

इसके अनन्तर "पश्चाद्दिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद्गोपायेताम्" इससे अस्न—दीदिवि प्राण जागृवि—इन दोनों की प्रपत्ति ग्रहण करता हूं—उन दोनों को मेरा नमस्कार है—वे दोनों मेरी पश्चात् रक्षा करें—"इति। इसके अनन्तर "उत्तरतोऽस्वप्नश्च माऽनवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेताम्" इति। "चंद्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौमोत्तरतो गोपायेताम्—" इति। अर्थात् चंद्रमा अथवा अस्वप्न वायु अानवद्राण उन दोनों की शरणागति मे मैं जाता हूं—उन दोनों के लिये मेरा नमस्कार है—वे दोनों मुझको उत्तर की ओर रक्षित रक्खें। हे राजन्! धर्म स्थूणा निहिता को प्रपन्न होती है और द्वार फलक में अहोरात्र में श्री स्तूप को प्रपन्न होता है। इन्द्र के गृह वसुवाले और वरूथी हैं उन की प्रपत्ति में मैं जाता हूं समस्त प्रजा और पशुओं के साथ हायम्म होता हूं। जो कुछ सवेगण सखाय साधु सङ्कृत उपहूत है। उनको तुमको शाला मे अष्टवीरा हमारे गृहों को होवें और सब ओर से हों" इति। इसके अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए।४।

अथातो मणिकावधानम्। उत्तरपूर्वस्यां दिशि यूपवदवटं खात्वा कुशानास्तीर्याक्षतानरिष्टकान् (सुमनसः कपर्दिकान्) चान्यानि चाभिमङ्गलानि तस्मिन् मिनोति मणिक समुद्रोऽसीति। अप आसिञ्चति। आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च। रायश्च स्थ स्वापत्यस्य पत्नी सरस्वती यद्गृणते वयोऽधादिति। आपोहिष्ठेति च तिसृभिः। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥ ५॥

इसके अनन्तर मणिका विधान होता है। उत्तर पूर्व दिशा में यूप की ही भाँति अवट का खनन करके कुशाओं को फैलाकर अरिष्टक अक्षतों को पुष्पों को—कपर्दिकाओं की (कौड़ियों को) और अन्य अभिमङ्गलों को आस्तरण करके उसमें मणिक को "समुद्रोऽसि" इससे

मयन करता है। फिर "आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च। रायश्च स्थ स्वापत्यस्य पत्नी सरस्वती तद्गृणते वयोऽधात्" इति—इससे जल का आसेचन करता है। और आपोहिष्ठा मयोभुव:" इत्यादि तीन मन्त्रों के द्वारा आसेचन करता है। इस सम्पूर्ण कृत्य के साङ्ग सुसम्पन्न हो जाने के अनन्तर अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। ५।

अथातः शीर्षरोगभेषजम्। पाणी प्रक्षाल्य भ्रुवौ विमार्ष्टि। चक्षुर्भ्यां श्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुकादधि। यक्ष्मं शीर्षण्यं रराटाद्विवृहामीममिति। अर्द्धञ्चेदव-भेदकविरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायशः। अथो चित्रपक्ष शिरो मास्याभितापीदिति। क्षेम्यो ह्येव भवति॥ ६॥

इसके उपरान्त शीर्षरोग की भेषज है। दोनों हाथों को प्रक्षालित करके भौंहों का विमार्जन करता है। मार्जन करने का मन्त्र यह है—"चक्षुर्भ्यां श्रोत्राभ्यां गोदानाच्छुबुका दधि। यक्ष्म शीर्षण्य रराटाद्वि-वृहामीमम्" इति। "अर्द्धञ्चेदव भेदक विरूपाक्ष श्वेतपक्ष महायशः। अथो चित्रपक्ष शिरो मास्याभितापीद्॥ इति क्षेम्य ही होता है। ६।

उतूलपरिमेहः। स्वमतो जीवविषाणे स्वं मूत्रमासि-च्यापसलवि त्रिः परिषिञ्चन्परीयात्। परि त्वा गिरेरहं परितातुः परिस्वसुः परिपित्रोश्च भ्रात्रोश्च सख्येभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढः क गमिष्यसीति स यदि प्रत्याद्रवाग्निमुपसमाधाय घृताक्तानि कुशेण्डवानि जुहुयात्। परि त्वा ह्वलनो ह्वलनिवृत्तन्द्रवीदधः॥ इन्द्रपाशेन च्छित्त्वा मह्यं मुक्त्वाथान्यमानयेदिति क्षेम्यो ह्येव भवति॥ ७॥

उतूल परिमेद बतलाया जाता है। सोते हुए जीव के विषाण में अपने मूत्र का आसेचन करके अप सलवि तीन बार परिषिञ्चन करते

हुए परियान करे। "परित्वा गिर्वेग्ह परिमासु परिस्त्वमु परिपिशोष्च भ्रात्राश्च सक्षेभ्यो विसृजाम्यहम्। उतूल परिमीढोऽसि परिमीढ क गमिष्यासि ॥ इति। इस म त्र के द्वारा वह यनि अन्य स लाबानि का उप समाधान करके घृताक्त अङ्गो को कुश से हवन करे। "परित्वा तूलनो ह्वल निवृ त्त त्र बीरुध। इ त्रयाईन विछत्वा मह्या मुक्तवाधा य भामयेत् ॥ इति। इस म त्र से मन्थ भी होता है।७।

शूलगव। स्वग्य पशव्य पुत्र्यो धन्या यशस्य आयुष्य। आपासनमरण्यं हृत्वा वितिान साधयित्वा रौद्र पशुमालभते। माण्डम्। गौर्वा शब्दात्। वपा श्रपयित्वा स्थालीपाकमवदानानि च रुद्राय वपामन्तरिक्षाय वसां स्थालीपाकमिश्राण्यवदानानि जुहोत्यग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्रायाशनये भवाय महादेवायेशानायेति च। वनस्पतिस्विष्टकृदन्त ॥ दिग्व्याघारणम्। व्याघारणान्ते पत्नी संयाजयन्तीन्द्राण्य रुद्राण्यं शर्वाण्य भवान्या मग्नि गृहपतिमिति। लोहित पालाशपु कूर्चेषु रुद्राय सेनाभ्यो बलिं हरति यास्ते रुद्र पुरस्तात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्तनमो यास्ते रुद्र दक्षिणत सेनास्ताभ्य एष त बलिस्ताभ्यस्तेनमो यास्ते रुद्र पश्चात्सेनास्ताभ्य एष बलिस्ताभ्य एष बलिस्ताभ्यस्त नमो यास्ते रुद्रोत्तरत सेनास्ताभ्य एष त बलिस्ताभ्यस्तेनमो यास्ते रुद्रोपरिष्टात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्त नमो यास्ते रुद्राधस्तात्सेनास्ताभ्य एष ते बलिस्ताभ्यस्त नम इति ऊबध्य लोहितलिप्तमग्नौ प्रास्यत्यधो वा निखनन्ति। अनुवात पशुमवस्थाप्य रुद्रैरुपतिष्ठते प्रथमोत्तमाभ्या वाऽनुवाकाभ्या नैतस्य पशार्ग्रामं हरति। एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यात। पायसेनानर्थलुप्तम। तस्य तुल्यवयागौर्दक्षिणा ॥ ८ ८॥

अब शूलगव बतलाते हैं यह स्वर्ग देने वाला—पशु देने वाला—पुत्र प्रदाता धन्य–यशस्य और आयुष्य होता है। औपासन अरण्य का हरण करके विवितान का साधन करके रौद्र पशु का आलभन करता है। साण्ड को करता है। अथवा शब्द से गौ का ग्रहण है। वपा का श्रपण करके स्थाली पाक और अवदानों को रुद्र के लिये—वपा को अन्तरिक्ष के लिये—वसा को और स्थाली पाक से विमिश्रित अवदानों का हवन करता है। मन्त्र यह है—"अग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्रायाशनये भवाय महादेवाये शानाय ॥ इति। अन्त में वनस्पति स्विष्टकृत होता है। फिर दिग्व्या धारण होता है व्याधारण के अन्त में "पत्नीः संयाज यन्त्रीन्द्राण्यै रुद्राण्यै शर्वाण्यै भवान्या अग्नि गृहपति मिति" इस मन्त्र से करें। लोहित पालाश कूर्चों में रुद्र के लिये सेनाओं के लिए बलि का हरण करता है—हे रुद्र! जो आप के आगे सेनायें हैं उनके लिये यह बलि है। उनके लिये आपके लिए नमस्कार है। हे रुद्र! जो आपके दक्षिण की ओर सेनाएं है उनके लिये यह बलि हैं। आपकी उन सेनाओं के लिये नमस्कार है। हे रुद्र! जो सेनाऐं आपके पश्चिम की ओर हैं उनके लिये यह बलि है आपकी उन सेनाओं के लिए नमस्कार है। हे रुद्र! आपकी उत्तर की ओर जो ये सेनाऐ है उनके लिये यह बलि है आपकी उन सेनाओं के लिये नमस्कार है। हे रुद्र! जो आपके ऊपर की ओर ये सेनाऐ है उनके लिए यह बलि है, आपकी उन सेनाओं के लिए नमस्कार है। हे रुद्र! आपके नीचे की ओर जो ये सेनाऐ हैं उनके लिए यह बलि है आपकी उन सेनाओं के लिए नमस्कार है। लोहित लिप्त ऊवध्य को अग्नि में देगा अथवा अधोभाग में निखनन करते हैं। वात के अनुसार पशु को अब स्थापित करके रुद्र मन्त्रों के द्वारा उपस्थान करता है। अथवा प्रथमोत्तम अनुवाकों से इस पशु के ग्राम का हरण नहीं करता है। इतने इससे ही गो यज्ञ की व्याख्या कर दी गयी है। पायस से अनर्थलुत होता है। उसके समान अवस्था वाली गौ की ही दक्षिणा होनी चाहिए। ८-६।

अथ वृषोत्सर्गः । गोयज्ञेन व्याख्यातः । कार्तिक्यां पौर्णमास्यां रेवत्यां वाऽऽश्वयुजस्य । मध्येगवां सुसमिद्धमग्निं कृत्वाऽऽज्यं संस्कृत्येहरतिरिति षट् जुहोति प्रतिमन्त्रम् । पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः स्वाहेति पौष्णस्य जुहोति रुद्रान् जपित्वैकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथं छादयति यं वा यूथं छादयेद्रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रो युथे च रूपस्वित्तमः स्यात्तमलंकृत्य यूथेमुख्याश्चतस्रो वत्सतर्यस्ताश्चालंकृत्य । एतं युवानं पतिं वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण । मानः साप्तजनुषा सुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेमेत्येतयं वोत्सृजेरन् । नम्यस्थमभिमन्त्रयते मयोभूरित्यनुवाकशेषेण (वामे चक्रं दक्षिणे त्रिशूलं) । सर्वासां पयसि पायसं श्रपयित्वा ब्राह्मणान्भोजयेत् । पशुमप्येके कुर्वन्ति । तस्य शूलगवन कल्पो व्याख्यातः ॥ १० ॥

इसके अनन्तर वृष के उत्सर्ग के विषय में बतलाया जाता है। गौ के यज्ञ से व्याख्या कर दी गयी है। कार्तिक मास की पौर्ण मासी में अथवा आश्विन मास की रेवती में इसको करे। गौओं के मध्य में अग्नि को भली भांति समिद्ध करके आज्य (घृत) का संस्कार करे फिर "इहरति रिह" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा प्रतिमन्त्र छै आहुतियों का हवन करता है। "पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाज सनोतु नः स्वाहा" इस मन्त्र से पौष्ण की आहुतियों का हवन करता है। रुद्र मन्त्रों का जाप करके एक वर्ण वाले अथवा दो वर्ण वाले को जो भी यूथ का छादन करता है अथवा यूथ जिसका छादन करे अथवा रोहित ही हो किन्तु सम्पूर्ण अङ्गों से युक्त हो जीववत्सा पयस्विनी का पुत्र और यूथ में रूपस्वित्तम होना चाहिए। उसको अलंकृत करके यूथ में चार जो मुख्य वत्सतरी हैं उनको भी भली भाँति अलंकृत करे।

इस युवक पति को आपको देता हूं। उस प्रिय के साथ क्रीड़ा करती हुई विचरण करो। "मानः सासजनुषा सुभगा रायस्पोषेण समिषा मदेम" इति—इससे उत्सर्ग करें। "मयोभूः" इस अनुवाक शेष के द्वारा मध्यस्थ को अभिमन्त्रित करना है। (वाम भाग में चक्र और दक्षिण भाग में त्रिशूल रक्खे) सबके दूध में पायस का श्रयण करके अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे। १०।

अथोदककर्म। अद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोराशौचम्। शौचमेवेतरेषामेकरात्रं त्रिरात्रं वा। शरीरमदग्ध्वा निखनन्ति। अन्तः सूतके चेदोत्थानादाशौचं सूतकवत्। नास्योदककर्म द्विवर्षप्रभृति प्रेतमाश्मशानात्सर्वेऽनुगच्छेयुः। यमगाथां गायन्तो यमसूक्तं च जपन्त इत्येके। यद्युपेतो भूमिजोषणादिसमानमाहिताग्नेरावकात्तस्य गमनात्। शालाग्निना दहन्त्येनमाहितश्चेत्। तूष्णीं ग्रामाग्निनेतरम्। संयुक्तं मैथुनं वो याचेरन्नुदकं करिष्यामह इति। कुरुध्व मा चैवं पुनरित्यशतवर्षे प्रेते कुरुध्वमित्येवेतरस्मिन् सर्वे ज्ञातयोऽपोऽभ्यवयन्त्यासप्तमात्पुरुषाद्दशमाद्वा। समानग्रामवासे यावत्सम्बन्धमनुस्मरेयुः। एकवस्त्राः प्राचीनावीतिनः। सव्यस्यानामिकयाऽपनोद्यापनः शोशुचदघमिति। दक्षिणामुखा निमज्जन्ति। प्रेता ेदकं सकृत्प्रासिञ्चन्त्यञ्जलिनाऽसावेतत्त उदकमिति। उत्तीर्णाञ्छुचौ देशे शाड्वलवत्युपविष्टांस्त त्रैतानपवदेयुः। अनवेक्षमाणा ग्राममायान्ति रीतीभूताः। कनिष्ठ पूर्वाः। निवेशनद्वारे पिचुमन्दपत्राणि विदश्याचम्योदकमग्निं गोमयं गौरसर्षपांस्तैलमालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति। त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणोऽधः शायिनो न किंचन कर्म कुर्युर्न प्रकुर्वीरन्। क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवैवान्नमश्नीयुरमांसम्। प्रेताय

पिण्ड दत्त्वाऽवनेजनप्रत्यवनेजनेषुनामग्राहम् । मृन्मयेहृता ` रात्री क्षीरोदके विहायसि निदध्यु प्रेतायात्र स्नाहीति । त्रिरात्र `. शावमाशोचम् । दशरात्रमित्येकेन स्वाध्यायम धीयीरन् । नित्यानि निवर्तेरन्वैतानवजम् । शालाग्नौ चके । अन्य एतानि कुयु । । प्रेतस्पर्शिनो ग्रामन प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनात् । रात्रौ चेदादित्यस्य । प्रवेशनादि समानमितरे । पक्ष द्वौ वाऽऽशौचम् । आचाय चैवम् । मातामहयोश्च । स्त्रीणा चाप्रत्तानाम् । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् । ताश्च तेषाम् । प्रोषितश्चे त्प्रेयाच्छ्रवणप्रभृति कृतोदका कालशेषमासीरन् । अतीतश्चेदेकरात्र त्रिरात्र वा । अथ कामोदकान्यृत्विक्श्वशुरसखिसम्बन्धिमातुलभागिनेयानाम् । प्रत्ताना चकादद्यामयुग्मा ब्राह्मणान्भोजयित्वा मा `. सवत् । प्रेतायोद्दिश्य गामप्येके घ्नन्ति । पिण्डकरणे प्रथम पितृणा प्रेत स्यात्पुत्रवाश्चेत् । निवर्तेत चतुथ । सवत्सर पृथगेके । न्यायस्तु । न चतुथपिण्डो भवतीति श्रुतेः । अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भ च दद्यात् । पिण्डमप्येके निपृणन्ति ॥११॥

इसके अनन्तर उदक कम के विषय मे बतलाते है । आह्विक प्रेत मे माता पिता का आशौच होता है । इतरो का शौच ही एक रात्र अथवा त्रिरात्र होता है । शरीर को दग्ध करके निखनन करते हैं । और अन्त सूतक मे उत्थान से सूतक की ही भाँति आशौच होता है । यहा पर उदक कर्म नही है । दो वष आदि श्मशान से लेकर सब प्रेत के पीछे अनुगमन करे । कतिपय विद्वानो का मत है कि वे मनुष्य सब यमराज की गाथा का गान करते हुए अनुगमन करे और यम सूक्त का जाप करते हुए जावें । यदि भूमि जोषणादि समान को उपेत हो तो आह्निताग्नि पुरुष का ओदका त का गमन होता है । यदि आहित होवे

तो इसका दाह शालाग्नि के द्वारा किया करते है। इतर का दाह चुप-चाप ग्राम की अग्नि के द्वारा करना चाहिए। मन्त्र मह है—"संयुक्त मैथुन वो याचेरन् उदकं करिष्या महे" इति। पुनः इस प्रकार से मत करो—इससे अशत वर्ष वाले प्रेन में करो —इमसे ही इतर मे सब ज्ञाति वाले सप्तम पुरुप से अथवा दशम पुरुष तक जल का अभ्य वयन करते हैं। समान ग्राम के वाम में जितना सम्बन्ध हो उसका अनुस्मरण करें। प्राचीना वीति एक वस्त्र वाले होवे। "शोशुचम्" इति—इससे सव्य की अनामिका से अपनोद्यापन होवे। दक्षिण की ओर मुखों वाले होकर निमज्जन किया करते हैं। "अरौ—एततेदुकम्" इति—यह कहते हुए प्रेत के लिए उदक को एक बार अञ्जलि से प्रासिञ्चन करते हैं। उत्ती-वर्णों को शुचि देश में घास वाली भूमि पर उपविष्ट होते हुए वहाँ पर इनका अप वदन करना चाहिए। अनवेक्षमाण ग्राम को जाते है जो रीति भूत कनिष्ठ पूर्व है। निवेशन द्वार में पिचुमन्द के मन्त्रों का विद-शन करके आचमन करके उदक को—अग्नि को—गौरमय—गौर सर्षपों को—तैल को आलभन करके आक्रमण करके प्रवेश करते हैं।

तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी—अधोभाग मे शयन करने वाले होते हुए कुछ भी कर्म न करे अथवा नही करना चाहिए। क्रम करके अथवा प्राप्त करके दिन में त्री अमोप अन्न का प्राशन करना चाहिए। प्रेत के लिये पिंड देकर अवभेजन—प्रत्यवनेजनेपु नाम का ग्रहण करे। मृन्मय क्षीरोक में हुता रात्रि को प्रातः काल में प्रेत के लिए "अत्र स्नादि" इस मन्त्र से रक्खे। तीन रात्रि पर्यन्त शाव (शव सम्बन्धी) अशौच होता है। एक के मत में दशरात्रि तक अशौच होता है पश्चात् स्वाध्याय का अध्ययन करें। वैतान को वर्जित कर नित्य कर्मों का निवर्तन करे। कतिमय विद्वानों का मत है शालाग्नि में करें। अन्य इनको करें—प्रेत का स्पर्श करने वाले मनुष्य जब तक नक्षत्रों का दर्शन न हों तब तक ग्राम मे प्रवेश न करे। और यदि रात्रि में प्रेत का स्पर्श के पात्र हों तो जब तक सूर्य देव के दर्शन न करें-ग्राम में प्रवेश नहीं

करना चाहिए। प्रवेशन आदि अन्यों के ही समान होता है। पक्ष का अथवा दो का आशौच है। आचार्य में इसी प्रकार से होता है। माता-मही और माता यह इन दोनों का भी होता है। जो अप्रत्त स्त्रियाँ हों उनका भी होता है। जो प्रत्त हों उनका इतरों को करना चाहिये। और उनके वे है। यदि कोई प्रोषित है तो जो प्रेमान् हो उसको जिस समय से श्रवण करे तभी से शेष काल तक रहें। यदि अतीत होगया हो तो एक रात्रि अथवा तीन रात्रि तक आशौच मानना चाहिये। इसके अनन्तर ऋत्विक्—श्वशुर—सखि——सम्बन्धी— मातुल और भागिनेयों के कामोदक होते है अर्थात् इच्छानुसार जल का देना होता है। और प्रश्नों का एकदशी में अयुग्म ब्राह्मणों को मांस वत् कराना चाहिए। प्रेत के लिये उद्देश्य करके गाय का भी हनन करते है—ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। पिण्डकरण में यदि पुत्रवान् हो तो पितृगणों का प्रेत प्रथम होता है। चतुर्थ निवर्तन करने वाला होता है। कुछ का मत है पृथक् संवत्सर तक होता है। न्यायोचित तो चतुर्थ पिण्ड नहीं होता है—यह श्रुति के द्वारा प्रतिपादित होता है। नित्य प्रति इसके लिए अन्न देवे और ब्राह्मण के लिए जल का कुम्भ देना चाहिए। कतिपय मनीषियों का मत है कि पिण्ड का निर्वचन करते है ॥११॥

पशुश्चेदाप्लव्या गामग्रेणाग्नीन्परीत्य पलाशाग्रे शाखा-
ञ्छिहन्ति। परिव्ययणोपाकरण नियोजनप्रोक्षणाम्यावृता
कुर्याद्यच्चान्यत्। परिपशव्ये हुत्वा तूष्णीमपराः पञ्च।
वपोद्धरणं चाभिघारयेद्देवतां चादिशेत्। उपाकरण
नियोजन प्रोक्षरोषु स्थालीपाके चैवम्। वपा हुत्वाऽव-
दानान्यवद्यति। सर्वाणि त्रीणि पञ्च वा। स्थालीपाक
मिश्राण्यवदानानि जुहोति। पश्वङ्गं दक्षिणा। यद्देवते
तद्दैवतं यजेत्तस्मै च भाग कुर्यात्तं च ब्रूयादिम-
मनुप्रापयेति। नद्यन्तरे नावं कारयेन्न वा ॥१२॥

यदि पशु हो तो अग्र के द्वारा गौ का आप्लवम कराना चाहिए। पलाशाग्र मे अग्नियों को परीत करके निहनन करता है। परिव्ययण—उपाकरण—नियोजन और प्रोक्षणों को आवृत्त होते हुए करना चाहिए और जो अन्यत् हो वह करे। परिपशव्य मे तूष्णी भाव से हवन करके ऊपर पाँचों को करे। वपोद्धर को करे और अभिधारण करे और देवता को आदेश करे। उपाकरण में—नियोजन मे और प्रोक्षण में और इसी प्रकार से स्थाली पाक में करना चाहिए। वपा का हवन करके अवदानों को अवद्य करता है। सबको करे अथवा तीन तथा पाँच को करे। स्थाली पाक से मिश्रित अवदानों का हवन करता है। पशु का अङ्ग दक्षिणा होती है। जिस देवता से सम्बन्धित में जिस दैवत का यजन करे और उसके लिए भाग को करे और उससे बोलना चाहिए कि इसका अनुप्रापण करिये। इति ॥ अन्तर मे भाव न करावे अथवा नहीं करना चाहिए ॥१२॥

अथातोऽवकीर्णिप्रायश्चित्तम् । अमावास्यायां चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभते । निर्ऋतिं पाकयज्ञेन यजेत् । अप्स्ववदानहोमः । भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम् । तां छविं परिदधीत । ऊर्ध्ववालामित्येके । संवत्सरं भिक्षाचर्यं चरेत्स्वकर्म परिकीर्तयन् । अथापरमाज्याहुती जुहोति । कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि काम कामाय स्वाहा । कामाभिद्रुग्धोऽस्म्यभिद्रुग्धोऽस्मि काम कामाय स्वाहेति । अथोपतिष्ठत समा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सबृहस्पतिः । सं माऽयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन चेति । एतदेव प्रायश्चित्तम् ॥१३॥

इसके अनन्तर अवकीर्णी का जो प्रायश्चित है उसके विषय में बतलाया जाता। अमावस्या तिथि में चौराहे पर गर्दभ पशु का आलभन करना चाहिए अर्थात् आलभन करता है। निर्ऋति का यजन पाक यज्ञ के द्वारा करना चाहिए। जलो मे अवदान का होम होता है। भूमि में

पशु पुरोडाश का श्रपण होता है। उस हवि को परिधान करना चाहिए। कतिपय विद्वानों का मत यह है कि ऊर्ध्व बाला को करे। एक सम्वत्सर पर्यन्त अपने किये हुए कर्म का सर्वत्र परिकीर्त्तन करता हुआ भिक्षाचरण करता हुआ चरण करना चाहिए। इसके अनन्तर ऊपर आज्य की आहुतियों का हवन करता है। मन्त्र यह हैं—"कामावकीर्णोऽसि—अवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा"—कामाभिद्रुग्धोऽस्मि—अभिद्रुग्धोऽस्मि काम कामाय स्वाहा" ॥इति॥ इसके उपरान्त में उपस्थान करता है—"संमा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संबृहस्पतिः। सं माऽयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च" इति। यह ही प्रायश्चित्त होता है ॥१३॥

अथातः सभाप्रवेशनम्। सभामभ्येति सभाङ्गिरसि नादिर्नां मासित्विषिर्नामासितस्यै ते नमइति। अथ प्रवशति सभा चमा समितिश्चोभे प्रजापतेर्दुहितरौ सचेतसौ। यो मान विद्यादुपमा स तिष्ठेत्सचेतनो भवतु श ँ् सथे जन इति। पर्षदमेत्य जपेदभिभूरहमागम-विराडप्रतिबाश्याः। अस्याः पर्षद ईशानः सहसा सुदुष्टरो जन इति। स यदि मन्येत क्रुद्धोऽयमिति तमभिमन्त्रयते यात एषा रराट्या तनूर्मन्योः क्रोधस्य नाशनी। तां देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तु सुमेधसः। द्यौरहं पृथिवी चाहं तौ ते क्रोधं नयामसि गर्भमश्वतर्यसहासाविति। अथ यदि मन्येत द्रुग्धोऽयमिति तमभिमन्त्रयते तां ते वाचमास्य आदत्ते हृदय आदधे। यत्र यत्र निहिता वाक्तां ततस्तत आददे यदहं ब्रवीमि तत्सत्यमधरो मत्तांद्यस्वेति। एतदेव वशीकरणम् ॥१४॥

इसके अनन्तर सभा प्रवेशन के विषय में बतलाया जाता है। मन्त्र यह है—"सभायभ्येति सभाङ्गिरसि नादिर्नामासि त्विषिर्नामासि तस्यै ते नम" इति॥ इसके अनन्तर प्रवेश करता है। सभा और समिति दोनों प्रजापति की दुहिताऐं हैं और सचेतस हैं। जो मान जानता है उपमा

वह सचेतन स्थित रहे सु ॅ सभमें जन है' इति ॥ पर्षद में जाकर जाप करे—मन्त्र यह है—"अभिरभूरहमागम विराडप्रतिवाश्या: । अस्मा: पर्षद ईशान: सहसा सुदुष्टरो जन इति" । "वह यदि यह क्रुद्ध है—यह माने तो उसको अभिमन्त्रित करता है—"यात एषा रराटघा तनूर्मन्यो: क्रोधस्य नाशनी । तं देवा ब्रह्मचारिणो विनयन्तु सुमेधसः । द्यौरहं पृथिवी चाहं तौ ते क्रोधं नयामसि गर्भमश्वतर्यं महासाविति" ।इति। इसके अनन्तर यदि यह द्रुग्ध है—यह मानता है तो उसको अभिमन्त्रित करता है—"तां ते वाचमास्य आदत्त हृदय आदधे । यत्र यत्र निहिता वाक्तां ततस्तत आददे यदहं ब्रवीमि तत्सत्यमधरो मत्तांचस्वैति" । यह ही वशीकरण होता है ॥१४॥

अथातो रथारोहणम् । युङ्क्तेऽतिरथ सम्प्रेष्य युक्त इति प्रोक्ते सा विराडित्येत्य चक्रे अभिमृशति रथन्तरमसीति दक्षिणम् । बृहदसीत्युत्तरम् । वामदेव्यसीति कूबरीम् । हस्तेनोपस्थमभिमृशति । अङ्कौ न्यङ्कावभितो रथं यौ ध्वान्तं वाताग्रमनु सचरन्तम् । दूरेहेतिरिन्द्रियवान्पतत्री ते नाग्नयः पप्रयः पारयन्त्विति । नमो मणिचरायेति दक्षिणं धुर्यं प्राजति (गवां मध्ये स्थापयति) अप्राप्य देवताः प्रत्यवरोहेत्संप्रति ब्राह्मणान्मध्ये गा अभिक्रम्य पितॄन् । न स्त्री ब्रह्मचारिणौ सारथी स्याताम् । मुहूर्तमतीयाय जपेदिहरतिरिहर ममध्वम् । एके माऽस्त्विह रेतिरिति च । स यदि दुर्बलो रथः स्यात्तमास्थाय जपेदयं वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषदिति । स यदि भ्रम्यात्स्तम्भमुपस्पृश्य भूमिं वा जपेदेष वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषदिति । तस्य न काचनार्तिर्न रिष्टिर्भवति । यात्वाध्वानं विमुच्य रथं यवसोदके दापयेदेष उ ह वाहनस्यापह्नव इति श्रुते ।१५।

इसके अनन्तर रथ पर आरोहण के विषय में बतलाया जाता है । युङ्क्तेऽतिरथ प्रम्प्रेष्य युक्त इति"—इसके कहने पर "सा विराड्"

इति—इससे आकर 'वज्रं अभिमृशति रथन्तरमसि' इति—इससे दक्षिण में करे। 'बृहदसीति'—इससे उत्तर में करे। 'वामदेव्यमसीति'—इससे कूबरी को करे। हाथ से उपस्थ को अभिमृष्ट करता है। मन्त्र यही है—'अङ्कौ न्यङ्कावभितो रथं यौ ध्वान्तं वाताग्रमनु संचरन्तम्। दूरेहेतिरिन्द्रियवान् पतत्री ते नाग्नया पप्रयः पारयन्त्विति'। (गायों के मध्य में स्थापित करता है) देवताओं को अप्राप्त करके प्रत्यवरोहण करे। अब ब्राह्मणों को मध्य में गौओं का अभिक्रमण करके पितृगणों को करे। स्त्री और ब्रह्मचारी सारथी नहीं होने चाहिए। एक मुहूर्त तक समय को बिताकर निम्न मन्त्र का जप करना चाहिए—'इहरति रिहरम मध्वम्। एके भाऽस्त्विह रेतिरिति'। वह रथ यदि दुर्बल होवे उस पर आस्थित होकर जाप करे—'अयं वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषत्' इति। वह यदि भ्रमण करे तो स्तम्भ का उपस्पर्शन करके अथवा भूमि का जाप करे। मन्त्र यह है—'एष वामश्विना रथो मा दुर्गे मास्तरोरिषत्' इति। उसको कोई आर्त्ति (पीड़ा) और कोई रिष्टि नहीं होती है। 'या स्वाध्वानं विमुच्य रथ य वसोवके दाययेवेष तह ब्राह्मनस्यापह्नव' इति—इसका श्रुति वचन प्रतिपादन करता है ॥१५॥

अथाऽतो हस्त्यारोहणम्। एत्य, हस्तिनमभिमृशति हस्ति-यशसमसि हस्तिवर्चसमसीति। अथाऽवरोहतीन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभितिष्ठामि स्वस्ति मा संपारयेति। एतेनैवा-श्वारोहणं व्याख्यातम्। उष्ट्रमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते त्वा-ष्ट्रोऽसि त्वष्टृदेवत्यः स्वस्ति मा सपारयेति। रासभमारो-क्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽसि शूद्रजन्माऽऽग्नेयो वै द्विरेताः स्वस्ति मा संपारयेति। नावमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते सुनावमिति। उत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते सुत्रामाणमिति वनमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा सपारयेति। गिरिमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय गिरिषदे स्वस्ति मासंपारयेति। चतुष्पथमभिमन्त्रयते नमो

रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मा संपारयेति । नदीमुत्तरिष्यन्नभिमन्त्रयते नमो रुद्रायाप्सुषदे स्वस्ति मा सपारयेति । श्मशानमभिमन्त्रयते नमो रुद्रायपितृषदे स्वस्ति मा सपारयेति । गोष्ठमभिमन्त्रयते नमो रुद्राय शकृत्पिण्डसदे स्वस्ति मा सम्पारयेयि । यत्र चाम्यत्रापि नमो रुद्रायेत्येव ब्रूयाद्रुद्रो ह्येवेदं सर्वमिति श्रुतेः । सिचाऽवधूतोऽभिमन्त्रयते सिगसि न वज्राऽसि नमस्तेऽस्तु मा माहिं सीरिति । स्तनयित्नुमभिमन्त्रयते शिवा नो वर्षाः सन्तु शिवा नः सन्तु हेतयः । शिवानस्ताः सन्तु यास्त्वं सृजासि वृत्रहन्निति । शिवा वाश्यमानामभिमन्त्रयते शिवा नामेति । शकुनिं वाश्यमानमभिमन्त्रयते हिरण्यपर्ण शकुने देवाना प्रहितगम । यमदूत नमस्तेऽस्तु किन्त्वा काक्कारिणोऽब्रवीदिति । क्षेम्यो ह्येव भवति । लक्षण्यं वृक्षमभिमन्त्रयते मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मावातो मा राजप्रेषितोदण्डः । अंकुरास्ते प्ररोहन्तु निवाते त्वाऽभिवर्षतु । अग्निष्टे मूल मा हिंसीत्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते स्वस्ति मेऽस्तु वनस्पत इति । स यदि किंचिल्लभेत तत्प्रतिगृह्णाति द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णात्विति साऽस्य न ददतः क्षीयते भूयसी च प्रतिगृहाता भवति । अथ यद्योदन लभेत तत्प्रतिगृह्णाति द्यौस्त्वेति तस्य द्विः प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नात्विति । अथ यदिमन्थ लभत त प्रतिगृह्य द्यौस्त्वति तस्य त्रिः प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु ब्रह्मा त्वा पिबत्विति । अथातोऽधीत्याधीत्यानिराकरण प्रतीक मे विचक्षण जिह्वा मे मधु यद्वचः । कर्णाभ्यां भूरि शुश्रुवे मा त्वंहार्षीः श्रुत मयि । ब्रह्मणः प्रवचनमसि ब्रह्मणः प्रतिष्ठानमसि ब्रह्मकोशोऽसि सनिरसि शान्तिर-

स्यनिराकरणमसि ब्रह्मकोशं मे विश । वाचा त्वा पिदधामि वाचा त्वा पिदधामीति (तिष्ठ प्रतिष्ठ) स्वरकरण-कण्ठ्यौरसदन्त्यौष्ठ्यग्रहणधारणोच्चारणशक्तिर्मयि भवतु । आप्यायन्तु मेऽङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलम् । यन्मे श्रुतमधीते तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु ॥१६॥

इसके अनन्तर हाथी के अधिरोहण के विषय में वर्णन किया जाता है । आकर के हस्ती को अभिमृष्ट करता है । मन्त्र यह है—"हस्तियश समसि हस्ति वर्चस मसि" इति । इसके पश्चात् निम्न मन्त्र के द्वारा अवरोहण करता है—"इन्द्रस्य त्वा वज्रेणाभितिष्ठामि स्वस्ति मा संपारय" इति । इसी मन्त्र के द्वारा अश्व के आरोहण की व्याख्या की गयी है । ऊँट पर आरोहण करते हुए निम्न मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रण करता है- -"त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्टृ दैवत्यः स्वस्ति मा सं पारयेति" । रासभ (गधा) पर आरोहण करते हुए अभिमन्त्रित करता है । मन्त्र यह है—"शूद्रोऽसि शूद्रजन्माऽऽग्नयो वै द्विरेताः स्वस्ति मा संपारयेति" । नाव पर आरोहण करते हुए अभिमन्त्रण "सुनाव मिति" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रण करता है । उत्तरण करते हुए "सुत्रामाणामिति" इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करता है । वन का अभिमन्त्रण "नमो रुद्राय वनसदे स्वस्ति मा सम्पारयेति" इस मन्त्र से करता है । गिरि का अभिमन्त्रण "नमो रुद्राय गिरिषदे स्वस्ति मा संपारयेति" इस मन्त्र के द्वारा करता है "नमो रुद्राय परिषदे स्वस्ति मा संपारयः । इस मन्त्र से चतुष्पथ का अभिमन्त्रण करता है । नदी में उतरते हुए "नमो रुद्रायाप्सुषदे"—इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करता है । "नमो रुद्राय पितृषदे स्वस्ति मा संपारय" इति—इस मन्त्र के द्वारा श्मशान को अभिमन्त्रित करता है ! "नमोरुद्राय शकृत्पिण्ड सदे स्वस्ति मा सम्पारयेति"— इस मन्त्र से गोष्ठ का आम मन्त्रण करता है । जहाँ पर और अन्यत्र भी "नमोरुद्राय" इति—यही बोलना चाहिए । क्योंकि "रुद्रो ह्येदं सर्वम्"—यह श्रुति वचन के द्वारा प्रतिपादित होता है । सिचाव-

धुत होकर "सिगासि न वज्रोऽसि नमस्तेऽस्तु मा माहिं सी रिति" इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करता है। शिवा नो वर्षाः सन्तु शिवा नः सन्तु हेतयः। शिवा नस्ताः सन्तु यास्त्वं सृजसि वृत्रहन्निति" इस मन्त्र के द्वारा स्तनयित्नु को अभिमन्त्रित करता है। "शिवो नामेति" इत्यादि के द्वारा वाश्यमाना शिवा का अभिमन्त्रण करता है "हिरण्यपर्ण शकुने देवानां प्रहितंगम। यमदूत नमस्तेऽस्तु किन्त्वा कार्कारिणोऽब्रवीत्" इति—इसको पढ़े। इस प्रकार से क्षेम्य ही होता है "मा त्वाऽशनिर्मा परशुर्मा वातो मा राजप्रेषितो दण्डः। अङ्कुरास्ते प्ररोहन्तु नियाते त्वाऽभि वर्षतु। अग्निष्टे मूल मा हिंसीत्स्वस्ति तेऽस्तु वनस्पते स्वस्ति मेऽस्तु वनस्पते" इति—

इस मन्त्र के द्वारा लक्षण्य वृक्ष का अभि मन्त्रण करता है। वह यदि कुछ प्राप्त करे तो उसका प्रतिग्रहण करता है। द्यौ तुमको देवे, पृथिवी तुमको प्रतिग्रहण करे— इति—इससे करे। वह देने वाले इसकी क्षीण नहीं होती है और भूयसी प्रति ग्रहीता होती है। इसके अनन्तर यदि ओदन का लाभ करता है तो उसका प्रतिग्रहण करता है मन्त्र यह है—"द्यौस्त्वेति तस्य हि प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नात्विति" इसके अनन्तर यदि मन्थ का लाभ करता है तो उसका प्रतिग्रहण करे। उसका मन्त्र यह है—"द्यौस्त्वेति तस्य त्रिः प्राश्नाति ब्रह्मा त्वाऽश्नातु ब्रह्मा त्वा प्राश्नातु ब्रह्मा त्वा पिबत्विति"। इसके अनन्तर अध्ययन कर—करके मेरा अनिराकरण प्रतीक विचक्षण हो, मेरी जिह्वाओ वचन हो वह मधु हो। कानों से बहुत अधिक श्रवण करूँ, आप मुझ में श्रुत को हरण मत करो। आप ब्रह्मा के प्रवचन हो—आप ब्रह्मा के प्रतिष्ठान हो, ब्रह्म कोश हो, मनि हो, शान्ति हो, अनिराकरण हो, ब्रह्म कोश मुझ में प्रवेश करो। वाणी से आपका विधान करता हूँ—वाक् के द्वारा तुम्हारा विधान करता हूं (ठहरिये, प्रतिष्ठित होइए) स्वरकरण—कण्ठ्य—और स—दन्त्य—औष्ठ्य—ग्रहण—धारण—उच्चारण की शक्ति मुझ में हो जावे। मेरे सम्पूर्ण अङ्ग वाक्—प्राण—चक्षु—श्रोत्र—

यश और बल आप्यायित होवें। जो भी मैंने श्रवण किया है और जो कुछ भी मेरा अध्ययन किया हुआ है वह सम्पूर्ण श्रुत और अधीत किया हुआ मेरे मन में स्थित रहे—स्थित रहे। १६।

चतुर्थ काण्ड

अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीतोर्ध्वं वा चतुर्थ्यां यदहः संपद्येत तदहर्ब्राह्मणानामन्त्र्य पूर्वेद्युर्वा स्नातकानेके यतीन् गृहस्थान् साधून् वा श्रोत्रियान् वृद्धाननवद्यान् स्वकर्मस्थानभावेऽपि शिष्यान् स्वाचारान् द्विनग्नशुक्लविक्लिधश्यावदन्तविद्धप्रजननव्याधितव्यङ्गिश्वित्रिकुष्ठिकुनखिवर्ज्यमानिन्द्येनामन्त्रितो नापक्रामेदामन्त्रितो वाऽन्यदन्नं प्रतिगृह्णीयात्स्नाताञ्छुचीनाचान्तान्प्राङ्मुखानुपवेश्य दैवे युग्मानयुग्मान्यथाशक्ति पित्र्य एकैकस्योदङ्मुखान्द्वौ वा दैवे त्रीन् पित्र्य एकैकमुभयत्र वा मातामहानामप्येव तन्त्र वा वैश्वदेविकम्। श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्वीत शाकेनापि वाऽपरपक्षमतिक्रामेन्मासि मासि वोऽशनमिति श्रुतेस्तदहः शुचिरक्रोधनोऽत्वरितोऽप्रमत्तः सत्यवादी स्यादध्वमैथुनश्रमस्वाध्यायान्वर्जयेदावाहनादि वाग्यतः औपस्पर्शनादामन्त्रितारचैवम्।१।

अपर पक्ष में श्राद्ध करना चाहिए अथवा इसके चतुर्थी के भी ऊर्ध्व में करे जो दिन सम्पन्न होवे उस दिन मे ब्राह्मणों का आमन्त्रण करे

अथवा श्राद्ध वाले दिन में पूर्व दिन मे आमन्त्रण करे। स्नातकों को आमन्त्रित करना चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि यतियों को—गृहस्थों को अथवा साधुओं को आमन्त्रित करना चाहिए। श्रोत्रियों–वृद्धों को–अनवद्यों को अर्थात् दोषों से रहितों को–अपने कर्मों में अवस्थित रहने वालों को आमन्त्रित करे। यदि ऐसे उपर्युक्त प्रकार के गुणगण विशिष्ट ब्राह्मण न मिलें और अभाव हो तो उस अभाव मे शिष्यों को–अपने आचार में रहने वालों को आमन्त्रित श्राद्ध में करना चाहिए। द्विनान—शुक्ल विक्लिध श्याव दन्त (अर्थात् काले दाँतों वाला) विद्ध—प्रजनन व्याधित (रोगी) व्यङ्ग अर्थात् न्यून या अधिक अङ्गों वाला–श्वित्री अर्थात् सफेद कोढ वाला–कुष्ठी—कुनखी इस प्रकार के ब्राह्मणों को श्राद्ध में वर्जित कर देवे। अनिन्द्य के द्वारा आमन्त्रित होकर अन्य अन्न का प्रतिग्रहण नहीं करना चाहिए। स्नान किये हुए, परम शुचिता को प्राप्त हुए, आचंत अर्थात् आचमन किये हुए और पूर्व की ओर मुखों वाले ब्राह्मणों को जो कि आमन्त्रित किये गये हैं, बिठा देवे।

दैव कर्म में युग्म विप्रों को और शक्ति के अनुसार अयुग्मों को आमन्त्रित करे। पित्र्य कर्म मे एक—एक का आमंत्रण करे। और उत्तर की ओर मुखों वाले रक्खे। अथवा दैव कर्म में दो, तीन पित्र्यकर्म में में अथवा एक–एक का ही दोनों ही कर्मों में आमन्त्रित करे। मातामहों का भी (नाना आदि का भी) इसी प्रकार से करना चाहिए। अथवा यहाँ पर वैश्वदेविक करे। श्रद्धा की भावना से जो पितृगण के निमित्त में उनकी तृप्ति के लिये किया जाता है उसको ही वास्तविक श्राद्ध कहा जाता है। अतएव श्रद्धा से समन्वित होकर ही श्राद्ध करना चाहिए। अथवा श्रद्धा से शाक के द्वारा ही श्राद्ध करे। अथवा अपर पक्ष का अतिक्रमण करे "मासि मासि वोऽशनम्" इस प्रकार का श्रुति–वचन है अर्थात् प्रत्येक मास में आपका अशन होता है। उस श्राद्ध के दिन में जिस दिन में भी श्राद्ध करना हो उस दिन श्राद्ध कर्त्ता को परम शुचि

रहना चाहिए। उस दिन किसी बात पर भी क्रोध न करने वाला अर्थात् परम शान्त रहे—जल्दबाजी किसी भी कर्म में न करने वाला होवे—प्रमत्त अर्थात् प्रमाद करने वाला न होवे और उस दिन में तो पूर्णतया सत्य बोलने वाला होना चाहिए। इन ही गुण गणों से पितृगण श्राद्ध कर्ता पर पूर्ण प्रसन्न होकर आशीष दिया करते हैं और स्वयं पूर्ण तृप्त होते हैं श्राद्ध वाले दिन में मार्ग गमन-मैथुन-किसी काम में अधिक श्रम और स्वाध्याय अर्थात् वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन—इस सबको वर्जित कर देना चाहिए। वाग्यत होते हुए आवहनादि करे औपस्पर्शन से इस प्रकार से आमन्त्रित होते हैं ॥१॥

देवपूर्वं ँ श्राद्धम्। पिण्ड पितृयज्ञवदुपचारः पित्र्ये द्विगुणास्तु दर्भा पवित्रपाणिर्दद्यादासीनः सर्वत्र प्रश्नेषु पङ्क्तिमूर्धन्यं पृच्छति सर्वान्वाऽऽसनेषु दर्भानास्तीर्य विश्वान्देवानावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो विश्वे देवास आगतेत्यनयाऽऽवाह्यावकीर्य विश्वे देवाः शृणुतेममिति जपित्वा पितृनावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञात उशन्तस्त्वेत्यनयाऽऽवाह्यावकीर्याऽऽयन्तु न इति जपित्वा यज्ञियवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वेककस्मिन्नप आसिञ्चति शन्नो देवीरित्येकैकस्मिन्नेव तिलानावपतितिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄँल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहेति सौवर्णराजतौदुम्बरखड्गमणिमयानां पात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते पत्रपुटेष्वेकैकस्यैकैकेन ददाति सपवित्रेषु हस्तेषु या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः श ँ स्योनाः सुहवा भवन्त्वित्यसावेष तेऽर्घ इति प्रथमे पात्रे स ँ स्रवान्समवनीय पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्ज

पात्रं निदधात्यत्र गन्धपुष्प धूपदीपवाससां च प्रदानम् ॥२॥

श्राद्ध दैवपूर्व होता है । पिंड पितृयज्ञ के ही समान उपचार होता है । पिञ्य कर्म में दर्भ (कुशा) द्विगुण होते है । पवित्रपाणि होकर अर्थात् पवित्री धारण करके शुचि कर वाला हो जावे और फिर श्राद्ध देना चाहिए । समासीन होकर सर्वत्र प्रश्नों मे जो ब्राह्मण पंक्ति में मूर्धन्य (प्रमुख) हो उसी से पूछता है । अथवा समस्त दर्भों को आसन पर फैला कर विश्वान् देवान् अर्थात् विश्वेदेवाओं का आवाहन करूँगा—यह पूछता है । आवाहन करता है—इस प्रकार से अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होकर 'विश्वे देवास आगतेति' इस ऋचा से आवाहन करे और अव-किरण करके 'विश्वेदेवाः शृणुतेमम्' इस मन्त्र का जाप करके फिर पितृगणों का आवाहन करूँगा यह पूछता है । 'आवाहयेत' आवाहन करो इस रीति से अनुज्ञात होवे । 'उशन्तस्त्वेति' इस ऋचा से आवाहन करके 'आयन्तु न' इति—इसका जाप करके यज्ञिय वृक्ष चमसों में पवित्रान्त-र्हितों में—एक-एक में जल का आसिञ्चन करता है । 'शन्नो देवीः' इति—इससे एक-एक में ही तिलों का आवपन करता है । मन्त्र यह है—तिलोऽसि सोम दैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः प्रत्नमद्भिः प्रक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहा' इस मन्त्र क द्वारा सुवर्ण से निर्मित—चाँदी के बने हुए—उदुम्बर से रचित और सङ्ग मणिमय पात्रों के अन्यतमों में अथवा जो भी विद्यमान होते हैं पत्र पुटों में (दोनों में) एक-एक का एक-एक के द्वारा देता है । सपवित्र हस्तों में 'या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्ष उत पार्थवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः शँ स्योनाः सुहवा भवन्तु' इति—इस मन्त्र से 'असौ एष तेऽर्घ' अर्थात् वह यह तुम्हारे लिए अर्घ है—यह कहकर प्रथम पात्र में संस्रवों को समवनयन करके 'पितृभ्यः स्थानमसि' इससे न्युब्ज पात्र को रखता है । यहाँ पर गन्ध—पुष्प—धूप—दीप और वस्त्र—इन सबका प्रदान किया जाता है ॥२॥

उद्धृत्य घृताक्तमन्नं पृच्छति अग्नौ करिष्य इति कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवद्धुत्वा हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहेति वैष्णव्यर्चा यजुषा वाऽङ्गुष्ठमन्नेऽवगाह्यापहता इति तिलान्प्रकीर्योष्णं स्विष्टमन्नं दद्याच्छक्त्या वाऽश्नत्सु जपेद् व्याहृतिपूर्वां गायत्रीं सप्रणवां सकृत्त्रिर्वा राक्षोघ्नीः पित्र्यमन्त्रान्पुरुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानि च पवित्राणि तृप्तान् ज्ञात्वाऽन्नं प्रकीर्य सकृत्सकृदपो दत्त्वा पूर्ववद्गायत्रीं जपित्वा मधुमतीर्मधु मध्विति च तृप्ताः स्थेति पृच्छति तृप्ताः स्म इत्यनुज्ञातः शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमेकतोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रींस्त्रीन्पिण्डानवनेज्य दद्यादाचान्तेष्वित्येक आचान्तेषु उदकं पुष्पाण्यक्षतानक्षय्योदकं च दद्यादघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्धतां वर्धतामित्युक्ते दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्वित्याशिषः प्रतिगृह्य स्वधावाचनीयान्स पवित्रान्कुशानास्तीर्य स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यतामित्यस्तु स्वधेत्युच्यमाने स्वधावाचनीयेष्वपो निषिञ्चति ऊर्जमित्युत्तान पात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा वाजेवाजेऽवतेति विसृज्याऽऽमा वाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्योपविशेत् ॥३॥

घृत से अक्त अन्न को उद्धृत करके पूछता है। जो ब्राह्मण आमन्त्रित हुए है उनमें ही पितृगणों का आवाहन किया गया है और उनको

ही अपने पितर मानकर उनसे आज्ञा प्राप्त की जाया करती है। उनसे पूछकर आज्ञा जब वे दे दिया करते हैं तो अग्रिम कृत्य करना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता पूछता है—'अग्नि में करूँगा' इस पूछने पर वे आज्ञा प्रदान करते हैं—कुरुष्व' अर्थात् करो। इस प्रकार से अनुज्ञात होकर पिण्ड पितृ यज्ञ के ही समान हवन करे और हुत से शेष को देकर पात्र का आलभन करके जाप करता है—'पृथिवी तेपात्र द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा'' इति। यह मन्त्र है। वैष्णवी अर्चा यजु से करे। अथवा अंगुष्ठ को अन्त में आच्छादित करके प्रवहता'' इसमें तिलों को प्रकीर्ण करे। उष्ण स्विष्ट अन्न देवे। उनके अशन करने पर यथा शक्ति जाप करना चाहिए। व्याहृतियां जिससे पूर्व में हों ऐसी प्रणव से युक्त गायत्री को, एक बार अथवा तीन बार रक्षोघ्नी को पित्र्य मन्त्रों को—पुरुष सूक्त को, अप्रतिरथ को तथा अन्य पवित्र मन्त्रों का जाप करना चाहिए। यह जाप उस समय में करे जब ब्राह्मण भोजन कर रहे हों। जब यह ज्ञान प्राप्त कर लेवे कि ब्राह्मण पूर्णतया तृप्त हो गये हैं। अन्न को प्रकीर्ण करके एक-एक वार जल देकर पूर्व की ही भाँति गायत्री का जाप करके "मधुमती मधु मक्षिवती च तृप्ताः स्थ'' इति—इस प्रकार श्राद्ध करने वाला पूछता है। वे ब्राह्मण जिन में पितृगण का आवाहन किया गया था वे उसको उत्तर में कहते है—"तृप्ताः'' अर्थात् हम लोग पूर्ण रूप से तृप्त हो गये हैं। इस प्रकार से जब अनुज्ञात हो जाता है तो शेष अन्न को अनुज्ञापित करके और सब अन्न को एक ओर उद्धृत करके जो उच्छिष्ट हो उसके समीप में दर्भों पर तीन-तीन पिण्डों को अवनेजन करके देवे। कुछ का मत है कि आचान्त होने पर करे। आचान्त होने पर उदक—पुष्प—अक्षत और अक्षय्योदक देना चाहिये। "अघोराः पितरः सन्तु सन्त्विति'' इसके कथन पर "गोत्रं नो वर्धताम्'' अर्थात् हमारा गोत्र बढ़े। इसके उत्तर में 'वर्धताम्' वृद्धि को प्राप्त होवे—यह कथित होने पर "दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु''—अर्थात् हमारे दातागण

वृद्धि को प्राप्त होवें–वेदों और सन्तति की भी वृद्धि होवे। और हमारे प्रति श्रद्धा का लोप न होवे—तथा बहुत अधिक देय होवे–इस प्रकार के आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करके स्वधा वाचनीय सपवित्र अर्थात् पवित्रियों के सहित कुशाओं को आस्तृत करके स्वधा का वाचन करूँगा– यह पूछता है। इसका उत्तर 'वाचन करो'—ऐसा प्राप्त कर अनुज्ञा प्राप्त करने वाला होते हुए पितृगणों के लिए, पितामहों के लिए– प्रपितामहों के लिए और इसी भाँति मातामहों के लिये— प्रमातामहों के लिये—वृद्ध प्रमातामहों के लिये स्वधा कहूं— स्वधा होवे—यह उच्यमान होने पर स्वधा वाचनीयों पर जल का निषिञ्चन करता है "ऊर्जम्" इससे पात्र को उत्तान करके अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा देनी चाहिए। "विश्वे देवा प्रीयन्ताम्" इति दैव में वाचन करके "वाजे वाजेऽवत" इति–इससे विसर्जन करके "आमा वाजस्य" इति–इससे अनुगमन करके प्रदक्षिणा करके उपविष्ट होना चाहिए ॥३॥

अथैकोद्दिष्टम् । एकोऽर्घं एकं पवित्रमेकः पिण्डो नावाहनं नाग्नौकरणं नात्र विश्वेदेवाः स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः सुस्वदितमितीतरे ब्रूयुरुपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थानेऽभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरताः स्म इतीतरे ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय में वर्णन किया जाता है। इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध में एक ही अर्घ होता है–एक पवित्र होता है–और एक ही पिण्ड होता है। इसमें आवाहन नहीं होता है—अग्नौकरण नहीं होता है और उसमें विश्वेदेवा स्वदितम्—इति—यह इतरों को बोलना चाहिए। उपतिष्ठताम्" इति—इससे अक्षय्य स्थान में 'अभिर-

म्यताम्'' इति—इससे विसर्गोऽभिरताः स्म ॥ इति—यह इतर करते हैं ॥४॥

ततः संवत्सरे पूर्णे त्रिपक्षे द्वादशाहे वा यदहर्वा वृद्धिरापद्येत चत्वारि पात्राणि सतिलगन्धोदकानि पूरयित्वा त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति ये समाना इति द्वाभ्याम् । एतेनैव पिण्डो व्याख्यातः । अत ऊर्ध्वं ँ संवत्सरे संवत्सरे प्रेतायान्नं दद्याद्यस्मिन्नहनि प्रेतः स्यात् ॥५॥

इसके अनन्तर सम्वत्सर के पूर्ण होने पर त्रिपक्ष में अथवा द्वादशाह में अथवा जो दिन वृद्धि को प्राप्त होवे चार पात्रों को .तिल और गन्धोदकों को पूरित करके तीन पितृगणों को, एक प्रेत को उस प्रेत पात्र को पितृपात्रों में आसिञ्चन करता है। इसके लिये "ये समाना" इति—ये दो मन्त्रों से करे। उससे ही पिण्ड की व्याख्यात किया गया है। इसके आगे सम्वत्सर–सम्वत्सर में प्रेत के लिये अन्न देना चाहिए, जिस दिन में प्रेत होता है ॥५॥

आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचारः पूर्वाह्णे पित्र्यमन्त्रवर्जं जपः ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्थाः सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः सुसंपन्नमितीतरे दध्युदर्धबदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखान्पितृनावाहयिष्य इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यक्षय्यस्थाने नान्दीमुखान्पितृन्वाचयिष्य इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहा मातामहाः प्रमातामहा वृद्धप्रमातामहाश्च प्रीयन्तामिति न स्वधां प्रयुञ्जीत युग्मानाशयेदत्र ॥६॥

आभ्युदयिक श्राद्ध में प्रदक्षिण उपचार पूर्वाह्न में पित्र्य मन्त्रों से वर्जित जाप करे। ऋजु दर्भ इसमें होते हैं और तिलों के अर्थ यवों के द्वारा सम्पन्न होते हैं—इति—यह तृप्ति का प्रश्न होता है। सुसम्पन्न हो गया—यह इतरों को बोलना चाहिये। दधि—बदर—अक्षतो से मिश्रित पिण्ड नान्दी मुख पित्रों का आवाहन करूँगा—यह पूछता है और इसके उत्तर मे 'आवाहय' अर्थात् आवाहन करो इस प्रकार से अनुज्ञात होता हुआ अर्थात् अनुज्ञा प्राप्त कर लेने वाला श्राद्धकर्ता "नान्दीमुख पितर प्रीयमाण होवें"—इससे अक्षय्य स्थान मे नान्दीमुख पितृगणों को वाचन करूँगा—ऐसा पूछता है। इसके उत्तर में 'वाच्य" अर्थात् वाचन करो—इस प्रकार से अनुज्ञात होकर—"नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहा मातामह्ाः प्रमाता महाः वृद्ध प्रमाताम महाश्च प्रीयन्ताम्"—इति—इससे स्वधा का प्रयोग न करे। यहाँ पर युग्मों को प्राशन कराना चाहिए ॥६॥

अथ काम्यानि भवन्ति स्त्रियोऽप्रतिरूपा प्रतिपदि द्वितीयायाँ स्त्री जन्म श्वास्तृतीयां चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवः पुत्राः पञ्चम्यां द्यूतर्द्धिः षष्ठ्यां कृषिः सप्तम्यां वाणिज्यमष्टम्यामेकशफ नवम्यां दशम्यां गावः परिचारका एकादश्यां धनधान्यानि द्वादश्यां कुप्यँ हिरण्यं ज्ञाति श्रैष्ठ्यं च त्रयोदश्यां युवानस्तत्र म्रियन्ते शस्त्रहतस्य चतुर्दश्याममावास्याया सर्वमित्यमावास्याया मिति ॥७॥

इसके अनन्तर काम्य श्राद्ध होते है। स्त्रियाँ अप्रति रूपा है इनका प्रतिपदा में, द्वितीया मे स्त्री जन्म तृतीया में, क्षुद्र पशु गण पुत्र पञ्चमी में, धूतर्द्धि षष्ठी में, कृषि सप्तमी में, वाणिज्य अष्टमी में, एक शफ वाला नवमी में, दशमी में गौऐ परिचारक एकादशी मे, धनधान्य

द्वादशी में, कुप्य हिरण्य और ज्ञाति श्रेष्ठता त्रयोदशी में जहाँ पर युवा लोग मरते है शस्त्र के द्वारा जो हृत उनका चतुर्दशी में और अमावस्या में सबका होता है। रहे सहे सबका अमावस्या तिथि में होता है। इति ॥ ७ ॥



॥ इति पारस्करगृह्य सूत्र समाप्त ॥

खादिर गृह्यसूत्रम् ।

प्रथम खण्ड

अथातो गृह्या कर्माणि ।१। उदगयनपूर्वपक्षपुण्याहेषु प्रागावर्तनादह्नः कालोऽनादेशे ।२। अपवर्गे यथोत्साहं ब्राह्मणानाशयेत् ।३। यज्ञोपवीतम् ।४। सौत्रम् ।५। कौशं वा ।६। ग्रीवायां प्रतिमुच्य दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य यज्ञोपवीती भवति ।७। सव्यं प्राचीनावीती ।८। त्रिराचस्यापो द्विः परिमृजीत ।९। पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत् ।१०।

अब गृह्य कर्मों के विषय में कहा जाता है । इसमें जहां कहीं समय के सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं दिया गया हो, अर्थात् स्पष्ट शब्दों में यह न बताया गया है कि अमुक कर्म अमुक दिन और समय पर करना चाहिये, वहां सब कार्यों को उत्तरायण शुक्ल पक्ष, निर्दोष दिन में दोपहर के पहिले करना चाहिये । इस प्रकार के सभी कर्मों में एक, दो अथवा यथा शक्ति ब्राह्मण-भोजन करावे । आगे वर्णित कर्मों के करने के अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है । इसके लिये सूत, वस्त्र या कुशा से बनी डोरी मे से जो कोई वस्तु मिल सके, उसी का यज्ञोपवीत बनावे उसको दाहिने कन्धे के बगल में लटकता रहने दे । इसी को 'यज्ञोपवीती' कहते है । इसी प्रकार यज्ञोपवीत को बाँये कन्धे पर रखकर दाहिनी बगल में लटकाये रखने वाले को "प्राचीनवीती" कहते हैं । दैव-कार्यों में यज्ञोपवीती और पितृ-कार्यों में

प्राचीनवीती विधि से पहनकर कार्य सम्पन्न करना चाहिये। सभी कर्मों मे प्रथम 'आचमन' किया जाता है। दोनो हाथों को धोकर उपयुक्त स्थान पर उपवेशन करे, फिर तीन बार आचमन और दो बार समस्त शरीर का मार्जन करे। दो बार ओठों मे जल लगाकर उनको साफ करे और फिर दोनों पैरों पर और माथे पर जल के छीटे दे ॥१-१०॥

इन्द्रियाण्यद्भिरसस्पृशेत् ।।११। अन्ततः प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति । १२ । आसनस्थानसवेशनान्युदगग्रेषु दर्भषु ।।१३। प्राङ् मुखस्य प्रतीयात् ।१४। पश्चादग्नेयत्र होमस्यात् ।१५। सहशिरस स्नानशब्द ।१६। दक्षिणेन पाणिना कृत्यमनादेशे ।१७। मन्त्रान्तमव्यक्तं परस्यादि-ग्रहणेन विद्यात् ।१८। स्वाहान्ता मन्त्रा होमेष ।१९। पाकयज्ञ इत्याख्या यः कश्चैकाग्नौ ।२०।

अँगूठा तथा अनामिका से दोनों नेत्रों, अँगूठा तथा प्रदेशिनी से नाक, अँगूठा तथा कनिष्ठिका से कानों को स्पर्श करे। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का भी स्पर्श करे। कर्म को आरम्भ करने अथवा आरम्भ करने से पहले ही यदि सोकर उठे तो फिर से आचमन करने पर ही पवित्र होता है। जहाँ बैठकर कर्म किया जाय वहाँ उत्तराग्र कुशों के आसन का प्रयोग करे। यदि विधान में किसी तरफ मुँह करके बैठने की बात न लिखी हो तो पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके ही बैठे। इसी प्रकार जहाँ यह नहीं लिखा हो कि अग्नि के किस ओर बैठा जाय वह हमेशा हवन की अग्नि के पश्चिम तरफ बैठना चाहिये। जहाँ कहीं 'स्नान' करने का विधान हो वहां शिर पर जल डाल कर सर्वाङ्ग स्नान को ही समझना चाहिये। यदि यह न लिखा हो कि दाहिने या बाँये किस हाथ से कर्म किया जाय, वहाँ दाहिने हाथ से ही सब कर्म करे। जिस मंत्र के अन्त में उसका विनियोग और परिमाण स्पष्ट रूप से न बतलाया गया हो वहाँ उत्तर मन्त्र के आदि या प्रधान मंत्र के

अर्थ को समझकर तदनुसार कार्य करे। होम करने वाले जिन मंत्रों के अन्त में 'स्वाहा' का शब्द न हो तो भी उनका उच्चारण करते समय उनमें 'स्वाहा' शब्द अवश्य जोड़ दिया जाय। इस प्रकार गृह्य-अग्नि में जितने कर्म किये जाते हैं उनको "पाक-यज्ञ" कहा जाता है ॥११-२०॥

तत्रर्त्विक् ब्रह्मा सायंप्रातर्होमवर्जम् ।२१। स्वयं हौत्रम् ।२२। दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुखस्तूष्णीमास्ते ब्रह्माऽऽहोमात्प्रागग्रेषु ।२३। कामं त्वधियज्ञं व्याहरेत् ।२४। अयज्ञीयां वा व्याहृत्य महाव्याहृतीर्जपेत् ।२५। हौत्र-ब्रह्मत्वे स्वयं कुर्वन् ब्रह्मासनमुपविश्य छत्रमुत्तरासङ्गं कमण्डलुं वा तत्र कृत्वाऽथान्यत्कुर्यात् ।२६। अव्यावृत्ति यज्ञा॥२०५वायं चेच्छेत् ।२७।

ऐसे "पाक-यज्ञों" में सायंकाल तथा प्रातः के हवन को छोड़कर अन्य पाकयज्ञों में ऋत्विग् (होम करने वाला) को ही "ब्रह्मा" माना जाता है। जो हवन नित्य प्रति किये जाते हैं उनमें यजमान को स्वयं ही कर्म करने का अधिकार होता है। हवन के समय "ब्रह्मा" अग्नि के दक्षिण ओर अन्त तक मौनपूर्वक बैठा रहे। उसके कुशासन की कुशाओं का अग्रभाग पूर्व की ओर रहे। यदि यज्ञ सम्बन्धी किसी बात का स्पष्टीकरण या निर्देश करना हो तो ब्रह्मा बोल सकते हैं। पर यदि वे यज्ञ सम्बन्धी बात के अतिरिक्त अन्य लौकिक बात करें तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप "इदं विष्णुः" ऋचा का पाठ करें। यदि हवन का कर्म और ब्रह्मा का कार्य एक ही व्यक्ति को करना हो तो ब्रह्मा के लिये बिछाये गये आसन पर छाता या जल से भरा कमण्डल रखकर उसकी प्रदक्षिणा आदि करके होता के आसन पर आ जाय और "इदं भूमै" मन्त्र पढ़कर बैठकर कर्म को प्रमाद अथवा किसी अन्य कारणवश

बीच में न छोड़े। यदि किसी कारण छोड़ना पड़े तो फिर आरंभ से कर्म कराये ।।२१-२७।।

द्वितीय खण्ड

पूर्वे भागे वेश्यनो गोमयेनोपलिप्य तस्य मध्यदेशे लक्षण कुर्यात् ।१। दक्षिणतः प्राचीं लेखामुल्लिख्य ।२। तदारम्भादुदीची तदवसानात्प्राचीं तिस्रो मध्ये प्राचीः ।३। तदभ्युक्ष्य ।४। अग्निमुपसमाधाय ।५। इयं स्तोममिति परिसमूह्य तृचेन ।६। पश्चादग्नेर्भूमौ न्यञ्चौ पाणी कृत्वेदं भूमेरिति ।७। वस्वन्तं रात्रौ ।८। पश्चाद्भानास्तीर्य दक्षिणतः प्राचीं प्रकपदुत्तरतश्च ।९। अप्रकृष्य वा ।१०।

इस प्रकार का "पाक यज्ञ" घर के पूर्व भाग में किया जाय और और उस स्थान को गोबर से लीप कर उसके मध्य में वेदी बनाई जाय। वेदी के स्थान पर पश्चिम से पूर्व को रेखा खींचे और रेखा पर उत्तर क्रम से (आड़ी) तीन रेखायें खींचें और वेदी को जल से छिड़क कर पवित्र करे। तब वेदी के बीच अग्नि स्थापित करके होम आरंभ करे। समस्त सामान्य पाक यज्ञों के लिये यही विधि है। तत्पश्चात् "इमं स्तोमं०" आदि तीन ऋचायें पढ़ कर यज्ञ वेदी का परिसमूहन करे। फिर अग्नि के पश्चिम भाग में तृण आदि सहित भूमि पर दोनों हाथ औंधे रखकर "इदं भूमे०" मंत्र का जाप करे। जो हवन कृत्य रात्रि में करना हो तो "अन्येषां विन्दते वसु" मंत्र को पढ़े और यदि दिन में करना हो तो "अन्येषां विन्दते धनम्" मंत्र पढ़े और तब ब्रह्मा

को बिठावे । हवन की वेदी पर अग्नि प्रज्ज्वलित कर उस अग्नि के चारों तरफ कुशाओं को इस प्रकार बिछावे कि पहले पूर्व की ओर, फिर दक्षिण की ओर, फिर उत्तर में और अन्त में पश्चिम की तरफ से अग्नि कुण्ड घिर जाय ॥१-१०॥

पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणमग्निं स्तृणुयान्मूलान्यग्रेश्छादयंस्त्रिवृतं पञ्चवतं वा ।११। उपविश्य दर्भाग्रे प्रादेशमात्रं प्रच्छिनत्ति न नखेन पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति ।१२। अद्भिरुन्मृज्य विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति ।१३। उदगग्रे अंगुष्ठाभ्यामनामिकाभ्यां च संगृह्य त्रिराज्यमुत्पुनाति 'देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण' 'वसोस्सूर्यस्य रश्मिभिरिति' ।१४। अभ्युक्ष्यैते अग्नावनुप्रहरेत् ।१५। आज्यमधिश्रित्योत्तरतः कुर्यात् ।१६। दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलिं प्रसिञ्चेत् ।१७। अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात् सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरतः ।१८। देव सवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्षेदभिपरिहरन् हव्यम् ।१९। सकृत्त्रिर्वा ।२०। समिध आधाय ।२१। प्रपदं जपित्वोपताम्य कल्याणं ध्यायन् वैरूपाक्षमारभ्योच्छ्वसेत् ।२२। प्रतिकामं काम्येषु ।२३। सर्वत्रैतद्धोमेषु कुर्यात् ।२४।

इस प्रकार कुशाओं को एक के ऊपर एक, तीन या पाँच बार बिछावे । पर यह ध्यान रखे कि दो तीन या अधिक कुशा एक स्थान पर मिल न जायें और उनका अग्रभाग उनकी जड़ से ढका रहे । तत्पश्चात् पहले से इकट्ठा किये कुशाओं में से "प्रादेश" प्रमाण दो कुशाओं को लेकर "पवित्रे स्थो०" मंत्र पढ़कर बीचों बीच छेदन करे । फिर "विष्णोर्मनसा" मंत्र पढ़कर उसको जल से धो डाले । फिर उत्तराग्र करके "आज्योत्पवन" करे अर्थात् घी में पड़े तिनके आदि को निकाल कर पूर्व की ओर ऊपर की तरफ फेंक दे । इस कर्म को करते

हुये दोनों "पवित्रों" को अँगूठा और अनामिका अँगुली से पकड़ कर एक बार "देवस्त्वा०" यजुर्वेद के मंत्र को पढ़कर और दो बार बिना मंत्र पढ़े 'उत्पवन' करे। उत्पवन के पश्चात् उन दोनों 'पवित्रों' को जल से धोकर अग्नि में डाल दे। इसके पश्चात् हवन वेदी से उत्तर दिशा में कुछ जलते हुये अंगार (कोयला आदि) रख कर उस पर पहले उपर्युक्त आज्य-पात्र (घी के बर्तन) को और फिर चरुस्थाली (खीर की पतीली) को रखे। अग्नि का आधान तथा परिसमूहन करके दाहिना जानु पृथ्वी पर टेक कर "अदिते०" मंत्र को पढ़ कर अग्नि के दक्षिण में जल की अंजलि प्रदान करे। "अनुमते०" मंत्र से पश्चिम भाग में दूसरी उदकाञ्जलि दे और "स्वरसत्यनु०" मंत्र से अग्नि को उत्तर दिशा में तीसरी अंजलि प्रदान करे। तत्पश्चात् "देव सवितः०" मंत्र से हवन कुण्ड की प्रदक्षिणा करके जल की धारा छोड़े। फिर एक या तीन बार मंत्र पढ़कर "पर्युक्षण" करे। इसके पश्चात् गूलर, खैर, पलाश अथवा ये न मिल सकें तो किसी यज्ञ में विहित वृक्ष की लकड़ी की १५ समिधायें अग्नि में डाले। एक समिधा के उत्तर भाग मे बर्हिः कुश धरे। "तपश्च तेजश्च" से लेकर "ब्रह्मणः पुत्राय नमः" तक को "प्रपद" कहते हैं। "विरूपाक्षोऽसि" का पाठ प्रपद वाचक मंत्रों के बीच होने से यह कल्याण और मोक्ष वाचक है। श्वाँस को रोक कर प्रपद का पाठ करता हुआ, "भूर्भुवस्स्वरोम्" का पाठ करता हुआ परमात्मा का ज्ञान मुझे हो—इसका ध्यान करता हुआ "विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जि" जप कर श्वांस लेवे। यह नित्य कर्मों का विधान है, काम्य कर्मों में इसकी अपेक्षा विशेषता रहती है। काम्य कर्मों में जिस कार्य की सिद्धि के लिये कर्म किया जाता है उसी का ध्यान करता हुआ जप करे। सब प्रकार के होम कर्मों मे इस प्रकार के आरम्भिक कृत्य करके अन्य कर्म करना विधेय है ॥११-२४॥

तृतीय खण्ड

ब्रह्मचारी वेदमधीत्योपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ।१। आप्लवनं च ।२। तयोराप्लवनं पूर्वम् ।३। मन्त्राभिवादात्तु पाणिग्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम् ।४। ब्राह्मणस्सहोदकुम्भः प्रावृतो वाग्यतोऽग्रेणाग्निं गत्वोदङ् मुखस्तिष्ठेत् ।५। स्नातामहतेनाच्छाद्य या अकृन्तन्नित्यानीयमानायां पाणिग्राहो जपेत् सोमोऽददिति ।६। पाणिग्राहस्य दक्षिणत उपवेशयेत् ।७। अन्वारब्धायां स्रुवेणोपघातं महाव्याहृतिभिराज्यं जुहुयात् ।८। समस्ताभिश्चतुर्थीम् ।९। एव चौलोपनयनगोदानेषु ।१०।

ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाला व्यक्ति अंग सहित वेदों का अध्ययन करके गुरु को उनकी इच्छानुसार दक्षिणा प्रदान करे और उनकी आज्ञा प्राप्त करके समावर्तन संस्कार करके कुमारी से विवाह-संस्कार करे। समावर्तन की विधि सम्पन्न करने के पश्चात् विवाह-संस्कार के लिये सर्व प्रथम कन्या और वर स्नान करें। वर को मन्त्र पूर्वक स्नान करना होता है और कन्या बिना मन्त्र के ही करती है। विवाह के अवसर पर किया गया यह स्नान अन्य अवसर पर किये गये सामान्य स्नान से इस दृष्टि से भिन्न होता है कि इसमें कन्या अथवा वर की जाति की स्त्रियाँ एकत्रित होकर कन्या के समस्त शरीर को उबटन से भलीभाँति मल कर सर्वाङ्ग को अच्छी तरह साफ कर देती हैं। इसके पश्चात् पुरोहित अथवा कोई अन्य ब्राह्मण उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) से अपने शिर और कानों को ढककर जल से भरे कलश को शिर प रख कर जल-स्थान से उठकर अग्नि के सम्मुख खड़ा हो जाय। ज तक मस्तक पर जल का सेक न हो तब तक वह उसी प्रकार स्थि रहे। इसके पश्चात् पहले से स्नान की हुई वधू के पास दो वर पक्ष

वाले जायें और उसके समस्त शरीर को दो नये वस्त्रों से ढक दें। उस समय वे "या अकृन्तन" तथा "परिधत्त" मंत्रों को पढे। फिर वर अग्नि कुण्ड के पास खड़ा होकर कन्यादान करने वाले व्यक्ति द्वारा ले जाती हुई बहू को देख "सोमोऽददत्" मंत्र का जप करे। वह "या अकृन्तन" मंत्र पढ़ कर अधोवस्त्र तथा "परिधत्त" मंत्र पढ वर ओढ़ने का वस्त्र दे। तत्पश्चात "प्रमे पतियान" मंत्र का जप बहू करे तथा "प्रास्याः पतियान" मंत्र का पाठ पति करे। तब कुश के आसन, पर बहू को पति के दक्षिण भाग मे बिठावे और 'परिस्तरणादि" से लेकर "प्रपद" तक की विधि पूरी करके संस्कारित आज्य (घी) स्रुवा, समिधा और शमी या पलाश के पत्ते सहित लावा (धान की खील) सूप मे धर कर हवन कुण्ड के उत्तर तरफ रखे। सिल तथा लोढी को पश्चिम तरफ रखे।

प्रपद जप के पश्चात् बहू अपने दाहिने हाथ से पति के दाहिने हाथ को स्पर्श करती हुई वहि कुशा पर रखे हुये स्रुवा से पति द्वारा संस्कारित आज्य को लेकर 'भूस्स्वाहा' "भुवस्स्वाहा" "स्वस्स्वाहा" व्याहृति मंत्रों को पढ़ कर अग्नि मे हवन करे। वह तीन आहुतियाँ तो "भूस्स्वाहा" आदि मत्रों से और चौथी आहुति ' भूर्भुवस्स्वाहा" इस सम्पूर्ण व्याहृति-मंत्र से देवे। चूड़ाकरण, उपनयन और केशान्त संस्कारों के अवसर पर लेने वाले हवनो मे भी इसी विधि से कर्म किया जाता है ॥१–१०॥

अग्निरेतु प्रथम इति षड्भिश्च पाणिग्रहणे ।११। नाज्यभागौ न स्विष्टकृद्व्याहृतिष्वनादेशे ।१२। सर्वत्रा-परिष्टान्महाव्याहृतिभिः ।१३। प्राजापत्यय च ।१४। प्रायश्चित्त जुहुयात् ।१५। हुत्वोपोत्तिष्ठतः ।१६। अनुपृष्ठ गत्वा दक्षिणतोऽवस्थाय वध्वञ्जलिं गृह्णीयात् ।१७। पूर्वा माता शमीपलाशमिश्रान् लाजाञ्छूर्पे कृत्वा ।१८। पश्चादग्नेर्दृषत्पुत्रमाक्रमयेद्वधूं दक्षिणेन प्रपदेन इमम-

इमानमिति ।१९। सकृद्गृहीतमञ्जलिं लाजानां बध्व-ञ्जलावावपेत् भ्राता ।२०।

पाणिग्रहण संस्कार में " अग्नि रेतु प्रथम०" इत्यादि छः मंत्रों से हवन करे। जहाँ इस बात का स्पष्ट निर्देश न किया गया हो कि अमुक मंत्रों से इस प्रकार हवन किया जाय वहाँ "आज्य-भाग" और स्विष्ट कृत" होम न किया जाय। सभी हवन कृत्यों में उस अवसर पर विहित हवन करने के पश्चात् महाव्याहृति से हवन करना चाहिये। फिर "प्रजापते न त्वदेतानि" मंत्र से भी हवन करे। जहाँ कहीं किसी कारण वश प्रायश्चित की आवश्यकता हो वहाँ प्रायश्चित्तीय आहुतियाँ भी दी जायें। महाव्याहृति होम पूर्ण हो जाने पर वर और बधू दोनों एक साथ उठें। उठते समय वर का दाहिना हाथ कन्या की पीठ पर होकर दाहिने कन्धे पर और कन्या का बाँया हाथ वर की पीठ पर होकर बाँये कन्धे पर रहे। फिर पति बहू की पीठ की ओर होकर दाहिनी ओर जाकर उसकी अंजलि पकड़ कर उत्तर की ओर मुँह करके बैठे। उस समय कन्या की माता अथवा भाई शमी या पलाश के पत्ते मिला लावा सूप में लेकर अग्नि के पूर्व भाग में खड़े रहें। तब अग्नि के पश्चिम भाग में रखे सिल-लोढ़ी पर बाँये हाथ से अंजलि को पकड़े रह कर दाहिने पैर को रखे और पूर्व से ईशान कोठा की ओर चलावे। उस समय पति "इममश्मानमारोहा०" इत्यादि मंत्र पढ़ता जावे। तब बहू का भाई सूप में रखे लावा में से एक अंजलि लावा एक बार में देवे ।।११–२०।।

सुहृद्वा कश्चित् ।२१। त साऽग्नौ जुहुयादविच्छिद्या-ञ्जलिं इयं नारीति ।२२। अर्यमण पूषणमित्युत्तरयोः।२३। हुते तेनैव गत्वा प्रदक्षिमग्निं परिणयेत् कन्यला पितृभ्य इति ।२४। अवस्थानप्रभृत्येवं त्रिः ।२५। शूर्पेण शिष्टा-नग्नावोप्य प्रागुदीचीमुत्क्रमयेत् एकमिष इति ।२६। ईक्षकावेक्षणरथारोहणदुर्गानुमन्त्रणान्यभिरूपाभिः ।२७।

अपरेणाग्निमौदको गत्वा पाणिग्राहं मूर्धन्यवसिञ्चेत् ।२८। बधूं च ।२९। समञ्जन्त्वित्यवसिक्तः ।३०। दक्षिणं पाणि सांगुष्ठं गृह्णीयात् गृभ्णामि ते इति पड्भिः ।३१।

यदि बहू का कोई भाई न हो तो यह लावा देने का कार्य कोई अन्य रिश्तेदार करे। उस भाई या सम्बन्धी व्यक्ति से लावा को ग्रहण करके बहू इस प्रकार सावधानी से अग्नि में आहुति दे जिससे उसकी अंजलि अलग-अलग न हो जाय। उस समय "वर इयं नारी०" मंत्र का जप करे। इस प्रकार वेदज्ञ पति ने जिस प्रकार गमन किया था उसी प्रकार कन्या को आगे-आगे लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा कराते हुये "कन्यलापितृभ्य" इस मंत्र का पाठ करके कन्या को परिणीता करे। अर्थात् कन्या जो पत्नी बनकर पति ग्रह को प्राप्त करती है यह उसको समझा देवे। इस प्रकार परिणीता हो जाने पर दो बार फिर पूर्ववत् अवस्थान, अश्मारोहण, लजावपन, लाजा-होम करे, पर इन दो बार में पहले मन्त्रों को न पढ़ें, वरन् उनके स्थान पर "अर्यमणंनु-देवं" एवं पूषणं" इन दो मन्त्रों का पाठ करे। तीन बार होम करने से बचा हुआ लावा आदि को सूप में लेकर बिना मंत्र पढ़े अग्नि में डाल दे और ईशान कोण में 'एकामिषे" इत्यादि ६ मन्त्रों को पढ़ कर बहू को यथाक्रम सात पग इस भाँति चलावे जिससे बहू का दाहिना पग आगे चले और बाँया पीछे पीछे पर बाँया पैर दाहिने पैर में न जाय। बहू को देखने आये व्यक्तियों (ईक्षकों) वधू निरीक्षण बहू को पति-गृह जाने के लिये रथ पर चढ़ना, मार्ग के भय का निवारण आदि के अनुरूप मन्त्रों को पढ़ें। जैसे देखने वाले "सुमङ्गली" इत्यादि मंत्र पढ़ें, बहू के रथ पर चढ़ने समय "सुकिंशुकम" और मार्ग मे जहां भय हो वहां "मा विदन्०" आदि मंत्र पढ़े जायें। तत्पश्चात् कोई जल-वाहक अग्नि के पश्चिम भाग मे वर और वधू के मस्तक पर जल के छींटे दे। उस समय वर-बधू दोनों एक साथ "समञ्जन्तु०" मंत्र पढ़ें। पति उस जलसिक्त वधू की अञ्जलि को बाँयें हाथ से पकड़ कर अपने

पास कुछ ऊपर उठावे और दाहिने हाथ से उसके अंगूठा सहित दाहिने हाथ को पकड़ कर 'गृभ्णामिते' इत्यादि विवाह के छः मंत्रों को पढ़ें। और अग्नि की प्रदक्षिणा क्रम से घूम कर होप करके वाम देव्य गान तक सब क्रियाएँ करे। २१-३१।

चतुर्थ खण्ड

प्रागुदीचीमुद्वहेत् ।१। ब्राह्मणकुलेऽग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेर्लोहितं चर्मानडुहमुत्तरलोम प्राग्ग्रीवमास्तीर्य वाग्यतामुपवेशयेत् ।२। प्रोक्ते नक्षत्रेऽन्वारब्धायां स्रुवेणोपघातं जुहुयात् षड्भिर्लेखाप्रभृतिभिस्सम्पातानवनयन् मूर्धनि वध्वाः ।३। प्रदक्षिणमग्निं परिक्रम्य ध्रुवं दर्शयति ध्रुवाद्यौरिति ।४। अभिवाद्य गुरून् गोत्रेण विसृजेद्वाचम् ।५। गौर्दक्षिणा ।६। अत्रार्घ्यम् ।७। आगतेष्वित्येके ।८। त्रिरात्रं क्षारलवणे दुग्धमिति वर्जयानौ सह शय्यातां ब्रह्मचारिणौ ।९। हविष्यमन्नं परिजप्यान्नपाशेनेत्यसाविति वध्वा नाम ब्रूयात् ।१०।

होम समाप्त हो जाने पर वधू और स्थापनार्थ अग्नि को ईशान कोण में पहुँचावे। यदि विवाह क्षत्रिय जाति को हो और उसका अपना घर दूर होतो ईशान कोण में ब्राह्मण का जा घर समीप हो उसी घर मे उत्तर विवाह (चतुर्थी कर्म) कर्म के लिये अग्नि स्थापन करे। उस स्थापित अग्नि के पश्चिम भाग में चर्मासन बिछाये। उस पर वधू को बिठादे और वह अतिरिक्त बातें न करे। यदि बादल आदि के कारण नक्षत्र न दिखाई पड़ें तो ज्योतिष द्वारा ज्ञात नक्षत्रोदय काल में "लेखा

सन्धिपु०" इत्यादि छः मंत्रों के द्वारा वधू को "अन्वारम्भ" करे, अर्थात् स्रुवा से छः आहुतियाँ दे और प्रत्येक आहुति के अन्त में वधू के सिर पर घी टपका देवे। होम के पश्चात् वर-वधू बाहर निकलें और पति वधू को ध्रुव का दर्शन कराते हुए "ध्रुवाद्यौ०" मंत्र का उच्चारण करे। तब वधू अपने नाम के साथ पति के गोत्र का नाम जोड़ कर पति का अभिवादन करे और जो अतिरिक्त न बोलने का नियम था उसे छोड़ दे। विवाह यज्ञ के उपलक्ष्य में ब्राह्मण को एक गौ दक्षिणा स्वरूप प्रदान करे। इस अवसर पर विवाह करने वालों तथा अपनी अपनी जाति वालों को कन्यादान करने वाला अर्घ्य दे। अन्य आचार्यों के मतानुसार जब विवाह के लिए वधू के घर आयें तब अर्घ्य दे। जिस दिन विवाह कार्य हो उस दिन से तीन रात्रि तक वर-वधू नामक, दूध आदि छोड़कर हविष्यान्न का भोजन करें और मैथुन न करते हुए एक शैया पर शयन करें। तीन दिन-रात वर-वधू को हविष्यान्न भोजन करना होता है। उस अवसर पर जब भोजन लाया जाय तब "अन्नपान मणिना" मंत्र उच्चारण करके "यह है" ऐसा कह कर पति वहू का नाम बोले ॥१-१०॥

भुक्वोच्छिष्टं वध्वै दद्यात् ।११। ऊर्ध्वं त्रिरात्रा-च्चतसृभिराज्यं जुहुयात् अग्ने प्रायश्चित्तिरिति समस्त पञ्चमीं सम्पातानवनयन्नुदपात्रे ।१२। तेनैनां सकेशन-खामाप्लावयेत् ।१३। ततो यथार्थं स्यात् ।१४। ऋतुकाले दक्षिणेन पाणिनोपस्थमालभेद्विष्णुर्योनिं कल्पयन्त्विति समाप्तायाम ।१५। सम्भवेद्गर्भं धेहीति ।१६।

भोजन करने पर जो शेष रहे उसे उसे वधू ग्रहण करे। "लेखा होम" पूरा हो जाने पर "सुकिंशुकम्०" पढ़कर वधू को रथ पर चढ़ावे और अग्नि को साथ में रखले। मार्ग में जहाँ भय हो वहाँ "माविदन्" मंत्र को बोले और घर मे प्रवेश करके "इह गावः" मन्त्र पढ़े। तब। शैया पर बैठ कर "इह धृति०" मंत्र का उच्चारण करे और उसी शैया

पर तीन रात्रि तक वर-वधू मैथुन रहित होकर शयन करें। इसके पश्चात् चौथे दिन, दिन के आरम्भिक भाग में "प्रपदान्त' तक समस्त विधि से वधू अन्वारब्ध होकर महाव्याहृतियों से तीन आहुतियाँ दे और चौथी बार समस्त महाव्याहृति को बोल कर आहुति डाले। उस अवसर पर "अग्ने प्रायश्चित्ति०"आदि मंत्रो को बोले। इसमें विशेषता यह है कि प्रथम आहुति के बाद दूसरी आहुति में 'अग्नि" के स्थान पर "वायु, चन्द्र और सूर्य" का नाम ले और पाँचवी आहुति में "अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य" इन चारों देवताओं को एक ही बार में सम्बोधन करे। इस लिये मन्त्र में जितने वचन आवें उनको बहुवचन करके पढ़े। इन पाँच "प्रायश्चित्त आहुतियों" में से बचने वाले घी को एक चमस मे रक्षित रखे। साथ में लाये जल से पति वधू को शिर सहित स्नान करावे और "वामदेव्य" तक गान करके ब्राह्मण-भोजन करावे। इसके पश्चात् जो अन्य कार्य अवसर के अनुकूल हों उनको वर-वधू करें। जब स्त्री को मासिक धर्म हों उस दिन से १६ (सोलह) रात्रि ऋतुकाल कहा जाता है। उनमें से प्रथम चार रात्रि निन्द्य मानी गई हैं। एकादशी और त्रयोदशी सभोग के लिये निषिद्ध है। शेष १० रात्रि शुद्ध मानी गई है। इनमें जिसे पुत्र की इच्छा हो वह सम तिथियों (जैसे द्वितीया, चतुर्थी आदि) में वधू के पास सम्प्रयोग के लिये जाय और जिसे कन्या की इच्छा हो वह विषय तिथियों में (जैसे तृतीया, पंचमी आदि) में जाय। ऋतुकाल में पति पहले "विष्णुर्योनिंकल्पयतु०" तथा "गर्भं धेहि सिनी-वालि०" मत्रो को पढ़कर दाहिने हाथ से वधू की जननेन्द्रिय का अभिमर्शन करके मैथुन-कर्म में प्रवृत्त हो ॥११ १६॥

पञ्चम खण्ड

यस्मिन्नग्नौ पाणिं गृह्णीयात्स गृह्यः ।१। यस्मिन्वाऽन्त्यां समिधमादध्यात् ।२। निर्मन्थ्यो वा पुण्यस्तोऽनर्धुकः ।३। अम्बरीषाद्वाऽऽनयेत् ।४। बहुयाजिनो वाऽगाराच्छूद्रवर्जम् ।५। सायमाहुत्युपक्रमं परिचरणम् ।६। प्रागस्तमयोदयाभ्यां प्रादुष्कृत्य ।७। अस्तमिते होमः ।८। उदिते चानुदिते वा ।९। हविष्यस्यान्नस्याकृतं चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात्पाणिना ।१०।

विवाह-संस्कार मे जिस अग्नि का प्रयोग किया जाता है उसी को "गृह्य" कहा जाता है । अथवा जिस अग्नि से ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार होता है उसको "गृह्य" कहते हैं । उपर्युक्त दोनो प्रकार की अग्नियाँ जो अरणि-काष्ठ द्वारा मन्थन करके उत्पन्न की जाती है, वे परलोक के लिये हितकारी होती है, लौकिक दृष्टि से समृद्धि वाला नही होतीं । अथवा इन संस्कारों के अवसर पर हलवाई की भट्टी में से अग्नि लावे । अथवा देवताओं की पूजा करने वाले और यज्ञ करने वाले के घर से अग्नि लावे और उसी से विवाह-संस्कार या समिदाधान करे । इस प्रथम बार आहुति दान करने के पश्चात् अन्य दिनों में भी उसी "गृह्य अग्नि" में सायं प्रातः हवन किया जाय । सायकाल को सूर्यास्त से पहले और प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व अग्नि को भली प्रकार प्रज्ज्वलित करके सूर्योदय होने समय हवन कर्म करे । अगर चावल या फलों का हवन करना हो तो उनको अच्छी तरह धोकर भीगे रहते ही हवन करे ॥१–१०॥

दधि चेत्पयो वा कंसेन ।११। चरुस्थाल्या वा ।१२। अग्नये स्वाहेति मध्ये ।१३।तूष्णीं प्रागुदीचीमुत्तराम् ।१४। सूर्यायेति प्रातः पूर्वाम् ।१५। नात्र परिसमूहनादीनि पर्युक्षणवर्जम् ।१६। पत्नी जुहुयादित्येके ।१७। गृह्यः

पत्नी गृह्योऽग्निरेष इति ।१८। सिद्धे सायप्रातर्भूत-मित्युक्त ओमित्युच्चैब्रूयात् ।१९। माक्षा नमस्त इत्यु-पांशु ।२०।

यदि दूध, दही, यवागू से हवन करना हो तो उनको घोना आवश्यक है। उनको किसी पात्र में रख कर स्रुवा से हवन करे। पहली आहुति "अग्नये स्वाहा" कह कर सायंकाल के समय दे और दूसरी बिना मन्त्र पढ़े ईशान कोण मे दे। दूसरी आहुति ईशान कोण में बिना मन्त्र के ही दे। प्रातःकालीन हवन में "सूर्याय-स्वाहा' बोल कर आहुति दे। प्रातःकाल और सायकाल के हवन मे परिसमूहन और पर्युक्षण करने की आवश्यकता नहीं होती। कुछ आचार्यों का मत है कि पत्नी ही हवन करे, क्योंकि पत्नी को गृह्या कहते है और इस अग्नि का नाम भी "गृह्य" है। अतएव पत्नी ही दोनों समय हवन किया करे। प्रातः काल और सायकाल जब भोजन बन जाय और पाक करने वाला कहे कि "तैयार हो गया" तो गृह स्वामी 'ॐ' का उच्चारण करे। उसी समय हवन किया जाय। हवन के समय यज्ञ कर्ता कर्मकाण्ड सम्बन्धी बात ही करे अन्य लौकिक विषयों की चर्चा न करे। यदि लौकिक बात करने मे आ जाय तो प्रति बार "तस्मै तन्माक्षाः" मन्द स्वर मे मन से कहे और ऊँचे स्वर मे "ॐ" कहे ॥१९-२०॥

हविष्यस्यान्नस्य जुहुयात् प्राजापत्यं सौविष्टकृतं च ।२१। बलीन्हरेत् ।२२। बहिरन्तर्वा चतुर्निधाय ।२३। मणिकदेशे ।२४। मध्ये ।२५। द्वारि ।२६। शय्यामनु ।२७। वर्च्च वा ।२८। अथ सस्तूपम् ।२९। एकैकमुभयतः परिषि-ञ्चेत् ।३०।

भोजन सामग्री बन जाने पर उसमें से थोड़ा-सा लेकर हविष्य व्यंजन के साथ उसी अग्नि मे बिना मंत्र पढ़े एक आहुति देवे। इस आहुति

आहुतिमें स्रुवा आदि की आवश्यकता नही होती, यों ही हाथसे दे। फिर 'प्रजापतये स्वाहा' मन में कह कर एक आहुति दे और 'स्विष्टकृते स्वाहा' मंत्र से दूसरी आहुति देवे। तत्पश्चात् निम्न स्थानों में 'बलि' रखे, यह बलि घर के भीतर या भीतरी घर के बाहर चार स्थानों में रखी जाती है। एक जल देवता के लिये जहाँ घर में व्यवहार आने वाला जल रखा जाता हो, दूसरी भीतरी घर के बीच में, तीसरी भीतरी घर के दरवाजे पर, चौथी सोने के स्थान में शैया के समीप इनके अतिरिक्त जहाँ घर का कूड़ा बुहार कर रखा जाना हो वहाँ एक बलि रखे। एक घर मे पहले से स्थापित स्थूण (खूंटा) की समीप रखे। ये सब बलियाँ एक ही पात्र मे से थोड़ा-थोड़ा लेकर रखता जाय और रखने से एक बार पहले और एक बार बाद मे उस स्थान पर जल छिड़के ॥ २१-३० ॥

शेषमद्भिस्साधं दक्षिणा निनयेत् ।३१। फली-करणानामपामाचामस्वेति विश्राणिते ।३२। पृथिवी वायुः प्रजापतिर्विश्वेदेवा आप ओषधिवनस्पतय आकाशः कामो मन्युर्वा रक्षोगणाः पितरो रुद्र इति बलिदैवतानि ।३३। तूष्णीं तु कुर्यात् ।३४। सर्वस्य त्वन्नस्यैतत्कुर्यात् ।३५। असकृच्चेदेकस्मिन् काले सिद्धे सकृदेव कुर्यात् ।३६। बहुधा चेद्यद्गृहपतेः ।३७। सर्वस्य त्वन्नस्याग्नौ कृत्वाऽग्रं ब्राह्मणाय दत्वा स्वयं कुर्यात् ।३८। व्रीहिप्रभृत्या यवेभ्यो यवेभ्योवाऽऽव्रीहिभ्यः स्वयं हरेत् ।३९।

उसके पश्चात् पात्र में बचे हविष्यान्न को हाथ धोकर हाथ की पैत्र अंगुली से दक्षिण की ओर फेंके। यह बलि पितृगण के लिये होती है। एक बलि जो या चावल के माँड से तैयार करें और 'रुद्राय नमः' मंत्र पढ़ कर रुद्र देवता के नाम पर ईशान कोण में देवे। उपर्युक्त समस्त बलियों के देवता इस प्रकार होते हैं—पृथिवी, वायु, प्रजापति,

विश्वेदेवा, आपः ओषधि, वनस्पति, आकाश, काम या मन्युः, रक्षोगण, पितर और रुद्र। इन देवताओं के नाम मन में लेकर बलि देवे। जैसे 'पृथिव्यै नमः' 'वायवे नमः 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' 'अद्भ्यो नमः' 'औषधि वनस्पतिभ्यो नमः' 'आकाशाय नमः' 'मन्यवे नमः' 'रक्षोगणेभ्यो नमः' 'पितृभ्यो नमः' 'रुद्राय नमः'—इनको मन में स्मरण करते हुए अलग-अलग बलि रखता जाय। पितृ कार्य के लिये हो, या ब्राह्मण भोजनादि कल्याण कार्य के लिए हो, या अपने खाने के लिए हो सब प्रकार के अन्न से बलि दे सकते हैं। यदि घर में प्रयोजन वश कई बार भोजन बनाया जाय तो बलि-कर्म केवल एक ही बार करना चाहिये। यदि मकान में एक वंश के व्यक्ति अपना भोजन पृथक्-पृथक् बनाते हों तो उन सब में जो ज्येष्ठ या प्रमुख हो वही बलि कर्म करे। तो एक को करने की आवश्यकता नहीं। यदि एक घर में अनेक व्यक्ति अपना भोजन बनाने वाले रहते हों जिसका भोजन सबसे पहले तैयार हो वही अग्नि में थोड़ा अन्न डालकर पके अन्न में से पहले ब्राह्मण को या श्रेष्ठ अतिथि को देकर फिर स्वयं भोजन करे। 'काम्य बलि' का आशय यह है कि यदि अपने को बहुत समय तक जीने की इच्छा हो तो एक बलि दे जिसको 'आशस्य' कहा जाता है। इसके लिए जिस समय तक हेमन्त ऋतु का धान्य शस्य (खेत में उगा हुआ धान) तैयार न हो तो तब तक, यव के अन्न होने के पहले और बाद में, धान्य की उत्पत्ति के निकट एक बलि देवे।

वाराह गृह्यसूत्रम् ।

प्रथम खण्ड

प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा सूतिकालयं कल्पयित्वा 'ध्रुवं प्रपद्ये शुभं प्रपद्ये' इति काले प्रपादयेत् ।१। 'रैतो मूत्र' मिति श्यावनीभ्यां दक्षिणकुक्षिमभिमृशेत् ।२। श्रावयेद्वा पुत्रं जातमन्वक्षं स्नातं न मातोपहन्यात् आमन्त्र प्रयोगात् ।३। अग्नेरभ्याहितस्य परिसमूढस्य परिस्तीर्णस्य पश्चादहते वाससि कुमारं प्राक्शिरः समुत्तानं सवेश्य पालाशस्य मध्यमपर्णं प्रवेष्ट्य तेनास्य कर्णावाजपेत् ।४। 'भूस्त्वयि दधामी' ति दक्षिणे 'भुवस्त्वयि दधामी' ति सव्ये 'स्वस्त्वयि दधामी' ति दक्षिणे भूर्भुवः स्वस्त्वयि दधामि' ति सव्ये ।५। अथैनमभिमन्त्रयेत्—'अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव ।६। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् । अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।७। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतमिति यत्र शेते तदभिमृशेत् ।८। वेद ते भूमिहृं दयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ९। वेदामृतस्य देवानहं पुत्रमहं हृद' मित्याज्यं संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधाया धारावाधार्याज्य भागौ हुत्वा व्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् ।१०। जयाभ्यातानानां राष्ट्रभृतश्चैके ।११। कांस्ये चमसे वाहुति संपाता नवनीय तस्मिन्सुवर्णं संनिघृष्य व्याहृतिभिः कुमारं चतुः प्राशयेदत्यन्तमेके स्वर्णप्राशनमुदके निघृष्य

आद्वादशवर्षताया 'इषं पिन्वोर्जं पिन्वेति' स्तनौ प्रदापयेत् ।१२। दक्षिणं पूर्वं सव्यं पश्चात् स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्ताहुतीश्च समिधमाधाय पर्युक्षति ।१३। एष कर्मान्तो बहिर्द्वारेऽग्निर्नित्यः ।१४। कण सर्षपयवानां होमः ।१५। व्याहृतिभिर्जुहुयात् ।१६। अप्रतिरथं जपेत् ।१७। 'इन्द्रो भूतस्ये' ति षडर्चं च सूतिकालयं यथाकालं समन्तादुदकेन परिषिचेत् ।१८।

मानव-समाज और सृष्टिक्रम की स्थिरता का प्रमुख आधार प्रजनन और सन्तानोत्पत्ति ही है, इस कारण 'वाराह गृह्य सूत्र' में सर्व प्रथम गर्भवती द्वारा शिशु जन्म सम्बन्धी विधि विधान का ही वर्णन किया जाता है तदनुसार गर्भवती के लिये ऐसा सूतिका गृह बनावे जिसका दर्वाजा पूर्व या उत्तर की तरफ हो। जब प्रसव का समय बिल्कुल निकट आ जाय तब 'ध्रुवं प्रपद्ये शुभं प्रपद्ये' मन्त्र को पढ़ कर गर्भणी को उस सूतिकागार में प्रवेश करावे। जब उसके प्रसव की वेदना होने लगे तो 'रेतो मूत्र मिति०' इत्यादि मन्त्रों से पेट के दाहिने भाग को स्पर्श करे। जब शिशु-जन्म हो जाय तब 'पुत्र उत्पन्न हुआ' ऐसा वचन कहे। जब तक जात-कर्म सम्बन्धी क्रियाएँ विधि पूर्वक न हो जाय तब तक बच्चे को माता की गोद में न दिया जाय। बच्चे को स्नान कराके तथा स्वेच्छा करके, जहाँ हवन करना हो वहाँ की भूमि को पचभू-संस्कार के अनुसार शुद्ध करके अग्नि स्थापन करे, उसके पश्चिम ओर कुशा बिछा कर उस पर नये अखण्ड वस्त्र पर बच्चे को पूर्व की ओर शिर करके सीधा (उत्तान) लिटा दे। तब ढाक के बीच के पत्ते को लपेट कर गोल बनावे और उसका एक छोर मुख में लगाकर बच्चे के दाहिने कान से 'भूस्त्वयि०' इत्यादि मंत्र और बाँये कान में 'भुवस्त्व०' मन्त्र को पढ़ कर सुनावे। जहाँ बच्चा लेटा हो वहाँ 'अश्माभव०' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर स्पर्श करे और अभिमंत्रित करे। 'वेदते०' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर आज्य का

संस्कार कर ब्राह्मणों को निमंत्रित करे और समिधा इकट्ठा करके उन पर घी डाल दे। आज्य-भाग की दो आहुति देकर व्याहृति मंत्र से चार आहुति दे। कांसे के कटोरे या प्रणीता के समान किसी पात्र में 'अहुति सम्पात्' को लेकर उसमें सोने को घिस कर बच्चे को चार बार चटावे। (सुवर्ण को पानी में घिस कर बच्चे को १२ वर्ष की आयु तक चटाया जाता है)। तब 'इयं पिन्वा०' मन्त्र को पढ़ कर शिशु को प्रथम दाहिना और फिर बाँया स्तन पीने को दे। तत्पश्चात् 'स्विष्टकृत' आहुति देकर प्रायश्चित की आहुति दे और समधि डालकर उसके जल से पर्युक्षण करे। यह कर्मान्त विधि द्वार के बाहर नित्य अग्नि मे करे। कण, सरसों और जौ से होम करे। व्याहृतियों से हवन करे 'अप्रतिरथ०' का जप करके 'इन्द्रोभूतस्य०' और षडर्च मन्त्रों का भी जप करे। सूतिकागार के चारों ओर जल छिड़के ॥१-१८॥

द्वितीय खण्ड

एवमेव दशम्यां कृत्वा पिता माता च पुत्रस्य नाम दध्याताम् ।१। घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृत न तद्धितं द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा व्यक्त पितृनामधेयाप्रक्षत्रदेवतेष्टनामानो वा ।२। द्विनामा तु ब्राह्मणो नामैवं कन्याया अकारव्यवधानमाकारान्तमयुग्माक्षरं नदीनक्षत्र चन्द्र सूर्य पूषादेवदत्तरक्षितावर्जम् ।३। नवनीतेन पाणी प्रलिप्य 'सोमस्य त्वा द्यु्म्नेने' त्येनमभिमृशेत् ।४। सर्वेषु कुमारकर्मसु आग्नेयः स्थालीपाकः प्रजापत्यो वा सर्वत्रानादेशेऽग्निः पुंसामर्यमा स्त्रीणाम् ।५।

जात कर्म से दसवें दिन पूर्वोक्त विधि से हवन-कृत्य करके माता-पिता अपने पुत्र का नामकरण संस्कार करे। नाम कृदन्त होना चाहिये तद्धितान्त न हो। पुत्र के नाम के साथ ही पीछे पिता का नाम भी लगाया जाय। जिस तिथि या नक्षत्र में शिशु का जन्म हुआ हो तो उसके देवता सम्बन्धी या नक्षत्र-सम्बन्धी नाम यश के लिये उचित है, परन्तु देवता या पिता का साक्षात् नाम न धरे। पुत्र के दो नाम रखे जायें, पर कन्या का एक ही रखना चाहिये। नदी, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य पूषा, देवदत्त—इनसे रक्षित नाम कन्या का नहीं रखा जाता। फिर धुले हाथों में मक्खन लगा कर अग्नि में तपावे और ब्राह्मण से आज्ञा लेकर 'सोमस्य०' मंत्र पढ़ कर शिशु का स्पर्श करे। बच्चे के सब कर्मों में 'आग्नेय स्थाली पाक' या 'प्राजापत्य स्थाली पाक' करे। कुमार के कर्मों में जहां अग्नि के नाम का पर्यायवाची कोई शब्द न हो, वह के कर्मों में 'अग्निः' ग्रहण करना और कुमारी के कर्मों में 'अर्यमा' समझना ।१-५।



तृतीय और चतुर्थ खण्ड

तृतीयवर्षस्य जटाः कुर्वन्ति यथः वा कुलकल्पः ।१। अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य दक्षिणतोऽग्नेर्ब्राह्मणमुपवेश्योत्तरत उदकपात्रं शमीशमकवत् ।२। अथैनमभिमन्त्रयते—"हिरण्यवर्णाः शुचय" इति चतसृभिः 'या ओषधय' इत्यनुवाकेन, 'शं नो देवीरभिष्ट' य इति, 'शं न आपो धन्वन्या' इति द्वाभ्यामित्रि च ।३। तासामुदकार्थान्कुर्वीत पर्युक्षणे अभ्युन्दने स्नापने च ।४। आज्यं संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिध-

माघाराघाराबाघार्याज्यभागौ हुत्वा 'अग्न आयूंषि पवस' इति सप्तभिः सप्त जुहुयात् ।५। आयुर्दा देवेति' च ये केशिनः प्रथमे सत्रमासत येभिरावृतं यदिद विराजति ।६। तेभ्यो जुहोम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय' इति व्याहृतिभिश्चोक्तः कर्मान्तः पूर्वेण ।७। शीतेन वा उदकेने-त्युष्णेन वा उदकेनेति तप्ता इतराभिः संसृज्य आर्द्र-दानवस्थजीवदानवस्थोन्दतांषमावदें त्यपोभिमन्त्र्य 'अदितिः केशान् वपत्वाप उन्दन्तु जीवसे ।८। दीर्घा-युत्वाय स्वस्तय' इति दक्षिणं केशान्तमभ्युन्दति ।९। 'ओषधे त्रायस्वैन 'इति दक्षिणस्मिन्केशान्ते ऊर्ध्वाग्र' दर्भमन्तर्दधाति ।१०। स्वधिते मैनं हिंसीरिति क्षुरेणा-भिनिदधाति ।११। येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।१२। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्मानयं जरदष्टिर्यथासहमसाविति प्रवपति ।१३। दक्षिणतो माताऽन्या वाऽविधवा आनडुहेन गोमयेन आभूमिगता-न्केशान् परिगृह्णीयात् ।१४।

बालक दो वर्ष से अधिक आयु का हो जाय तब उत्तरायण शुक्ल-पक्ष में नवमी तिथि को छोड़कर चूड़ाकरण संस्कार करे। जिस कुल में जिस आयु में मुण्डन कराने और दाहिनी या बांयी तरफ शिखा रखने की रीति हो उसी प्रकार करे। इसके लिये हवन की वेदी पर अग्नि स्थापन कर परिसमूहन तथा पर्युक्षण करके अग्नि के समीप कुशा बिछा कर दक्षिण भाग में ब्राह्मण बिठा कर उत्तर भाग जल पात्र और शमी या अन्य यज्ञीय वृक्ष की लकड़ी रक्खे। तदनन्तर कुमार को 'हिरण्य वर्णाः०' इत्यादि चार ऋचाओं से, 'या ओषधयः 'इस अनुवाक से, 'शन्नोदेवी०' और शं न आपो धन्वन्या०' इन दो मन्त्रों से आव-श्यकतानुसार जल से पर्युक्षण करे, भिगोये और स्नान कराये। आज्य (घृत) का संस्कार कर ब्राह्मण को निमंत्रण देकर, समिधाओं को

डालकर आज्य को डारे। आज्य-भाग की दो आहुति देकर 'अग्नि आयुषि०' इत्यादि सात मन्त्रों से सात आहुति दे। तब 'आयुर्दा०' तथा 'ये केशिन०' इत्यादि मन्त्रों से और आहुतियों से भी आहुति देकर कर्म की समाप्ति करे। तत्पश्चात् शीतल और उष्ण जल अलग अलग रखे और शीतल जल को उष्ण में मिलाकर 'आप उन्दन्तु०' इत्यादि मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके 'अदिति०' मन्त्र से कुमार के दाहिने तरफ के बालों को अन्त की तरफ से भिगोवे। 'ओषधे०' मन्त्र से दाहिने बालों को अन्त में दाब रखे 'स्वधिते मैं न हिंसी०' मन्त्र पढ कर दाम सहित बालों पर छुरा रख फिर 'ये नावपत्' इत्यादि तीन मन्त्र पढ कर तीन बार कुशा सहित बालों को काटे। बालक के दाहिने भाग में बैठकर उसकी माता कट कर भूमि पर गिरे बालों को बैल के गोबर पर लेती जावे ॥१-१४॥

मा ते केशान् अनुगाद्वच एतत्तथा धाता दधातु ते ।१५। तुभ्यमिन्द्रो वरुणो बृहस्पति सविता वच आदधु' रिति प्रवपतोऽनुमन्त्रयते ।१६। तेन धर्मेण पुनरपोभि मन्त्र्यापर केशान्तमभ्युन्द्यात् ।१७। उत्तर च। अन्यौ तु प्रवपनौ ।१८। 'येन पूषा बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् ।१९। तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय' इति पश्चात् ।२०। येन भूयश्चरत्यय ज्योक्च पश्यति सूयम् ।२१। तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय सुश्लोक्याय सुव र्चस' इत्युत्तरत ।२२। यत्क्षुरेण वतयता सुपेशसा वप्तव- पसि केशान् शुन्धशिरो मुख मास्यायु प्रमोषीरिति लोहायस क्षुर केशवापाय प्रयच्छति ।२३। यथाथ केशय त्नान् कुर्वन्ति—दक्षिणत कपर्दो वसिष्ठाना उभयतोऽत्रि भार्गव काश्यपाना पञ्चचूडाङ्गिरसा शिखिनोऽन्ये वाजि- मेकेमङ्गलायम्। त्र्यायुष जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुष अग स्त्यस्य त्र्यायुषम्। यद्देवाना त्र्यायुष तन्मे अस्तु शतायुषमि'

ति शिरः प्रभृति परिगृह्य गोमयेन केशानुत्तरपूर्वस्यां गृहस्यामुष्यामन्तरा गेहात्तलद निदध्यात् ।२४। अतिरिक्ते वा वपनेउप्त्वाय केशान्वरुणस्य राज्ञो बृहस्पतिः सविता विष्णुरिन्द्रः तेभ्यो निधानं महदन्वविन्दभन्तरा द्यावापृथिव्योरवन्युरि' ति ।२५। कर्त्रे वरं ददाति ।२६। पक्षमगुग तिलपिशित च केशवापाय प्रयच्छति ।२७। संवत्सरं माता नाम्लाय धारयेद्रोपाय नाश्नीयात् ।२८। लवणवर्जं तूष्णीम् ।२९। कन्यायाया आहुतिवर्जं विदुषां ब्राह्मणार्थसिद्धि वाचयेत् ।३०। एवमुत्तरेषु ।३१।

'माते केशान०' इत्यादि मन्त्र केशों को काटते समय बोलता जाय। उसी प्रकार फिर जल को अभिमंत्रित करके बचे केशों को पूर्ववत् भिगोवे और इसी भाँति काटे। 'येन पूषा०' मन्त्र से शिर के पीछे के भाग केशों को काटे "येन भूयचरत्य' 'मन्त्र बोल कर उत्तर भाग के केशों को काटे। पुनः 'यत्क्षुरेण' 'मन्त्र पढ़ के लोहे के छुरे (अस्तुरे) को नाई को देदे और अपनी प्रथानुसार शिखा को छोड़ कर सब केशों को कटवा दे। शिखा रखने की भिन्न-भिन्न प्रथाएं हैं, जैसे वसिष्ठ गोत्र वाले दाँयी ओर चोटी रखते हैं और भार्गव तथा काश्यप दोनों तरफ दोनों रखते हैं आङ्गिरस गोत्री पंचशिखा वाले होते हैं और वाजसनेयी एक ही रखते है। 'त्र्यायुषं०' मन्त्र पढ़ कर नाई सब बालों को भिगोवे और उस्तरा फेर कर सब बालों को मूँड दे। तत्पश्चात् बालों समेत गोबर को घर के उत्तर-पूर्व के दूर के कोने में गाड़ दे। यदि अतिरिक्त केश कट जायें 'उपत्वाय' मन्त्र का जप करे। पुरोहित को दक्षिणा और नाई को केशर, गुड़ और कूटे हुए तिल दिये जाये। बालक की माता एक वर्ष खटाई और लवण न खाय और कभी क्रोध की अवस्था में भोजन न करे। यदि कन्या का चूड़ाकर्म संस्कार किया जाय तो मंत्र न बोले जायें, पर हवन सदैव की भाँति मन्त्र सहित ही किया जायगा। विद्वान् ब्राह्मणों से 'अर्थसिद्धि' कहलाई

जाय और इसी प्रकार की विधि पश्चात् होने वाले कर्मों में भी करे ॥१५-३१॥

पंचम खण्ड

गर्भाष्टमे ब्राह्मणमुपनयेत् ।१। षष्ठे सप्तमे पञ्चमे वा ।२। ततो गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् । गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ।३। प्राक् षोडशाद्वर्षात् ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री ।४। आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य ।५। आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ।६। अतऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ।७। नैनान्याजयेयुः । 'नाध्यापयेयु'र्न विवहेयुः ।८।

ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार छठे से लेकर आठवें वर्ष तक किसी समय करे। क्षत्रिय बालक का उपनयन ग्यारहवें वर्ष तथा वैश्य का तेरहवें वर्ष करने का नियम है। यदि किसी कारण से उपर्युक्त समय पर उपनयन न हो सके तो ब्राह्मण बालक का १६ वें वर्ष की आयु तक, क्षत्रिय का २२ वर्ष तक तथा वैश्य का २४ वर्ष तक उपनयन कराया जा सकता है। इसके पश्चात् उपनयन का अधिकार जाता रहता है और उनको समाज में पतित (सावित्रीक) माना जाता है। पतित हो जाने वालों के यहाँ यज्ञ संस्कार कराने, उनको वेदादि पढ़ाने का निषेध है। उनसे विवाह सम्बन्ध भी न करे ॥१-८॥

अभ्यन्तर जटाकरणं बर्हिरुपनयनमुक्तोऽग्निसंस्कारः ।९। ब्राह्मणस्य कुमारं पर्युप्तिनं स्नातमभ्यक्तशिरसमुपस्पर्शनकल्पेनोपस्पृष्टमग्नेर्दक्षिणतोऽवस्थाप्य 'दधिक्राव्णो

अकारिषमि' ति कुमारं दधि त्रिः प्राशयेत् ।१०। 'इयं दुरुक्तात्परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती न आगात् ।११। प्राणापानाभ्यां बलमा भजन्ती शिवा देवी सुभगा मेखलेयम् ।१२। ऋतस्य गोप्त्री तपसस्परिश्री घ्नती रक्षः सहमाना अरातीः ।१३। सा मा समन्तमनुपर्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते सुभगे मेखले मारिषामे' ति मौञ्जीं त्रिगुणां त्रिःपरिवीतां मेखलामाबध्नीत मौर्वीं धनुर्ज्यां क्षत्रियस्य शाणीं वैश्यस्य ।१४। उपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपव्ययामी' ति यज्ञोपवीतम् ।१५। या अकृन्तन्या अतन्वन्यावन्या वाहरन् ।१६। याश्चाग्न्या देव्योन्तानभितो ततन्था ।१७। तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मन्निद परिधत्स्व वासः ।१८। परिधत्त वर्चः शतायुषं दीर्घमायुः ।१६। शत च जीव शरदः पुरूचीः सुनिवार्य्यां विभजा यजीयान्' ।२०। इत्यहतं वास आच्छाद्य—'मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशःश्रीस्थविरं समिद्धम् ।२१। आनाहनस्य वसन जरिष्णु परीद वाज्यजिन दधेह' मिति कृष्णाजिन च ।२२। आज्य संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधायाघारावाघार्याज्य भागौ हुत्वाष्टौ जटाकरणीयान् जुहुयात् ।२३। व्याहृतिभिश्चोक्ता कर्मान्तः पूर्वेण ।२४।

उपनयन संस्कार के अवसर पर जो मुण्डन या चूड़ाकरण होता है उसकी विधि पहले ही कही जा चुकी है। सिर के केशों का मुण्डन होने के पश्चात् ब्राह्मण कुमार को स्नान कराके, सिर में मक्खन लगा कर, उपस्पर्शन प्रक्रिया करने के पश्चात् होमाग्नि के दक्षिण भाग में बैठावे और 'दधिक्राब्णो०' मंत्र से उसे तीन बार दधि चाटने को दे। फिर 'इयं दुरुक्तात् परि०' इत्यादि मंत्र पढ़ कर कुमार की कटि में मूँज की मेखला को तीन बार लपेटे। उस मेखला में अपनी-अपनी

प्रथानुसार तीन या पाँच या सात गाँठें लगाकर बाँध दे। क्षत्रिय बालक की मेखला तांत की होती है और वैश्य के लिये सन की। आचार्य 'उपवीतमसि०' बोलकर उस मेखला को बालक को पहना दे। तत्पश्चात् 'या अकृन्तन्या०' मंत्र पढ़कर नया वस्त्र बालक को पहिनावे और फिर 'परिधत्स्ववास:' मंत्र पढ़े। 'मित्रस्य०' मंत्र बोल कर कृष्णसार मृग के चर्म को दुपट्टे की तरह कंधे पर पहिना दे। तत्पश्चात् आज्य का संस्कार कर ब्राह्मण को निमंत्रण दे। समिधा डालकर आधार की आहुति दे। फिर आज्य भाग की दो आहुतियाँ और चूड़ाकरण की आठ आहुतियाँ देकर व्याहृतियों से होम-कार्य का समापन करे, जैसा पहले विस्तार से बताया जा चुका है।।१९-२४।।

कालाय वां गोत्राय वां मैत्राय वां मैत्राय वामस्माद्याय वां अवनेनिजेमी' त्युदकेनाञ्जलिं पूरयित्वा 'सुकृताय वामि' ति पाणी प्रक्षाल्य 'इदमहं दुर्यमन्यानि प्लावयामी' त्याचम्य निष्ठीवति ।२५। भ्रातृव्याणां सपत्नानामहं भूयासमि'ति द्वितीयम् ।२६। प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।२७। आर्द्रं श्चिद्यन्मन्यमानस्तिरश्चिद्राजा चिद्यन्भगं भक्षीमहीत्याहे' त्यादित्यमुपतिष्ठेत ।२८। ब्रह्मचर्यमुपागामुपमाह्वयस्येति' ब्रूयात् ।२९। एहि ब्रह्मोपेहि ब्रह्म ब्रह्म त्वा संब्रह्म सन्तमुपनयाम्यहमसा' विति ।३०। अथास्याभिवादनीयं नाम गृह्णाति ।३१। 'देवस्य त्वेति' हस्तं गृह्णाम्यहमसावि' त्यस्य हस्तं दक्षिणेन दक्षिणमुत्तानमभि वाङ्गुष्ठमभि वा लोमानि गृह्णीयात् ।३२। ममेवान्वे तु ते मनो मामेवाऽपि त्वमन्विहि ।३३। अग्नौ घृतमिव दीप्यतां हृदयं तव यन्मयि' ।३४। इत्येतं संप्रेक्षमाण समीक्षते। पृष्ठतोऽस्य पाणिमन्वाहृत्य हृदयदेशमन्वारभ्य जपति 'प्राणानां ग्रन्थिरसि म ते मा विस्रंसदिति' ।३५। ब्रह्मणो

ग्रन्थिरसि' इति नाभिदेशं ।३६। गणानां त्वा गणपति हवामहे कवि कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।३७। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पसत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्' इति प्रदक्षिणमग्नि परिणयेत् ।३८। पश्चादग्नेः दर्भेषूपविशति दक्षिणतश्च ब्रह्मचारी-'अधीहि भोः' ।३९। इत्युपविश्य जपति ।४०। प्रभुज्य दक्षिणं जानु पाणी सधाय दर्भहस्ता 'वोमि' त्युक्त्वा व्याहृतिभिः सावित्री चानुब्रूयात् ।४१। एव काण्डानुवचनेषु ।४२। तत्सवितुर्वरेण्यमि' ति गायत्रीं ब्राह्मणाय, 'देवो याति सविता सुरत्न' इति त्रिष्टुभ क्षत्रियाय, 'युंजते मन' इति जगतीं वैश्याय पच्छोर्धचंशः सर्वामन्ततः ।४३। पालाश दण्ड ब्राह्मणाय प्रयच्छति नैयग्रोधं क्षत्रियाय आश्वत्थं वैश्याय ।४४। सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा अस्येवमहं सुश्रवः सुश्रवा भूयास ।४५। यथा त्वं देवानां वेदस्य निधिगोपोस्येवमहं मनुष्याणां ब्रह्मणो निधिगोपो भूयासमिति दण्ड प्रतिगृह्णाति ।४६। ऊर्ध्वकपालो ब्राह्मणस्य कमण्डलुः परिमण्डलः क्षत्रियस्य निचलकलो वैश्यस्य ।४७।

'कामाय वा०' इत्यादि मंत्र बोलकर अंजलि मे जल ले और 'मुकृताय०' मंत्र कहकर दोनो हाथों को धोवे । 'इदमहं०' मंत्र पढ़कर आचमन करके कुल्ला करे और 'ऋतुष्याणां' मन्त्र म दूसरी बार आचमन करे। फिर 'प्रातर्जितं०' मन्त्र बोलकर सूर्य का उपस्थान करे । तत्पश्चात् कुमार 'ब्रह्मचर्य' मंत्र को बोले और आचार्य 'एहि ब्रह्मोपेहि०' इत्यादि पढ़े । आचार्य बालक के अभिवादनीय नाम को लेकर 'देवस्य त्वेति०' मंत्र को पढ़ते हुये बालक के दाहिने हाथ को पकड़े और बालक का नाम बोले । उस समय बालक का मुँह पूर्व की ओर और आचार्य का पश्चिम की ओर रहे । शिष्य बैठा हो, आचार्य

खड़े हों। शिष्य का हाथ नीचे की तरफ खाली हो। ऐसे शिष्य के हाथ को किसी माङ्गलिक पदार्थ के साथ आचार्य पकड़े और 'ममेवान्व्रतु०' मंत्र पढ़े। शिष्य आचार्य की ओर देखता रहे और आचार्य शिष्य को देखे। आचार्य अपना दायाँ हाथ कन्धे पर से ले जाते हुये उसके हृदय को स्पर्श करे और 'प्राणानां०' मंत्र को उच्चारे। 'ब्राह्मणो०' मंत्र पढ़कर उसकी नाभि को छुये और 'गणानां०' इत्यादि मंत्र से अग्नि की परिक्रमा क्रम से करावे। फिर आचार्य होमाग्नि के पश्चिम ओर कुशासन पर बैठें और शिष्य को अपनी दाहिनी तरफ बैठावें। शिष्य बैठकर 'अधीहि भो०' मंत्र को पढ़े और दायाँ जानु भूमि पर टेक कर दोनों हाथ इकट्ठा कर, कुश लेकर 'ॐ' का उच्चारण करे और व्याहृतियों के सहित सावित्री को पढ़े। इसी प्रकार 'कण्डानुवचन' क्रम से कहे। ब्राह्मण के लिये 'तत्सवितुर्वरेण्यम्०' इत्यादि गायत्री मंत्र दे, क्षत्रिय को 'देवोयाति०' त्रिष्टुभ मंत्र दे और वैश्य को जगती छन्द 'युंजते मन०' को बताये। यह इस प्रकार करे कि पहले एक-एक पद कहलाये, फिर आधी ऋचा कहलाये और अन्त में पूरा मंत्र बुलवाये। तत्पश्चात् ब्राह्मण को पलाश का दण्ड, क्षत्रिय के लिये वट वृक्ष का और वैश्य को पीपल का दण्ड दे। उस समय 'सुश्रावः०' मंत्र का उच्चारण करे ब्राह्मण का दण्ड केशों तक ऊँचा, क्षत्रिय का मस्तक तक और वैश्य का नासिका तक ऊँचा होना चाहिये ॥२५-४७॥

'इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्माय यक्ष्मचातनीः ।४८। ऋतेनापः प्रभराम्यमृतेन सहायुषा' ।४९। इति 'प्रतिगृह्णा' मीति प्रतिगृह्य भैक्ष्यचर्यं चरेत् ।५०। 'ॐ भवति भिक्षां देही' ति ब्राह्मणः ।५१। 'भवतिमध्या' क्षत्रियः ।५२। भवत्यन्तां वैश्यः ।५३। चतस्रष्षडष्टौ वाऽविधवा अप्रत्याख्यायिन्यो मातरं प्रथममेके ।५४। गुरवे निवेद्य वाग्यतः प्राग्ग्रामात् सन्ध्यामुपास्ते ।५५। तिष्ठन् पूर्वां

सावित्रीं त्रिरधीत्य 'अध्वनामध्वपते श्रेष्ठ्यः स्वस्त्य-
स्याध्वनः पारमशीय' ।५६। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छु-
क्रमुच्चरत् ।५७। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं
शृणुवाम शरदः शतम् ।५८। प्रब्रवाम शरदःशतं अदीनाः
स्याम शरदः शतम् ।५६। भूयश्च शरदः शतात् ।६०।
या मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मनः ।६१। दैवी या
मानुषी मेधा सा मा माविशतामिहैवे' ति प्रत्येत्याग्नि
परिचरेत् ।६२। इमं स्तोममर्हत इति परिसमूहेत् ।६३।
एधोस्येधिषीमही' ति समिधमादधाति ।६४। समिदसि
समेधिषीमही' ति द्वितीयम् । 'आपो अद्यान्वचारिषमि'
त्युपतिष्ठते ।६५। 'मा संसृज वर्चसेति' मुख परिमृजीत
'यदग्ने तपसा तपो ब्रह्मचर्यमुपेयमसि ।६६। प्रिया श्रुतस्य
भूयासमायुष्मन्तः सुमेधसः ।६७। अग्ने समिधमहारिषं
बृहते जातवेदसे ।६८। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः
प्रयच्छतु स्वाहे' ति समिधमादधाति ।६६। तेजसा मा
समङ्ग्धि वर्चसा मा समङ्ग्धि ब्रह्मवर्चसेन मा सम-
ङ्ग्धि' इति मुख परिमृजीत ।७०। आयुर्दा अग्नेऽसी'
ति च यथारूपं गात्राणि संमृशति 'इह धृतिरिति' पर्यायैः
अंसग्रीवाश्च त्रिरालभ्य 'ऋचं नो धेही' ति ललाटम-
भिमृशेत् ।७१। आद्यन्तयोः पर्युक्षणम् । गुरवे ब्रह्मणे च
वरमुत्तरासङ्गं च ददाति ।७२। द्वादशरात्रमक्षारलवण-
माशेदक्षारमेके ।७३। व्युष्टे द्वादशरात्रे षड्रात्रे वा ग्रामा-
त्प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य पश्चात्पालाशस्य
यज्ञियस्य वा वृक्षस्य सावित्रेण स्थालीपाकेनेष्ट्वा जय-
प्रभृतिभ्यश्चाज्यस्य पुरस्तात्स्विष्टकृतो मेखलां दण्डं
चाप्सु प्रास्येत् ।७४। तत्रैव हविश्शेषं भुंजीतेति श्रुतिः
।७५।

"इमा आपः०" मंत्र पढ़ कर जल अपने शरीर पर छिड़के और भिक्षा माँगें। इसके लिये ब्राह्मण बालक कहे—"ॐ भवति भिक्षां देहि०" क्षत्रिय कहे—"भिक्षां भवनि देहि०"। वैश्य कहे "भिक्षां देहि भवति।" चार, छः या आठ अथवा स्त्रियों से भिक्षा माँगे—परन्तु स्त्रियाँ ऐसी हों जो भिक्षा माँगने पर इनकार न करें। कुछ आचार्यों का मत है कि पहले अपनी माता से ही भिक्षा माँगे। भिक्षा लाकर गुरु के सामने रख दे और आश्रम के पूर्व भाग में चुपचाप खड़ा रहे। सन्ध्योपासन करे और प्रात:काल तीन बार सावित्री का जप करके "अब्धनाम०" मंत्र पढ़ कर अग्नि में समिधा डाले। "इमं०" मंत्र से परिसमूहन करे और "एधोस्येधि०" मंत्र से अग्नि मे प्रथम समिधा डाल कर "समिदसि०" मंत्र पढ़ कर दूसरी डाले। "आपो अद्यान्व०" मंत्र से उपस्थान करे। "मा संसृज०" मंत्र बोल कर अपने मुख पर हाथ फेर कर मार्जन करे। "यदग्ने०" से "स्वाहा" तक पढ़ कर समिधा डाले और "तेजसा०" पढ़ कर मुख का मार्जन करे। "आयुर्दा०" पढ़ कर शरीर के सब अंगों को स्पर्श करे और "त्र्यायुषं०" से ललाट का स्पर्श करे। आरम्भ और समाप्ति पर जल छिड़के। गुरु और ब्राह्मण को दक्षिणा देवे। बारह रात्रि तक बिना नमक का भोजन करे। फिर तेरहवें दिन अथवा छठवें दिन गाँव के पूर्व या उत्तर दिशा में जाकर पलाश या अन्य किसी यज्ञीय वृक्ष के पश्चिम भाग में सावित्री स्थाली-पाक से यज्ञ करे। "जय" प्रभृति मंत्रों से आज्य की आहुति दे और स्विष्टकृत की आहुति कर मेखला और दण्ड को जल में छोड़ दे और उसी स्थान पर हवि का बचा हुआ अंश खाजाय ॥४८—७५॥

षष्ठः खण्ड

उपनयनप्रभृति व्रतचारी स्यात् ।१। उपनयने व्रतादेशा व्याख्याताः ।२। मार्गवासाः ।३। सहतकेशः ।४। भैक्षाचर्यवृत्तिः ।५। सशल्कदण्डः ।६। सप्तमौञ्जीं मेखलां धारयेत् ।७। आचार्यस्या प्रतिकूलः सर्वकारी ।८। यदेनमुपेयात् तदस्मै दद्यात् ।९। बहूनां येन संयुक्तः ।१०। नास्य शय्यामाविशेत् ।११। न रथमारोहेत् ।१२। न सविशेत् ।१३। न विहारार्थो जल्पेत् ।१४। न रुच्यर्थं कचन धारयेत् ।१५। सर्वाणि सांस्पर्शकानि स्त्रीभ्यो वर्जयेत् ।१६। न स्नायाद्दण्डवत् ।१७। नोदकमभ्युपेयात् ।१८। न दिवा स्वपेत् ।१९। त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यं चरेत् ।२०। इन्द्रिय संयतः ।२१। सायं प्रातर्भैक्षाचर्यवृत्तिः ।२२। साय प्रातरग्निं परिचरेत् ।२३। अधःशय्या ।२४। आचार्याधीनवृत्तिः ।२५। तम्निसर्गादशनम् ।२६। अयाचितमलवणम् ।२७। वाग्यतोऽश्नीयात् ।२८। आच्छिन्नवस्त्रां विवृतां स्त्रियं न पश्येत् ।२९-३०। योपस्य वृक्षस्य दण्डी स्यात् ।३१। नानेन प्रहरेद्गवे न ब्राह्मणाय ।३२। न नृत्यगीते गच्छेत् ।३३। न चैने कुर्यात् ।३४। नावलिखेत् ।३५। शिखाजटः सर्वजटो वा स्यात् ।३६। शाणं क्षौममजिनं वासः ।३७। रक्तं वसनम् ।३८। कम्बलमैणेयं ब्राह्मणस्य ।३९। रौरवं क्षत्रियस्य ।४०। आज वैश्यस्य ।४१। एतेन धर्मेण द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् ।४२। चतुर्विंशति द्वयोः षट्त्रिंशत्त्रयाणाम् ।४३। अष्टचत्वारिंशत्सर्वेषाम् ।४४। यावद्ग्रहणं वा ।४५। मलजुवेलः कृशः स्नात्वा स सर्वं लभेत यत्किंचिन्मनसेप्सितम् ।४६। इत्येतेन धर्मेण साध्वधीतो ।४७। मन्त्रब्राह्मणान्यधीत्य कल्पं मीमांसां च याज्ञिकोऽधीत्य वक्त्रं पदं स्मृतिं

चंच्छिकः ।४८। तौ स्नातकौ श्रोत्रियोन्यो वेदपाठी ।४९। न तस्य स्नानं उपविश्या चमनं विधीयते ।५०। अन्तर्जानु बाहू कृत्वा त्रिराचामेत् ।५१। द्विःपरिमृजेत् ।५२। खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ।५३।

उपनयन संस्कार होने के पश्चात् निम्न नियमों का पालन करने वाला "ब्रह्मचारी" कहा जाता है। (इस सम्बन्ध मे विशिष्ट नियमों और आदेशो का वर्णन पिछले खण्ड में कर दिया गया है।) दुपट्टा (उत्तरीय) के स्थान मे मृग-चर्म ओढे, बाल सब रखे पर बिल्कुल मुँड़ा दे। भिक्षा माँग कर या आचार्य से भोजन रूप जीविका प्राप्त करे। वक्कल सहित दण्ड धारण करे। सात गाँठों की मूँज-मेखला कमर में धारण करे। आचार्य की आज्ञा से ही सब काम करे। धन और जो कुछ वस्तु ब्रह्मचारी को मिले वह सब आचार्य को देवे। उनके बिस्तर पर आगे या पीछे कभी न बैठे। गुरु के समान सूत आदि के अच्छे वस्त्र प्रयोग में न लावे। रथ, घोड़ा, हाथी आदि पर अधिक सवारी न करे। काम-भोग विषयक चर्चा अथवा धन आदि कमाने की चर्चा न करे न सुने। अपनी शोभा बढ़ाने को इतर, चन्दन, पुष्प-माला आदि का व्यवहार न करे। स्त्री सम्बन्धी शृंगार रस का काव्य सुनना, स्त्री के अंगों को ध्यान देकर देखना, छूना, खुजलाना, उबटन करना आदि कभी न करे। जब स्नान करे तो शरीर को उबटन आदिलगा कर मल-मल कर न धोवे, वरन् लकड़ी के समान जल पर तैरता रहे। नित्य विशेष रूप से स्नान न करे। जलाशय में घुस कर स्नान न करे वरन् किनारे पर बैठ कर ही आचमनादि क्रिया कर लेवे। दिन में सोवे नहीं। तीनों वेद पढ़ने तक ब्रह्मचर्य पालन करे। इन्द्रियों का दमन करता रहे। सायं और प्रातःकाल भिक्षावृत्ति से भोजन करे। दोनों समय अग्निहोत्र भी करे। भूमि पर शयन करे। बिना माँगे पदार्थ और लवण रहित भोजन मौन होकर करे। आचार्य की आज्ञा का पालन करे। गुरु से आज्ञा लेकर भोजन करे। वस्त्र रहित स्त्री को न देखे।

यज्ञिय वृक्ष का दण्ड धारण करे। नाच और गाने को देखने-सुनने न जावे और न स्वयं नाचे गावे। भूमि पर न खावे, किसी पदार्थ से न लिखे। केवल शिखा मात्र रखे या सम्पूर्ण सिर में जटा रखे। शण, रेशम, मृगचर्म का वस्त्र व्यवहार करे। लाल रंग का वस्त्र काम में लावे। ब्राह्मण ब्रह्मचारी मृगछाला का कम्बल रखे। क्षत्रिय रुरु मृग का चर्म काम में लावे और वैश्य बकरे के ऊन का कम्बल रखे। इन नियमों से बारह वर्ष तक एक वेद पढ़ने में संलग्न हुआ ब्रह्मचर्य पालन करे। चौबीस वर्ष तक दो वेदों का, छत्तीस वर्ष तक तीन वेदों और अड़तालीस वर्ष तक चारों वेदों का अध्ययन करता हुआ ब्रह्मचर्य का पालन करे। अथवा जब तक वेदों को पढ़ता रहे तब तक उक्त नियमों का पालन करे। जो ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है और मलिन शरीर निर्बल दुबला-पतला, कृश हुआ समावर्तन स्नान करता है वह जो कुछ मन में चाहता है वही सब प्राप्त कर लेता है। इस तरह के नियमों से जो कुछ पढ़ता है, वह पढ़ना सफल होता है। वेद के मंत्र भाग (संहिता) और ब्राह्मण भागों को पढ़ने के पश्चात् कल्पसूत्र, पूर्व-मीमांसा को पढ़े। व्याकरण और धर्मशास्त्र का पढ़ना इच्छा पर निर्भर है। ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं—एक नैष्ठिक और दूसरा वेद पढ़ लेने पर समावर्तन करने वाला। इनमें से नैष्ठिक ब्रह्मचारी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला होने से उसे समावर्तन स्नान न करना चाहिये। नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचमन करे। दोनों जांघों के बीच दोनों हाथ रख कर प्रति दिन तीन बार आचमन करे, दो बार शरीर का मार्जन करे और सिर में स्थित ज्ञानेन्द्रियों का स्पर्श करे ॥१—५३॥

सप्तम खण्ड

'वर्षासु श्रवणेन स्वाध्यायानुपाकरोति' हस्तेन वा ।१। प्रौष्ठपदीमित्येके ।२। स जुहोति ।३। 'अप्वानामासि तस्यास्ते जोष्ट्रीं गमेयम् ।४। अहमिद्धि पितुः परिमेधा अमृतस्य जग्रभ । अह सूर्य इवाजनि स्वाहा ।५। सरस्वती नामासि सरस्वान्नामासि मुक्तिर्नामासि योगो नामासि मतिर्नामासि ।६। तस्यास्ते जोष्टीं गमेयम् । तस्यते जोष्ट्रं गमेयम् ।' ।७। इति सर्वत्रानुषजति ।८। युजे स्वाहा ।९। प्रयुजे स्वाहा ।१०। संयुजे स्वाहा ।११। उद्युजे स्वाहा ।१२। उद्युज्यमानाय स्वाहा'— इति जयप्रभृतिभिश्चाज्यस्य पुरस्तात् स्विष्टकृतोऽन्तेवासिनां योगमिच्छन्नथ जपति ।१३। ऋतं वदिष्यामि सत्य वदिष्यामि ब्रह्म वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारं वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि वेदस्य वाणीस्थ उपतिष्ठन्तु छन्दांस्युपाकुर्महेऽध्यायान् भूर्भुवः स्वरि' ति दर्भपाणिः त्रिस्सावित्रीमधीत्यादितस्त्रीननुवाकान् तथाङ्गानामेकैकं 'को वो युनक्ती' ति च ।१४।

तस्यानध्यायाः ।१५। समूहनवातो वलीकक्षारप्रभृतिवर्षा विद्योतमानस्तनयित्नुरिति' श्रुतिः ।१६। आकालिक देवतुमुल विद्युद्धन्वोल्कास्यक्षराष्ट्रशब्दाः ।१७। आचारेणान्येऽर्धपञ्चमासानधीत्य ।१८। 'पञ्चार्धषष्ठान्वा' दक्षिणायनं वाधीत्य अथोत्सृजन्ति ।१९। एतेन धर्मेण 'ऋतमवादिष सत्यमवादिषम् ।२०। ब्रह्मावादि-

यम् ।२१। तन्माधीन् तद्वक्तारमावीत् आवीन्ममाव्रीत्त-द्वक्तारम् ।२२। नाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता ।२३। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणी-स्थ प्रतिश्रमन्तु छन्दांस्युत्सृजामहेऽध्ययान् भूर्भुवः-स्वरि' त्यन्नमधीत्य 'को वो विमुञ्चतो' ति च पक्षिणी रात्रिं नाधीयीतोभयतः पक्षान्वा नात ऊर्ध्वं' अभ्रेषु । आकालिकविद्युत्स्तनयित्नुवर्षेषु । चाथोपनिषदर्हः ।२५। ब्रह्मचारी सुचरितमेधावी कर्मकृद्धनदः प्रियो विद्यया वा विद्यामन्विच्छन्स्तानि तीर्थानि ब्रह्मणो वेदस्य ब्रह्मचारित्वादयः ग्रहणे तीर्थान्युपायाः ।२६।

वर्षाऋतु में श्रवण नक्षत्र से उस दिन स्वाध्याय का उपाकरण नामक कर्म करे । अथवा भाद्रमास की किसी तिथि के पूर्वाह्न में हस्त-नक्षत्र हो उसी दिन उपाकरण करे । वह वेदाध्ययन या ब्रह्मयज्ञ का करके वाला 'अप्वा नामासि' इत्यादि मंत्रों से आठ आहुति होमे और आज्यभाग आहुतियों के पश्चात् दे । सरस्वती आदि छः खण्डों में जो २ स्त्रीलिङ्ग हैं उनके साथ "तस्यारते" लगावे और "सरस्वत्याः०" आदि पुं नपुंसक लिङ्गों में "तस्यतेजो०" इत्यादि लगा कर सब के अन्त में स्वाहा लगावे । फिर सहपाठियों को भाग्ता हुआ स्नातक "गृञ्जे स्वाहा०" इत्यादि तीन मंत्रों से होम करे । फिर "स्विष्टकृत्" आहुति से पूर्व "ऋतं वदिष्यामि०" इत्यादि मंत्रों को जप करे । फिर दाहिने हाथ में कुश लेकर तीन बार गायत्री मंत्र पढ़े और "इषेत्वा०" इत्यादि तीन अनुवाक भी पढ़े । पश्चात् "को वोयुं०" इत्यादि मंत्र पढ़े । अब वेदादि पढ़ने में अनध्यायों को बताते हैं कि उन-उन अवसरों पर अन-ध्याय होंगे.—आँधी आने पर, छज्जे से पानी टपकने पर, बिजली चमकने और बादल गरजने पर भी जब चमके या गर्जे तब तक स्वाध्याय न करे । ज्योतिषशास्त्र में लिखे अनुसार ग्रहों में परस्पर युद्ध हो तब तक न पढ़े । बिजली, इन्द्रधनुष, तारे टूटने, शृगाल आदि के कुसमय रोने तथा

सामवेद की ध्वनि होने पर अन्य वेद का पाठ न करे। साढ़े चार, साढ़े पाँच, छः मास अथवा दक्षिणायन काल तक पढ़ कर फिर बन्द रखे। यह वेदाध्यायोत्सर्ग कर्म कहा गया है। इसमें "ऋतमवादि०" इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिए। ब्रह्मचारी, सदाचारी बुद्धिमान्, आचार्य को प्रिय, धन देने वाला, विद्या देने वाला, वेदादि पढ़ाने में निपुण, विद्या के बदले विद्या देनेवाला, ये सात वेद के ज्ञान प्राप्ति में उपाय रूप हैं ॥१–२६॥

———

अष्टम खण्ड

अथ चातुर्होत्रिकी दीक्षा सम्वत्सरम् ।१। आघारा-वाघार्याज्यभागौ हुत्वा चतुर्होतॄन् स्वकर्मणो जुहुयात् ।२। सहपञ्चहोत्रा षड्होत्रा सप्तहोतारमन्ततो हुत्वा व्रतं प्रदायादितो द्वावनुवाकावनुवाचयेत् ।३। अथाग्निव्रता-श्वमेधिकी दीक्षा सवत्सरम् । द्वादशरात्रं वा ।४। आकूतमग्निमि' ति 'षड्हुत्वा ।५। व्रतं प्रदायादितोऽष्टावनुवाकाननुवाचयेत् ।६। त्रिषवणमुदकमाहरेत् ।७। त्रीस्त्रीन् कुम्भांस्त्रींश्च समित्फलान् भस्मनि शयीत ।८। करीषे सिकतासु भूम वा । नोदकमभ्युपेयात् ।९। संवत्सरे समाप्ते ।१०। घृतवतापूपेनाग्निमिष्ट्वा वात्सप्र वाचयेत् ।११। स्मार्तेन यावदध्ययनम् ।१२। काण्ड-व्रतावशेषो होमाथश्च आद्यन्तयोर्जुहुयात् ।१३। अथैनं परिदत्ते 'अग्नये त्वा परिददामि ।१४। वायवे त्वा परिददामि ।१५। सूर्याय त्वा परिददामि ।१६। प्रजापतये त्वा परिददामी' ति ।१७। एतेनैवाश्वमेधो व्याख्यातः ।१८। नवमेनानुवाकेन हुत्वा दशमेनोपतिष्ठेत ।१९। अश्वाय घासमुदकस्थानं उदक चाभ्युपेयात् ।२०। एताभ्यामेव मन्त्राभ्यां त्रैविद्यक व्रतमुपेयात् ।२१।

रहस्यमध्येऽयत: प्रवर्ग्य: ।२२। तस्य व्रतोपायन समिन्मन्त्रश्च ।२३। तिष्ठेदहनि रात्रावासीत वाग्यत. ।२४। पर्वसु चवं स्यात् ।२५। सर्वजटश्च स्यात् ।२६। संवत्सरा-दूर: प्रवर्ग्यो भवति ।२७।

अब चातुर्होत्रिकी दीक्षा के विषय में कहेंगे। ब्रह्मचारी इस दीक्षा को एक वर्ष तक करे। आधार की दो आहुतियां देकर आज्य भाग की दो आहुतियाँ दे। वाचस्पति आदि देवों की संज्ञा चतुर्होता आदि संज्ञा है। ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह दीक्षा-काल में अपना कर्म करता हुआ वाचस्पति आदि चार होताओं के लिए आहुतियाँ दिया करे और वाक् आदि छ: होताओं के साथ सप्तहोतृ: होम किया करे। अन्त में दीक्षित को भोजन के लिये दुग्धादि वस्तु देकर वेद के आरम्भिक दो अनुवाकों का अनुवाचन करावे। अब एक वर्ष की अग्नि की दीक्षा को कहते हैं। यह १ वर्ष या १२ दिन की भी होती है। "प्राकृतमग्नि०" इत्यादि मंत्र से छ: आहुति दें और अग्निकाण्ड के आदि से आठ अनुवाकों का अनुवाचन करावे। कुछ विशेष नियम ये हैं मध्याह्न और सायं तीनों समय तीन २ घड़ा भर कर जलाशय से जल लावे। साथ ही तीन २ समिधा और तीन २ फल भी लाया करे। नित्य ही शून्य भूमि पर या जिस पर भस्म या कण्डों का चूरा बिछा हो अथवा बालू बिछा हो उस पर केवल लंगोटी या धोती अर्थात् एक ही वस्त्र पहन कर सोया करे। दीक्षा के दिनों में जल में घुस कर या अन्य प्रकार से स्नान न करे। नियत अवधि तक व्रत समाप्त होने पर मालपूआ द्वारा प्रधान देव अग्नि के लिये होम करके "वरस्त्री०" देवता वाले अनुवाक् को जपे, और जब तक अध्ययन करे स्मार्त विधि से रहे। काण्ड व्रत विशेष और होम की विधि यह है कि व्रत और होम के आदि और अन्त में आहुतियाँ दे। फिर आचार्य ब्रह्मचारी को संकेत कर अग्नि आदि देवों को "अग्नये०" इत्यादि मंत्रों से समर्पण करे। इसी प्रकार अश्वमेध के विषय में भी समझो। बेंत वृक्ष की समिधाओं से अग्नि को प्रज्वलित करे। फिर नवम अनुवाक् से होम और छठे अनुवाक् से देवता का

उपस्थान करे। तदनन्तर दीक्षित को भोजन के लिये नियत यवागू देकर आदि से २१ अनुवाकों का अनुवाचन करे। प्रातः मध्यान्ह और सायं तीनों काल में तीन २ पूला घास घोड़े के लिये लावे। यह आश्वमेधिकी दीक्षा केवल क्षत्रिय ब्रह्मचारी के लिये ही है। इसलिये क्षत्रिय ब्रह्मचारी देव बुद्धि से घोड़े की सेवा भी अपने अन्य नियमों को पालने के समान ही किया करे। जल के किनारे जाय किन्तु जल में न घुस कर बाहर से ही जल लेकर घोड़े की सेवा करे। इन्हीं दो मन्त्रों से त्रैविधिक व्रत को करना चाहिए। वेद के उपनिषद भाग को पढ़ने की इच्छा हो तो वाराह श्रौतसूत्र में लिखे अनुसार ब्रह्मचारी प्रवर्ग्यं संस्मरण कर्म के प्रतिपादक मन्त्र ब्राह्मण को प्रथम पढ़ना चाहिये। दिन का समय खड़ा रह कर व्यतीत करे और रात्रि में मौन होकर बैठे। पर्व के दिनों में भी ऐसा ही आचरण रखे। यदि सम्पूर्ण शिर में केश रखे तो एक वर्ष के पश्चात् श्रेष्ठ प्रवर्ग्य हो जाता है ॥१-२७॥

नवम खण्ड

षोडशवर्षस्य गोदानम् ।१। अग्नि वाऽध्येष्यमाणस्य अग्निगोदानिको मैत्रायणीयजटाकरणेनोक्तमन्त्रविधिः ।२। उपस्थ उपकक्षयोश्चाधिको मन्त्रप्रयोगः ।३। यत्क्षुरेण मर्चयते' ति भूमौ केशान्निखनेत् ।४। अन्ते गां दद्यात् ।५। द्वे द्वे गुरुणाऽनुज्ञातः स्नायात् ।६। छन्दस्यर्थान् बुध्वा स्नास्यन् गां कारयेत् ।७। आचार्यमर्हयेत् ।८। 'आपो हिष्ठे' ति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाः शुचयं' इति चतसृभिः स्नात्वा अहते वाससी परिददाति ।९। वस्व्यसि वसुमन्तं मा कुरु ।१०। सौवर्चसाय मा तेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिददामी' ति, 'विश्वजनस्य छायासी' ति छत्रं धारयते ।११। मालामावध्नीते 'यामश्विनौ धारयेतां बृहस्पतिः पुष्करस्रजम् । २। तां विश्वे देवैरनुमतां मालामारोपयामी' ति ।१३।

'तेजोसीति हिरण्यं विभृयात् ।१४। प्रतिष्ठे स्थो देवते द्यावापृथिवी मा मा संताप्तिं' त्युपानहौ ।१५। 'विष्टम्भोसी' ति धारयेद्वैणवीं यष्टिं सोदकं च कामण्डलुम् ।१६। नित्यव्रतान्याहुराचार्याः 'द्विवस्त्रोन ऊर्ध्वं शोभनं वासो भर्तव्यमि' ति श्रुतिः ।१७। आमन्त्र्य गुरून् गुरुवधूश्च स्वान् गृहान् व्रजेत् ।१८। प्रतिषिद्धमपरथा द्वारा निस्सरणं मलवद्वाससा सह संभाषा रजस्वद्वाससा सह शय्या। गोगुर्वोर्दुरुक्तवचनमस्थाने शयनं स्मयनं स्थानं यानं गानं स्मरणमिति तानि वर्जयेत् ।१९। याजनवृत्तिरुञ्छशिलमयाचितप्रतिग्रहः साधुभ्यो वा याचितमनायासेन सिध्यमानार्थां वा वैश्यवृत्तिः ।२०। स्वाध्यायविरोधिनोऽर्थान्विसृजेत् ।।२१।।

जन्म से सोलहवें वर्ष में गोदान नामक संस्कार करे। श्रुति में लिखा है कि महर्षि मैत्रायणि ने अग्नि स्थापन के समय गोदान संस्कार किया था। 'यत् क्षुरेण' इत्यादि मन्त्र पढ़कर केशों को काटकर भूमि में गाड़े और अन्त में आचार्य को दो-दो गौयें दे। फिर गुरु की आज्ञा से समावर्तन स्नान करे। वेदों के अर्थ को भली-भाँति समझ कर समावर्तन स्नान करता हुआ गौ से आचार्य की पूजा करे। 'आपो हिष्ठा०' इत्यादि तीन और 'हिरण्यवर्णाः०' इत्यादि चार ऋचाओं से स्नान करने पर स्नातक को नवीन वस्त्र दे। और 'वस्व्यसि' इत्यादि मन्त्र पढ़े। 'विश्वजनस्य०' मन्त्र से छाता तथा 'या मयिवनी०' मन्त्र पढ़ कर माला-धारण करे। 'तेजोसि०' मन्त्र से सुवर्ण धारण करे और प्रतिष्ठे 'स्थोदेवते०' इत्यादि मन्त्र से जूते पहने। 'विष्टम्भोसि०' इत्यादि मन्त्र से ... और जल सहित कमण्डलु को धारण करे। अब स्नातक के गृहस्थ के लिये कुछ नियमों को कहते हैं। यज्ञ कराना, और बिना माँगे धन स्वीकार करना। या आसानी से सिद्ध होने वाली वैश्य वृत्ति से जीविका ... तथा स्वाध्याय के विरुद्ध का कार्यों त्याग करे।१-२१।